पातंजलदर्शनप्रकाश



શ્રી ગુરૂમંડળ સંસ્થાપકાચાર્ય નિખિલશાસ્ત્ર નિષ્ણાત પૂજ્યપાદ સ્વામિશ્રી ૧૦૮

બાલરામોદાસીનજી

પ્રાદુર્ભાવ સં. ૧૯૧૨. કૈવલ્ય સં ૧૯૯૩

पातंजलदर्शनप्रकाश

अर्थात्

श्रीगुरुमंडल संस्थापकाचार्य निखिलशास्त्रनिष्णात पूज्यपाद स्वामीश्री १०८ बालराम
उदासीनयतीन्द्र कर्तृक * भगवन्महामुनि पतञ्जलिप्रणीत योगसूत्रोनां हिंदी भाषामां
अन्वयपूर्वक पदार्थनिरूपण पुरःसर * निखिलतन्त्रस्वतन्त्र श्री वाचस्पतिमिश्र
प्रणीत तत्त्ववैशारदी नामक व्याख्यानी अनुसार * महर्षि कृष्णद्वैपायन-
विरचित योगभाष्यना उपयुक्त पदार्थाऽऽख्यानपूर्वक भावार्थप्रकाश *
तदन्तेवासि यतिवराऽत्मस्वरूप उदासीन टिप्पणप्रदानद्वारा
समुद्दीपित अने संशोधित

ગુજરાતી ભાષાંતર કરનાર

સવાઇલાલ છોટમલાલ વહોરા

"ગુજરાતી" પ્રિન્ટિંગ પ્રેસમાં
મણીલાલ ઇચ્છારામ દેશાઇએ છાપી પ્રકટ કીધું.
સાસુન બિલ્ડિંગ, સર્કલ, કોટ, મુંબઈ.

ઇ. સ. ૧૯૧૫ વિ. સંવત્ ૧૯૭૧

કિંમત રૂ. ૩

काशी (रामनगर) निवासि बलदेव कवि कृत

कविता।

बासी काशीपुरी जाको आश्रम उदासी
  दिव्य सुंदर सुधासे बैन सील के प्रतच्छ घर।
पंडित प्रतापी प्रेमी परम प्रमोदित हैं
  देखे नहि ऐसे जग जाहिर सुनामी नर॥
कहै बलदेव दूजो देव के समान स्वच्छ
  कच्छ के प्रतच्छ सांचे रांचे रामनाम पर।
जोग जप पूजा पाठ निसिदिन आठो जाम
  ऐसे सुखधाम सांचे बालराम स्वामीबर॥ १॥
देह धरे राजत हे केधों यह बेदवर
  कैधौं ए अठारहो पुरान अभिराम हैं।
कैधों यह छवो शास्त्र शोभित प्रकाश-
  वान कैधों यह रिखिराज बैठो त्यागि काम हैं॥
कहै बलदेव कैधों धर्म को पताका लसै
  कैधों विश्वनाथ कैधों गनपति नाम हैं।
भ्रम मैं न भूलो कोऊ भ्रम कै बिचार करो
  मंगल स्वरूप स्वच्छ स्वामी बालराम हैं॥ २॥
आनन अनूप कचकारे श्रुतिधर वेस
  नैन नासा दाडिम दसनहै मुदामी के।
ग्रीवा संख सोहत है सुंदर वृषभस्कंध
  परम विशालबाहु कर अहिबामी के॥
कहै बलदेव उर सोहत कपाट ऐसे
  नाभि सर बूडे ते बिलात काम कामी के।
घुघुची कहौ तो वाके कालिखलग्यो है मुख
  इंगुर के रंग पावँ बालराम स्वामी के॥ ३॥

क्रोध नहि आवे पास लोभ को न लेस कहुं
मोह को मरन होतआवै नहि नेरे डर ।
चलै अभिमानी धनविद्या अभिमान करि
आवत समीप दीन भाखैं पांय परि कर ॥
कहै बलदेव दिन दिन दया दीनन पै
हासिकै दयालुता सों बोलैं जैसे निज घर ।
सूरत प्रतच्छ देखे दुरितदुराय जात
बालराम स्वामी ऐसे बालराम स्वामी बर ॥ ४ ॥

भजन—अब कब नाथ दरस देखाय ।
ललित कोमल चरन अंबुज मंजु मूरति आय ॥
यह कुटिल पामर पतित को कब लेहुगे अपनाय ।
बालराम हि स्वामी को भजी तबहि संसय जाय ॥

सोरठा—जो नर बारहि बार, बालराम स्वामी कहैं ।
अर्थादिक फलचार. सो ध्रुव आनंद सो लहैं ॥ १ ॥

बाबु पत्तनलाल (सुशील कवि) कृत

कवित्त

सकल हीरानो गुन आज को जमानो जहां
नाम हि बखानो जात पुराचीन नामी को ।
ताहू पै सुनात कोउ काहु मैं प्रवीन
कोउ काहु मैं प्रवीन विषैं एक अनुगामी को ॥
ऐसे समे मांझ जो सुशीलव्यक्ति एक मांहि
देखै गुन सबैं धन्य हरि घट जामी को ।
चहो जो प्रतच्छ आप आंखन निहारन तो
लीजिये निहार भले बालराम स्वामी को ॥ १ ॥

जैसे व्याकरण ज्ञाता तैसे रखैं न्यायनाता
त्योंही सांख्य योग मांहि विमल विवेक हैं ।
ताही भांति वैशेषिक अपर वेदांत वेद
जाने भली भांति वेद अंग प्रति एक हैं ॥
अति मरमज्ञ अहैं सकल धरमशास्त्र
औरहु मीमांसा औ पुरान जो अनेक हैं ।
कहां लो बखानो गुन सत्य के सुशील
जानौ सब में प्रवीन स्वामी बालराम एक हैं ॥२॥
खडग विलास प्रेस बांकीपुर मांहि जौन
राम दीन सींहजू को जाहिर जहान हैं ।
तहां ते पयान किन्हो स्वामी बालराम आप
आत्मस्वरूप संग शास्त्रीजू सुजान हैं ॥
जात वैद्यनाथ जगदीश के दरस हेतु
मल्लेपुर देखी दुति अति हरखान हैं ।
ह्वांते आदर समेत गिरयौर नरेश आन्यो
पूजि पदकंज किन्हो अति सनमान हैं ॥ ३ ॥
उदासीन वैदिक ये धरम सनातन के
रक्षन अरथ देस देस रहे घूम हैं ।
साठ द्विज शिष्य साथ लीने वीजै केतु
हाथ तीरथन मांहि रहे करि धर्म्म धूम हैं ॥
ऐसे गुनमान उपदेशक सहायक सौं
सकल सुशील हींदु गन रहैं झूम हैं ।
जहां जहां इन के परे हैं पद कंज जाय
तहां तहां जाने निज भाग धन्य भूम हैं ॥ ४ ॥
जगन्नाथ वैद्यनाथ अरु कलकत्ता त्योंही
मुरसीद आबाद मांहि बहु नाम पाये हैं ।

परयाग दिल्ली कुरुक्षेत्र औ फरीदकोट
खूब सास्तरारथ के नीर बरसाये हैं ॥
अम्मरसहर पिंडि रावल कटाछराज
डेराइसमैल गाजिखांहु जाय धाये हैं ।
फेरी मुलतान भगवान नरसिंह जू को
दर्स करि आनंद की सरिता बहाये हैं ॥ ५ ॥
सूजाबाद मांहि हैं सुयोग्य विद्यावान
बडे पंडित ब्रह्मर्षि हेमराज नाम जाके हैं ।
जगत प्रसिद्ध भयो तिन को समागम है
देस देस मांहि जासु फहरे पताके हैं ॥
सक्खर मैं नदी मांझ गिरि साधुबेलाउपै
जोगिराज बाबा बंनखंडि थान बांके हैं ।
तहां एक मास लौं बीताये अति आदर सों
ऋतु बरसा के मोद भली भांति झांके हैं ॥ ६ ॥
सक्कर सीकारपुर नगर किरांची द्वारा-
वती गोपीसर संखुधारहु पधारे हैं ।
मांडवी सुमंडितकै जाय पौरबन्दर मैं
करि उपदेश कीने गुनिन सुखारे हैं ॥
जुनागढ गिरिनार मांहिहि सुशील जाय
छेतर परभास सोमनाथ जु निहारे हैं ।
देवी सरस्वती जहां पच्छिम दिसाकुं वहै
लखे माधोराय जे प्रवाह के मंझारे हैं ॥ ७ ॥
श्री द्वारिका में करी पूजन विधान साथ
बहु भांति विप्रन कुं भोजन कराये हैं ।
देखी के सुशील सील प्रतिभा प्रताप गुन
नगरनिवासी गुनी अति हरखाये हैं ॥

नाटक की मंडली के मकनजी अधिष्ठाता
　　आगम आनंद खेल प्रीति सों दिखाये हैं ।
देखी देखी निधन धनीहू उर मोद लहे
　　सबै स्वामि बालराम गुन गन गाये हैं ॥ ८ ॥
किन्हो हैं गमन जुनागढ राजधानी त्यागी
　　लागत वसंतऋतु कानन सोहायो हैं ।
काठियावार देस जेतपुर ग्राम तहां
　　छात्रन समेत स्वामी बालराम सायो हैं ॥
सुनी पायो देवली लखन दरबारजीने
　　सबीनै पखारी पद निज धाम ल्यायो हैं ।
आदर समेत अभिवादन करी बार बार
　　शास्त्र के विनोद में विशेष सुख पायो हैं ॥ ९ ॥
जहँ जहँ गये आप मान सत्कार लहे
　　शास्त्र चरचा को सुनि सबै मोद पाये हैं ।
जुनागढ राज के दीवान दास बेचर जु
　　खुद अगवानी करी टीसन तें लाये हैं ॥
संगमैं अमरजी औ राव पुरुसोत्तमजी
　　तथा मनसुखराम आदि आदि धाये हैं ।
महामहोपाध्या गटूलाल महाराज जीने
　　गुन के प्रशंसापत्र दीन हरखाये हैं ॥ १० ॥
स्वामी बालराम जब भाऊ नग्र राज मांहि
　　देत रहे सभा मांझ धर्म्म उपदेस हैं ।
वहां के दीवान बोले भरी वा सभा के बीच
　　बूढें हम भये मेरे पक चले केस हैं ॥
किन्तु ऐसे पूर्णज्ञाता सब ही विषै के मांहि
　　देखे नाहि सुने आये पंडित हमेस हैं ।

धन्य ये अहैं जे अल्प वैसमांहि ऐसे
अहै बय जासु चालिस ते नाहिन बिसेस हैं ॥ ११ ॥
माँझ मुलतान रायहरिचंद बहादुर औ
स्वामी ब्रह्मनंद आदि अति गुनखान हैं ।
त्योंहि बर पंडित श्री ठाकुर सुदास जु
हैं मिलि सब कीने इन अति सनमान हैं ॥
आदर के साथ लाय टीसन तें भौन निज
राखे द्वै मास सुने शास्त्र चरचान हैं ।
ऐसे बालराम स्वामी पंडित महा सुशील
कीने आज काल बाद अमदा टीकान हैं ॥ १२ ॥

छंद–श्री बाबू भूदेव मुकुरजी जाहिर सकल जहाना ।
बंग बिहार उडीसा अजहूं करत जासु गुनगाना ॥
जिन इसकूल इनिसपेक्टर औ डैरेक्टर हु होई ।
सुस्त अयोग्य भारतिन नामहिं काम प्रगटि निज धोई ॥
हिन्दी संसकिरत की उन्नति बहु प्रकार जिन कीनी ।
डेढ लाख मुद्रा इहि कारन खास कोष तें दीनी ॥
जे "शिक्षा बिधिपरस्ताव" अरु "इतिहासिक उपन्यासा" ।
"सारपुरावृत" "ग्रीस रोम त्यों इंग्लेंड इतिहासा" ॥
"पुस्पांजुलि" "विज्ञानप्राकृतिक विविध प्रबंध" सुहाये ।
"पारिवारिक" "सामाजिक" औ आचार प्रबंध बनाये ॥
औरहु "स्वप्न लब्ध भारत को इतिहासादि" घनेरे ।
पुस्तक बिरची कीन भारत में भले काज बहुतेरे ॥
सोउ श्री स्वामी बालराम सों शिक्षा बहु विधि लीनी ।
वेद तथा वेदांत आदि ग्रंथान अध्यैन कीनी ॥
तथा डाक्टर रामदास जू सेन मुरशीदाबादी ।
बुद्धचरित भारत इतिहासिक रत्न रहस इत्यादि ॥

रचे ग्रंथ बहु विधि सुंदर हैं सोउ बहु दिन चितलाई ।
स्वामी बालराम सों शिक्षा बहुत भांति की पाई ॥
पुनी उत्तरपाडा के वासी रासबिहारी मुकुरजी ।
उत्तरमीमांसादि निपुन भे बालराम की मरजी ॥
दीनू बाबू सरकारी प्लीडर हु मुर्शिदाबादी ।
सात कौडी मुकुरजी मनेजर और और इत्यादि ॥
बालराम स्वामी सो पढि पढि चित्त संदेह मिटाये ।
कहौं कहांलगि श्रीस्वामी के जात न गुनगन गाये ॥
रासबिहारी उत्तरपाडा वासी अति गुनखानी ।
बालराम स्वामी की सेवा द्रव्य करन चित्त आनी ॥
पैं स्वामी जी त्यागी अति हैं याते उन चित राखन ।
पातंजलदरसन उलथा जो देवबानि में भाखन ॥
तीन सहस मुद्रित कराय किय पंडित जन में वितरन ।
सब हरखाय कह इक सुर सों स्वामी धन धन धन धन ॥
सोइ पातंजल दरसन हिन्दी रसिकन मुद हित लागी ।
श्री महाराजकुमार रामदेनी सिंह जू ने मांगी ॥
स्वामी जी हरखाय तासु हिन्दी अनुवाद बनाये ।
दिये कुमारहि जो अपने प्रेस खड्गविलास छपाये ॥
इहि लखी हिन्दी संस्कृत ज्ञाता लेहु लूटि सुखरासी ।
स्वामी बालराम हैं कैसे कहहु उदार उदासी ॥
इस के शिष्य अनेकन तिन में आत्मस्वरूप उदासी ।
तैसेहि है जानहु रघुपति के जिमि हनुमान उपासी ॥
इनहुं के गुनगन की गाथा जात कछुक नहिं गाई ।
सुनत कथा उपदेश ज्ञान की उठत अंग पुलकाई ॥
बालराम स्वामी को अतिही सुघर स्वरूप लखावै ।
जो लिखके न बने समुझावत देखत ही बनी आवै ॥

दिव्य कांति अति पुष्ट बपुख सब मुखप्रसन्न ससि भाति ।
हाथ हथेली तरुआ पग रंग अरुन रंगी दरसाती ॥
डाढी मूछ सीस के कच हैं लघुकाले चमकीले ।
देखी करन अंगुरीन मुटाई पहलवान है ढीले ॥
मानहु विद्याबल गुन जितने विधि प्रपंच निज कीने ।
सब को सार निचोर गारि कै पास मांहि रखी लीने ॥
तासो रचि रचि महा परिश्रम इक नर सुघर बनाये ।
ताको स्वामी बालराम दै नाम जगत प्रगटाये ॥
धन बिधिना यह कठिन काल कलि भारत पर करि दाया ।
स्वामी बालराम सों गुननिधि शिक्षक सुघर पठाया ॥
हे भगवान दयानिधि रघुवर घट घट अंतरजामी ।
भारत तम नितनसैं सूर लौं बढी छिन छिन यह स्वामी ॥
भारतवासी परे अविद्या सो दुःख सकल बिहाई ।
इन के द्वारा सीख सीखि तुव भक्ति लहैं सुखदाई ॥
जिनकी कृपा स्वामी की हों गुनगाथ कछु सुनि पाई ।
आतमस्वरूप स्वामी इन सेवक संगति अति सुखदाई ॥
दरस लालसा जिय में भारी सुनिय कृपाल मुरारी ।
सो अभिलाख सुसील कृपा करि पुरवहु वेगी हमारी ॥

कवित्त

दृग कर पाद जैसे मन महराज दास दृग के पलक जैसे कर करतल हैं ।
पाँयतल पायन के चायन करतकाज टालत न आयसु सुसील एक पल हैं ॥
परमकृपाल जगपाल रघुनाथ जूके जैसे हनुमान दास भक्त निरछल हैं ।
तैसे विद्वद्वर यह स्वामी बालराम जू के आतमस्वरूप सत्य सेवक सरल हैं ॥

दोहा—श्रावण नवमी शुक्ल पख शनिवार शुभ पेख ।
संवत उन इस चवनको है सुशील यह लेख ॥

अखतियारपुर जी० आरानिवासी शिवनंदन सहाय ट्रान्सलेटर जजी बांकीपुर कृत

रोला छंद—श्री गिरजा वरनगर निवासी जगत उजागर ।
सुंदर रूप ललाम धाम गुन "बालराम" वर ॥ १ ॥
स्वामी पद संयुक्त सकल सास्त्रन पारांगति ।
धर्मधुजा कोदंड खंडकर त्यों पखंड मति ॥ २ ॥
भारत भू चहुं खंड जासु जस कीरति राजत ।
कली विधर्म्मी जाहि लखत निज भौन हिं भाजत ॥ ३ ॥
सबैं स्मृति पौरान जाहि जिह्वागर जानो ।
देवगुरु को अंश वेद की मूरति मानो ॥ ४ ॥
चित्त प्रसन्न निष्काम काम वस एक राम सन ।
काम क्रोध मोहादि नहीं व्यापत जिहि कोउ छन ॥ ५ ॥
जिहि दर्शन तें भरम निविड तम तुरत विनासे ।
जिहि सतसंगति होत बुद्धि की जोति प्रकासे ॥ ६ ॥
सुनत जासु उपदेश विमल मति ईश हिं लागैं ।
कर्म्म ज्ञान को भाव जान मन ब्रह्महिं पागैं ॥ ७ ॥
धर्म्म सनातन नित दिढाय के वेद प्रचारत ।
भारत संतति भटक रहे तिहि नित्त सुधारत ॥ ८ ॥
धर्म्म हि रक्षा हेत देत लेक्चर बहु देसन ।
धर्म्म हि रक्षा हेत रचै सुठि ग्रंथ अनेकन ॥ ९ ॥
धर्म्म हि रक्षा हेत योग पातंजल प्यारे ।
भाषा तिलक बनाय यह हस्त तुम्हारे ॥ १० ॥
करो परिश्रम सफल पाठ कर यहि गरंथ को ।
हिन्दु सकल समाज सुधारहु धर्म्म पंथ को ॥ ११ ॥
"शिवनंदन" कर जोर कहै श्री बालराम सौं ।
दीजे आसीख हो निकाम मन रचैं स्याम सों ॥ १२ ॥

जीन अवतार लीने धर्म्म हि के हेत जग
धर्म्म वृद्धि छाडि जाहि और नहि काम हैं ।
पापिन पाखंडिन को खंड खंड शास्त्र शस्त्र
जत्र तत्र खिन्न भिन्न करे आठो जाम हैं ।।
जासु सदाचार व्यवहार को उचार "सिव"
होत चहुं पार ग्राम ग्राम धाम धाम हैं ।
सदा निःकाम बस राम हि सो काम जाहि
ललित ललाम सोई स्वामी बालराम हैं ।। १ ।।

सांचो हैं उदासी ये उदासी पंथ भाखे कोउ
शास्त्रन समूह कोउ पारांगति जानिये ।
खंड खंड करत पखंड रीत देख कोउ
कलि दुरजन के कुठार ही बखानिये ।।
ज्ञान को निधान कोउ विद्या ही को खान
कहै जुगति अनुमान कोउ कहै एक आनिये ।
"सिव" के विचार बीच आवे बार बार
यहि धर्म्म को अधार अवतार वेद मानिये ।।
जस लछमन अंजनी सुवन, सेवक राम अनूप ।
बालराम महाराज के, तैसे आत्मस्वरूप ।।

नवटोल (मनीगाछी दरभंगा) निवासी
पं० जीवछमिश्र कृत

कैसे भाव भक्ति अहैं नेक समुझाय कहु
जैसे भृगुमांहि भाव बलिके अनूप हैं ।
कैसे भृगुमांहि भाव जैसे हि विदुर पाहि
कैसे हे विदुर पैं प्रभाव अनुरूप हैं ।।

जैसे हैं युधिष्ठिर भक्त जैसे हनुमान
अहै जैसे अष्टवक्र कहं महिमा अनूप हैं।
जान्यो जात नाहिं परतच्छ दिखराय देहु
जैसे बालराम कहं आतमस्वरूप हैं ॥ १ ॥
जासु उपदेश देश देश मांहि छाय रह्यो
धर्म्मपरभाव बाढे जग में अनूप हैं।
बंग औ बिहार सिंध अवध ओडीसा मांहि
धर्म्म परचार हेत विद्यमान रूप हैं॥
नाम बालराम औ अराम धर्म्मकाजन के
जाके नाम जपत अनेक जग भूप हैं।
जाके उपदेश तै मुनीश बने केते जन
देखो जे नमूने मेरे आतमस्वरूप हैं ॥ २ ॥
मर्म न धर्म्म को जानें कछु उपदेश करैं
जस धर्म्म के भूप हैं।
नाम सुने नहि दर्शन के अरु भाखत
ईश्वर के कत रूप हैं॥
ना गुरु तै पढे अक्षर एकहुं बैठे रहे
जस मेढक कूप हैं॥
भेद कहा जनिहैं अस मूरख शक्तिके
पुंज ये आतमस्वरूप हैं॥ ३ ॥
जस रघुनाथ के हैं भक्त हनुमान अरु
जैसे कृष्णचंद्र जुके पांडुपूत भूप हैं।
वीरभद्र अहै जैसे भूतनाथ शंकर के
जैसे द्वारिकेश कहं विदुर अनूप हैं॥
जैसे मुचुकुन्द हैं मुकुंद के पिआरे
पाकशासन के जैसे मेघराज अनुरूप हैं।
सौ गुनो हझार गुनो लाख गुनो वर्द्धमान
तैसे बालराम कहं आतमस्वरूप हैं॥ ४ ॥

बाबू शिवनंदन सहायात्मज बाबू व्रजनंदन सहाय अखतियारपुर आरा कृत

छप्पय–शुभ गुण खान ललाम जैति भारत हितकारक ।
जय जय स्वामी बालराम अघ कोटि संहारक ॥
बिबिध ग्रंथ की किरिन पसार भरम तम नासै ।
थारो सुजस प्रताप रवि "व्रज" चहुं दिस भासै ॥
प्रभु नेम प्रेम मों अटल अति सील दयासागर रुचिर ।
नित करत फिरत उपदेस जग जन मन होवत सुनत थिर ॥१॥
सत्य सनातन धर्म जगत परचार करन हित ।
नव नव युक्ति विचार करत स्वामी सुबाल नित ॥
गो ब्राह्मण की विपद लखै जाकर हिय पीडित ।
वेद शास्त्र की सुनत हि निंदा विकल जासु चित ॥
अवतार आदि को सिध कियो दै प्रमाण सब बेद को ।
यह युक्ति अनुपम टलत ना पावै नास्तिक खेद को ॥२॥
राउरी सुविद्या मारतंड को उदोत लखि
सतधर्म्म निंदक उलूक से लुकाने हैं ।
सत्य धर्म्म ग्रंथन को कंज सो विकास
भयो जाहि पै मलिंद सम संतन लुभाने हैं ॥
परम पखंड भरे 'व्रज' नवपंथ सब
अतिहि मलीन उडगन सें विलाने हैं ।
सुंदर चैयन सें रावरी बडाई स्वामी
कवि हरखाय सुनि गावे मनमाने हैं ॥ ३ ॥
स्वामी बालराम कासीपुरी के निवासी "व्रज"
शुभ गुण रासी भवजाल सें उदासी हैं ।
कोविद महान बुद्धिमान शीलखान सुठि
चतुर सुजान सत्य धर्म्म के प्रकासी हैं ॥

बकता प्रसिद्ध तिमि लेखक निपुन अति
नित नव ग्रंथ रच भ्रम के विनासी हैं।
योग सुपतंजल पै तिलक लगाय स्वामी
भाषा दह बीच कंज पुंज के विकासी हैं ॥ ४ ॥
संत समाज के ताज अहै जिह नाम लिये अघ दूरहि भाजैं।
भारत भूमि उजागर कारक धर्म्मधुजा सुठि कीरति राजैं ॥
वेद पुरानन के परचार किये बहु भांति सुपंथ को साजै।
देखत हीं जिह के "व्रज" ग्रंथ को निंदकधर्म हि को सत लाजै ॥५॥
आठो जाम जोरे कर ठाढे रहे सेवा हित
जैसे दास दीनता से आगे निज भूप हैं।
जबै कछु होत हैं सुआज्ञा गुरुवर्य्य जू की
करे न विचार "व्रज" पानी और धूप हैं ॥
जैसे रघुराज महाराज रामचन्द्र जू के
अंजनीकुमार बरसेवक अनूप हैं।
तैसे स्वामी बालराम परम प्रवीन जू के
अति ही सुसील दास आतमस्वरूप हैं ॥ ६ ॥
व्रजनंदन जुग जोर कर, बिनवे सीस नवाय।
स्वामी आसीख देहु अब, भ्रमतम जाल नसाय ॥

शीतलपुर-सारन निवासी दामोदर सहाय कृत

सोरठा-(बा) नी जासु अधीन, गनपति हरिहर ध्याइ हिय।
(ल) हि उत्साह नवीन, हरिजन गुन कीरति कथन ॥१॥
(रा) खि सुचित चित चार, सरस समस्या संकलन।
(म) ति मलीन अनुसार, ज्यों त्यों कछु पूरन करौं ॥२॥
(स्वा) रथ रहित सुभाव, परहित हित जीवन जनम।
(मी) त कहां कोउ पाव, बालराम स्वामी सरिस ॥३॥

सवैया-(अंतरलापिका)

देवगिरा में बिदेसबसे[1] को कहा कहते इक शब्द निकारो ।
त्योंहि दमोदर जू कुच की उपमा[2] केहि देत सुकंचन बारो ॥
को बिलगाइ सके[3] जल छीर गनी औ गरीब को हेतु[4] बिचारो ।
आखर आदि अखीर तजो तेहि को सतवार प्रणाम हमारो ॥४॥

जानत ना नहिं देख्यों सुन्यो एक वार उमंग हिलोरे लगी ।
दास दमोदर जू सुकुमार* पैं कीरति रासी सहोरे लगी ॥
गौरव की उनके कविता मतिमोहि करे को निहोरे लगी ।
कान में स्वामी जू की बतिआं दिन द्वैते पियूष निचोरै लगी ॥५॥

श्रीवलदेव सुशील दमोदर त्यों सिव औ व्रज के कलमासे ।
जाहिर जैसे कछू यह स्वामी जू पूरन प्रेम प्रमोद छमासे ॥
रे मन गाइ कछू इनकी करतूत करै किन पुन्य जमासे ।
बावरे जाने नहीं जगके दिनचार में है हैं तमाम तमासे ॥६॥

सज्जन साधु सुजान जबान सुमान वचै निरधारि लैरी ।
भेद नहीं हरि औ हरिदास में अपने चित्त मांहि विचारि लैरी ॥
सांची तरीफ दमोदर जू अपनी मति को भ्रम टारि लैरी ।
गुन गाइके स्वामी जू के रसने बहती नदी पांय पखारि लैरी ॥७॥

सवैया-(सिंहावलोकन)

नाइय सीस सही सरधा सह साधु सनातन में सुख पाइय ।
पाइय जीवन जीवन को फल मीत अनीत के गैल कबो नहि आइय ॥
आइय आपस में जुरि आज सबै मिलि स्वामी जू के गुन गाइय ।
गाइय नाम दमोदर जू अरु 'ग्रीषमे प्यारे हिन्मत बनाइय' ॥८॥

---

(१) प्रबास=बा ।   (२) कलश=ल ।
(३) हस=मराल=रा ।   (४) धन=लक्ष्मी=कमला=म । बालराम—
* महाराजकुमार बाबू रामदीन सिंह ।

स्वामी जू रावरी नामवरी कही पार न पाइ सके तो कहा कहे ।
औ कहिबे हि ते होत कहा है जथारथ जैसे हौ तो तैसे जसो लहे ॥
दीन दमोदर की बिनति यह दार तुम्हारे तुम्हारी दया चहे ।
हा! पदकंजहू देखीवे को दिल में अभिलाख भरे के भरे रहे ॥९॥

सोरठा—सेवक आत्मस्वरूप, बालराम स्वामी सुघर ।
जुगल सरूप अनूप, हरि हरिदास खगेस इव ॥ १० ॥

कवित्त—परम विरागी अनुरागी हरि रंगही में
प्रगट प्रभाव प्रेम पूरन अनूप हैं ।
दामोदर दिव्य देह दरसि नसात पाप
वानी सुनि बहुत विवेकी भये चूप हैं ॥
करि उपदेस भक्ति ज्ञान औ विराग
हुं के डुबत अनेकन निकारे भवकूप हैं ।
अधिक कहो का थोरहि में बुधजन
जानैं आतमस्वरूप ऐसे आतमस्वरूप हैं ॥११॥

बरवै—आसिन मास तीज तिथि पाख सुस्याम ।
मंगल सुखद सुहावन दिन अभिराम ॥ १२ ॥
विक्रम संवत उन्निस चार पचास ।
दामोदर यह कविता करी प्रकास ॥ १३ ॥
सीतलपुर के बासी सारन माहि ।
विद्रचरन सुसेवन उद्यम जाहि ॥ १४ ॥
छमब सुजन जे भूलन दूषन मोर ।
करि सुदया दृग कोरन मेरी ओर ॥ १५ ॥

वासुदेव पाठक खदिरसराय जिला गया

दुष्ट दल दारुण विदारिवे में वामदेव
मोहन में जानो त्यो लजाय दुति काम के ।

भक्त में प्रतक्ष पृथ्यु सनक सनातन है
मंगलिक विदित गणेश बर नाम के ॥
वासुदेव मंदाकिनी पाप पुंज नासिवे में
रन के उदासिवे में पैज गह्यो राम के ।
कोस अलकेश सो जो गाइबे जानिए जू
त्याग बलिराज सो है स्वामी बालराम के ॥ १ ॥

सीघडामउ जिला जौनपुर निवासी बलभद्र कृत

सतगुन प्रकासी सदा मोह तम पुंज नासी
वेद मत भाशी ज्ञान सुषमाभिराम के ।
अष्टसिद्धि दासी जाकी सेवा में रहती
खडी बैन में बसत बानी देखो सुखधाम के ॥
स्वामी बालरामजी की महिमा बखाने
कौन परम उदासी हैं देवैया सब काम के ।
तीरथगमन दिगविजै करिबे के हेत
भ्रमत भुवन में भरोसे हरिनाम के ॥ १ ॥

श्री मणिमहान हैं सुजान स्वामी बालराम
दयावान पंडित प्रवीन प्रभाधर हैं ।
निःस्पृही विसय विमुख मेधा आठो जाम
ब्रह्म को विचार जाके हृदि कंज बर हैं ॥
भावे बलभद्र कवि चारो वेद अष्टादश
उद्धरत छवो शास्त्र आछे जिह्वागर हैं ।
अधम उधारिवे को प्रगटे जगत बीच
बिजैपत्र लहिबे कों अवतार हर हैं ॥२॥

सवैया

अंश तपस्या को जागी उठ्यो तेहि तें लह्यो सेस से बुद्धि खरादी ।
ज्ञानबिराग लस्यो उर अन्तर सिद्धता फैली दराज अबादी ॥
त्यों बलभद्र विहार करें जग विद्या में पाए है व्यास की गादी ।
श्री बालराम चरित उदार हैं ध्वंसत मान फिरै जे प्रमादी ॥३॥
किंकर साथ सदा जिनके रहे ब्राह्मण साठी हैं विद्याभिलाखी ।
ताहि पढावत आप प्रमोद सों देत बताय सुकर्म्म की साखी ॥
त्यों बलभद्र प्रताप बली लखि दुष्ट भये सब दूध की माखी ।
जैसी महत्त्व सुनी हम कानन तैसी बनाय कवित्त मैं भाखी ॥४॥

सेवाकारी सर्वदा सुआज्ञामें निरत रहें
गुरु भक्ति धारी भारी ज्ञान गुन रासी हैं ।
परम तपस्वी बालराम के सुअन्ते बासी
सज्जन सनेही धर्म्मपथ के प्रकासी हैं ॥
सौम्य वृत्ति माधुरी प्रकृति चारु शुचि रुचि
सर्व शास्त्रवेत्ता आछे वचन बिलासी हैं ।
अष्ट जोग साधे निराकार अवराधे ब्रह्म
इन्द्रीजित आतमस्वरूपजी उदासी हैं ॥ १ ॥
महामोह तमहारी काम कोह भ्रम टारी
गुरुपद उरधारी ज्ञान दिव्य पायो हैं ।
माया छलकारी जाहि आवत न नेरे नेकु
विमल विचार त्यों अचार सब ठायो हैं ॥
उत्तम अनुपमेय हृदय उदार बर सार
बस्तु जाननीय दया दरसायो हैं ।
बिचरत मही में श्री स्वामी बालरामजी के
दास खास आतमस्वरूप कहवायो हैं ॥ २ ॥

॥ उपक्रम ॥

योगतत्त्वसमीक्षा

ॐ नमोऽन्तर्यामिणे ।

निखिलशास्त्रनिष्णातं वेदवेदाङ्गपारगं सुधीरं बालरामाख्यं ।
नत्वा विद्याप्रदं गुरुं सुखबोधाय शान्तानां योगतत्त्वं समीक्ष्यते ॥१॥

"उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत,
क्षुरस्य धारा निशिता दुरत्यया दुर्गं पथस्तत्कवयो वदन्ति"[1]

कृ० यजु० कठ० अ० १ वल्ली० ३ मं १४ ॥

परमहंस जन सर्वधन, योगी–मानस–हंस ।
हरि–हर उर धर मैं करूं, योगभूमिका हंस[2] ॥

મુમુક્ષુજન !

જે પ્રકારે તત્ત્વજ્ઞાન તથા નિર્વાણને અર્થે યોગાનુષ્ઠાન અવશ્ય સંપાદનીય છે, તે પ્રકાર તો શ્રુતિ સ્મૃતિદ્વારા શ્રી ૧૦૮ સ્વામીજીએ અગ્રિમ ઉપોદ્ઘાતમાં પ્રતિપાદન કરેલો જ છે, પરંતુ જે પુરુષ-

---

૧–(उत्तिष्ठत) ઉઠો, (जाग्रत) જાગો, અર્થાત્–અજ્ઞાનરૂપ નિદ્રામાંથી ઉઠી આત્મજ્ઞાનની અભિમુખ થાઓ. (वरान् प्राप्य) શ્રેષ્ઠ પુરુષોને પામી (निबोधत) પોતાના રૂપને જાણો. કાંઈ સુગમ જાણી જ્ઞાનમાર્ગની ઉપેક્ષા ન કરો. કેમકે તીક્ષ્ણ તથા દુર્ગમ છરાની ધારની પેઠે આ જ્ઞાનમાર્ગ દુર્ગમ છે. એ કવિ એટલે સર્વજ્ઞ મુનિઓનું અનુભવપૂર્વક કથન છે. એવો શ્રુતિનો ભાવ છે.

૨–" हंसा एकदण्डधरा: शिखावर्जयज्ञोपवीतधारिण: कमण्डलुहस्ता० " એ આશ્રમોપનિષતની શ્રુતિથી હંસ નામ શિખા રહિત યજ્ઞોપવીત ધારી હસ્તકમંડલુવાળા ઉદાસીનનું છે.

शरीरपोषणार्थी सन् य आत्मानं दिदृक्षति ।
ग्राहं दारुधिया धृत्वा नदीं तर्त्तुं स इच्छति[१] ॥

ઇત્યાદિ વચનોને પૃષ્ઠ (પીઠ) આપી "सर्वे ब्रह्म वदिष्यन्ति संप्राप्ते तु कलौ युगे। नानुतिष्ठन्ति मैत्रेय शिश्नोदरपरायणाः"[२] ઇત્યાદિ વચનોને સાર્થક કરતા વિષય ભોગપરાયણ થઈ, જ્ઞાનની દુકાન ખોલી અભ્યાસ-વૈરાગ્યવડે સાધ્ય ચિત્ત સંયમરૂપ યોગની અપેક્ષા વિના જ, કેવળ તાલસ્વર સંચારવિધુર શ્રવણ માત્રથી જ કૃતકૃત્યતાના કથનરૂપ ગીત ગાય છે, તેમને સ્વરતાલ[૩] બતાવી સુધારવા સારુ આ સંક્ષિપ્ત ઉપક્રમ છે.

તત્ત્વજિજ્ઞાસુજન !

એ તો નિર્વિવાદ જ છે કે, નિષ્પ્રપંચાત્મ તત્ત્વનો સાક્ષાત્કાર અજ્ઞાનની નિવૃત્તિવડે જણાવેલ આત્મસ્વરૂપની અભિવ્યક્તિરૂપે મુક્તિનો સહાયક છે. પરંતુ તે સાક્ષાત્કાર કાંઈ અકસ્માત્ કેવળ શ્રવણ માત્રથી જ થઈ જશે, એ કદાપિ સંભવતું નથી. કેમકે એમ માનવાથી પ્રથમ ઉપદિષ્ટ "तत्त्वमसि" એ વાક્યથી જ સાક્ષાત્કારનો લાભ થવાથી શ્વેતકેતુને જે નવ વાર ઉપદેશ આપ્યો, તે અયુક્ત થઈ જશે.[૪] કિંતુ જેમ રત્નની સાથે સંનિકર્ષ હોવા છતાં પણ કેવળ નેત્રમાત્ર, રત્નના તત્ત્વને જાણી શકતાં નથી, પણ રત્નતત્ત્વપરીક્ષાશાસ્ત્રના અભ્યાસજન્ય સંસ્કારોવાળાં જ નેત્ર, તે રત્નના તત્ત્વને જાણે છે; તેમ શબ્દમાત્ર આત્મજ્ઞાનના જનક નથી, પણ અભ્યાસવૈરાગ્યદ્વારા ચિત્તની સ્થિરતારૂપ સહકારી કારણ સહિત શબ્દ, આત્મજ્ઞાનનાં જનક છે,[૫] એમ માનવું પડશે. એમ માનવાથી જ

૧-શરીરપોષણની ઇચ્છાવાળો જે પુરુષ આત્માને જાણવાની ઇચ્છા કરે છે, તે પુરુષ કાષ્ઠબુદ્ધિથી ગ્રાહને પકડી નદીને તરવાની ઇચ્છાવાળા જેવો અવિવેકી છે. એ વિવેક ચૂડામણિના વાક્યનો ભાવ છે.

૨-હે મૈત્રેય ! કળિયુગ આવવાપર સઘળા લોકો બ્રહ્મ બ્રહ્મ પોકારશે, પણ શિશ્નોદર પરાયણ (મૈથુન-ખાન-પાન પરાયણ) થયેલા તેઓ સાધનોનાં અનુષ્ઠાન નહિ કરશે, એ ભાવ છે.

૩-અભ્યાસ, તાલ અને વૈરાગ્ય સ્વર છે.

૪-આ સ્થળે જે બીજા અનેક ક્ષુદ્રશંકારૂપ પંક છે, તેનું માર્જન આ ગ્રંથના પરિશિષ્ટમાં જુઓ.

૫-ચિત્ત જ બ્રહ્મના સાક્ષાત્કારમાં કરણ છે અને શબ્દ તેનું સહકારી છે.

નવ વાર ઉપદેશ દેવાની બાબત તથા "शृण्वन्तोपि बहवो यं न विद्युः" "श्रुत्वाप्येनं वेद न चैव कश्चित्"[1] એ શ્રુતિસ્મૃતિ યુક્ત થઈ શકે છે, અન્યથા નહિ.

એટલા માટે જ જ્ઞાનનાં સાધનોમાં શમ અને સમાધાનનું ઉપાદાન (ગ્રહણ) કર્યું છે.

તેથીજ અપરબ્રહ્મનિષ્ઠ સુકેશા આદિ છ ઋષિઓપ્રતિ "तपसा ब्रह्मचर्य्येण श्रद्धया संवत्सरं संवत्स्यथ" એ વાક્યથી મનની એકાગ્રતારૂપ તપ તથા બ્રહ્મચર્યનો ઉપદેશ કરી, તે પછી ચિત્તની સ્થિરતા થયા પછી પિપ્પલાદ મુનિએ તેમને ઉપદેશ આપ્યો છે.[2]

એ હેતુથી જ સત્ત્વગુણ પ્રધાન દેવરાજ ઇંદ્રપ્રતિ પણ ૧૦૧ વર્ષ બ્રહ્મચર્ય કરાવીને પ્રજાપતિએ ઉપદેશ[3] આપ્યો હતો; પણ કાંઈ હાલની પેઠે પ્રાતઃકાળમાં આવ્યો, અને સાયંકાળ સૂધીમાં નિષ્ક્રિયબ્રહ્મ-સ્વરૂપ બનાવીને કર્ત્તવ્યતાના અભાવ બોધનદ્વારા યથેષ્ટાચરણશીલ બનાવ્યો ન હતો. તેથી જ વરુણજીએ પોતાના પુત્ર ભૃગુને "तपसा ब्रह्म विजिज्ञासस्व"[4] એ વાક્યથી ચિત્તસ્થિરતારૂપ તપને બ્રહ્મજ્ઞાનનું સાધન કહેલું છે.

એ પ્રમાણે ચિત્તસંયમને માટે વૈરાગ્ય અભ્યાસદ્વારા યોગ અવશ્ય સંપાદનીય છે, એ નિર્વિવાદ છે.

વળી વિચારદૃષ્ટિથી આલોચના કરાય તો એ પ્રતીત થાય છે કે, વૈરાગ્યાભ્યાસરૂપ પ્રસંખ્યાન નામની અવસ્થા વિશેષ વિશિષ્ટ મન જ આત્મસાક્ષાત્કારનું કરણ છે, કાંઈ શબ્દ નહિ.

અર્થાત્-બ્રહ્માત્માના સાક્ષાત્કારનું કરણ શબ્દ છે અને સ્થિર મન તેનું સહકારી છે, એ મતથી ઋતંભરા[5]પ્રજ્ઞારૂપથી પરિણામને પામેલ ચિત્ત,

---

૧-શ્રવણ કરતા છતાં પણ ઘણા લોકો જે પરમાત્માને જાણી શકતા નથી. એવો આ કઠશ્રુતિનો અર્થ છે; અને સાંભળીને પણ એ પરમાત્માને કોઈ જાણી શકતું નથી, એ ભગવદ્ વાક્યનો અર્થ છે.

૨--અથર્વવેદીય પ્રશ્નોપનિષદ્‌ના આરંભમાં એ સ્પષ્ટ છે.

૩-"एकशतं ह वै वर्षाणि मघवान् प्रजापतौ ब्रह्मचर्य्यमुवास" ઇત્યંત છાંદોગ્યના આઠમા પ્રપાઠકના ૧૧મા ખંડમાં સ્પષ્ટ છે.

૪-તૈત્તિરીય ઉપનિષદ્-ભૃગુવલ્લી દ્વિતીય અનુવાક્.

૫ ઋતંભરાપ્રજ્ઞા બાબત પ્રથમ પાદનું સૂત્ર ૪૮ મુ જુઓ.

આત્માના સાક્ષાત્કારનું કરણ છે, અને શબ્દ તેનો સહકારી છે, એ મત સમીચીન છે.

તેટલા માટે જ યમરાજે નચિકેતા પ્રતિ "शृण्वन्तोऽपि बहवो यं न विद्युः" ઇત્યાદિ વાક્યથી શબ્દના અપ્રતિબદ્ધ અપરોક્ષ જ્ઞાનના કરણત્વ અભાવના કથનપૂર્વક "अध्यात्मयोगाधिगमने देवं मत्वा धीरो हर्षशोकौ जहाति"[1] એ વાક્યથી યોગસહકૃત મનકરણક બ્રહ્મસાક્ષાત્કારનો ઉપક્રમ કરી પછી "सर्वे वेदा[2] यत्पदमामनन्ति" ત્યાંથી લઈ "एतदालम्बनं श्रेष्ठम्" ત્યાં સૂધી ઈશ્વરપ્રણિધાનરૂપ ધારણાનો ઉપન્યાસ કરી ફરી "न बहुना श्रुतेन यमेवैष वृणुते तेन लभ्यः"[3] ઇત્યાદિ વાક્યથી એકતાનસંચિંતનરૂપ ધ્યાનની પરિપાક દશા કથન કરી પુનઃ "नाऽशान्तो नाऽसमाहितः"[4] એ વાક્યથી વ્યતિરેક મુખથી ધ્યાનના ઉત્તરકાળમાં હોવાવાળી સમાધિનો ઉપદેશ કરી, પછી 'आत्मानं रथिनं विद्धि शरीरं रथमेव तु"[5] એ વગેરેથી તે "सोऽध्वनः पारमाप्नोति तद् विष्णोः परमं पदम्" એ વાક્ય સૂધી અર્થવાદપ્રણાલીવડે ફલસહિત સમાધિની અવશ્ય કર્તવ્યતાનું ઉપપાદન કર્યું ત્યાર પછી "दृश्यते त्वग्र्यया बुद्ध्या सूक्ष्मया सूक्ष्मदर्शिभिः"[6] એ વાક્યથી ઋતંભરાપ્રજ્ઞાનું સૂક્ષ્મ અર્થગ્રહણ કરવાનું સામર્થ્ય વર્ણવ્યું. ત્યાર પછી "यच्छेद्वाङ्मनसी प्राज्ञस्तद् यच्छेज् ज्ञान आत्मनि

---

૧ પ્રત્યાહારદ્વારા વિષયોથી નિવૃત્ત કરી ચિત્તનો જે આત્માવિષયક યોગ કરી દેવો, તેનું નામ અધ્યાત્મયોગ છે. આ અધ્યાત્મયોગથી પ્રકાશસ્વરૂપ આત્માને જાણીને ધીર પુરુષ હર્ષ શોકને ત્યાગી દે છે.

૨ સર્વે વેદ જે પદનું વારંવાર નિરૂપણ કરે છે, એ પ્રણવનું આલંબન શ્રેષ્ઠ છે, કેમકે તે કૈવલ્યને દેવાવાળું છે, એવો ભાવ છે.

૩ બહુ શ્રવણ કરવાથી આત્મલાભ થતો નથી, પણ જે પરમાત્માને સંવૃણુતે=સમ્યક્ ભજે છે, અર્થાત્ એકતાનથી ચિંતન કરે છે, તેને પરમાત્માનો લાભ થાય છે.

૪ જે શમ અને સમાધિદ્વારા શાંત અને સમાહિત નથી, તે પરમાત્માને જાણી શકતો નથી.

૫ આત્મા રથી છે, શરીર રથ છે, બુદ્ધિ સારથિ છે, મન પ્રગ્રહ (લગામ) છે, અને ઇંદ્રિયો ઘોડા છે. તેમાં જે રથીનો બુદ્ધિરૂપ સારથિ, ઇંદ્રિયોનું દમન કરી મનને પોતાને અધીન કરી લે છે, તે રથીરૂપ આત્મા પરમપદને પ્રાપ્ત થાય છે, અન્ય નહિ, એ એનો ભાવ છે.

૬ શ્રવણ મનનદ્વારા સૂક્ષ્મ દૃષ્ટિવાળા પુરુષોવડે નિદિધ્યાસનદ્વારા સૂક્ષ્મ અને એકાગ્ર બુદ્ધિથી આત્મા દૃશ્ય થાય છે.

ज्ञानमात्मनि महति नियच्छेत् तद् यच्छेच्छान्त आत्मनि "[1] એ વાક્યથી સમાધિના અનુષ્ઠાનના પ્રકાર કથન કરી પછી "आवृत्तचक्षुरमृतत्वमिच्छन्" ઇત્યાદિથી અભ્યાસ કરી "यदा पञ्चावतिष्ठन्ते ज्ञानानि मनसा सह बुद्धिश्च न विचेष्टेत तामाहुः परमां गतिम्"[2] ઇત્યાદિથી યોગનું સ્વરૂપ કથન કરી "यदा सर्वे प्रमुच्यंते कामा येऽस्य हृदि श्रिताः। अथ मर्त्योऽमृतो[3] भवत्यत्र ब्रह्म समश्नुते" ઇત્યાદિથી બ્રહ્મસાક્ષાત્કારફલક યોગને ઉપસંહાર કર્યો છે.

ગીતાભાષ્યમાં પણ "शास्त्राचार्योपदेशशमादिसंस्कृतं मन आत्मज्ञाने करणम्" એ વાક્યથી યોગસહકૃત મનને જ આત્મજ્ઞાનનું કરણ માન્યું છે, કાંઈ શબ્દને નહિ.

એ પ્રમાણે ભામતીપતિ વાચસ્પતિમિશ્રે પણ "न ब्रह्मज्ञानमात्रं सांसारिकधर्मनिवृत्तिकारणमपितु साक्षात्कारपर्यन्तं ब्रह्मसाक्षात्कारश्चान्तःकरणवृत्तिभेदः श्रवणमननादिजनितसंस्कारसचिवमनोजन्मा षड्जादिभेदसाक्षात्कार इव गान्धर्वशास्त्रश्रवणाभ्याससंस्कृतमनोयोनिः"[4] આ વાક્યથી બ્રહ્મસાક્ષાત્કારને અંતઃકરણવૃત્તિવિશેષ કહેલો છે.

જો કે એવો મત છે કે "દશમો તું છે." ઈત્યાદિ સ્થળમાં પ્રસિદ્ધ હોવાથી શબ્દને જ જ્ઞાનકરણત્વ માનવું ઉચિત છે, મનને નહિ. કેમકે મનને જ્ઞાનની કરણતા ક્યાંઈ પ્રસિદ્ધ નથી.[5] એ મત અસંગત જાણવો. કેમકે "अहमेवेदं सर्वं सर्वोस्मीति मन्यते" એ શ્રુતિકથિત સ્વાપ્નસાક્ષાત્કારમાં અને ગર્ભસ્થિત વામદેવના સાક્ષાત્કારમાં મનની કરણતા પ્રસિદ્ધ હોવાથી

---

૧ વાણીના વ્યાપારને મનને અધીન કરવો, મનને અહંકારોપાધિક જ્ઞાનાત્માને અધીન કરવો, જ્ઞાનાત્માને બુદ્ધ્યુપાધિક મહાન્ આત્માને અધીન કરવો અને મહાન્ આત્માને શુદ્ધ શાંતાત્મામાં મગ્ન કરવો, એ તત્ત્વ છે.

૨ જે દિશામાં મનસહિત જ પંચ જ્ઞાનેંદ્રિય સંયમદ્વારા સ્થિર થઈ જાય છે અને બુદ્ધિ પણ નિશ્ચેષ્ટ થઈ જાય છે, તે દશાનું નામ યોગ છે, અને એ જ પરમ ગતિનો ઉપાય હોવાથી પરમ ગતિ છે.

૩ જે સમયે હૃદયમાં વિદ્યમાન નિખિલ કામ નિવૃત્ત થઈ જાય છે, તે સમયે એ પુરુષ અમૃત થઈ જાય છે, અને દેહ રહેવા છતાં પણ બ્રહ્મને પામે છે.

૪ કાંઈ શબ્દજન્ય જ્ઞાનમાત્ર જ સંસાર નિવૃત્તિનું કારણ નથી, પણ તત્ત્વસાક્ષાત્કાર છે. જો કે તત્ત્વસાક્ષાત્કાર એ અંતઃકરણની વૃત્તિવિશેષ છે; અર્થાત્–જેમ ષડજ આદિ સ્વરોને સાક્ષાત્કાર ગાંધર્વ શાસ્ત્રાભ્યાસ જનિત સંસ્કાર સહિત મનથી જન્ય છે, તેમ બ્રહ્મસાક્ષાત્કાર પણ શ્રવણાદિજન્ય સંસ્કારસહિત મનથી જ જન્ય છે, કાંઈ શબ્દથી નહિ.

૫ સુખાદિકને સાક્ષિભાસ્ય માનવાથી સુખાદિના સાક્ષાત્કારમાં પણ મન કરણ નથી, એ એનો આશય છે.

અપ્રસિદ્ધ કથન અનવધાનપ્રયુક્ત છે. વળી દશમ પુરુષના સાક્ષાત્કારમાં પણ ઇંદ્રિય જ કરણ છે અને શબ્દ કેવળ સહકારી માત્ર છે. જો કે તત્ત્વપ્રદીપિકા તથા અદ્વૈતસિદ્ધિના તૃતીય પરિચ્છેદમાં (ગાઢ અંધકારમાં લોચનવિહીન મનુષ્યને કેવળ વાક્યથી જ દશમનું જ્ઞાન થવાથી શબ્દ જ કરણ છે, ઇંદ્રિય નહિ.) એમ કહ્યું છે, તે પણ કેવળ સાહસ માત્ર છે. કેમકે એવા સ્થળમાં ભ્રમ હોવો અસંભવિત છે.[1]

જો કે કોઇનું આ કથન છે કે, (ઇંદ્રિયજન્ય જ્ઞાન પ્રત્યક્ષ હોવાથી અને મનને ઇંદ્રિયત્વના અભાવથી મનોજન્ય જ્ઞાન પ્રત્યક્ષરૂપ કેમ?) તે પણ કેવળ યથાશ્રુતગ્રાહી છાત્ર સંમોહન માત્ર છે. કેમકે "एकादशेन्द्रियाण्याहुः" "मनो नेत्रादि धीन्द्रियम्" ઇત્યાદિ સ્મૃતિઓમાં તથા "त इन्द्रियाणि तद्व्यपदेशादन्यत्रश्रेष्ठात्"[2] એ વ્યાસ સૂત્રથી મનનું ઇંદ્રિયત્વ સપ્રમાણક હોવાથી ઇંદ્રિયત્વાભાવનું કથન અપ્રમાણિક છે, તેટલા માટે જ તે મનનું નામ અંતઃકરણ છે, કેમ કે અંતર્ ઇન્દ્રિય અને અંતઃકરણ એ બંને શબ્દ એકાર્થક છે.

તે પ્રમાણે યોગાભ્યાસજન્ય ઋતંભરા પ્રજ્ઞારૂપથી પરિણત મન, બ્રહ્મસાક્ષાત્કારનું કરણ હોવાથી ઋતંભરા પ્રજ્ઞાને માટે યોગ અવશ્ય અપેક્ષિત છે, એ સિદ્ધ થયું.[3]

વિસ્તાર, સ્વામીની નિર્મિત યોગતત્ત્વ સમીક્ષામાં જુઓ કિં બહુના.

"प्रीतिर्न यावन्मयि वासुदेवे न मुच्यते देहयोगेन तावद्" ॥

भागवत ।

---

૧ અનિર્વચનીય વચનના અભિમાનથી જો અહીં પણ ભ્રમનો સંભવ માનશો, તો ગણનાદ્વારા સ્પર્શન પ્રત્યક્ષ જ ભ્રમનું નિવર્તક કહેવાશે, કાંઈ શબ્દ નહિ. વળી જ્યાં બધિર પુરુષને દશમ વિષયની ભ્રાંતિ થશે, ત્યાં ગણના વિના જ બીજો કયો ઉપાય માનશો?

૨–શ્રેષ્ઠ જે મુખ્ય પ્રાણ છે, તેનો પરિત્યાગ કરી બાકીની અગિયાર ઇંદ્રિય જાણવી. કેમકે શ્રુતિમાં એવો વ્યપદેશ છે. એ અ. ૨ પા. ૪ સૂ૦ ૧૭ નો અર્થ છે. ભાષ્યકારોએ પણ એ સૂત્રના વ્યાખ્યાનમાં મનને ઇંદ્રિય માનેલી છે. વળી ક્યાંઈ ક્યાંઈ ઇંદ્રિયોથી ભિન્ન મનનો વ્યપદેશ છે, તે ગોબલિવર્દ ન્યાયથી જાણવો; અથવા અન્ય ઇંદ્રિયો માત્ર વર્ત્તમાનવિષયક હોવાથી અને મન ત્રૈકાલિક પદાર્થવિષયક હોવાથી ભેદવ્યંપદેશ જાણવો. ભામતીકાર શ્રીમદ્ વાચસ્પતિમિશ્રે પણ એ સૂત્રના ભાષ્યની વ્યાખ્યામાં "मनसस्त्विन्द्रियत्वे स्मृतेरवगते क्वचिद्भेदेनो पादानं गोबलीवर्दन्यायेन" એ પ્રકારે ભેદકથનનું સમાધાન કર્યું છે.

૩–અન્યદર્શનીય ગ્રંથના અંતમાં પરિશિષ્ટમાં જુઓ.

"न मोक्षो नभसः पृष्ठे न पाताले न भूतले ।
मोक्षो हि चेतो विमलं सम्यग्ज्ञानविबोधितम्" ॥ (वसिष्ठ)
"मनसो निग्रहायत्तमभयं सर्वयोगिनाम् ।
दुःखक्षयः प्रबोधश्चाप्यक्षया शान्तिरेव च" ॥

પાતંજલદર્શનના ચતુર્થ પાદના ૩૧ મા સૂત્રના ભાષ્યમાં શ્રી વ્યાસદેવજીએ "अन्धो मणिमविध्यत, तमनंगुलिरावयत्, अग्रीवस्तं प्रत्यमुंचत् तमजिह्वोऽभ्यपूजयद्." એવું એક પદ્ય લખેલું છે.[1] એ પદ્યને વાચસ્પતિમિશ્રજીએ તો લૌકિક કહેવત છે, એમ કહેલું છે; અને યોગવાર્તિકકાર વિજ્ઞાનભિક્ષુએ યોગીઓપ્રતિ બૌદ્ધોના ઉપહાસરૂપ એ વાક્ય છે, એમ કહેલું છે; અને માધવાચાર્યે તેને વેદવાક્ય કહેલું છે. પરંતુ એ ત્રણે કથનમાંથી કયું સમીચીન છે, એ આકાંક્ષા ઉદય થવાપર માધવાચાર્યનું જ કથન સમીચીન જાણવું. કેમકે યજુ-તૈત્તિરીયારણ્યક પ્રથમ પાઠકના ૧૧ મા અનુવાદમાં એ પ્રથમ ઋગ્મંત્ર છે, પરંતુ 'अविध्यत' ને ઠેકાણે 'अविन्दत्' તથા 'अभ्यपूजयत्' ને ઠેકાણે 'असश्चत्' એ પ્રકારે શ્રુતિપાઠમાં વિશેષ છે.[2]

તેમાં 'अविन्दत्' એ પદનો અર્થ 'પ્રાપ્તિ કરવી' એવો છે, અને 'असश्चत्' એ પદનો અર્થ 'પ્રશંસા કરવી' એવો છે. નિખિલ ઇંદ્રિયોથી રહિત જ ચિદ્રૂપ આત્મા યાવદ્ વ્યવહાર કરે છે, એ એનો ભાવ છે.[3] અથવા ચક્ષુ વગેરે ઇંદ્રિયોનો નિરોધ કરી બાહ્ય વિષયોમાં અંધ થયેલો યોગી ઋતંભરા પ્રજ્ઞાથી મણિવત્ પ્રકાશસ્વરૂપ આત્માને જુએ છે અને એ પ્રજ્ઞાથી સ્વસ્વરૂપ નિશ્ચયરૂપ એ મણિનો સ્વીકાર કરે છે, તથા સ્વસ્વરૂપમાં સ્થિરતારૂપ મણિને ધારણ કરે છે અને કૃતકૃત્યતાના લાભરૂપ પ્રશંસા કરે છે, એ એનો ભાવ છે.[4]

ઉપક્રમ કર્તા—
तत्रभवदन्तेवासी
स्वाम्यात्मस्वरूप शास्त्री.

૧–એ પદ્યનો અર્થ કૈવલ્યપાદના ૩૧ મા સૂત્રના વ્યાખ્યાનમાં જુઓ.

૨–તૃતીયપાદમાં "त" એ પદ પણ શ્રુતિમાં નથી.

૩–તેમાં એટલું વિશેષ છે કે, જીવાત્મા યદ્યપિ સર્વ ઇંદ્રિયોથી રહિત છે, તથાપિ દેહાદિની સંગે તાદાત્મ્યાધ્યાસથી આરોપિત નિખિલ ક્રિયાવાળો છે અને પરમાત્મા અચિન્ત્ય શક્તિયુક્ત હોવાથી નિખિલ વ્યાપારવાળો (ક્રિયાવાળો) છે. ૪–એ ભાવથી જ યોગભાષ્યમાં તેનો ઉપન્યાસ છે.



વ્યાખ્યાન વાચસ્પતિ સ્વામીશ્રી આત્મસ્વરૂપોદાસીન

॥ पातंजलदर्शनप्रकाश ॥

ॐ नमोऽन्तर्यामिणे ।

स्थितिप्रख्याशोकैर्गुणमयविकारैः परिस्खलत् ।
सदाऽऽयम्य प्राणानपगततमश्चित्तमचलन् ॥
दृढं कृत्वा प्रत्याहृतकरणव्रातैर्मुनिवरैर् ।
उदासीनैर्ज्ञेयः परमगुरुरीशो विजयतām[1] ॥ १ ॥

दोहा–जिह जाने बिन होत जन, जन्म–मरन–आराम[2] ।
ज्ञान होत भव जान जिह, सो मैं आतमराम ॥ १ ॥

कवित्व–योगीगन बंदनीय जासु चरणारविन्द,
बन्दन करत भव फन्द मिट जात है ।
जासु सुत सिरीचंद वेदिवंश सिन्धुचन्द,
उदासीन–सेवनीय भूति सब गात है ॥
जासु मत चित्त देत ब्रह्मरूप भात होत,
मिट जात ममता विकार हट जात है ।

कर बंदन हरिहर गुरु, जिनमें रंच न भेद ।
करुं विशद गुरुवर कृति, लख गुरुमुखसे भेद ॥

૧–પ્રાણાયામદ્વારા ત્રિગુણાત્મક સ્થિતિ–પ્રખ્યા–શોક સંજ્ઞક વિકારોથી અહીં તહીં નિરંતર ભ્રમણશીલ ચિત્તને તમરહિત તથા અચળ કરી પ્રત્યાહારદ્વારા નિયમિતકરણ સમૂહ મુનિવર ઉદાસીનોથી જ્ઞેય જે પરમગુરુ ઈશ, તે સર્વથી ઉત્કૃષ્ટરૂપથી વર્તમાન હોય.

૨–આરામ=વિશ્રામ. આરામને ઠેકાણે (विसराम) પાઠ પણ સમીચીન છે. અહીં પ્રથમ શ્લોકથી પ્રકૃત યોગશાસ્ત્રના વિષય કથન પુરઃસર વસ્તુ નિર્દેશદ્વારા સત્કાર વ્યાપાર બોધન કર્યો છે અને આ દોહાથી નિજ વાસ્તવ રૂપનું નિરૂપણ કર્યું છે; અને અગ્રિમ કવિત્વથી આધિકારિક અહંકારોપાધિક સ્વરૂપના પરિચયપૂર્વક ઇષ્ટદેવને વંદન કર્યું છે. એ ગુરુચરણોનો આશય છે.

अमित चरित जगविदित प्रभाव जासु,
तासु गुरु नानक को सदा प्रनि-पात है ॥ २ ॥
कायिक वाचिक चित्त मल, हरणशील जिहि बानी ।
मुनि पतंजलि मल हरें, कर रज-तमकी हानि[१] ॥ ३ ॥
भारत-आरत[२] हत कियो, भारत ललित बनाय ।
भाष्यकार श्री व्यास पद, बन्दो हित चितलाय ॥ ४ ॥

राजकुमार[३] उदार वर, धीर बीर गुनखानि ।
रामदीन-हरि दीन-हित, कथिन वचन शुभ मानि ॥ ५ ॥
दर्शन भाषा-बद्ध कर, हरो मोह-संचार ।
तिह ते भाषा मैं करूं, हिय जिय-हित निरधार ॥ ६ ॥

योग समान न आन बल, भाखत वेद पुरान ।
आन कान मन आन जिन, पातञ्जल पहिचान ॥ ७ ॥

૧-જે પતંજલિ મુનિની વૈદ્યક-વ્યાકરણ-યોગ અનુશાસનરૂપ વાણી યથાક્રમ કાયિક-વાચિક-ચિત્ત મલ હરણ કરવામાં સમર્થ છે, તે પતંજલિ મુનિ રજ તમની હાનિ કરી, મારા ચિત્તના મલ હરણ કરે. એ કથનથી એ બોધન કર્યું કે, જે પતંજલિ મહાભાષ્યકાર અને ચરકના પ્રણેતા છે, તેજ યોગ સૂત્રકાર છે, કાંઈ ત્રણે ભિન્ન ભિન્ન નથી. એ બધું સારી રીતે યોગતત્ત્વ સમીક્ષાના પરિશિષ્ટમાં સ્પષ્ટ છે.

૨-સૂત્રકારને વંદન કરી હવે યોગભાષ્યકાર વેદવ્યાસ મુનિજીને વંદના કરે છે, "ભારત આરત" ઇતિ. ભારત નામ પ્રપંચનું છે. આરત નામ દુઃખનું છે. ભારતલલિત=એમાં ભારત પદ મહાભારત ઇતિહાસનું વાચક છે. એ કથનથી પણ એ બોધન કર્યું કે, અષ્ટાદશ પુરાણ તથા મહાભારતના કર્ત્તા જે વ્યાસમુનિ છે, તેજ વ્યાસમુનિ યોગભાષ્યકાર છે, અન્ય નહિ. એ પણ સ્વામીજીકૃત યોગતત્ત્વસમીક્ષાના પરિશિષ્ટના ભાષાનુવાદમાં મેં સ્પષ્ટ કર્યું છે.

૩-હવે જે મહારાજકુમારની સાહાય્યથી આ અમૂલ્ય રત્નનો જિજ્ઞાસુઓને લાભ થયો છે, તેના નામકથનપૂર્વક ભાષા કરવામાં હેતુ પ્રદર્શન કરે છે, "રાજકુમાર" ઇત્યાદિથી.

अथ उपोद्घातः ।

આ નિરર્ગલ માયિક સર્ગમાં શું લૌકિક[1] કે શું પરીક્ષક નિખિલ પ્રાણીમાત્ર દુઃખ-જિહાસા તથા સુખેપ્સાને અર્થે નિરંતર બદ્ધપરિકર થયેલા દૃષ્ટિગોચર થઈ રહ્યા છે. કેમકે જ્યારે નેત્રોન્મીલન કરી ક્યાંઈ દૃષ્ટિપાત કરાય છે, તો એવો કોઈ પુરુષ દૃષ્ટિગોચર થતો નથી કે, જે દુઃખની નિવૃત્તિ તથા સુખની પ્રાપ્તિને માટે યત્નશીલ ન હોય. પરંતુ તેમાં એટલું વિશેષ છે કે, જે લૌકિક લોકો છે, તે અન્ધગોલાંગૂલન્યાયથી[2] વા સ્વચ્છંદ ઉપાયોદ્વારા જ દુઃખ-સુખની નિવૃત્તિ-પ્રાપ્તિને ચાહે છે; અને જે પરીક્ષક છે, તે શાસ્ત્રોક્ત ઉપાયદ્વારા દુઃખસુખની નિવૃત્તિ-પ્રાપ્તિ માટે યત્ન કરે છે. મતલબ કે સર્વથા જ દુઃખ-સુખની નિવૃત્તિ-પ્રાપ્તિ સર્વાભીષ્ટ છે, એ નિર્વિવાદ છે.

વળી એટલું વિશેષ બીજું પણ છે કે, પ્રાકૃત માણસ સામાન્યરૂપથી દુઃખની નિવૃત્તિ અને વૈષયિક સુખની પ્રાપ્તિને માટે અભ્યર્થનાશીલ હોય છે, અને વિવેકી માણસ આત્યંતિક દુઃખની નિવૃત્તિ અને દુઃખાસભિન્ન સુખની પ્રાપ્તિના અર્થી હોય છે. કેમકે વિવેકી જન તાત્કાલિક દુઃખ રહિત તથા પરિણામ દુઃખ મિશ્રિત[3] વિષય સુખની

૧–નૈસર્ગિક તથા શાસ્ત્રજન્ય બુદ્ધિપ્રકર્ષરહિત લૌકિક કહેવાય છે, અને જે નૈસર્ગિક તથા શાસ્ત્રજન્ય બુદ્ધિપ્રકર્ષશીલ છે, તે પરીક્ષક કહેવાય છે. સાધારણ બુદ્ધિવાળા લૌકિક કહેવાય છે, અને વિદ્વાન્ પરીક્ષક કહેવાય છે, એ સ્થૂલ અર્થ છે.

૨–અંધ એટલે નેત્રરહિત. ગોલાંગૂલ એટલે બળદનું પુચ્છ. અર્થાત્–જેમ કોઈ જંગલમાં ભૂલો પડેલો માણસ પોતાના ગામનો માર્ગ શોધતો (તું આ બળદનું પુચ્છ પકડી લે, તે તને તારે ગામ પહોંચાડશે.) એવા વંચકના વાક્યને સાંભળી ગોપુચ્છને હાથમાં પકડી પોતાને ગામ જવા ચાહે છે. તેમ જે માણસ વિચારરૂપ નેત્રથી રહિત થયેલો મોક્ષમાર્ગને શોધતો (તું નખ વધાર, વા મૂર્તિપૂજન ન કર, વા દંતધાવન ન કર) એવી રીતનાં વંચકનાં વાક્ય સાંભળી, કોઈ ઉપાયમાં પ્રવૃત્ત થઈ જાય છે, તે અંધગોલાંગૂલન્યાયથી પ્રવૃત્ત થયેલો કહેવાય છે.

૩–જેવું કે વિષયભોગમાં પરિણામ દુઃખ મિશ્રિત છે. એ દ્વિતીય પાદના ૧૫મા સૂત્રમાં સ્પષ્ટ છે.

પ્રાપ્તિને પરમ પુરુષાર્થ માનતા નથી. તેથી આત્યંતિક દુઃખ નિવૃત્તિ અને દુઃખ અમિશ્રિત નિરતિશય સુખની પ્રાપ્તિ જ પરમ પુરુષાર્થ હોવાથી અભ્યર્થનીય છે, અન્ય નહિ. કેમકે એમ માનવાથી જ (મને દુઃખ કદાપિ ન હો, કિંતુ નિરંતર હું સુખી જ રહું.) એ અનુભવ ઉત્પન્ન થઈ શકે છે, અન્યથા નહિ.

યદ્યપિ કોઈ દુઃખાભાવને સુખાર્થ માની સુખની પ્રાપ્તિને પુરુષાર્થ માને છે; કોઈ સુખને દુઃખાભાવાર્થ માની દુઃખની નિવૃત્તિને પુરુષાર્થ માને છે, અને કોઈ વિનિગમના અભાવવડે બંનેને પુરુષાર્થ માને છે, તેથી આ સ્થળ વિવાદગ્રસ્ત છે.[1] તોપણ "**तदत्यन्तविमोक्षोऽपवर्गः**"[2] "**त्रिविधदुःखात्यन्तनिवृत्तिः परमपुरुषार्थः**"[3] ઇત્યાદિ મહર્ષિ ગૌતમ તથા કપિલ મુનિનાં સૂત્રોથી દુઃખની નિવૃત્તિને જ પરમ પુરુષાર્થ જાણવો.

તેથી દુઃખનિવૃત્તિ જ પુરુષાભીષ્ટ હોવાથી સાધનીય છે, એ નિષ્પન્ન થયું.

યદ્યપિ ભૂતકાળમાં વિદ્યમાન દુઃખ તો ભોગદ્વારાજ નિવૃત્ત થઈ ગયું છે, અને વર્ત્તમાનકાળમાં ભોગારૂઢ થયેલું દુઃખ પણ દ્વિતીય ક્ષણમાં નષ્ટ હોવાથી નિવૃત્તપ્રાય જ છે, એટલે એ બંનેની નિવૃત્તિ સાધનીય બની શકતી નથી; તથાપિ ભાવી દુઃખની નિવૃત્તિ જ સાધનીય જાણવી. એટલા માટે જ ભગવાન્ પતંજલિએ "**हेयं दुःखमनागतम्**"[4] એ સૂત્રથી ભાવી દુઃખને જ હેય કહેલું છે.

તે આ ભાવી દુઃખની અત્યંત નિવૃત્તિ આગામી જન્મની નિવૃત્તિને આધીન છે. કેમકે આગામિ દેહ સંબંધ પ્રયુક્ત દુઃખને જ ભાવી દુઃખ કહેવાય છે.[5] અને આગામી જન્મની નિવૃત્તિ ધર્માધર્મની નિવૃત્તિને

૧–એ સઘળા વિષયને સ્વામીજીકૃત કૈવલ્ય કલ્પલતિકાના ભાષાનુવાદમાં મેં સ્પષ્ટ કરેલ છે, તેથી તે ગ્રંથમાં જોઈ લેવું.

૨–એ ન્યાયદર્શનના પ્રથમ અધ્યાયના પ્રથમ આહ્નિકનું બાવીસમુ સૂત્ર છે. "तद्" શબ્દથી પૂર્વ સૂત્રોક્ત "बोधनालक्षणं दुःखं" એ દુઃખ પદનો પરામર્શ કરવો. તેથી એ અર્થ થયો કે, તે દુઃખોથી જે અત્યંત વિમોક્ષ (રહિત) થઈ જવું, તેજ અપવર્ગ (મુક્તિ) છે.

૩–આધ્યાત્મિકાદિ ભેદથી ત્રણ પ્રકારનાં દુઃખની અત્યંત નિવૃત્તિ, એ જ પરમપુરુષાર્થ છે. એ સાંખ્યદર્શનના પ્રથમ અધ્યાયના પ્રથમ સૂત્રનો અર્થ છે.

૪–આ બીજા પાદનું સોળમું સૂત્ર છે. ૫–પૂજ્યપાદ સ્વામીશ્રીવિરચિત ન્યાયદર્શન પ્રકાશના બીજા સૂત્રમાં એ વિચાર વિસ્તારથી વર્ણવેલો છે.

અધીન છે. કેમકે ધર્માધર્મના અનુષ્ઠાનથી જ આગામી શુભાંશુભ જન્મનો લાભ થાય છે અને ધર્માધર્મની નિવૃત્તિ, રાગદ્વેષની નિવૃત્તિને અધીન છે. કેમકે અનુકૂળમાં રાગ અને પ્રતિકૂળમાં દ્વેષથી જ પરના અનુગ્રહ નિગ્રહદ્વારા વા શુભાશુભ કર્માનુષ્ઠાનદ્વારા જ ધર્માધર્મની ઉત્પત્તિ થાય છે, કાંઈ સ્વાભાવિક નહિ અને રાગદ્વેષની નિવૃત્તિ અવિદ્યા, આત્મા અજ્ઞાનાદિ પદવાચ્ય મિથ્યા જ્ઞાનની નિવૃત્તિને અધીન છે. કેમકે મિથ્યાજ્ઞાન જ રાગદ્વેષનું મૂળ કારણ છે.

તેટલા માટે "**अविद्या क्षेत्रमुत्तरेषां प्रसुप्ततनुविच्छिन्नोदाराणाम्**"[૧] એ સૂત્રથી ભગવાન્ પતંજલિએ અવિદ્યાને રાગદ્વેષનું મૂળ કારણ કહેલું છે.

એ પ્રમાણે નિખિલ અનર્થ મૂલભૂત અવિદ્યાસંજ્ઞક મિથ્યા જ્ઞાનની નિવૃત્તિજ સર્વતઃ પ્રથમ પ્રયોજનવાળી હોવાથી અવશ્ય તે કરવા યોગ્ય છે, એ સિદ્ધ થયું.

આથી જ મહર્ષિ ગૌતમજીએ "**दुःखजन्मप्रवृत्तिदोषमिथ्याज्ञानानामुत्तरोत्तराऽपाये तदनन्तरापायादपवर्गः**"[૨] એ સૂત્રથી મિથ્યાજ્ઞાન નિવૃત્તિ પૂર્વક જ ઉત્તરોત્તર રાગાદિ નિવૃત્તિદ્વારા આત્યન્તિક દુઃખ નિવૃત્તિરૂપ અપવર્ગની પ્રાપ્તિ કથન કરી છે.

૧–એ દ્વિતીય પાદનું ત્રીજું સૂત્ર છે, અર્થ ત્યાં જુઓ.

૨–એ ન્યાયદર્શન પ્રથમ અધ્યાયનું બીજું સૂત્ર છે. दुःख ૨૧ સૂત્રોક્ત બાધના–પીડા–તાપસંજ્ઞક સાંસારિક સુખ દુઃખ, (जन्म) ૧૯ મા સૂત્રમાં કહેલું પુનરુત્પત્તિ નામક શરીર–ઇંદ્રિયાદિનું પરિગ્રહણ (प्रवत्ति) ૧૭ સૂત્રઉક્ત વાચિક–કાયિક–માનસ, સત્ય, મિથ્યા, રક્ષા, હિંસા, દયા, પરદ્રોહરૂપ શુભઅશુભ પ્રવૃત્તિથી જન્ય ધર્માધર્મ. (दोष) ૧૮ સૂત્રમાં કહેલા ધર્માધર્મ કારણ પ્રવૃત્તિના જનક રાગદ્વેષાદિક દોષ. (मिथ्या ज्ञान) અનિત્ય, અશુચિ, દુઃખ અનાત્મપદાર્થ વિષયક નિત્ય શુચિ, સુખ અને આત્મજ્ઞાનરૂપ વિપર્યય જ્ઞાન. એ પાંચમાંહેથી (उत्तरोत्तरापाये) ઉત્તર ઉત્તર કારણ (અપાય) નિવૃત્ત હોવાથી (तदनन्तराऽपायाद्) પૂર્વ પૂર્વ કાર્યનો અપાય હોવાથી જે નિખિલ દુઃખ–મોક્ષ, તે અપવર્ગ કહેવાય છે. અર્થાત્–તત્ત્વજ્ઞાનથી મિથ્યા જ્ઞાનનો નાશ, મિથ્યાજ્ઞાનના નાશથી રાગદ્વેષનો નાશ, રાગદ્વેષના નાશથી શુભાશુભ કર્મનો નાશ, શુભાશુભ કર્મના નાશથી જન્મનો નાશ, જન્મના નાશથી દુઃખનો નાશ, એવી રીતે કારણના નાશથી કાર્યનો નાશ થઈ જવો, તે જ મુક્તિ છે. વધારે માટે ન્યાયદર્શન પ્રકાશમાં જુઓ.

યદ્યપિ અનિત્યમાં નિત્યત્વજ્ઞાન, અશુચિમાં શુચિત્વજ્ઞાન, દુ:ખમાં સુખત્વ જ્ઞાન, અને અનાત્મામાં આત્મત્વજ્ઞાનના ભેદથી મિથ્યાજ્ઞાન અનેક પ્રકારનું છે, તોપણ આત્માને યથાવત્ ન જાણી જે અનાત્મ ચિત્તપ્રભૃતિમાં આત્મત્વજ્ઞાન તેજ મિથ્યા જ્ઞાન પ્રથમ નિવર્ત્તનીય છે. કેમકે એ મિથ્યાજ્ઞાન હોવાથી જ નિખિલ મિથ્યાજ્ઞાન ઉપસ્થિત થાય છે અને એ મિથ્યાજ્ઞાનના નાશથી જ સઘળું નષ્ટ થાય છે. એથી જ બૃહદારણ્યક ઉપનિષદ્‌માં "**आत्मानं चेद् विजानीयादयमस्मीति पूरुषः। किमिच्छन् कस्य कामाय शरीरमनुसंज्वरेद्**"[1] એ શ્રુતિમાં વ્યતિરેકદ્વારા આત્માના અજ્ઞાનનેજ નિખિલ અનર્થનું કારણ કહેલું છે.

એ આત્મઅજ્ઞાનરૂપ મિથ્યાજ્ઞાનનું આત્મજ્ઞાનરૂપ તત્ત્વજ્ઞાન જ એક મુખ્ય ઉચ્છેદક છે. કેમકે તત્ત્વજ્ઞાન જ મિથ્યાજ્ઞાનનું વિરોધી છે. એ આત્મજ્ઞાન નામનું તત્ત્વજ્ઞાન જ ઋતંભરા પ્રજ્ઞાપદનું વાચ્ય છે. તેથી આત્મજ્ઞાન જ પુરુષને પ્રથમ સંપાદનીય થાય છે.

એ આત્મજ્ઞાન જે સાધનોથી પ્રાપ્ત થાય છે, તે સાધન યદ્યપિ ભિન્ન ભિન્ન સ્થાનોમાં ભિન્ન ભિન્ન પ્રતિપાદન કરેલાં છે, તોપણ શ્રવણ, મનન તથા નિદિધ્યાસન જ મુખ્ય સાધન માનવાં ઉચિત છે. કેમકે એ જ વેદસંમત છે.

એથી જ "**आत्मा वा अरे द्रष्टव्यः श्रोतव्यो मन्तव्यो निदिध्यासितव्यः**"[2] એ શ્રુતિમાં એ ત્રણને જ આત્મજ્ઞાનનાં સાધન કહેલાં છે, અન્યને નહિ.

તેમાં વેદવાક્યોનો અદ્વિતીય–બ્રહ્મવિષયક–સમન્વયને અર્થે જે ઉપનિષદોના તાત્પર્ય વિષયક, અજ્ઞાન સંશયાદિ પ્રતિબંધ નિવર્ત્તક, વેદાંત

૧–યદિ આ પુરુષ (આત્મા) પોતે પોતાને જાણી લે કે, હું આવા નિખિલ દુ:ખાનુષંગ રહિત નિત્યમુક્ત આનંદસ્વરૂપ છું, તો પછી એ કોની ઇચ્છાવાળો થયેલો અને કોના પ્રયોજનને માટે શરીરમાં મિથ્યાધ્યાસ કરી, અનેક પ્રકારના વિષયભોગને માટે દુ:ખ ભોગવે, એ શ્રુતિનો અર્થ છે.

એ પ્રમાણે ફલિત એ થયું કે, આત્માના અજ્ઞાનથી જ નિખિલ ઇચ્છા વા દુ:ખભોગાદિ ઉપસ્થિત થાય છે. તેટલા માટે કહે છે. "વ્યતિરેકદ્વારા" ઇત્યાદિથી.

૨–યાજ્ઞવલ્કય પોતાની પ્રિયા મૈત્રેયીને કહે છે કે–અરે મૈત્રેયિ! જેને અમૃત તત્ત્વસંજ્ઞક કૈવલ્યની કામના હોય, તેણે આત્મા જ જ્ઞાતવ્ય–જાણવા યોગ્ય છે. એથી આત્મજ્ઞાન માટે પ્રથમ વેદાંતનું શ્રવણ, પછી મનન અને ત્યાર પછી નિદિધ્યાસન સંપાદન કરવું, એવો આ શ્રુતિનો અર્થ છે.

વાકયોનો ઉપક્રમાદિ ષડ્‌લિંગદ્વારા નિર્ણયજનક જે વિચાર, તેનું નામ શ્રવણ છે.

અન્ય મતોની સાથે વિરોધપ્રયુક્ત પ્રમેયની અસંભાવનારૂપ પ્રતિબંધક નિરાકરણાર્થ જે શ્રુતિસ્મૃતિસહકૃત તર્કનું અનુસરણ કરી નિરંતર વેદવાકયોના અર્થનું જે ચિંતન, તેનું નામ મનન છે.

મનનદ્વારા નિશ્ચિત કરેલા પદાર્થવિષયક જે વિપરીત ભાવનાની નિવૃત્તિ અર્થે ચિત્તને એકતાન કરી દેવું, તેનું નામ નિદિધ્યાસન છે.

એ ત્રણેમાંથી આત્મજ્ઞાનરૂપ તત્ત્વજ્ઞાનનું નિદિધ્યાસન, અંતરંગ સાધન છે, અને બીજાં બહિરંગ સાધન છે. એથી જ "ततस्तु तं पश्यति निष्कलं ध्यायमानः" એ શ્રુતિમાં ધ્યાનશીલને જ આત્મજ્ઞાનની યોગ્યતાવાળો કહ્યો છે.

નિદિધ્યાસન અને ધ્યાન એ બંને શબ્દ એકાર્થવાચક છે.[1] એથી જ શંકરાચાર્યજીએ (निदिध्यासितव्यः) એ શ્રૌત પદનો (निश्चयेन ध्यातव्यः) નિશ્ચય કરીને ધ્યાન કરવા યોગ્ય, એવો અર્થ કર્યો છે.

એ ધ્યાન જ કાલક્રમથી પરિપાકદશાને પામે છે, ત્યારે તે સમાધિ કહેવાય છે. એથી જ સ્કંદાચાર્યે "ध्यानद्वादशकेनैव समाधिरभिधीयते" એ વાકયથી ધ્યાનની પરિપાકદશાને સમાધિ કહી છે.

બહુ શું કહીએ? એ નિદિધ્યાસન જ વૃદ્ધિને પામેલું પરમસંખ્યાન, સંપ્રજ્ઞાત, ધર્મમેઘ, ઋતંભરાપ્રજ્ઞા, ધ્રુવાસ્મૃતિ, ગુણવૈતૃષ્ણ્ય, પરવૈરાગ્ય, જ્ઞાનપ્રસાદ, પ્રસંખ્યાન, પરમકાષ્ઠા, અસંપ્રજ્ઞાત, નિર્વિકલ્પસમાધિ[2] આદિ નામોથી કહેવાય છે.

યદ્યપિ વિષયભોગવાસના તો શ્રવણના અંગભૂત યમનિયમાદિથી જ નિવૃત્ત થઈ જાય છે, અને પ્રમાણગત તથા પ્રમેયગત અસંભાવના,[3]

૧–શ્રુતિમાં ધ્યાનશીલને આત્મજ્ઞાનની યોગ્યતાવાળો કહેલો છે, કાંઈ નિદિધ્યાસનશીલને નહિ. એ આશંકાનુ વારણ કરે છે. "નિદિધ્યાસન અને ધ્યાન એ બંને શબ્દો એકાર્થવાચક છે." ઇત્યાદિથી.

૨–એ નિર્વિકલ્પ સમાધિસૂધી જ ધ્યાનવૃદ્ધિની સીમા છે. તેમાંથી આદિના પાંચભેદ સંપ્રજ્ઞાતયોગના અંતર્ગત છે અને અંતના છ ભેદ અસંપ્રજ્ઞાતના અંતર્ગત છે, એ પણ જાણી લેવું.

૩-વેદનું તાત્પર્ય દ્વૈતવિષયક છે, વા અદ્વૈત વિષયક છે, તેનું નામ પ્રમાણગત અસંભાવના છે; અને ચિતિશક્તિ પ્રકૃતિથી ભિન્ન છે કે નહિ, ભિન્ન હોય તો કર્તા છે કે અકર્તા, અકર્તા હોય, તો તે જ્ઞાનધર્મવાળી છે કે જ્ઞાનસ્વરૂપ છે, ઇત્યાદિ સંશયનું નામ પ્રમેયગત અસંભાવના છે.

શ્રવણ-મનનથી નિવૃત્ત થઈ જાય છે, તેથી એ ત્રણે પ્રતિબંધકના અભાવ સારુ નિદિધ્યાસનની અપેક્ષા નથી, તોપણ વિપરીત ભાવનાની[1] નિવૃત્તિને માટે નિદિધ્યાસન અવશ્ય કરવા યોગ્ય છે. કેમકે વિપરીત ભાવનાની નિવૃત્તિ વિના અપ્રતિબદ્ધ સાક્ષાત્કાર થવો અસંભવિત છે.

એટલા માટે જ "अथ तद्दर्शनाऽभ्युपायो योगः"[2] "श्रद्धाभक्तिध्यानयोगादवेहि"[3] "अध्यात्मयोगाधिगमेन देवं मत्वा धीरो हर्षशोकौ जहाति"[4] "ततस्तु तं पश्यति निष्कलं ध्यायमानः" "कश्चिद् धीरः प्रत्यगात्मानमैक्षताऽऽवृत्तचक्षुरमृतत्वमिच्छन्"[5] ઇત્યાદિ શ્રુતિઓમાં નિદિધ્યાસનસંજ્ઞક યોગને આત્મસાક્ષાત્કારનું કારણ કહેલું છે.

મનુ ભગવાને પણ "सूक्ष्मतां चान्ववेक्षते योगेन परमात्मनः" એ વચનથી યોગને જ પરમાત્મનિષ્ઠ સૂક્ષ્મતાના સાક્ષાત્કારનું કારણ કહેલું છે.

એ પ્રમાણે યોગી યાજ્ઞવલ્કયે પણ "इज्याऽऽचारदमाऽहिंसादानस्वाध्यायकर्मणाम्। अयन्तु परमो धर्मो यद्योगेनात्मदर्शनम्"[6] એ વચનથી યોગદ્વારા આત્મસાક્ષાત્કારને પરમ ધર્મ કહેલો છે.

એ પ્રમાણે બ્રહ્મસૂત્રકાર વેદવ્યાસ મુનિએ પણ "अपि संराधने प्रत्यक्षाऽनुमानाभ्याम्"[7] એ સૂત્રથી યોગને જ આત્મસાક્ષાત્કારનું કારણ પ્રતિપાદન કરેલું છે.

૧-યદ્યપિ વેદોનું તાત્પર્ય અદ્વૈતમાં હોવાથી અદ્વૈત, કોઈ પ્રમાણથી બાધિત નથી, તથાપિ 'હું એ પરમાત્માનો સાક્ષાત્કાર કરી શકતો નથી, કિન્તુ શાસ્ત્રદ્વારા પરોક્ષ જ જાણું છુ' ઇત્યાદિ ભ્રાંતિસંસ્કાર પરંપરાનું નામ વિપરીત ભાવના છે. ૨-તે પરમાત્માના જ્ઞાનનો ઉપાય યોગ છે.

૩-શ્રદ્ધા, ભક્તિ, ધ્યાનયોગદ્વારા આત્માને જાણો. (કૈવલ્ય ઉપનિષદ્)

૪-અધ્યાત્મયોગના લાભથી દેવ અર્થાત્ પરમાત્માને જાણી વિદ્વાન્ હર્ષશોકથી રહિત થઈ જાય છે, એ કઠ શ્રુતિનો અર્થ છે.

૫-કોઈક ધીરપુરુષ અમૃતત્ત્વની ઇચ્છાવાળો થયેલો ઇંદ્રિયવૃત્તિને નિરુદ્ધ કરી પ્રત્યગ્ આત્માનો સાક્ષાત્કાર કરે છે.

૬-યજ્ઞ, આચાર, દમ, અહિંસા, દાન, સ્વાધ્યાય, કર્મોમાંથી એ જ પરમ ધર્મ છે, કે યોગથી આત્માનો સાક્ષાત્કાર કરવો.

૭-સંરાધન નામ ધ્યાનનું છે અને પ્રત્યક્ષ નામ શ્રુતિનું છે, તથા અનુમાન નામ સ્મૃતિનું છે અર્થાત્-ધ્યાનકાળમાં યોગીલોક નિરસ્ત સમસ્તપ્રપંચ પરમાત્માનો સાક્ષાત્કાર કરે છે. કેમકે શ્રુતિસ્મૃતિઓમાં એમ જ પ્રતિપાદન કરેલું છે. તેમાં શ્રુતિઓ મૂળમાં સ્પષ્ટ છે અને "योगिनस्तं प्रपश्यन्ति भगवन्तं सनातनम्" ઇત્યાદિ સ્મૃતિઓ પણ જાણી લેવી. યોગી લોકો સનાતન પરમાત્માનો સાક્ષાત્કાર કરે છે. એ સ્મૃતિનો અર્થ છે.

ન્યાય દર્શનકાર મહર્ષિ ગૌતમે પણ "समाधिविशेषाभ्यासाद्"[1] એ સૂત્રથી યોગાભ્યાસને જ તત્ત્વજ્ઞાનનો ઉપાય કહેલો છે.

એ પ્રમાણે વરુણ મુનિએ પણ સ્વપુત્ર ભૃગુપ્રતિ "तपसा ब्रह्म विजिज्ञासस्व" એ શ્રુતિથી મન ઇંદ્રિયની એકાગ્રતારૂપ[2] તપવાચ્ય યોગને જ બ્રહ્મજ્ઞાનનું કારણ કહેલું છે.

બૃહદારણ્યક ઉપનિષદ્‌ના ચતુર્થ અધ્યાયગત મૈત્રેયી બ્રાહ્મણના વ્યાખ્યાનમાં ભાષ્યકાર શ્રી શંકરાચાર્યજીએ પણ "यदैकत्वमेतान्युपगतानि तदा सम्यग्दर्शनं ब्रह्मैकत्वविषयं प्रसीदति नान्यथा श्रवणमात्रेण" એ વાક્યથી કેવળ શ્રવણને બ્રહ્મસાક્ષાત્કારના અભાવ કથનપૂર્વક નિદિધ્યાસન સહિત શ્રવણને જ બ્રહ્મસાક્ષાત્કારનું જનક કહેલું છે.

એ પ્રમાણે પુરાણોમાં પણ "योगात् संजायते ज्ञानं योगो[3] मय्येकचित्तता" "आत्मज्ञानेन मुक्तिः स्यात् तच्च योगाद् ऋते नहि"[4] योगाग्निर्दहति क्षिप्रमशेषं पापपञ्जरं, प्रसन्नं जायते ज्ञानं ज्ञानान्निर्वाणमृच्छति"[5] "स्वसंवेद्यं हि तद् ब्रह्म कुमारी स्त्रीसुखं यथा, अयोगी नैव जानाति जात्यन्धो हि यथा घटम्[6]" "दुःसहा राम संसारविषवेगा विषूचिका, योगगारुडमन्त्रेण पावनेनोपशाम्यति[7]" ઇત્યાદિ વચનોથી યોગને જ આત્મજ્ઞાનનો જનક કહેલો છે.

૧–સમાધિવિશેષના અભ્યાસથી તત્ત્વજ્ઞાન ઉત્પન્ન થાય છે, એ ન્યાયદર્શનના ૪થા અધ્યાયના બીજા આન્હિકના ૩૮ મા સૂત્રનો અર્થ છે.

૨–"मनश्चेन्द्रियाणां चैवैकाग्र्यं परमं तपः" એ સ્મૃતિથી ભાષ્યકારોએ અહી મન તથા ઇંદ્રિયોની એકાગ્રતાનું જ નામ તપ કહેલું છે.

૩–યોગથી જ્ઞાન ઉત્પન્ન થાય છે, અને યોગ નામ મારા વિષયક ચિત્તની એકાગ્રતાનું છે, એ આદિત્ય પુરાણના વચનનો અર્થ છે.

૪–આત્માના જ્ઞાનથી મુક્તિ થાય છે અને તે જ્ઞાન, યોગ વિના દુર્લભ છે, એ સ્કંધપુરાણ વાક્યનો અર્થ છે.

૫–યોગરૂપ અગ્નિ શીઘ્ર જ નિખિલપાપપંજરને દગ્ધ કરી દે છે. તે પાપ દગ્ધ થવાથી પ્રતિબંધરહિત જ્ઞાન પ્રાપ્ત થાય છે અને જ્ઞાનથી નિર્વાણસંજ્ઞક મોક્ષ પ્રાપ્ત થાય છે. એ કૂર્મપુરાણમાંના શિવવાક્યનો અર્થ છે.

૬–જેમ કુમારી, પતિસંગમજન્ય સ્ત્રી સુખને જાણી શકતી નથી અને જન્માન્ધ પુરુષ ઘટને જાણી શકતો નથી, તેમ યોગાભ્યાસથી રહિત પુરુષ આત્માને પણ જાણી શકતો નથી. એ દક્ષમુનિના વચનનો અર્થ છે.

૭–હે રામ! જન્મમરણરૂપ સંસારસંજ્ઞક જે વિષવેગતુલ્ય વિષૂચિકા રોગ છે, તે, યોગરૂપ ગરુડમંત્ર વિના શમન થવો અસંભવિત છે, એ વસિષ્ઠ વાક્યનો અર્થ છે.

એ પ્રમાણે શ્રવણમાત્રને આત્મસાક્ષાત્કારનું જનક ન માની શ્રવણ મનનોત્તર ભાવિનિદિધ્યાસન પદ વાચ્ય યોગયુક્ત ચિત્તને જ આત્મસાક્ષાત્કારનું કરણ માનવું ઉચિત છે. એટલા માટે "दृश्यते त्वग्रया बुद्ध्या सूक्ष्मया सूक्ष्मदर्शिभिः[1]" ઇત્યાદિ શ્રુતિઓમાં એકાગ્ર ચિત્તને આત્મસાક્ષાત્કારનું કરણ કહેલું છે.

એ પ્રમાણે ગીતા ભાષ્યમાં પૂજ્યપાદ શંકરાચાર્યજીએ પણ "शास्त्राचार्योपदेशशमादिसंस्कृतं मन आत्मज्ञाने करणम्" એ વાક્યથી યોગસહકૃત મનને જ આત્મજ્ઞાનનું કરણ કહેલું છે.

એ પ્રમાણે બૃહદારણ્યકમાં પણ "समाहितो भूत्वाऽऽत्मन्येवात्मानं पश्येत्[2]" એ શ્રુતિથી સમાહિતચિત્ત યોગીને જ આત્મજ્ઞાનનો અધિકારી કહ્યો છે.

એ પ્રમાણે છાંદોગ્યોપનિષદ્‌માં પણ સનત્કુમારે નારદ મુનિ પ્રતિ 'सत्त्वशुद्धौ ध्रुवा स्मृतिः स्मृतिलम्भे सर्वग्रंथीनां विप्रमोक्षः'[3] ઇત્યાદિથી સમાધિજન્ય ઋતંભરા પ્રજ્ઞાસંજ્ઞક ધ્રુવા સ્મૃતિને જ મોક્ષનું કારણ કહેલું છે.

યદ્યપિ જેમને વિપરીત ભાવના ઉદય થતી નથી, તેમને શ્રવણ 'મનનથી જ અપ્રતિબદ્ધ જ્ઞાનનો લાભ થવાથી કાંઈ નિયમદાખલ યોગ આત્મજ્ઞાનનું કારણ નથી. એટલા માટે "द्वौ क्रमौ चित्तनाशस्य योगो ज्ञानं च राघव, योगो वृत्तिनिरोधो हि ज्ञानं सम्यगवेक्षणम्[4]" " એ વાક્યથી વસિષ્ઠ મુનિએ વિકલ્પ કહેલો છે અને ધ્યાનદીપમાં "बहुव्याकुलचित्तानां विचाराव तत्त्वधीर्न हि। योगो मुख्यस्ततस्तेषां धीदर्पस्तेन शाम्यति"[5] ઇત્યાદિ વાક્યોથી વિદ્યારણ્ય સ્વામીએ પણ વિક્ષિપ્ત ચિત્તોપ્રતિ યોગાનુષ્ઠાન કહેલું છે, કાંઈ નિખિલજિજ્ઞાસુઓપ્રતિ નહિ. તથાપિ જે પુરુષોને પૂર્વજન્માભ્યસ્ત યોગથી

૧–શ્રવણ મનનથી સૂક્ષ્મદષ્ટિવાળા પુરુષોથી નિદિધ્યાસનદ્વારા સૂક્ષ્મ અને એકાગ્રબુદ્ધિથી આત્મા દશ્ય થાય છે, એ કઠશ્રુતિનો અર્થ છે.

૨–(समाहित) સમાધિનિષ્ઠ થઈ અંતઃકરણમાં સ્થિત આત્માને જુએ. એ એનો અર્થ છે.

૩–હિતકારક, પરિમિત તેમ જ મેધ્ય એવા ભોજનરૂપ યોગથી અંતઃકરણની શુદ્ધિ હોવાથી ધ્રુવાસ્મૃતિનો લાભ થાય છે, અને એના લાભથી અવિવેકઆદિ બધી ગ્રંથીઓ વિમુક્ત થઈ જાય છે.

૪–ચિત્તનાશરૂપ મોક્ષના બે ઉપાય છે:– એક યોગ અને બીજો જ્ઞાન, એવો તેનો ભાવાર્થ છે.

૫–વિક્ષિપ્ત ચિત્તોને કેવળ વિચારથી આત્મજ્ઞાન ન થવાથી યોગ જ તેમને માટે મુખ્ય છે. કેમકે યોગદ્વારા ચિત્ત, વિક્ષેપરહિત થઈ જાય છે.

આ જન્મમાં પૂર્વાભ્યસ્ત યોગબળનો લાભ મળેલો છે, એવા યોગભ્રષ્ટ-વિષયક એ વચનોનું તાત્પર્ય હોવાથી દોષાભાવ જાણી લેવો. નહિ તો શ્રી શંકરાચાર્યાદિના મતમાં પણ સંન્યાસને જ્ઞાન સાધનતાનો લાભ થશે નહિ. કેમકે જનકાદિને સંન્યાસ વિના જ જ્ઞાનલાભ થવાથી ત્યાં સંન્યાસનો વ્યભિચાર દૃષ્ટ છે.

એથી જ સર્વજ્ઞમુનિએ વ્યભિચાર પ્રાપ્ત થવાપર "जन्मान्तरेषु यदि साधनजातमासीत्संन्यासपूर्वकमिदं श्रवणादिकं च विद्यामवाप्स्यति जनः सकलोऽपि यत्र तत्राश्रमे वसन्न निवारयामः"[1] એ વાકયથી પૂર્વજન્મ અનુષ્ઠિત સંન્યાસ સદ્ભાવને માની વ્યભિચારનો પરિહાર કર્યો છે. એ પ્રમાણે જ્યાં કંઈ સંન્યાસ વિના પણ જ્ઞાનનો લાભ થાય, ત્યાં પૂર્વજન્મકૃત સંન્યાસને માની સંન્યાસને જ્ઞાનનું અંગ સ્વીકારેલું છે; તેમ અહીં પણ જ્યાં યોગા-ભ્યાસ વિના જ્ઞાન પ્રાપ્ત થયું દેખાય, ત્યાં પૂર્વજન્માનુષ્ઠિત યોગનો સદ્ભાવ માની, યોગને આત્મજ્ઞાનનું કારણ જાણવું.

એટલા માટે શ્રી ભગવાને "तत्र तं बुद्धिसंयोगं लभते पौर्वदेहिकं, यतते च ततोः भूयः संसिद्धौ कुरुनन्दन"[2] એ વાકયથી પૂર્વજન્મ અનુષ્ઠિત સાધન સંપત્તિથી ઉત્તરજન્મમાં ફળનો લાભ કહેલો છે.

એ અભિપ્રાયથી જ પુરાણોમાં "जैगीषव्यो यथा विप्रो यथा चैवाऽसितादयः, क्षत्रिया जनकाद्यास्तु तुलाधारादयो विशः, संप्राप्ताः परमां सिद्धिं पूर्वाऽभ्यस्ततत्त्वयोगतः"[3] ઇત્યાદિ વાકયોથી જનકાદિકને પૂર્વાભ્યસ્ત યોગથી જ્ઞાનનો લાભ કહેલો છે.

વળી જે પુરુષને પૂર્વ જન્માભ્યસ્ત સાધનોથી કાંઇક તત્ત્વજ્ઞાનનો ઉદય થાય છે, તેણે પણ પ્રારબ્ધ કર્મ પ્રયુક્ત દૃષ્ટ દુઃખની નિવૃત્તિ માટે યોગનો અવશ્ય આશ્રય કરવો જોઇએ. કેમકે આત્મજ્ઞાન, આગામી તથા સંચિત કર્મોનો જ નાશ કરવામાં સમર્થ છે, પણ પ્રારબ્ધ કર્મનો નાશ કરવામાં સમર્થ નથી.

૧–જો પૂર્વ જન્મમાં જ સંન્યાસપૂર્વક શ્રવણાદિકનું અનુષ્ઠાન કર્યું હોય, તો ઉત્તર જન્મમાં હરકોઈ આશ્રમમાં રહી માણસ સંન્યાસ વિના આત્મવિ-દ્યાનો લાભ કરી લે છે, તેના નિવારણ માટે કોઈ સમર્થ નથી. (મતલબ કે તેવા પુરુષનું જ્ઞાન કોઈ અટકાવી શકતું નથી.)

૨–ઉત્તરજન્મમાં પૂર્વદેહમાં હોવાવાળી બુદ્ધિની સાથે યોગભ્રષ્ટ સંયોગનો લાભ કરે છે, અને તેથી જ તે શીઘ્ર શીઘ્ર મોક્ષને માટે યત્નમાં તત્પર થાય છે. ૩–જનકાદિક પૂર્વ જન્માભ્યાસ્ત યોગથી મોક્ષને પામેલા છે.

એથી જ બ્રહ્મસૂત્રકાર વેદવ્યાજીએ "तदधिगम उत्तरपूर्वाऽघयोरसंश्लेषविनाशौ तद्व्यपदेशाद्"[1] એ સૂત્રથી પ્રારબ્ધ કર્મ સિવાય બીજાં કર્મોની આત્મજ્ઞાનથી નિવૃત્તિ કહેલી છે.

એ પ્રમાણે પ્રારબ્ધપ્રયુક્ત દૃષ્ટ દુઃખની નિવૃત્તિને માટે તથા મનોનાશ વાસના ક્ષયદ્વારા જીવન્મુક્તિ સંપાદન કરવા સારુ સર્વોત્કૃષ્ટ યોગ, મુમુક્ષુને ઉપાદેય છે, એમ સિદ્ધ થયું.

જો કોઈ એમ કહે કે, આત્મજ્ઞાનદ્વારા વિદેહમુક્તિના લાભથી જ કૃતકૃત્ય હોવાથી જીવન્મુક્તિની કાંઈ આવશ્યકતા નથી, કે જેને માટે યોગાભ્યાસદ્વારા મનોનાશ વા વાસનાક્ષય કરવો પડે. તો તેના ઉત્તરમાં અમે કહીએ છીએ કે, તમે દેવલોકના ભોગથી જ પોતાને કૃતકૃત્ય માની, વિદેહમુક્તિને માટે મહાવાક્યનું શ્રવણ પણ ન કરો!

જો એમ કહો કે, ક્ષય તથા અતિશય આદિ દોષ વિશિષ્ટ હોવાથી સ્વર્ગ હેય છે, તો નિખિલ દોષોમાં અગ્રગણ્ય મનોરાજ્ય તથા વાસના, સ્વયંદોષરૂપ હોવાથી એ બંને પણ યોગદ્વારા હેય કેમ ન હોઈ શકે? જો એમ કહેશો કે મનોરાજ્યથી શું અનિષ્ટ થાય છે, કે જેની નિવૃત્તિને માટે યોગાભ્યાસ અપેક્ષિત છે? તો બીજાં અનિષ્ટ તો પોતાના અંતર્યામીને પૂછો, પણ જે અનિષ્ટ શ્રીકૃષ્ણ ભગવાને શ્રીમુખથી કહેલાં છે, તે અમારાથી સાંભળો કે–"ध्यायतो विषयान्पुंसः सङ्गस्तेषूपजायते"[2] ઇત્યાદિ.

એ પ્રમાણે સઘળા અનર્થના ભાજન પ્રારબ્ધ કર્મના નિવર્તક તથા મનોનાશ વાસના ક્ષયદ્વારા જીવન્મુક્તિનો સંપાદક જે યોગાભ્યાસ, તે, મુમુક્ષુને અવશ્ય ઉપાદેય છે. તે યોગ યદ્યપિ શ્વેતાશ્વતર, કઠ, મૈત્રાયણી વગેરે ઉપનિષદોમાં પ્રતિપાદિત કરેલો છે. તથાપિ જે એકત્ર સાંગોપાંગ નિબદ્ધ

૧–પરમાત્માનો સાક્ષાત્કાર થવાથી આગામી તથા સંચિત પુણ્યપાપનો સંસર્ગાભાવ અને વિનાશ થાય છે. કેમકે વેદમાં એમ જ લખેલું છે. આ તેનો સંક્ષિપ્ત અર્થ છે અધ્યાય. ૪ પાદ ૧ સૂત્ર ૧૩.

૨–વિષયોનું ધ્યાન કરનાર પુરુષનું તે વિષયોમાં (આ વિષયો મારા સુખના જનક છે.) એ પ્રકારે સંગ થઈ જાય છે. એ સંગથી (આ વિષય મને મળે) એ પ્રકારે કામ થાય છે અને એ કામથી એ કામને હનન કરવાવાળા ઉપર ક્રોધ ઉત્પન્ન થાય છે અને ક્રોધથી સંમોહ=કર્ત્તવ્યાકર્ત્તવ્ય વિવેકનો અભાવ થાય છે. સંમોહથી શાસ્ત્રાચાર્યોપદિષ્ટ અર્થવિષયક સ્મૃતિનો નાશ થાય છે. સ્મૃતિના નાશથી આત્માકાર બુદ્ધિનો નાશ થાય છે અને બુદ્ધિના નાશથી પુરુષ નાશ પામે છે. અર્થાત્–પુરુષાર્થથી ભ્રષ્ટ થઇને મૃતપ્રાય થઈ જાય છે.

ન હોવાથી પરમકૃપાળુ પતંજલિમુનિએ મુમુક્ષુઓના ઉદ્ધાર માટે યોગસૂત્ર-દ્વારા સાંગોપાંગ ચાર પાદમાં વિભક્ત કરેલો છે. તેનું નામ યોગચતુષ્પાદી વા યોગશાસ્ત્ર અને પાતંજલદર્શન છે. એ યોગસૂત્રો અતિ સંક્ષિપ્ત અને ગૂઢાર્થ હોવાથી અનતિપ્રૌઢજ્ઞાનશાલી (મંદબુદ્ધિવાળા) જનોને તેથી ઉપકાર નહિ થશે, એમ જાણીને ભગવાન્ વેદવ્યાસે ભાષ્યદ્વારા ભૂષિત અને પરિવર્દ્ધિત કરીને વિશદ (ખુલાસાવાર) કરેલાં છે અને તે ભાષ્યને પણ ક્ષણિક–પરમાણુપુંજાદિ નિરાસપ્રભૃતિ અતિ ગહન વિષયોથીયુક્ત જાણીને નિખિલતંત્ર સ્વતંત્ર વાચસ્પતિમિશ્રે તત્ત્વવૈશારદી નામની વ્યાખ્યાથી અલંકૃત કરેલ છે. યદ્યપિ અનેક સ્થળમાં કઠિન હોવાથી ભાષ્ય અને વ્યાખ્યાને અલ્પ વિવરણદ્વારા પરિભૂષિત કરીને મેં પહેલાં સર્વે વિદ્વજ્જનોને આ દૃષ્ટિગોચર કરેલું હતું, તોપણ હિંદી ભાષાવેત્તાઓના ઉપકાર અર્થે હાલ હિંદી ભાષામાં એનો અનુવાદ કરીને, આ ગ્રંથ પ્રકાશિત કરવામાં આવે છે.

ગુજરાતી અનુવાદ કરનારની પ્રસ્તાવના

ગુજરાતી ભાષામાં પાતંજલયોગદર્શનનાં બે પુસ્તક પ્રસિદ્ધ થયેલાં છે. એક બ્રહ્મનિષ્ઠ મહારાજશ્રી નથુરામ શર્માકૃત અને બીજું પ્રોફેસર જેકીસનદાસ કણીઆકૃત. એક બે પુસ્તક હોવા છતાં આ ત્રીજું પુસ્તક કરવાનું શું પ્રયોજન છે? આ પ્રશ્ન સહજ ઉપસ્થિત થાય છે.

શ્રીપાતંજલયોગદર્શન એ, ઉપર લખેલા શ્રીમત્ પરમહંસ પરિવ્રાજકાચાર્ય સ્વામીશ્રીના ઉપોદ્ઘાતથી જણાયું હશે, કે ઘણો ગહન વિષય છે. તેથી જેમ જેમ તેના જૂદા જૂદા વિવરણ સાથેના ગ્રંથો ગુજરાતી ભાષામાં બહાર પડે, તેમ તેમ ગુજરાતી જાણનારાને તેનો વધારે લાભ પ્રાપ્ત થાય, એ દેખીતું છે.

વળી બ્રહ્મનિષ્ઠ મહારાજશ્રી નથુરામ શર્માની પ્રથમ આવૃત્તિ જે સને ૧૮૯૧ માં એટલે સ્વામી મહારાજના પાતંજલદર્શનપ્રકાશની પૂર્વે બહાર પડી હતી, તે એવી તો સંક્ષિપ્ત છે કે, તેથી આ ગહનવિષય ઉપર જોઇએ તેટલું અજવાળું પડે તેમ નથી. તે પછી તેમણે સને ૧૯૦૧માં તેની દ્વિતીયાવૃત્તિ બહાર પાડેલી છે, તેમાં પ્રથમાવૃત્તિ કરતાં કદ ત્રણગણું વધારી વિવેચનમાં ઘણો વધારો કરેલો છે. પરંતુ અમારે એ બીજી આવૃત્તિ બાબત સર્વને સખેદ વિદિત કરવાની ફરજ પડે છે કે, તેમણે એ આવૃત્તિ શ્રીમત્ પરમહંસ પરિવ્રાજકાચાર્ય નિખિલ શાસ્ત્રનિષ્ણાત સ્વામીશ્રી ૧૦૮ બાલરામ ઉદાસીનકૃત "પાતંજલદર્શનપ્રકાશ" જે હિંદી ભાષામાં સને ૧૮૯૭ માં બહાર પડેલું છે, તેમાંથી લગભગ અક્ષરશઃ ભાગ લઈ, તેમાંના હિંદી ટિપ્પણને મુખ્ય વિષયની સાથે સેળભેળ કરી, ગુંચવણ કરી નાંખીને પોતાની જાણે નવીન કૃતિ હોય, તેમ ગુજરાતી પ્રજાને દેખાડવાનો યત્ન કર્યો છે અને સ્વામી મહારાજ શ્રીબાલરામજીના હિંદી અત્યુત્તમ ગ્રંથની ખરી ખૂબી જાણવાથી ગુજરાતી પ્રજાને વિમુખ રાખેલી છે, તે ખામી ટાળવા માટે ગુજરાતી પ્રજાને યોગશાસ્ત્રનું ખરું રહસ્ય સમજાવવા માટે અમારે આ ગ્રંથ યતીંદ્રશ્રીના શિષ્ય વ્યાખ્યાન વાચસ્પતિ સ્વામીશ્રી આત્મસ્વરૂપ મહારાજની અનુજ્ઞા લઈ, ગુજરાતી ભાષામાં પ્રકટ કરવાની ખાસ જરૂર પડી છે.

વળી વિદ્વાનો પુસ્તકો લખે છે ત્યારે પોતે જે જે ગ્રંથોની યા વિદ્વાનોની સહાય લીધી હોય, તેનો આભાર માનવાની શિષ્ટાચાર પદ્ધતિનું પણ મહાત્મા નથુરામ શર્માએ ઉલ્લંઘન કર્યું છે, એ વિશેષ શોચનીય છે. અમુક ગ્રંથ કે વિદ્વાનનો સંપૂર્ણ આશ્રય લઈ તે બાબત પોતાના ગ્રંથમાં કોઈ પણ જાતનો ઇસારો ન કરી, વાચકવૃન્દમાં પોતાની વિદ્વત્તા પ્રકટ કરવી, એ કેવું અનુચિત ગણાય, એ વાચકવૃન્દે વિચારવાનું છે. અમારે કોઈની નિંદા કરવાની મતલબ નથી, પણ જે યથાર્થ હતું તે લખ્યું છે. જેમને એ બાબત જોવું હોય, તેમણે સ્વામીશ્રીકૃત હિંદી પુસ્તક જે બાંકીપુરમાં મળે છે તે મંગાવી જોવાથી ખાતરી થશે. ઇત્યલમ્.

સવાઈલાલ છોટાલાલ વોરા

હિંદીમાંથી ગુજરાતીમાં અનુવાદ કરનાર.

અનુક્રમણિકા

પ્રથમ પાદ

દ્વિતાય પાદ

તૃતીય પાદ

ચતુર્થ પાદ

યોગ દર્શનમાં આવેલાં સૂત્રોની અનુક્રમણિકા.

૧ સમાધિપાદ.

२ સાધનપાદ.

૩ વિભૂતિપાદ.

૪ કૈવલ્યપાદ.



॥ पातंजलदर्शनप्रकाश ॥

समाधिपाद

नमोऽन्तर्यामिणे ।

ભગવાન્ પતંજલિ, બુદ્ધિમાન્ યોગજિજ્ઞાસુ જનોની યોગશાસ્ત્રમાં પ્રવૃત્તિ થવા સારુ, તાત્પર્યદ્વારા ચાર અનુબંધનું[1] પ્રતિપાદન કરતાં, સાક્ષાત્ શબ્દોચ્ચારણથી કરવા ધારેલા શાસ્ત્રના આરંભની પ્રતિજ્ઞા કરે છે.

ટિપ્પણ–સ્વામીશ્રી આત્મસ્વરૂપ ઉદાસીનકૃત વિષમસ્થલનું વિવરણ

॥ नमः श्रीशरणापन्नपरित्राणपरायणनारायणाय गुरवे ॥

૧–કોઈ પણ ગ્રંથના અધ્યયનમાં પ્રવીણ પુરુષોની પ્રવૃત્તિ થવામાટે જે ચાર વસ્તુ જાણવાની જરૂર છે તે—વિષય, પ્રયોજન, સંબંધ અને અધિકારી છે. આને **અનુબંધ** કહે છે. જ્યાં સુધી કોઈ પણ ગ્રંથમાં શા શા વિષય છે, ગ્રંથનુ પ્રયોજન શું છે, પ્રયોજનની સાથે ગ્રંથનો સંબંધ શો છે, અને કયો પુરુષ તેનો અધિકારી છે, એ જાણવામાં આવે નહિ, ત્યાં સુધી બુદ્ધિમાન્ માણસની કોઈ ગ્રંથમાં પ્રવૃત્તિ થતી નથી. તેટલા માટે જ શિષ્ટ લોકોએ વિષય વગેરે ચાર પદાર્થનું નામ "અનુબંધ ચતુષ્ટય" રાખ્યું છે. કારણ કે એ ચારે, 'અનુ' એટલે પોતાનું જ્ઞાન થયા 'પછી,' જ્ઞાની પુરુષોને શાસ્ત્રમાં 'બંધ' એટલે પ્રવૃત્તિ કરાવે છે અથવા તો બાંધી દેછે. માટે આ યોગશાસ્ત્રમાં પણ પુરુષોની પ્રવૃત્તિ અર્થે અનુબંધનું પ્રતિપાદન કરવું ઉચિત છે. નહિ તો આ યોગશાસ્ત્રમાં જિજ્ઞાસુઓની પ્રવૃત્તિ થાય નહિ. તે માટે અહીંઆ "योगानुशासनम्" એ શબ્દથી લક્ષણ, ભેદ, સાધન અને ફળસહિત યોગનું નિરૂપણ એ આ યોગશાસ્ત્રનો વિષય કહેલો છે. સઘળા અનર્થના નાશપૂર્વક ચિતિશક્તિની એટલે પુરુષની સ્વરૂપાવસ્થિતિરૂપ જે કૈવલ્ય એ, આ યોગશાસ્ત્રનું મુખ્ય **પ્રયોજન** છે. તે છેલ્લાં સૂત્રથી સૂત્રકારે બતાવેલું છે. આ પ્રમાણે અણિમાદિ ઐશ્વર્યનો લાભ વગેરે અવાંતર પ્રયોજન પણ જાણી લેવું. જે પુરુષો આ બન્ને ફળના લાભની ઇચ્છાવાળા છે, તે જ તેના **અધિકારી** છે. વળી કૈવલ્યનો યોગ તથા સાધ્યસાધન ભાવ અને યોગનો તથા શાસ્ત્રનો પ્રતિપાદ્ય–પ્રતિપાદક ભાવ **સંબંધ** પણ તે પ્રમાણે જાણી લેવો. જો કે સૂત્રકારે સ્પષ્ટરૂપે શ્રીમુખથી આ રીતે કહ્યું નથી, તોપણ સૂત્રકારનો એ અભિપ્રાય છે, તેને લીધે જ "તાત્પર્યદ્વારા" એવું શ્રીગુરુચરણે લખેલું છે.

सू.–अथ योगाऽनुशासनम् ॥ १ ॥

સૂત્રાર્થ–અહીં યોગનું અનુશાસન=પ્રતિપાદન કરવામાં આવે છે.

अथ શબ્દ અહીં[1] અધિકાર અથવા તો આરંભરૂપ અર્થનો વાચક વા ઘોતક[2] છે, અને योग શબ્દ, દ્વિતીય સૂત્રથી વૃત્તિનિરોધનો વાચક છે. આ યોગનાં લક્ષણ,[3] ભેદ, સાધન, અને ફળનું નિરૂપણપૂર્વક અનુશાસન એટલે પ્રતિપાદન કરવાવાળું જે શાસ્ત્ર છે, તે योगानुशासन કહેવાય છે. આ ઉપરથી એમ અર્થ થયો કે "योग" શબ્દ કહેવાથી યોગોપયોગી અભ્યાસ, વૈરાગ્ય, યમ, નિયમ વગેરે પદાર્થોનાં લક્ષણ, ભેદ, સાધન, અને ફળને વર્ણવવાવાળા યોગશાસ્ત્ર[4] નો હું આરંભ કરું છું. જો કે સૂત્રકારે તો योगनो જ આરંભ કહ્યો છે, તોપણ જેમ લોકમાં "રાજા જાય છે" એમ કહેવાથી સેના વગેરે તેના પરિવાર સાથે જ રાજા જાય છે, એવો બોધ થાય છે, તેમ અહીં પણ પ્રધાનભૂત योगनो આરંભ કહેવાથી તેના સાધન, અભ્યાસાદિરૂપ પરિવારનો પણ આરંભ જાણી લેવો.

૧–એમ ન જાણવું જે સર્વત્ર अथ શબ્દનો અર્થ આરંભ જ થાય છે; કેમકે "अथातो ब्रह्मजिज्ञासा" ઇત્યાદિ (ઉત્તર) મીમાંસાના સૂત્રોમાં अथનો "અનંતર" એવો અર્થ પણ શિષ્ટોએ માનેલો છે, તે જણાવવા સારુ સૂત્રાર્થમાં 'અહીં' શબ્દ લખેલો છે. અધિકાર, પ્રસ્તાવ, અને આરંભ એ ત્રણે પર્યાય શબ્દો છે.

૨–કેટલાકનો એવો મત છે, કે अथ શબ્દનો અર્થ આરંભ નથી, પણ अथ શબ્દનું જ્યાં ઉચ્ચારણ કરવામાં આવ્યું હોય ત્યાં જાણી લેવું કે, વક્તાનું તાત્પર્ય "આરંભ કરું છું" એ વાક્યના અધ્યાહારમાં છે તથા તેનું જ નામ ઘોતક છે.

૩–બીજા સૂત્રથી યોગનું લક્ષણ; ૧૭મા અને ૧૮મા સૂત્રથી ભેદ; ૧૨મા સૂત્રથી સાધન; અંતિમ સૂત્રથી ફળ; અને ૩જા પાદથી અવાંતર ફળ જાણી લેવાં. આ પ્રમાણે અભ્યાસનાં લક્ષણ અને ભેદ ૧૩મા–૧૪મા સૂત્રમાં તથા વૈરાગ્યનાં લક્ષણ અને ભેદ ૧૫મા તથા ૧૬મા સૂત્રમાં સમજાવ્યાં છે. એ પ્રમાણે દરેક સ્થાને સમજી લેવું.

૪–અત્રે કોઈ શંકા કરશે કે, યોગી યાજ્ઞવલ્કયના 'हिरण्यगर्भो योगस्य वक्ता नान्यः पुरातनः' એ વાક્યથી પ્રાચીનાચાર્ય હિરણ્યગર્ભ જ યોગશાસ્ત્રના વક્તા છે, બીજો કોઈ નથી એમ પ્રતીત થાય છે, તો તેના સમાધાન અર્થે જણાવવાનું કે હિરણ્યગર્ભે દર્શાવેલા યોગનું સાંગોપાંગ વિસ્તારપૂર્વક નિરૂપણ પતંજલિમુનિ કરે છે, એમ સમજવું. તેથી જ મુનિએ "યોગશાસનમ્" એમ ન કહેતાં "યોગાનુશાસનમ્' એમ કહ્યું છે; કેમકે अनुशासन શબ્દમાં अनु નો અર્થ

જોકે 'मंगलाऽनन्तरारंभप्रश्नकारस्न्येष्वथो अथ'[1] એ કોશના વાક્યથી अथ શબ્દના મંગલ, અનંતર, આરંભ, પ્રશ્ન અને સંપૂર્ણતા એવા અનેક અર્થ પ્રતીત થાય છે, તોપણ 'अथ इत्ययमधिकारार्थः[2] એ પ્રકૃત સૂત્રના ભાષ્યથી અહીં તો अथ શબ્દનો અધિકાર અથવા "આરંભ" એવો અર્થ થાય છે, એમ સમજવું.

શિષ્ટોના આચરણથી વા ओंकाराथकारौ ઇત્યાદિ સૂત્ર[3] વગેરેનાં પ્રમાણોથી ગ્રંથની શરુઆતમાં મંગળાચરણ કરવું, એ અવશ્ય કર્ત્તવ્ય છે. તેથી તેવો બોધ થવા માટે પણ अथ શબ્દનો પ્રયોગ કરવો આવશ્યક છે.

પશ્ચાત્—પછી છે, એટલે કે હિરણ્યગર્ભે ઉપદેશ કરેલા યોગનુંજ હું ફરીથી વિસ્તારપૂર્વક પ્રતિપાદન કરું છું, એવો પતંજલિમુનિનો આશય છે.

૧—મંગલ, અનંતર, આરંભ, પ્રશ્ન, અને સંપૂર્ણતા, એ પાંચે અર્થમાં 'अथ,' 'अथो' શબ્દ વપરાય છે.

૨—આ 'अथ' શબ્દ આરંભના અર્થનો વાચક છે, એવો ભાષ્યનો અર્થ છે.

૩—કોઈ શ્રુતિ વા સ્મૃતિ જે કાર્યની સાક્ષાત્ આજ્ઞા ન કરતી હોય, પણ શિષ્ટજનો જેનું અનુષ્ઠાન કરતા હોય, તે કાર્ય પણ સદાચારરૂપ પ્રમાણથી કરવું ઉચિત છે, એમ માનવામાં આવે છે. જેમ કેઃ હોલિકાદહન, વસંતોત્સવ વગેરે તે તે દેશનાં કાર્યો કરવાં તે. આ વાત પૂર્વમીમાંસામાં નિર્ણીત છે.

એ પ્રમાણે મંગલાચરણપૂર્વક ગ્રંથારંભ કરવારૂપ શિષ્ટાચાર પ્રમાણથી ગ્રંથની શરુઆતમાં મંગલાચરણ અવશ્ય કર્તવ્ય છે, એવો અત્રે ભાવ છે. એવી રીતે બીજા ગ્રંથકારોના મતથી મંગલાચરણની કર્તવ્યતા પ્રતિપાદન કરીને હવે પૂજ્યપાદ શ્રી ૧૦૮ સ્વામીજી, પોતાના મતથી મંગલાચરણ કરવામાં પ્રમાણો આપવા માંડે છે.

ओंकार ઇત્યાદિ આ સૂત્ર કાત્યાયનમુનિનાં રચેલા શુક્લ યજુર્વેદ પ્રાતિશાખ્ય કા. ૧૭માં છે. આરંભમાં મંગલાર્થ ओंकार વા अथ શબ્દનું ઉચ્ચારણ કરવું ઉચિત છે, એવો ભાષ્યકાર ઉવટ્ટાચાર્યે તેનો અર્થ કરેલો છે.

એવી રીતે સાંખ્યદર્શનના પંચમાધ્યાયમાં मंगलाचरणं शिष्टाचारात्फलदर्शनात् श्रुतितश्च (મંગલાચરણ, પ્રાચીન માન્ય પુરુષોની રૂઢિથી, ફળનાં દર્શન કરાવવા માટે, અને શ્રુતિના નિયમ પ્રમાણે કરવામાં આવે છે.) એ પ્રથમ સૂત્રથી કપિલમુનિએ પણ મંગલાચરણની અવસ્ય કર્તવ્યતાનો બોધ કર્યો છે, એ માટેજ "ઇત્યાદિ સૂત્ર" એ આદિ પદ આપેલું છે. સૂત્ર વગેરે પદથી "मंगलादीनि" ઇત્યાદિ મહાભાષ્યકારનાં વાક્યને દૃષ્ટાંતમાં લીધું છે.

પણ જેમ વ્યવહારમાં ભોજન વગેરે બીજા પ્રયોજન સારુ લઈ જવાતા દહીં વગેરે મંગલ પદાર્થ પણ અન્યસ્થાને જનાર પુરુષના પ્રયાણ સમયે દૃષ્ટિગોચર થતાં શુભસૂચક થાય છે તેમ, 'અથ'નો "આરંભ" એવા અર્થની જેવી આવશ્યકતા છે તેવી તેના "અનંતર" રૂપ અર્થની આવશ્યકતા નથી. આરંભ વગેરે બીજા અર્થનો બોધ થવા સારુ ઉચ્ચાર કરેલો अथ શબ્દ પણ મૃદંગ વગેરેના ધ્વનિની પેઠે શ્રવણ માત્રથી મંગળનો[1] બોધ કરે છે; પણ અથ શબ્દનો 'મંગળ' એ અર્થ નથી, એવું સઘળા આચાર્યોનું મત છે. વળી આરંભદર્શક અર્થ ન માનવાથી પ્રકૃતશાસ્ત્રના આરંભની પ્રતિજ્ઞાનો લાભ થતો નથી, તેટલા માટે શાસ્ત્રારંભની પ્રતિજ્ઞાના લાભાર્થે અહીં अथ શબ્દનો 'આરંભ' એવો અર્થ કરવો ઉચિત છે. બીજા અર્થની યોગ્યતા અહીં છે જ નહિ. શિષ્યના પ્રશ્નની પછી યોગશાસ્ત્રનો આરંભ કરવામાં આવે છે, એવી રીતે 'અથ'નો 'અનંતર'રૂપ અર્થ અહીં સંભવી શકે છે, એમ કોઈ કહે અને अथ શબ્દનો અર્થ "આનંતર્ય" માનવામાં આવે, તો आरभ्यते એ પદનો અધ્યાહાર કરી, 'આરંભ કરું છું' એવો અર્થ કરવાથી ગૌરવ આવશે. તેટલા માટે अथ શબ્દનો અર્થ અહીં "આરંભ જ" સમજવો સારો છે. અત્રે તે 'અથ'ના બીજા અર્થો 'પ્રશ્ન' અને "સંપૂર્ણતા" વિષેના વિચારો ભાષાવેત્તાઓને અનુપયોગી જાણી લખ્યા નથી.

એ પ્રમાણે યોગશાસ્ત્રના આરંભની પ્રતિજ્ઞા કરીને હવે બીજા સૂત્રથી યોગનું લક્ષણ કહે છે.

सू.—योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः ॥ २ ॥

સૂત્રાર્થ-ચિત્તની વૃત્તિઓનો નિરોધ તે યોગ.

ચિત્તવૃત્તિઓનો નિરોધ (રોકવું) તેનું નામ योग છે. પ્રકૃતિના સત્ત્વ, રજ તથા તમ, એવા ત્રણ ગુણોમાંથી જે લાઘવવાળા અને પ્રકાશ સ્વભાવવાળા સ્વચ્છ સત્ત્વ ગુણનો પરિણામ[2] (કાર્ય) વિશેષ, તે

૧–જેમકે એકલું મૃદંગદર્શન, 'મંગળ'નું બોધક નથી, પણ મૃદંગના ધ્વનિનું શ્રવણ જ મંગળબોધક છે, તેમ अथ શબ્દનો અર્થ 'મંગળ' નથી, પણ તેનું શ્રવણ જ મંગળ છે.

૨–પૂર્વધર્મના પરિત્યાગપૂર્વક બીજા ધર્મનું ગ્રહણ કરવું, તેનું નામ પરિણામ છે. જેમકે, દૂધ, પોતામાં રહેલા વિલક્ષણ માધુર્ય તથા અત્યંત દ્રવીભૂતતા અને રેચકતારૂપ ધર્મનો ત્યાગ કરી, કાઠિન્યાદિ ધર્માન્તરને ગ્રહણ કરવાથી દહીં કહેવાય છે. તેથી જ દહીંને દૂધનું પરિણામ કહે છે. સાંખ્ય અને યોગ મતમાં કાર્યની સંજ્ઞા 'પરિણામ' છે.

चित्त[1] કહેવાય છે. એ ચિત્તના પરિણામોને **वृत्ति** કહે છે. અર્થાત્, જેમ અગાધ જળથી ભરપૂર નદીમાં પવને કરેલા ચાંચલ્યથી જળ પોતે, તરંગભાવમાં પરિણામ પામી, ગમનઆગમનશીલ થઈ, બહિર્મુખ બની, અહીંતહીં વહેતા પ્રવાહને ન મળતાં તીરની પાસેના ખાડા વગેરેમાં બંધાઈજઈને તદાકાર પરિણામને પામે છે, અને કોઈ કોઈ વાર તે જ જળ, પોતાના બહિર્મુખપણાનો ત્યાગ કરી પ્રતિલોમ (ઉલટા) વેગને ધારણ કરી, પોતાના અંગીભૂત પ્રવાહની સમીપ જ તરંગાકાર પરિણામને પામે છે, અને કોઈ કોઈ વાર પવને કરેલા ચાંચલ્યના અભાવથી પોતાના સ્વરૂપભૂત પ્રવાહમાં જ અંતર્ભૂત થઈ જાય છે; તેમ ચિત્તરૂપ નદીમાં પણ વિષયરૂપ જળ પોતે, જ્ઞાનજનિત સંસ્કારરૂપ વાયુથી અનેક પ્રકારના તરંગો બની, કોઈ કોઈ વાર નેત્રાદિ ઇંદ્રિયોદ્વારા બહારના જૂદાજૂદા ઘટાદિ પદાર્થોથી સંબદ્ધ થઈ, એ વિષયોના સમાન આકારને ધારણ કરે છે, અને કદીકદી બહિર્મુખ પરિણામનો ત્યાગ કરી પોતાના કારણભૂત ચિત્તની સમીપ જ કામ, ક્રોધ, રાગ, લોભ, મોહાદિરૂપથી સ્થિત થાય છે. અત્રે નદી એ ચિત્તને સ્થાને છે, વિષય એ જળને સ્થાને છે, અને એ જળનાં ઉક્ત પરિણામવિશેષોનું નામ **वृत्ति** છે.

તે ચિત્તવૃત્તિઓ નિરંતર જ બહારના ઘટાદિ આકાર જેવી અને અંદરના કામાદિ આકાર જેવી ઉત્પન્ન થતી રહે છે. તે વૃત્તિઓના સ્વભાવસિદ્ધ પ્રવાહનું, પોતાના કારણભૂત ચિત્તમાં નિઃશેષ લીન થઈ, રોકાઈ જવું, તે અહીં **चित्तवृत्तिनिरोध** કહેવાય છે.[2] અર્થાત્ જ્યારે પૂર્વપુણ્યના પરિપાકથી લાંબે

૧–જોકે સાંખ્યદર્શનમાં કે યોગદર્શનમાં તત્ત્વોની ઉત્પત્તિ તથા ગણનાના પ્રકરણમાં ચિત્તતત્ત્વનું કોઈ જગાએ નામ આવતું નથી, તોપણ એ બંને દર્શનમાં બુદ્ધિને સ્થાને ચિત્તનો અને ચિત્તને સ્થાને બુદ્ધિનો પરસ્પર વ્યવહાર જોવામાં આવે છે; તેથી ચિત્તતત્ત્વને બુદ્ધિસંજ્ઞાવાળા મહત્તત્ત્વનો જ એક ભેદ સમજવો. એ જ આશયથી ચિત્તને પ્રકૃતિનું સાત્ત્વિક પરિણામ કહેલું છે. સાંખ્યપ્રવચનભાષ્યકાર વિજ્ઞાનભિક્ષુએ પણ પ્રથમાધ્યાયના ૬૪મા સૂત્રમાં ચિત્તનો બુદ્ધિમાં જ અંતર્ભાવ કહેલો છે.

૨–જેમ જલ, તરંગાકાર પરિણામનો ત્યાગ કરી, પોતાના સ્વરૂપમાં અવસ્થિત થઈ જાય છે, તેમ વિવિધ વિષયાકાર પરિણામનો ત્યાગ કરી ચિત્તનું પોતાના જ સ્વરૂપમાં એકાકાર થઈ જવું અર્થાત્ સ્વરૂપાવસ્થિત થઈ જવું, તેનું નામ 'ચિત્તવૃત્તિનિરોધ' કહેવાય છે.

સમયે આદરપૂર્વક સત્કારવડે સેવિત દૃઢ અભ્યાસ અને વૈરાગ્યદ્વારા ચિત્તની બહિર્મુખ પ્રવાહશીલતા અને અંદરની કામાકારાદિરૂપ પ્રવાહશીલતા નિવૃત્ત થઈ જાય છે, અને કેવળ ચતુર્ભુજાદિ ધ્યેયાકારમાં સાત્ત્વિક તરંગથી જ ચિત્ત પરિણામ પામી જાય છે, ત્યારે તેજ ચિત્ત એકાગ્ર પરિણામવાળું કહેવાય છે, અને ચિત્તની એ અવસ્થાને જ **संप्रज्ञातयोग** વા **संप्रज्ञात समाधि** કહે છે.

વળી પરવૈરાગ્યના[1] સેવનથી તે જ ચિત્ત, અંદરની ધ્યેયાકારતાથી પણ નિવૃત્ત થઈ, નિષ્પંદ, નિસ્તરંગ, અને નિર્વાત દેશસ્થ જળના જેવું અચળ થઈ જાય છે, ત્યારે તે ચિત્ત **निरुद्ध** કહેવાય છે. તે અવસ્થાને જ **असंप्रज्ञात योग** વા **असंप्रज्ञात समाधि** પણ કહે છે. અત્રે કહેવાનો ભાવ એ છે કે, ક્ષિપ્ત, મૂઢ, વિક્ષિપ્ત, એકાગ્ર, અને નિરુદ્ધ એવા ભેદથી ચિત્ત પાંચ પ્રકારનું છે.

ચિત્ત જ્યારે રજોગુણના બાહુલ્યથી અત્યંત ચંચલશીલ બની આ સંસારના મિથ્યા વિષયસુખ વગેરેને જ સત્ય માની લઈ તે જ વિષયમાં લુબ્ધ થઈ જળોની પેઠે, એક વિષયનો ત્યાગ કરી, બીજા વિષયોનું ગ્રહણ કર્યા કરી, કદી પણ સ્થિરતાને પામતું નથી ત્યારે, તે ચિત્ત **क्षिप्त** કહેવાય છે. આવું ચિત્ત ઘણુંકરીને દૈત્યો વા દાનવોનું હોય[2] છે.

જે ચિત્ત, તમોગુણના આધિક્યને લીધે કર્તવ્યાકર્તવ્યવિવેકથી શૂન્ય બની, નિરંતર નિદ્રા, તંદ્રા, આલસ્ય વગેરેમા જ મગ્ન રહે છે, અને કદાચિત્ આલસ્યનો ત્યાગ કરી કોઈ કર્મમાં પ્રવૃત્ત થાય છે, અને ક્રોધાંધ થઈ અકારણ કોઇને મારવા માટે તત્પર થઈ જાય છે, તે ચિત્ત[3] **मूढ** કહેવાય છે. એવું ચિત્ત ઘણુંકરીને પિશાચો વા રાક્ષસોનું હોય છે.

જે ચિત્ત, સત્ત્વગુણની પ્રધાનતાથી નિત્ય દુઃખનાં સાધનરૂપ સમગ્ર પદાર્થોનો ત્યાગ કરી, ઘણુંકરીને સુખસાધનકર્મ કરવામાં જ પ્રયત્નશીલ

૧–પરવૈરાગ્યનું લક્ષણ ૧૬ મા સૂત્રમાં કહ્યું છે.

૨–દાનવોના સમાન પ્રકૃતિવાળા ધનથી અને મદથી મત્ત બનેલા પુરુષોનું ચિત્ત પણ ક્ષિપ્ત જાણવું.

૩–પિશાચ અને રાક્ષસોના જેવા સ્વભાવવાળાનું અને મદિરાપાન કરવાવાળાનું ચિત્ત પણ મૂઢ સમજવું.

રહે છે, તે ચિત્ત विक्षिप्त[1] કહેવાય છે. આવું ચિત્ત ઘણુંકરીને દેવતાઓનું હોય છે.[2]

જે ચિત્ત, રજતમરૂપ મલના સંપર્કથી રહિત થઈ, વિશુદ્ધ સત્ત્વગુણવાળું બની, કોઈ સૂક્ષ્મ તત્ત્વનું આલંબન કરી, પ્રતિ ક્ષણે નિર્વાત સ્થળમાં રહેલા દીવાની શિખાના જેવી સ્થિરતા ધારણ કરે છે, તે ચિત્ત[3] एकाग्र કહેવાય છે. તેને એકતાન પણ કહે છે. આવું ચિત્ત, જેઓ યમ નિયમ[4] વગેરેના અભ્યાસથી સંપ્રજ્ઞાત સમાધિમાં આરૂઢ થયેલા છે, તેઓનું હોય છે.

જે ચિત્ત, નિરાલંબન બની સ્વકારણરૂપ પ્રકૃતિમાં લીન થવાથી નિસ્તરંગ નિઃસ્પંદ બનીને બળી ગયેલી રજ્જુની માફક કેવળ સંસ્કારમાત્ર જ શેષ રહે છે, અથવા તો ભુંજેલા ચણાના આકારનું હોવાથી સ્વકાર્યને પેદા કરવામાં અસમર્થ હોય છે, તે निरुद्ध[5] કહેવાય છે. એવું ચિત્ત,[6] પરવૈરાગ્યવાળાનું હોય છે. એ નિરુદ્ધ ચિત્તવાળાને જ પ્રક્ષીણક્લેશ, કૃતકૃત્ય અથવા જીવન્મુક્ત કહે છે.

૧–અહીં વિક્ષિપ્ત શબ્દથી અધિક ક્ષિપ્ત, એવું ન જાણવું; પરંતુ ક્ષિપ્ત ચિત્તથી વિશિષ્ટ અથવા ઉત્કૃષ્ટ હોય, તેને વિક્ષિપ્ત સમજવું. તેમાં ભેદ એ છે કે, રજોગુણના અધિકપણાથી ક્ષિપ્તચિત્ત સર્વદા ચંચળ જ રહી કયારેય પણ સ્થિરતા ધારણ કરતું નથી, અને વિક્ષિપ્તચિત્ત સત્ત્વગુણની પ્રધાનતાથી ચંચળપણાનો ત્યાગ કરી સમયેસમયે સ્થિરતા પણ ધારણ કરે છે.

૨–નિષ્કામ કર્માનુષ્ઠાનવાળા જિજ્ઞાસુઓનું ચિત્ત પણ વિક્ષિપ્ત જ હોય છે.

૩–વિક્ષિપ્ત ચિત્તમાં અને એકાગ્રચિત્તમાં ભેદ એ છે કે, વિક્ષિપ્તચિત્તમાં રજોગુણના લેશ સહિત સત્ત્વગુણનું પ્રાધાન્ય રહે છે; અને એકાગ્રચિત્તમાં તે રજોગુણનો અને તમો ગુણનો લેશ પણ નહિ રહેતાં કેવળ સત્ત્વગુણનું પ્રાધાન્ય રહે છે.   ૪–યમનિયમ વગેરે અંગોનું નિરૂપણ દ્વિતીય પાદમાં થશે.

૫–એકાગ્રચિત્તથી નિરુદ્ધચિત્તનો ભેદ એ છે કે, એકાગ્રચિત્ત કોઈ ને કોઈ તત્ત્વનું આલંબન (આશ્રય) બની રહે છે, અને નિરુદ્ધચિત્ત નિરાલંબન હોઈ કેવળ મૃત જેવું થઈ જાય છે. અહીં એ પણ જાણી લેવું ઉચિત છે કે, જેમ ક્ષિપ્તાદિ અવસ્થાઓ ચિત્તના ધર્મ છે, તેમ નિરુદ્ધાવસ્થા પણ ચિત્તનો જ ધર્મ છે. તે કાંઈ પુરુષનો ધર્મ નથી. કેમકે, પુરુષ નિત્ય કૂટસ્થ હોવાથી પરિણામીપણાના અભાવથી તેમાં કયારે પણ વૃત્તિનો ઉદય કે નિરોધ થવાનો સંભવ નથી. તેટલા માટે જ ભાષ્યકારોએ નિરોધને ચિત્તનો ધર્મ કહેલો છે.

૬–પરવૈરાગ્યનું લક્ષણ ૧૬ મા સૂત્રમાં જુઓ.

એવી રીતે ક્ષિપ્તાદિ ભૂમિકા(અવસ્થા)ના ભેદથી એક જ ચિત્ત, પાંચ પ્રકારનું કહેવાય છે. એ પાંચે અવસ્થાઓમાંથી છેવટની બે જ અવસ્થા (અર્થાત્ એકાગ્ર અને નિરુદ્ધ) યોગ શબ્દથી ઓળખાય છે. અન્ય અવસ્થાઓ યોગને નામે ઓળખાતી નથી. તેનું કારણ એ છે કે, ક્ષિપ્ત અને મૂઢ અવસ્થા તો રજોગુણ અને તમોગુણના અધિકપણાથી યોગની વિરોધિની છે; કેવળ વિક્ષિપ્ત અવસ્થા કાંઈક યોગને અનુકૂળ થઈ શકે છે, પરંતુ તેમાં પણ રજોગુણનો અને તમોગુણનો સંપર્ક રહેવાથી તે પણ હેય (ત્યાજ્ય) કોટિમાં જ[1] છે. તેને લીધે જ ભાષ્યકારોએ વિક્ષિપ્ત ચિત્તમાં[2] થનારી નિરોધ નામની સ્થિરતાને, બહુ વિક્ષેપવાળી હોવાથી યોગ શબ્દથી કહી નથી. એકાગ્રચિત્તમાં[3] થવાવાળો રાજસતામસ વૃત્તિનો નિરોધ, જે પરમાર્થભૂત ધ્યેય વસ્તુનો સાક્ષાત્કાર કરાવે છે, ક્લેશોનો સમૂલ ઉચ્છેદ કરે છે, બંધનના કારણ કર્મજન્ય અદૃષ્ટોને ભુંજી દઈ તેઓને આગામી જન્મ વગેરેના ઉત્પાદનમાં અસમર્થ કરી દે છે, અને અસંપ્રજ્ઞાતસમાધિના લાભની યોગ્યતાને સંપાદન કરી દે છે, તે નિરોધ[4] સંપ્રજ્ઞાત યોગ કહેવાય છે. વિતર્કાનુગત, વિચારાનુગત, આનંદાનુગત, અને અસ્મિતાનુગત એવા ભેદથી આ સંપ્રજ્ઞાતયોગ, ચાર પ્રકારનો છે, જે વિષે આગળ વિવેચન થશે.[5] અને જે નિરોધમાં ધ્યેયાકાર વૃત્તિ પણ નથી રહેતી, તે અસંપ્રજ્ઞાતયોગ કહેવાય છે. આ પ્રમાણે એકાગ્ર અને નિરુદ્ધ અવસ્થાને જ યોગપદવાચ્ય કહેલી છે, અન્ય અવસ્થાને કહી નથી. માત્ર આ બે પ્રકારના યોગને જ સૂત્રકારે 'ચિત્તવૃત્તિનિરોધ' પદથી લક્ષિત કરેલો છે.

૧–જો કે વિક્ષિપ્તાવસ્થામાં સ્થિરપણાના સદ્ભાવથી કાંઈકાંઈ યોગનો સંચાર હોવાની સંભાવના થઈ શકે છે; તોપણ એ સ્થિરપણું, ચિત્ત ઉપર અત્યંત સ્વલ્પ કાળ સૂધી રહેવાથી યોગમાં ઉપયોગી નથી એ તેનો ભાવાર્થ છે.

૨–'विक्षिप्ते चेतसि विक्षेपोपसर्जनीभूतः समाधिर्न योगपक्षे वर्तते' એ ભાષ્યનો અનુવાદ અત્ર આપવામાં આવેલો છે. "विक्षिप्त" ઇત્યાદિથી.

૩–"એકાગ્ર" એ પદથી લઈ "તે અસંપ્રજ્ઞાતયોગ કહેવાય છે" એ પદ સૂધી "यस्त्वेकाग्रे चेतसि" ઇત્યાદિ વ્યાસના ભાષ્યનો અનુવાદ છે. ભાષ્યનો પાઠ આપવાની આવશ્યકતા નહીં હોવાથી તે આપ્યો નથી.

૪–જે નિરોધમાં ધ્યેય વસ્તુનું સારી રીતે પ્રજ્ઞાન (સાક્ષાત્કાર) થાય છે, તેનું નામ સંપ્રજ્ઞાત કહેવાય છે. ૫–આ સમાધિપાદના ૧૭ મા સૂત્રના વ્યાખ્યાનમાં સંપ્રજ્ઞાત સમાધિના ચાર ભેદ સ્પષ્ટ કરવામાં આવશે.

आशंका–ઉપરોક્ત કથનથી એ નિશ્ચિત થયું કે, એકાગ્રાવસ્થામાં થનારી ધ્યેયાકાર સાત્ત્વિકી ચિત્તવૃત્તિ અને નિરુદ્ધાવસ્થામાં થનારી સઘળી વૃત્તિઓનો નિરોધ, એ બે જ યોગ શબ્દથી ઓળખાય છે અને ભાષ્યકારોએ એ પ્રમાણે જ માનેલું છે; પણ એ પ્રમાણે માનવાથી જે ચિત્તવૃત્તિનિરોધરૂપ યોગનું લક્ષણ સૂત્રકારે કહેલું છે, તે લક્ષણ અવ્યાપ્તિના[1] દોષવાળું થશે. કેમકે, સંપ્રજ્ઞાતયોગમાં ધ્યેયાકાર વૃત્તિના સદ્ભાવથી વૃત્તિઓનો નિરોધ થતો નથી, એટલે વૃત્તિનિરોધરૂપ લક્ષણ ત્યાં હોતું નથી. કદી એમ કહેવામાં આવે કે, સૂત્રમાં[2] સૂત્રકારે 'સર્વ' શબ્દનું ગ્રહણ કરેલું નથી, કે જેથી નિખિલ વૃત્તિનિરોધને જ યોગ કહેવો જોઇએ; પણ માત્ર 'વૃત્તિનિરોધ' કહેલું છે, એટલે કે કોઈ પણ એક વૃત્તિનો નિરોધ હોવો જોઇએ અને એકાગ્રાવસ્થામાં હોવાવાળા સંપ્રજ્ઞાતયોગમાં પણ રાજસતામસવૃત્તિઓનો નિરોધ થાય છે, તેથી આ લક્ષણ અવ્યાપ્તિના દોષવાળું નથી, એમ કહેવું યુક્ત નથી. કારણ કે, એ પ્રમાણે માનવાથી જો કે અવ્યાપ્તિના દોષનું વારણ થઈ શકે છે, પરંતુ અતિવ્યાપ્તિરૂપ[3] બીજો દોષ ઉભો થાય છે. કેમકે 'સર્વ' પદનું ગ્રહણ ન કરવાથી એવો અર્થ માનવામાં આવે છે કે, કોઇને કોઈ એક વૃત્તિના નિરોધનું નામ યોગ છે. વળી જેમ રાજસતામસવૃત્તિનો નિરોધ સંપ્રજ્ઞાતમાં છે, તેમ સાત્ત્વિકવૃત્તિનો નિરોધ ક્ષિપ્તાવસ્થામાં અને રાજસ-

---

૧–જે લક્ષણ સઘળા લક્ષ્યમાં ન રહી, કોઈ એક જ લક્ષ્યમાં વર્તે, તે લક્ષણ અવ્યાપ્તિના દોષવાળું કહેવાય છે. જેમ કે "કપિલવર્ણવાળી તે જ ગાય," એવું ગાયનું લક્ષણ દૂષિત મનાય છે; કેમકે, એ લક્ષણ રાતા રંગવાળી ગાયને લાગુ પડતું નથી. એ પ્રમાણે ચિત્તની વૃત્તિના નિરોધવાળો યોગ એવું યોગનું લક્ષણ પણ સંપ્રજ્ઞાતયોગરૂપ લક્ષ્યમાં રહેશે નહીં. પણ કેવળ અસંપ્રજ્ઞાત યોગમાં વર્તવાથી તે લક્ષણ અવ્યાપ્તિદોષવાળું થશે, એવો આશંકાનો ભાવ છે.

૨–જે ઉપાયનો આશ્રય કરી ભાષ્યકારોએ અવ્યાપ્તિનો પરિહાર કર્યો છે, તે ઉપાય દર્શાવી અત્ર દોષનો નિરાસ કરવામાં આવ્યો છે. "સૂત્રમાં" ઇત્યાદિથી.

૩–જે લક્ષણ લક્ષ્યમાં રહી અલક્ષ્યમાં પણ વર્તે, તે લક્ષણ અતિવ્યાપ્તિના દોષયુક્ત કહેવાય છે. જેમકે, "શિંગડાંવાળી એ જ ગાય." એવું ગાયનું લક્ષણ ગાયરૂપ લક્ષ્યમાં રહી, અલક્ષ્ય ભેંસ વગેરેમાં પણ વર્તમાન છે. તે પ્રમાણે અહીં "કોઈ એક વૃત્તિનો નિરોધ" એ યોગનું લક્ષણ કહેવાથી એ લક્ષણ, અલક્ષ્ય ક્ષિપ્તાદિ અવસ્થામાં વિદ્યમાન હોવાથી તે પણ અતિવ્યાપ્તિરૂપ દોષયુક્ત કહેવાશે.

વૃત્તિનો નિરોધ મૂઢાદિ અવસ્થામાં, વિદ્યમાન હોવાથી, તેને પણ યોગ માનવો પડશે, પરંતુ તે કોઇને સંમત નથી. એ પ્રમાણે વૃત્તિઓ પૈકી હરકોઈ વૃત્તિના નિરોધરૂપ યોગલક્ષણના અલક્ષ્ય ક્ષિપ્તાદિ અવસ્થાઓમાં જવાથી આ લક્ષણ પણ દૂષિત જ છે.

સમાધાન–હે યોગજિજ્ઞાસુજન! યોગતત્ત્વવેત્તા વિચક્ષણ લોકો આ શંકાનું નિવારણ આ પ્રકારે કરે છે કે, નથી અમે અવ્યાપ્તિના ભયથી નિખિલ ચિત્તવૃત્તિના નિરોધને યોગ કહેતા, કે નથી અમે અતિવ્યાપ્તિના ભયથી કોઈ એક વૃત્તિના નિરોધને જ યોગ કહેતા; પરંતુ ક્લેશ, કર્મ, વાસનાનો મૂળ સહિત નાશ કરનાર જે ચિત્તવૃત્તિનો નિરોધ, તેને જ અમે योग પદનું વાચ્ય માનીએ છીએ.[1] એ જ રીતે એકાગ્રાવસ્થામાં વિદ્યમાન સંપ્રજ્ઞાતને નામે કહેવાતો રાજસતામસવૃત્તિનો નિરોધ, અને નિરુદ્ધાવસ્થામાં વિદ્યમાન અસંપ્રજ્ઞાતને નામે કહેવાતો નિખિલ વૃત્તિનો નિરોધ, એ બન્ને ક્લેશાદિના નાશક હોવાથી તે બે જ અવસ્થાઓ યોગને નામે ઓળખાવા યોગ્ય થાય છે. પણ ચિત્તની વિક્ષિપ્ત અવસ્થામાં વિદ્યમાન ધ્યેયાકાર સાત્ત્વિકવૃત્તિનો નિરોધ, તથા ક્ષિપ્ત અવસ્થામાં વિદ્યમાન સાત્ત્વિકતામસ વૃત્તિનો નિરોધ, અને મૂઢાવસ્થામાં વિદ્યમાન સાત્ત્વિક-રાજસવૃત્તિનો નિરોધ એ ક્લેશાદિનાં નાશક ન હોવાથી, તે ત્રણે અવસ્થાઓ યોગને નામે કહેવાતી નથી. એવી રીતે અવ્યાપ્તિના અને અતિવ્યાપ્તિના દોષથી વિનિર્મુક્ત હોવાથી એકાગ્ર અવસ્થામાં અને નિરુદ્ધ અવસ્થામાં ચિત્તવૃત્તિનો નિરોધ તે યોગ, એ જ લક્ષણ સર્વથા સ્વીકારવાયોગ્ય છે, અને ભાષ્યકારોનો પણ એ જ આશય છે. તેથી જ પ્રથમ સૂત્રના વ્યાખ્યાનમાં વેદવ્યાસજીએ સંપ્રજ્ઞાતયોગને[2] ક્લેશ વગેરેનો નાશક કહેલો

૧–અવિદ્યા વગેરે ક્લેશ, પુણ્યપાપરૂપ કર્મ તથા શુભાશુભ વાસના જ પુરુષોને બંધનકારક છે; તેથી તેઓનો નાશ કરવો, એ જ મુખ્યત્વે કરીને પુરુષોને અભીષ્ટ છે અને તેમના નાશસારુ જ પુરુષ યોગમાં પ્રવૃત્ત થાય છે. એ સર્વનો નાશ સંપ્રજ્ઞાત અને અસંપ્રજ્ઞાત યોગથી થાય છે, બીજાથી થતો નથી; તેથી તે બે જ અવસ્થા યોગના નામથી ઓળખવાને યોગ્ય છે, બીજી નથી. તેને જ લક્ષણ સમન્વયદ્વારાવડે સ્પષ્ટ કરે છે. "एवं च" વગેરે વાક્યથી. ક્લેશ વગેરેના લક્ષણભેદ દ્વિતીય પાદમાં સ્પષ્ટ રીતે કહેવાશે.

૨–એકાગ્રચિત્તમાં થનારો અને ક્લેશ-કર્મ-વાસનાનો મૂલ સહિત નાશ કરનાર જે ચિત્તવૃત્તિનો નિરોધ, તે સંપ્રજ્ઞાતયોગ કહેવાય છે.

છે.[1] જ્યારે સંપ્રજ્ઞાતયોગ ક્લેશ વગેરેનો નાશક છે, ત્યારે અસંપ્રજ્ઞાતયોગ પણ ક્લેશ વગેરેનો નાશક હોય જ, એમાં સંદેહ શો? વળી ક્લેશ વગેરેનો નાશ કરનારો ધર્મ, એકાગ્ર તથા નિરુદ્ધ બન્ને ભૂમિકામાં વિદ્યમાન હોવાથી "ચિત્તવૃત્તિનો નિરોધ તે યોગ" એ જ લક્ષણ યોગ્ય છે, અને એ લક્ષણનો જ આશ્રય કરીને ટીકાકાર વાચસ્પતિમિશ્રે અવ્યાપ્તિ વગેરે દોષનો પરિહાર કર્યો છે.

યોગવાર્તિકકાર વિજ્ઞાનભિક્ષુએ (ચિત્તની કોઈએક વૃત્તિના નિરોધને યોગ કહેવાથી ક્ષિપ્તાદિ ભૂમિકાઓ પણ યોગપદથી કહેવા યોગ્ય થઈ જશે.) ઉપર દર્શાવ્યા પ્રમાણે અતિવ્યાપ્તિરૂપ દોષનો સ્વીકાર કરી (દ્રષ્ટા પુરુષની પોતાના શુદ્ધ રૂપમાં અવસ્થિતિનો હેતુ જે નિરોધ તે, યોગપદનો અભિધેય છે.) ઉત્તર સૂત્ર[2]ની સાથે આ સૂત્રની એકવાક્યતા છે એમ સિદ્ધ કર્યું છે, તેમ જ સાથેસાથે બીજા સમાધાનનો આશ્રય કરી પૂર્વોક્ત દોષનું નિરાકરણ (વારણ) કરેલું છે, તે ભાષ્યવિરુદ્ધ[3] હોવાથી છોડી દેવા લાયક જાણવું. કારણ કે પરસ્પર અન્વયની યોગ્યતાના અભાવથી એકવાક્યતાનો સંભવ પણ હોઈ શકતો નથી. વળી સંપ્રજ્ઞાતયોગમાં ધ્યેયાકાર વૃત્તિના સદ્ભાવથી દ્રષ્ટા પુરુષની સ્વરૂપાવસ્થિતિનો અભાવ થતો હોવાથી એ લક્ષણ અવ્યાપ્તિદોષથી પણ ગ્રસ્ત છે. છતાં જો એમ કહો, કે અસંપ્રજ્ઞા તદ્વારા સંપ્રજ્ઞાતયોગ પણ સ્વરૂપાવસ્થિતિનો હેતુ થઈ શકે છે, તો પછી ભાષ્યકારાનુસારી વાચસ્પતિમિશ્રના કહેલા સરળ માર્ગને છોડી દઈ પરંપરાનો આશ્રય કરવો, એ 'पिहब्रत्सृज्य करं लेढि'ના[4] ન્યાય પ્રમાણે ઉપહાસજનક જ કહેવાશે.

૧–સંપ્રજ્ઞાતયોગ પણ ક્લેશોનો નાશક છે. તેના પ્રમાણ સારુ "क्षिणोति च क्लेशान्" ઇત્યાદિ ભાષ્યનો અનુવાદ અત્રે કરવામાં આવ્યો છે, "જે" ઇત્યાદિથી.

૨–'तदा द्रष्टुः स्वरूपेऽवस्थानम्' એ ઉત્તર સૂત્ર છે.

૩–ભાષ્યકારોએ એ સૂત્રની અવતરણિકામાં 'तस्य लक्षणाभिधित्सयेदं सूत्रं प्रवनृते' (તે યોગના લક્ષણના કથનની ઇચ્છાથી આ ઉત્તર સૂત્ર પ્રવૃત્ત થાય છે.) એ વાક્યથી એ એક જ સૂત્રનું યોગનાં લક્ષણપરત્વે કથન કરેલું છે. જો બંને સૂત્રો સાથે મળી યોગલક્ષણપરત્વે હોય, તો 'इदं सूत्रम्' એ એકવચન અસંગત થાય; કેમકે, વાદીના મત પ્રમાણે જો બે સૂત્રો યોગનું લક્ષણ દર્શાવતાં હોત તો ભાષ્યમાં દ્વિવચન જ કહેવું ઉચિત હતું. આ રીતે વાદીનું કથન વ્યાસભાષ્યથી વિરુદ્ધ છે, એમ સમજી લેવું.

૪–એક માણસ કુતરાને અન્નનો ગ્રાસ આપવા લાગ્યો, તો તે કુતરો તે

આ સ્થળે વળી એક બીજી આશંકા ઉત્પન્ન થાય છે, કે એક જ ચિત્તનો, પરસ્પર વિલક્ષણ ક્ષિપ્તાદિ ભૂમિકાઓ સાથે સંબંધ શા હેતુથી થાય છે, અને અસંપ્રજ્ઞાત સમાધિદ્વારા ધ્યેયાકાર સાત્ત્વિકી વૃત્તિનો પણ નિરોધ કરવાનું શું કારણ છે?

એ આશંકાનું વારણ ભાષ્યકારોએ આવી રીતે કરેલું છે કે- ચિત્ત, એ ત્રણ ગુણવાળું છે. જેમ રજ્જુ ત્રણ દોરાના આમળાવાળી હોય છે, તેમ સત્ત્વાદિ ત્રણ ગુણથી બનેલું ચિત્ત પણ ત્રિગુણ છે. વળી ગુણોનો સ્વભાવ ચંચળ છે; તેથી ગુણોના ન્યૂનાધિકભાવથી જ ચિત્ત અનેક અવસ્થાઓ સાથે સંબદ્ધ થઈ જાય છે, પણ સ્વભાવથી સંબદ્ધ થતું નથી. એ હેતુથી જ ચિત્ત જ્યારે પ્રખ્યા, પ્રસાદ, પ્રીતિ, લાઘવાદિ[1] ધર્મવાળું હોય છે, ત્યારે તે સાત્ત્વિક કહેવાય છે; જ્યારે ચિત્ત, પ્રવૃત્તિ, પરિતાપ, શોકાદિ[2] ધર્મોને ધારણ કરે છે, ત્યારે તે રાજસ કહેવાય છે; અને જ્યારે ચિત્ત, સ્થિતિ, આવરણ, દૈન્ય, ગૌરવ, આલસ્યાદિ[3] ધર્મ-વાળું હોય છે, ત્યારે તે તામસ કહેવાય છે.

કહેવાનો સાર એ છે કે, પ્રકૃતિનું પરિણામ સાત્ત્વિક હોવાથી ચિત્ત-તત્ત્વ સ્વભાવથી જ્ઞાનશીલ જ છે, તોપણ ચિત્ત ત્રિગુણાત્મક હોવાથી જે સમયે સત્ત્વગુણથી ન્યૂન અને પરસ્પર તુલ્ય એવા બે રજતમ ગુણથી સંબદ્ધ થઈ જાય છે, ત્યારે તે શબ્દાદિ વિષયોને અને અણિમાદિ ઐશ્વ-

---

ગ્રાસ છોડી દઈ તેના હાથને ચાટવા લાગ્યો, આવો આ ન્યાયનો અર્થ છે. અર્થાત્ વાચસ્પતિમિશ્રે કહેલા લક્ષણનો ત્યાગ કરી, પોતાના મનથી કરેલી તમારી દોષવાળા લક્ષણની રચના નિષ્ફળ છે.

૧-પ્રખ્યા=તત્ત્વજ્ઞાન; પ્રસાદ=પ્રસન્નતા; પ્રીતિ=અભિરુચિ, ઉત્સાહ; લાઘવ=હલકાપણું. "આદિ" શબ્દથી પ્રકાશ, દયા, ક્ષમા, ધૈર્ય, કર્તવ્યાકર્તવ્ય, વિવેકાદિ સાત્ત્વિક ધર્મો પણ જાણી લેવા.

૨-પ્રવૃત્તિ=કર્મોનો આરંભ કરવામાં ઉદ્યોગશીલતા; પરિતાપ=ધારેલાં કાર્યની પૂર્ણતા ન થવાથી થતી એક જાતની ચિંતા; શોક=પુત્રપત્ની વગેરેના વિયોગથી થતો ખેદ. "આદિ" શબ્દથી લોભ, ઇર્ષ્યા વગેરે બીજા રાજસ ધર્મો પણ જાણી લેવા.

૩-સ્થિતિ=પ્રવૃત્તિનો વિરોધી સ્તબ્ધીભાવ; સ્થિરભાવ અથવા વિહ્વળતા; આવરણ=તત્ત્વજ્ઞાન પ્રતિબંધક અજ્ઞાનની એક જાતની શક્તિ; ગૌરવ=ભારેપણું; દૈન્ય=ધીરપણાનો અભાવ; આલસ્યાદિ એમાં 'આદિ' પદથી ભય વગેરે બીજા પણ તામસ ધર્મો જાણવા.

યેંને જ પ્રિય માની, તેમાં જ આસક્ત થઈ જઈ વિહ્વળ થાય છે, માટે એવું ચિત્ત **क्षिप्त** કહેવાય છે. જે સમયે સત્ત્વ અને રજોગુણને પરાસ્ત કરી કેવળ તમોગુણ જ પ્રસરીને ચિત્તનું આવરણ કરી લે છે, ત્યારે તે ચિત્ત અધર્મ, અજ્ઞાન, અવૈરાગ્ય, અનૈશ્વર્ય,[1] નિદ્રાદિમાં મગ્ન થઈ જવાથી **मूढ** કહેવાય છે. વળી જે સમયે આવરણ સ્વભાવવાળા તમોગુણની પ્રક્ષીણતાથી ચિત્તમાં સત્ત્વગુણનો વિકાસ થાય છે, ત્યારે તે પ્રકૃતિ વગેરે સૂક્ષ્મતત્ત્વની વિવેચનામાં નૈપુણ્યશાળી બને છે, અને રજોગુણના લેશ માત્ર સાથે જોડાયલું હોવાથી તે ચિત્ત, ધર્મ, જ્ઞાન, વૈરાગ્ય, ઐશ્વર્ય વગેરે વિષયોમાં ઉન્મુખ (પ્રવૃત્તિશીલ) થઈ જાય છે, ત્યારે એવું ચિત્ત (ક્ષિપ્ત ચિત્તથી વિશિષ્ટ હોવાથી) **विक्षिप्त** ચિત્ત કહેવાય છે.

જે સમયે અભ્યાસ અને વૈરાગ્યદ્વારા એકવાર રજ અને તમોગુણથી નિવૃત્ત થવાથી ચિત્ત વિશુદ્ધ સત્ત્વગુણના પ્રાધાન્યરૂપ થઈ જાય છે, ત્યારે તે ચિત્ત સ્વાભાવિક જ્ઞાનસ્વરૂપ નિજરૂપમાં અવસ્થિત થઈ, પ્રકૃતિ અને પુરુષના વિવેકમાં મગ્ન થઈ જઈ, ધર્મમેઘ સમાધિમાં[2] ઉન્મુખ થઈ જાય છે. એ ધર્મમેઘ સમાધિનિષ્ઠ ચિત્તને જ યોગી લોકો **परप्रसंख्यान**[3] કહે છે.

જ્યારે[4] ફરીથી વિવેકખ્યાતિનો ઉદય થવાથી ઋતંભરાપ્રજ્ઞાદ્વારા યોગીનું ચિત્ત (ચિતિશક્તિરૂપ પુરુષ તો પરિણામત્રયથી[5] રહિત, ગુણત્રયાતીત, નિર્લેપ,[6] દર્શિતવિષય, શુદ્ધ, અને અનંત છે; માટે વિવેક-

---

૧–અનૈશ્વર્ય=ઇચ્છાનો પ્રતિઘાત અર્થાત્ મનોરથની પૂર્ણતાનો અભાવ.

૨–ધર્મમેઘસમાધિ ચતુર્થપાદના ૨૯ મા સૂત્રમાં વર્ણવાશે.

૩–વિવેકપૂર્વક ધ્યેયતત્ત્વના સાક્ષાત્કારનું નામ પરપ્રસંખ્યાન છે. જો કે આ પ્રસંખ્યાન, એકાગ્રચિત્તનો ધર્મ છે, કાંઈ ચિત્તસ્વરૂપ નથી, તોપણ ધર્મ અને ધર્મીના અભેદનો આશ્રય કરીને ચિત્તને જ પરપ્રસંખ્યાન કહ્યું છે, એમ જાણવું.

૪–એ પ્રકારે એક ચિત્તનો અનેક ભૂમિકાઓ સાથે સંબંધ હોવામાં ગુણોના ન્યૂનાધિકભાવના નિમિત્તને કહી, હવે વિવેકખ્યાતિના નિરોધરૂપે કારણપ્રદર્શનપૂર્વક નિરોધભૂમિકાના સ્વરૂપનું નિરૂપણ કરે છે. "જ્યારે ફરીથી" ઇત્યાદિ વાક્યથી. ૫–ધર્મ, લક્ષણ અને અવસ્થારૂપ ભેદથી ત્રણ પ્રકારના પરિણામોનું નિરૂપણ તૃતીય પાદના ૧૩મા સૂત્રના વ્યાખ્યાનમાં જોવું.

૬–નિર્લેપ=જેમ નેત્રાદિ ઇંદ્રિયોદ્વારા વિષયો સાથે બુદ્ધિ સંબદ્ધ થાય છે, તેમ પુરુષ, કોઈની સાથે સંબદ્ધ નથી, કેમકે તે અસંગ છે, તેથી તે નિર્લેપ

ખ્યાતિ સંજ્ઞાવાળું, ધ્યેયાકાર અથવા સાત્ત્વિકબુદ્ધિ વૃત્તિરૂપ જે પ્રસંખ્યાન ચિત્ત છે તે પરિણામશીલ, સત્ત્વગુણાત્મક, ધ્યેયલિપ્ત, જન્ય, મલિન અને સાંત (અંતવાળું) હોવાથી પુરુષથી વિપરીત છે. એ હેતુથી એ પ્રસંખ્યાન ચિત્ત પણ હેયકોટિમાં જ છે.) ઉપર કહેલી ભાવના(વિચાર)થી વિવેકખ્યાતિમાં પણ રાગરહિત બની, કે જ્ઞાનના પ્રસાદની સંજ્ઞાવાળા પરવૈરાગ્યદ્વારા વિવેકખ્યાતિનો પણ નિરોધ કરી, પુરુષના નિજરૂપમાં અવસ્થિત થઈ જાય છે, ત્યારે એ નિરુદ્ધાવસ્થાવાળું ચિત્ત સંસ્કારશેષ કહેવાય છે. એ સંસ્કારશેષ ચિત્તનો જ નિર્બીજ સમાધિ[1] એ નામથી વ્યવહાર કરાય છે, અને એ નિરુદ્ધાવસ્થાને જ યોગતત્ત્વવિજ્ઞાતા **असंप्रज्ञात समाधि** પણ કહે છે. કેમકે એ દશા(અવસ્થા)માં ધ્યેયાકાર વૃત્તિનો પણ અભાવ હોવાથી કોઈ પણ વસ્તુનું સારી રીતે જ્ઞાન હોતું નથી.

એવી રીતે ગુણોના ન્યૂનાધિક ભાવથી એક જ ચિત્તનો અનેક ભૂમિકાઓ સાથે સંબંધ છે, અને પુરુષની સ્વરૂપાવસ્થિતિને અર્થે ધ્યેયાકાર વૃત્તિના નિરોધની આવશ્યકતા જાણી લેવી.[2]

એ સઘળી ભૂમિકાઓમાંથી છેવટની એકાગ્ર અને નિરુદ્ધ બે ભૂમિકા જ 'ચિત્તવૃત્તિનિરોધ' પદથી સમજાવવાનો સૂત્રકારનો અભિપ્રાય છે, અને તે બે જ योग અથવા समाधिપદને નામે ઓળખાય[3] છે.

કહેવાય છે. જો પુરુષ નિર્લેપ છે, તો તે વિષયોનો પ્રકાશ કેમ કરે છે? તેનો ઉત્તર કહેવામાં આવે છે કે;–દર્શિતવિષય એટલે જેને બુદ્ધિ વિષય દેખડાવે છે તે. અર્થાત્ બુદ્ધિવૃત્તિરૂપ ઉપાધિથી જ વિષયોનો પ્રકાશ પુરુષ કરે છે, કાંઈ સ્વભાવથી નહિ. એટલે સુખદુઃખના મોહરૂપ બુદ્ધિનિષ્ઠ ધર્મોથી પુરુષ અસંબદ્ધ હોવાથી તે સ્વભાવથી શુદ્ધ છે. આ સઘળું ચોથા સૂત્રના વ્યાખ્યાનમાં સ્પષ્ટ થશે.

૧–અવિદ્યાદિ ક્લેશથી યુક્ત જન્મ તથા ભોગને આપવાવાળું જે ધર્માધર્મરૂપ બીજ છે, તે આ સમાધિના પ્રભાવે નાશ પામે છે. આથી આ અવસ્થાનું નામ નિર્બીજ સમાધિ કહ્યું છે.

૨–તાત્પર્ય એટલું જ છે કે, જ્યાં સૂધી ધ્યેયાકાર વૃત્તિ રહેશે, ત્યાં સૂધી પુરુષની પોતાના સ્વરૂપમાં અવસ્થિતિ થવી અસંભવિત છે, અને નિજરૂપમાં અવસ્થિતિ થવી, એ જ યોગનું મુખ્ય ફળ છે; તેથી ધ્યેયાકાર વૃત્તિનો નિરોધ અવશ્ય કર્તવ્ય છે. જો ધ્યેયાકાર વૃત્તિના નિરોધની આવશ્યકતા છે, તો અન્ય વૃત્તિઓનો નિરોધ કરવો, તે અધિક આવશ્યક છે.

૩–અહીં એ પણ જાણી લેવું ઉચિત છે કે, જે એકાગ્રચિત્તમાં વિદ્યમાન રાજસતામસ વૃત્તિના નિરોધપૂર્વક ધ્યેયાકાર વૃત્તિ છે, તે જ પરપ્રસંખ્યાન,

જોકે યોગી યાજ્ઞવલ્કયે 'संयोगो योग इत्युक्तो जीवात्मपरमात्मनोः' એ વાકયથી જીવાત્માનું પરમાત્મસમાનરૂપત્વ[1] થઈ જવું, તેને योग કહેલો છે, તો તે પણ ચિત્તવૃત્તિનિરોધનું જ ઉપલક્ષક જાણવું. કેમકે ચિત્તવૃત્તિ નિરોધ વિના આત્માનું પરમાત્મરૂપત્વ થવું અસંભવિત છે. અર્થાત્ યોગમતમાં જીવાત્મા અને પરમાત્માનો એટલો જ ભેદ છે કે, જીવાત્મા, કલેશ, કર્મ તથા વાસનાથી યુક્ત છે અને પરમાત્મા કલેશ વગેરેથી રહિત છે. જ્યારે યોગદ્વારા જીવાત્મા પણ કલેશાદિકથી રહિત બની નિજરૂપમાં રહી જાય છે, ત્યારે તે પરમાત્મસ્વરૂપ કહેવાય છે. આને જ જીવાત્માપરમાત્માનો સંયોગ, એમ યાજ્ઞવલ્કયે કહેલું છે. પણ આ રીતની સમાનરૂપતા, યોગ વિના અસાધ્ય છે. એથી જ ઉત્તરસૂત્રથી કલેશાદિ વિનિર્મુક્ત નિજરૂપમાં પુરુષની જે સ્થિતિ, તે યોગના ફળરૂપે કહી છે.

વળી યોગફળના કથનદ્વારા આ વાકય પણ ચિત્તવૃત્તિનિરોધરૂપ યોગનું જ લક્ષક જાણવું.

ભાવ એ છે કે, જેમ વેદમાં સાધન અને ફળને એક માની લઈ 'आयुर्वैघृतम्' એ વાકયથી આયુર્વૃદ્ધિના સાધનભૂત ઘીને આયુષ્ય કહેલું છે, તેમ અહીં પણ જીવાત્માના પરમાત્મસમાનરૂપત્વના સાધનભૂત યોગને જીવાત્મપરમાત્મૈક્યરૂપ કહેલો છે. કાંઈ એમ ન જાણવું કે, એ યોગનું લક્ષણ જ છે.

વળી ગીતામાં ભગવાને 'तं विद्याद्दुःखसंयोगवियोगं योगसंज्ञितम्'[2] એ વાકયથી નિખિલ દુઃખસંયોગના વિયોગને योग કહેલો છે, તો તે પણ સાધન અને ફળને એક માનીને કહેલું છે; કારણ કે, યોગનો લાભ થતાં સઘળાં દુઃખોનો અભાવ થાય, એટલે તે પણ યોગનું ફળ જ છે.

સંપ્રજ્ઞાતયોગ, સંપ્રજ્ઞાતસમાધિ, સબીજ સમાધિ, સવિકલ્પસમાધિ ઇત્યાદિ નામથી કહેવાય છે અને જે નિરુદ્ધ ચિત્તમાં વિદ્યમાન નિખિલવૃત્તિનિરોધ છે, તે અસંપ્રજ્ઞાત યોગ, અસંપ્રજ્ઞાતસમાધિ, નિર્બીજસમાધિ, નિર્વિકલ્પસમાધિ વગેરે નામથી કહેવાય છે.

૧—જો કે જીવાત્માનો પરમાત્માની સાથે સંયોગ જ છે, એમ યાજ્ઞવલ્કય મુનિએ કહ્યું છે; તોપણ વિભુ (વ્યાપક) પદાર્થોનો સંયોગ સ્વીકારવામાં આવતો નથી. માટે અહીં સંયોગ શબ્દથી જીવાત્માની પરમાત્મસમાનરૂપતા થઈ જવી, એમ સમજવું. એ જ આશયથી યોગ શબ્દનો અર્થ કરવામાં આવ્યો છે, કે "જીવાત્માનું પરમાત્મસમાનરૂપત્વ" ઇતિ. ૨—જેમ રાક્ષસો પાપી હોવા છતાં વિરુદ્ધ લક્ષણાથી તેમને પુણ્ય જન કહેવાય છે, તેમ દુઃખસંયોગના વિયોગને પણ વિરુદ્ધ લક્ષણાથી યોગ કહે છે, એમ જાણવું.

એ પ્રમાણે જ લિંગપુરાણમાં '**सर्वार्थविषयप्राप्तिरात्मनो योग उच्यते**' એ વાક્યથી સઘળા પદાર્થોની પ્રાપ્તિરૂપ યોગનું લક્ષણ કહેલું છે, તો તે પણ સાધન અને ફળને એક માની કહેલું છે એમ જાણી લેવું. કારણ કે, યોગના પછી પુરુષ આપ્તકામ થઈ જાય છે, માટે એ પણ યોગનું ફળ જ છે; એવી રીતે બીજે સ્થળે પણ જાણી લેવું.[1]

અહીં પ્રસંગથી એ પણ જાણી લેવું યોગ્ય છે કે, યોગ શબ્દ અહીં **युज्**=સમાધૌ, એ ધાતુથી ઉત્પન્ન થયેલો છે. કાંઈ '**युजिर्योगे**' એ ધાતુથી ઉત્પન્ન થયો નથી. એથી જ ભાષ્યકારે પ્રથમસૂત્રના વ્યાખ્યાનમાં યોગ શબ્દનો અર્થ સમાધિ કહેલો છે.[2]

અત્ર આ સંબંધી વિશેષ શંકા કરવાને સ્થાન મળે છે. દ્વિતીયપાદના ૨૯ મા સૂત્રમાં સમાધિને યોગનું અંગ કહેલું છે, તેથી યોગ અને સમાધિ, એ બંને ભિન્નભિન્ન પદાર્થ જ પ્રતીત થાય છે; કેમકે અંગ અને અંગીને એક કહેવું, એ યુક્તિવિરુદ્ધ છે. એનું સમાધાન એ છે કે, અંગ અને અંગી રૂપથી સમાધિને બે પ્રકારની માનવાથી એ કથન યુક્તિવિરુદ્ધ નથી. અર્થાત્ સમાધિ શબ્દ બે પ્રકારનો છે. એક તો '**समाधानं समाधिः**'[3] અર્થાત્ ભાવસાધન, જેનો અર્થ ચિત્તની વૃત્તિઓનું રોકાઈ જવું થાય છે; અને બીજો '**समाधीयते चित्तमनेनेति समाधिः**' અર્થાત્ 'કરણ સાધન, જેનો અર્થ વૃત્તિઓના નિરોધનો ઉપાય અથવા સાધન થાય છે. એમાં ભાવસાધન સમાધિ શબ્દ છે તે, અંગીનો વાચક છે, અને જે કરણસાધન સમાધિ શબ્દ છે તે, અંગવાચક છે. એ પ્રમાણે ભાવસાધન સમાધિ શબ્દના અભિપ્રાયથી ભાષ્યકારે યોગ શબ્દનો અર્થ સમાધિ કહેલો છે, અને કરણસાધન સમાધિ શબ્દના અભિપ્રાયથી સૂત્રકારે સમાધિને યોગનું અંગ કહેલું છે. આ રીતની વ્યવસ્થા જાણી લઈ વિરોધનો પરિહાર થઈ શકે છે.

ભાવસાધન અંગિવાચક સમાધિ શબ્દનો અને યોગ શબ્દનો એક અર્થ હોવાથી જ સ્કંદપુરાણમાં '**यत्समत्वं द्वयोरत्र जीवात्मपरमात्मनोः स नष्टसर्वसंकल्पः समाधिरभिधीयते**'' '**परमात्मात्मनोर्योऽयमविभागः परंतप, स एव तु परो**

૧–ભાવ એ છે કે–એ સઘળાં વાક્યોમાં યોગના ફળનું કથન કરેલું છે, કાંઈ યોગનું લક્ષણ કહ્યું નથી. યોગનું લક્ષણ તો ચિત્તવૃત્તિનિરોધ જ છે.

૨–એ પ્રમાણે સમાધિ અને યોગ, એ બંને શબ્દો એક અર્થ જ દર્શાવે છે, એમ સિદ્ધ થયું.

૩–સમાધાન=નિરોધ=ચિત્તની વૃત્તિઓનું રોકાઈ જવું, એ ત્રણે એકાર્થક છે.

योगः समासात्कथितस्तव.'[1] ઇત્યાદિ વાક્યોથી સમાધિનું અને યોગનું લક્ષણ સમાન છે, એમ કહેવું યોગ્ય છે; નહિ તો, અંગ અને અંગીના સમાન લક્ષણનું પ્રતિપાદન અયોગ્ય થઈ જશે. સૂત્રકારોએ પણ એ જ અભિપ્રાયથી સંપ્રજ્ઞાતયોગને સબીજ સમાધિ[2] અને અસંપ્રજ્ઞાતયોગને નિર્બીજ[3] સમાધિ શબ્દથી કથન કરેલું છે. એટલે કે સૂત્ર, ભાષ્ય, પુરાણ વગેરેની એકવાક્યતાથી એમ સિદ્ધ થાય છે કે, સમાધિ અને યોગ એ બન્ને શબ્દ એક જ અર્થને દર્શાવનારા છે. ॥ ૨ ॥

आशंका–ઉપરના વિવેચનથી એમ જણાય છે કે, યોગ અને સમાધિ એ બન્ને શબ્દો એક જ અર્થ બતાવનારા છે, અને નિરુદ્ધાવસ્થામાં ધ્યેયાકારવૃત્તિનો પણ નિરોધ હોવાથી ચિત્ત કેવળ સંસ્કાર માત્ર થઇને, સ્વકારણરૂપ પ્રકૃતિમાં લીન થઈ જાય છે; ત્યારે પછી પ્રશ્ન એ ઉભો થાય છે કે, જે સમયમાં નિરુદ્ધ થયેલું ચિત્ત, અસંપ્રજ્ઞાતાવસ્થાવિશિષ્ટ થઈ જાય છે, તે સમયમાં પુરુષનો સ્વભાવ કેવો હોય છે? અર્થાત્ કેવા સ્વરૂપથી પુરુષ રહેલો હોય છે? કેમકે જે જે આકારને ચિત્ત ધારણ કરે છે, તે જ આકારશીલ થવું, આવો પુરુષનો સ્વભાવ છે અને નિરુદ્ધાવસ્થામાં ચિત્ત નિરાકાર હોવાથી નિઃસ્વભાવ પુરુષનું રહેવું અસંભવિત છે.[4]

આ શંકાનું નિવારણ કરતાં સૂત્રકાર યોગનાં ફળને કહે છેઃ

૧–જે દશામાં સર્વ સંકલ્પ વગેરે ચિત્તવિકારોનો નાશ થવાથી જીવાત્મા, પરમાત્માની સમાન થઈ જાય છે, અર્થાત્ પુરુષ પોતાના શુદ્ધ સ્વરૂપમાં અવસ્થિત થઈ જાય છે, તેનું જ નામ સમાધિ કહેવાય છે, એવો તેનો ભાવાર્થ છે.

પરમાત્મા અને આત્માનો જે અવિભાગ અર્થાત્ એકરૂપતા, તે જ પરયોગ છે. જે સ્થિતિની પ્રાપ્તિથી જીવાત્મા પરમાત્મા સમાન શુદ્ધરૂપથી અવસ્થિત થઈ જાય છે, તે જ સ્થિતિ અથવા અવસ્થા યોગ શબ્દથી ઓળખવા યોગ્ય છે. એ બન્ને વચનોમાં પણ ફળનાં કથનપૂર્વક જ યોગ અને સમાધિનું લક્ષણ કથન કર્યું છે, કાંઈ સ્વરૂપથી નહિ, એમ જાણવું.

૨–આ પાદના ૪૬ મા સૂત્રમાં જુઓ.

૩–આ પાદના ૫૧ મા સૂત્રમાં જુઓ.

૪–આ શંકા કરવાવાળાનું તાત્પર્ય એ છે કે, શું નૈયાયિકની પેઠે આત્માને ખરી રીતે જડ માનીને વ્યુત્થાનકાળમાં એટલે સમાધિ ન હોય ત્યારે બુદ્ધિવૃત્તિનાં સમીપપણાથી (આત્મા–પુરુષ) ચેતન જણાય છે; અને નિરુદ્ધાવસ્થામાં બુદ્ધિવૃત્તિના અભાવથી કાષ્ઠવત્ અપ્રકાશરૂપ બની જઇને સ્થિત થઈ જાય છે, એમ શું તમે માનો છો? અથવા એ અવસ્થામાં મરણાવ-

सूत्र—तदा द्रष्टुः स्वरूपेऽवस्थानम् ॥ ३ ॥

સૂત્રાર્થ-(જ્યારે ચિત્તવૃત્તિનો નિરોધ થાય છે) ત્યારે દ્રષ્ટાની સ્વરૂપમાં અવસ્થિતિ હોય છે.

तदा=ત્યારે તે નિખિલવૃત્તિનિરોધરૂપ અસંપ્રજ્ઞાત અવસ્થામાં, द्रष्टुः= દૃક્શક્તિરૂપ ચેતન પુરુષની, स्वरूपे અકલ્પિત, અસંગ, નિર્વિકારસ્વરૂપ નિજ રૂપમાં, अवस्थानम्=અવસ્થિતિ હોય છે.

અર્થાત્ જેમ કૈવલ્યાવસ્થામાં ચિતિશક્તિ પુરુષ, ઉપાધિથી પ્રાપ્ત થયેલા શાંત, ઘોર તથા મૂઢ રૂપને[1] છોડી પોતાના સ્વાભાવિક અસંગ ચેતનરૂપમાં સ્થિત હોય છે; તેમ અસંપ્રજ્ઞાત અવસ્થામાં પણ પુરુષ સ્વરૂપ પ્રતિષ્ઠિત થઈ જાય છે. કાંઈ ચિત્ત અને આત્મા એક પદાર્થ નથી કે જેથી ચિત્તનો લય થવાથી આત્માનો પણ અભાવ મનાય.[2] ભાવ એ છે કે,[3] શાંતાદિરૂપ ધારણ કરવાં, એ કાંઈ પુરુષનો સ્વભાવ નથી કે જેથી નિરોધાવસ્થામાં શાંતાદિરૂપના અભાવથી પુરુષનો અભાવ મનાય. કેમકે એ

સ્થાની તુલ્ય પુરુષનો અભાવ માનો છો? અથવા આત્મા છે તો અસંગ અને પ્રકાશ સ્વરૂપ, પરંતુ વ્યુત્થાનકાળમાં બુદ્ધિરૂપ ઉપાધિથી જ્ઞાતૃત્વાદિ મિથ્યા ધર્મવિશિષ્ટ તે પ્રતીત થાય છે, અને નિરુદ્ધાવસ્થામાં ઉપાધિના અભાવથી કલ્પિતરૂપને છોડી દઈ શાંત આનંદાદિ નિજ રૂપમાં અવસ્થિત થઈ જાય છે, એમ માનો છો? એ સઘળા પક્ષમાં અંતનો પક્ષ સિદ્ધાંતભૂત છે, અને તેનું નિવારણ તૃતીય સૂત્રથી કહેવાશે.

૧—સાત્વિક, રાજસ, તામસ એ ત્રણ પ્રકારનાં ચિત્તનાં યથાક્રમે શાંત, ઘોર અને મૂઢ એવાં બીજાં નામ છે.

૨—જેમ જાસુંદનાં ફુલરૂપ ઉપાધિના અભાવથી સ્ફટિકમણિ પોતાના સ્વચ્છ રૂપમાં અવસ્થિત થઈ જાય છે, તેમ બુદ્ધિવૃત્તિરૂપ ઉપાધિના અભાવથી પુરુષ પણ પોતાના સ્વચ્છ અને નિર્વિકાર રૂપમાં અવસ્થિત થઈ જાય છે. બુદ્ધિરૂપ ઉપાધિનો અભાવ થવાથી કાંઈ પુરુષનો અભાવ થતો નથી.

૩—પૂર્વે જે આશંકા કરી હતી કે, શાંત વગેરે આકારથી વિશિષ્ટ બનેલું ચિત્ત જેવા આકારોને ધારણ કરે છે, તેવા આકારો ધારણ કરવાનો જ પુરુષનો સ્વભાવ છે, અને નિરોધકાળમાં ચિત્તના તેવા આકારનો અભાવ હોવાથી પુરુષ નિઃસ્વભાવ કેવી રીતે રહી શકે? તેનો ઉત્તર દેવા માટે, "ભાવ એ જ છે કે" ઇત્યાદિ કહે છે.

સઘળું "શાંતાદિરૂપ" ઔપાધિક છે, અને બુદ્ધિરૂપ ઉપાધિના અભાવથી ઔપાધિક શાંતાદિરૂપનો પણ અભાવ થઈ શકે છે, કાંઈ પુરુષનો અભાવ થઈ શકતો નથી. પુરુષ તો પોતાના કંઈ પણ ઉપાધિ વગરના રૂપમાં સ્થિત જ હોય છે.

आशंका–જો નિરોધાવસ્થામાં ચિતિશક્તિ,[1] પોતાના રૂપમાંજ પ્રતિષ્ઠિત થાય છે, તો વ્યુત્થાનકાળમાં (જ્યારે સમાધિ નથી હોતી ત્યારે) તે સ્વરૂપમાં લીન નહોતી એમ અવશ્ય સિદ્ધ થયું, અને તેથી ચિતિશક્તિ પણ પરિણામશીલ થઈ; કેમકે જે સદા એક રસ ન રહી, અનેક રૂપને ધારણ કરે છે, તે પરિણામશીલ કહેવાય છે. જો એમ કહેવામાં આવે કે, વ્યુત્થાનકાળમાં પણ ચિતિશક્તિ, સ્વસ્વરૂપમાં જ અવસ્થિત રહે છે, તો સમાધિ અને વ્યુત્થાનમાં ભેદ શો?[2]

समाधान–હે સાત્વિક જન! વ્યુત્થાનકાળમાં[3] પણ ચિતિશક્તિ સ્વરૂપમાંજ પ્રતિષ્ઠિત રહે છે, પરંતુ તે રૂપે ચિતિશક્તિનું ભાન તે કાળમાં થતું નથી.

અર્થાત્ ચિતિશક્તિરૂપ પુરુષ, કૂટસ્થ અને નિત્ય હોવાથી કયારેય પણ સ્વસ્વરૂપથી ભ્રષ્ટ થતો નથી, તેથી જેવો નિરોધકાળમાં પુરુષનો સ્વભાવ હોય છે, તેવો જ વ્યુત્થાનકાળમાં હોય છે. પરંતુ અવિવેકથી તેવો પ્રતીત થતો નથી. માટે તે પરિણામી જેવો લાગે છે. પણ વસ્તુતઃ તો તે અપરિણામી છે.

ભાવ એ જ છે કે–જયારે કોઈ ભ્રમથી માણસને શુક્તિમાં (છીપમાં) રજત (રૂપું) ભાસે છે ત્યારે એ જ્ઞાનથી એને શુક્તિનો અભાવ અને રજતની પ્રાપ્તિ થતી નથી; અને ભ્રમ નાશ થયા પછી 'આ રજત નથી પણ શુક્તિ છે' એવા જ્ઞાનથી કાંઈ શુક્તિની ઉત્પત્તિ અને રજતનો અભાવ પણ થતો નથી. કેવળ ભ્રાંતિથી જ (અસ્તિ, નાસ્તિ) છે અને નથી વગેરેનો વ્યવહાર થાય છે; તેમ ચેતન સર્વદા એક રસ જ છે, પરંતુ વ્યુત્થાનકાળમાં અવિવેકથી અન્યરૂપે તેનું ભાન થાય છે અને નિરોધકાળમાં નિજ શાંતરૂપથી ભાન થાય છે, એ જ નિરોધ અને વ્યુત્થાનમાં ભેદ છે. ॥ ३ ॥

૧–ચિતિશક્તિ, દૃક્શક્તિ, પુરુષ, આત્મા, એ શબ્દો એક જ અર્થને દર્શાવે છે.

૨–જ્યારે આત્મા સર્વદા નિજરૂપમાં અવસ્થિત છે, ત્યારે સમાધિ કરવાનું ફળ જ શું? એ પણ આશંકા કરનારનો કટાક્ષ છે.

૩–ભાષ્યને અનુસરી તેનો ઉત્તર કહે છે–"વ્યુત્થાન" ઇત્યાદિ.

आशंका–જો વ્યુત્થાન કાળમાં નિજરૂપથી પુરુષનું ભાન નથી થતું તો બીજા કયા રૂપે ભાન થાય છે? એ આશંકાનો ઉત્તર મહર્ષિ ચોથા સૂત્રથી કહે છે–

सू.–वृत्तिसारूप्यमितरत्र ॥ ४ ॥

સૂત્રાર્થ–જ્યારે સમાધિ નથી હોતી ત્યારે દ્રષ્ટા ચિત્તની વૃત્તિઓના જેવું રૂપ ધારણ કરે છે.

इतरत्र વ્યુત્થાન કાળમાં[1]; **वृत्तिसारूप्यम्** ચિત્તની વૃત્તિઓ સમાન રૂપ દ્રષ્ટા થાય છે, એટલે વ્યુત્થાનકાળમાં ચિત્તની જેવી જેવી શાંત, ઘોર વા મૂઢ વૃત્તિઓ ઉત્પન્ન થાય છે, તેવા રૂપથી જ (આકારથી) પુરુષનું ભાન થાય છે.

અહીં વૃત્તિઓ સાથે સમાનરૂપત્વ હોવાથી હેતુપ્રદર્શન કરવા માટે ભાષ્યકારે એ સૂત્રના આદિમાં '**दर्शितविषयत्वात्**' એ પદનો અધ્યાહાર કરેલો છે. બુદ્ધિથી દર્શિત[2] (નિવેદન કરેલા) વિષયોને લીધે જ પુરુષ, પણ બુદ્ધિવૃત્તિના સમાનરૂપવાળો થાય છે, કાંઈ સ્વાભાવિક રીતે નહિ, એવો તેનો અર્થ છે. એ પ્રમાણે પુરુષનું વૃત્તિઓ સાથે સમાનરૂપ થવું ઔપાધિક છે, એમ સિદ્ધ થાય છે. વિષય અને ઇન્દ્રિયોના સંયોગથી જે અનેક પ્રકારની વૃત્તિઓ ઉત્પન્ન થાય છે, તે સઘળો બુદ્ધિનો જ ધર્મ છે, કાંઈ પુરુષનો ધર્મ નથી. પુરુષ તો જ્ઞાનસ્વરૂપ જ છે, પરંતુ ચિત્ત તથા પુરુષના અવિવેકથી પુરુષનો ધર્મ ભાસે છે.[3]

---

૧ પૂર્વ સૂત્રમાં '**तदा**' એ પદથી નિરોધકાળનું ગ્રહણ કરી, પુરુષની નિજરૂપમાં અવસ્થિતિ કહી. આ સૂત્રમાં '**इतरत्र**' એમ કહેલું છે. એ ઇતરત્રનો અર્થ પૂર્વકથિતથી બીજે છે, તેથી પૂર્વોક્ત નિરોધકાળથી ભિન્ન તે વ્યુત્થાનકાળ, એવો **इतरत्र** પદનો અર્થ થયો. તે આશયથી અર્થ કરે છે કે "વ્યુત્થાનકાળમાં" ઇત્યાદિ. અહીં નિરોધ સમાધિની અપેક્ષાથી સંપ્રજ્ઞાતયોગ પણ વ્યુત્થાનકાળ જ જાણવો; કેમકે ત્યાં પણ ધ્યેયાકાર વૃત્તિની વિદ્યમાનતા છે.

૨–બુદ્ધિનો એ સ્વભાવ છે કે, ઇંદ્રિયોદ્વારા વિષયોનું ગ્રહણ કરીને પછી એ વિષયોને પ્રતિબિંબરૂપ ચેતનમાં સમર્પણ કરી દે છે, તેનુંજ નામ દર્શિતવિષય છે. એ જ પ્રમાણે વિષ્ણુપુરાણમાં કહેલું છે કે–"**गृहीतानिन्द्रियैरर्थानात्मने यः प्रयच्छति । अंतःकरणरूपाय तस्मै विश्वात्मने नमः**" "ઇંદ્રિયોથી ગ્રહણ કરેલા વિષયો જે આત્માને સમર્પણ કરે છે, તે અંતઃકરણરૂપ વિશ્વાત્માને નમસ્કાર".

૩–એ સઘળું બીજા પાદના ૨૦મા સૂત્રના, ત્રીજા પાદના ૩૫મા સૂત્રના, અને ચોથા પાદના ૨૨ મા સૂત્રના વ્યાખ્યાનમાં સ્પષ્ટ રીતે કહેવાશે.

પંચશિખાચાર્યે પણ 'एकमेव दर्शनम्' એ સૂત્રથી જ્ઞાનને એક કહી ફરીથી 'ख्यातिरेव दर्शनम्' એ સૂત્રથી (શબ્દાદિવિષયક જ્ઞાન વા પ્રકૃતિ-પુરુષવિષયક વિવેકજ્ઞાન, એ સઘળું બુદ્ધિનીજ ખ્યાતિ-વૃત્તિ છે, પણ કાંઈ એમ નથી કે બુદ્ધિનું પૃથક્ જ્ઞાન અને પુરુષનું પૃથક્ જ્ઞાન હોય) "જ્ઞાનના એક કથન" દ્વારા ઉત્પત્તિવિનાશરૂપ ધર્મશીલ બુદ્ધિવૃત્તિને જ જ્ઞાનનો આધાર કહી, પુરુષને જ્ઞાનસ્વરૂપ જ માનેલો છે? પણ કાંઈ પુરુષને જ્ઞાનનો આધાર માનેલો નથી.[1]

અર્થાત્, જો કે પરમાર્થથી પુરુષ અસંગ જ છે, તો પણ[2] લોહ-ચુંબકની પેઠે પાસે હોવા માત્રથી ઉપકાર કરવાવાળા ચિત્તરૂપ દૃશ્યનો દૃશ્યત્વરૂપવડે પુરુષની સાથે અનાદિ કાળનો સ્વસ્વામિભાવ[3] સંબંધ છે. એથી શાંત, ઘોર ને મૂઢાકાર વૃત્તિવાળા ચિત્તની સન્નિધિથી પુરુષ પોતાને ચિત્તથી ભિન્ન ન જાણી, 'હું શાંત (સુખી) છું, ઘોર (દુઃખી) છું, અને મૂઢ છું,' એવી રીતે પોતાનામાં ચિત્તના ધર્મોનો આરોપ કરી લે છે. વળી જેમ મલિન (મેલાં, વાંકા વા વિકૃત) દર્પણમાં પ્રતિબિંબ પામેલા મુખ ઉપર મલિનતાનો આરોપ કરી અવિવેકી માણસ, 'હું મલિન છું' એવો શોક કરે છે, તેમ પુરુષ પણ ઉપાધિના ધર્મોનો પોતાનામાં આરોપ કરી "હું સુખી, હું દુઃખી" એવી ભ્રમજાળમાં પડી, શોકગ્રસ્ત થાય છે, એ જ वृत्तिसारूप्य પદનો અર્થ છે.

જો કે પુરુષ અસંગ હોવાથી તેને દેશકૃત વા કાળકૃત એટલે દેશને લઇને થયેલા અથવા કાળને લઇને થયેલા ચિત્તના સમીપપણાને સંભવ હોવો દુર્ઘટ છે, તો પણ યોગ્યતારૂપી સમીપપણાનો સંભવ હોવાથી એ જ અહીં લેવો યોગ્ય છે.

૧–એમ કહેવાથી એવો બોધ કર્યો છે કે, કાંઈ એકલા યોગાચાર્યો જ પુરુષને જ્ઞાનસ્વરૂપ માને છે એમ ન જાણવું, પણ સાંખ્યાચાર્ય પંચશિખ પણ એમ જ માને છે. એ અંશમાં સાંખ્ય, યોગ અને વેદાંત એ ત્રણે એકમત છે.

૨–જેમ લોહચુંબક અર્થાત્ ચુંબકમણિ પાસે હોવા માત્રથી જ શલ્ય નિષ્કાસનરૂપ (લોખંડની અણી કાઢવારૂપ) ઉપકાર કરતાં છતાં ભોગ સાધન હોવાથી પુરુષનું સ્વ (પોતાનું) કહેવાય છે, તેમ ચિત્ત પણ સન્નિધિ માત્રથી વિષય નિવેદનરૂપ ઉપકાર કરે છે, તેથી તે પુરુષનું સ્વ (પોતાનું) કહેવાય છે અને પુરુષ તેનો સ્વામી કહેવાય છે. પરંતુ ચિત્તથી પુરુષ સંયુક્ત છે, એવો આ દૃષ્ટાન્તનો ભાવ છે, એમ સમજવું નહિ.

૩–સુખદુઃખ મોહાકારરૂપ પરિણામ પામેલું ચિત્ત ભોગ્ય ભાવવડે, પોતાના સ્વામી પુરુષ ભોક્તાનું "સ્વ" થઈ જાય છે, એવો આ શબ્દનો અર્થ છે.

ભાવ એ છે કે, પુરુષમાં ભોક્તૃત્વ શક્તિ અને દ્રષ્ટૃત્વ શક્તિ છે, તથા ચિત્તમાં દૃશ્યત્વશક્તિ અને ભોગ્યત્વશક્તિ છે, એ જ એ બંનેની પરસ્પર યોગ્યતા છે. એ યોગ્યતા લક્ષણ સન્નિધિથી જ ચિત્ત, સુખ દુઃખ મોહાકારરૂપ પરિણામથી ભોગ્ય અને દૃશ્ય થઇને "સ્વ" કહેવાય છે. પુરુષ, ભોક્તા અને દ્રષ્ટા હોઇને "સ્વામી" કહેવાય છે. તેથી આ પુરુષના ભોગના હેતુરૂપ જે "સ્વ-સ્વામિ-ભાવ સંબંધ" છે, તે પણ ચિત્તની સાથે દ્રષ્ટાના પોતાના રૂપના અવિવેક[1]ને લીધે છે. અવિવેકનો અને વાસનાનો પ્રવાહ, બીજ અને અંકુરની પેઠે અનાદિ કાળનો છે. એવી રીતે ચિત્તની વૃત્તિના વિષયવાળા ઉપભોગમાં જે ચેતનનો અનાદિ સ્વસ્વામિભાવ સંબંધ છે, તે જ વૃત્તિની સાથે સમાનરૂપ થવામાં કારણ છે.

જેમ જળાશયમાં જ્યારે જૂદી જૂદી તરેહના તરંગો ઉછળતા રહે છે, ત્યારે આકાશમાં રહેલા સ્થિર ચંદ્રમંડળના પ્રતિબિંબનું એ જળાશયમાં યથાર્થરૂપથી ભાન થતું નથી, પરંતુ જ્યારે તરંગો નિવૃત્ત થઈ જાય છે ત્યારે નિશ્ચલરૂપથી પ્રકાશમાન થયેલું ચંદ્રનું પ્રતિબિંબ સ્વચ્છ જોવામાં આવે છે; તેમ જ્યારે ચિત્તની વૃત્તિઓ વિષયાકાર હોવાથી ચંચળ રહે છે, ત્યારે ચેતન પણ ચંદ્રમંડળની પેઠે ચિત્તમાં પ્રતિબિંબિત થઇને તદાકાર થવાથી સ્વસ્વરૂપે ભાસતું નથી, અને જ્યારે ચિત્તવૃત્તિઓ નિરુદ્ધ થઈ જાય છે, ત્યારે ચંદ્રમંડળની પેઠે ચેતન પોતાના સ્થિર રૂપમાં પ્રકાશે[2] છે. આ બંને સૂત્રોનો ફલિતાર્થ છે. ॥૪॥

आशंका–જે કાર્ય પુરુષના પ્રયત્નથી સાધ્ય હોય, તેનો જ શાસ્ત્ર મનુષ્યોને ઉપદેશ કરે છે; પણ યોગશાસ્ત્રમાં તો વૃત્તિનિરોધરૂપ

૧–જો કે સુખ દુઃખાદિ ભોગ પણ ચિત્તનો જ ધર્મ છે, તોપણ ચિત્ત અને ચેતનને ભિન્ન ન જાણી પુરુષ પોતાનામાં તે માની લે છે, તેથી તે અવિવેક પ્રયુક્ત છે. એ સઘળું દ્વિતીય પાદના ૧૭ અને ૨૦ મા સૂત્રમાં સ્પષ્ટ રીતે કહેવાશે.

૨–અહીં પ્રસંગથી એ પણ જાણી લેવું ઉચિત છે કે–જ્યારે સૂત્રકારે દ્વિતીય સૂત્રથી યોગનું લક્ષણ કહી તૃતીય સૂત્રથી એ યોગના ફળના કથનદ્વારા પુરુષની સ્વરૂપાવસ્થિતિને નિરોધ સંજ્ઞાવાળા અસંપ્રજ્ઞાત યોગનું ફળ કહેલું છે, ત્યારે એ નિશ્ચય થયો, કે નિરોધસંજ્ઞાવાળો અસંપ્રજ્ઞાત યોગ જ મુખ્ય યોગ, સૂત્રકારને માન્ય છે, પણ સંપ્રજ્ઞાતયોગ માન્ય નથી. કેમકે સંપ્રજ્ઞાતયોગમાં ધ્યેયાકાર વૃત્તિની સત્તાથી પુરુષનું વૃત્તિસારૂપ્ય હોવાથી તે સ્વરૂપાવસ્થિતિનું કારણ નથી. તેથી અસંપ્રજ્ઞાત યોગ જ યોગનું મુખ્ય કારણ હોવાથી સંપ્રજ્ઞાતયોગને ગૌણયોગ જ જાણવો.

કાર્ય કહ્યું છે, તે કંઈ પુરુષપ્રયત્નથી સાધ્ય થઈ શકતું નથી. કારણ કે વૃત્તિઓનો નિરોધ, વૃત્તિઓના જ્ઞાનને અધીન છે અને વૃત્તિઓનું જ્ઞાન થવું, એ વૃત્તિઓ અસંખ્ય હોવાથી અસંભવિત છે.[1] આ પ્રમાણે અસાધ્ય કાર્યનો ઉપદેશ કરવાથી આ યોગશાસ્ત્ર ત્યાગ કરવા યોગ્ય છે. (એટલે વૃત્તિઓનો નિરોધ કરવો હોય તો વૃત્તિઓ એટલે શું છે, તે કેટલી છે અને નિરોધ કેવી રીતે થઈ શકે, તે જાણવું જરૂરનું છે.)

વાદીની આ આશંકાના નિવારણાર્થે જે વૃત્તિઓના નિરોધથી યોગની પ્રાપ્તિ થાય છે, તે વૃત્તિઓનાં સ્વરૂપ અને સંખ્યાના પ્રતિપાદક સૂત્રનો આરંભ કરે છે.

सू–वृत्तयः पंचतय्यः क्लिष्टाऽक्लिष्टाः ॥५॥

સૂત્રાર્થ–વૃત્તિઓ પાંચ પ્રકારની છે, અને તે દરેક ક્લિષ્ટ (દુઃખદાયક) અને અક્લિષ્ટ (સુખદાયક) છે.

(वृत्तयः) જે વૃત્તિઓના નિરોધથી યોગ થાય છે, તે વૃત્તિઓ (पंचतय्यः) છઠ્ઠા સૂત્રમાં કહેલા પ્રમાણાદિ ભેદથી પાંચ પ્રકારની[2] છે અને એ પાંચેમાંથી પ્રત્યેક વૃત્તિ (क्लिष्टाऽक्लिष्टाः) ક્લિષ્ટ અને અક્લિષ્ટના ભેદથી બે પ્રકારની છે.

આ સૂત્રની શરુઆતમાં ભાષ્યકારોએ (ताः पुनर्निरोद्धव्या बहुत्वे सति चित्तस्य) એ વાક્યનો અધ્યાહાર કહેલો છે, તે હકીકત સાથે લેતાં આ પ્રમાણે અર્થ થાય છે. ચિત્તની વૃત્તિઓ તો ઘણી છે, તોપણ જે વૃત્તિઓનો નિરોધ જરૂરનો છે, તે વૃત્તિઓ હવે પછી કહેવાશે. તે પ્રમાણાદિ ભેદથી પાંચ જ છે.

ભાવ એ છે કે, લજ્જા, તૃષ્ણાદિ વગેરે ભેદથી વૃત્તિઓ અસંખ્યાત છે, તોપણ પ્રમાણાદિ પાંચ વૃત્તિઓમાં જ તે સઘળીનો અંત-

---

૧–જેમ સાગરના તટ નજીક ઉભો રહી પુરુષ, નિશ્ચય કરી શકતો નથી કે સાગરમાં કેટલા તરંગો પેદા થાય છે; તેમ ચિત્તરૂપી સાગરમાં પણ કેટલા તરંગો (વૃત્તિઓ) ઉત્પન્ન થાય છે, તે નિશ્ચય થવો દુર્ઘટ છે, આ તેનો ભાવ છે.

૨–જે સંખ્યાવાચક શબ્દને છેડે અવયવાર્થક तयप् પ્રત્યય લાગે છે, તેનો "પ્રકાર"રૂપ અર્થ થાય છે. એ મતથી पंचतय्यः એ પદનો અર્થ "પાંચ પ્રકારની" એવો કર્યો છે. કોઈ એમ પણ કહે છે કે, ભાષ્યકારે "પાંચ" એમ જ કહેલું છે, તેથી અહીં तयप् પ્રત્યય સ્વાર્થમાં છે. વાચસ્પતિ મિશ્રે તો વૃત્તિરૂપ અવયવીના પ્રમાણાદિ વૃત્તિરૂપ પાંચ અવયવ છે, તેથી 'પાંચ અવયવવાળી વૃત્તિઓ છે' એમ જે કહ્યું છે તે યોગ્ય છે.

ભાવ થઈ જાય છે અને એ પાંચ[1] વૃત્તિઓના નિરોધ માત્રથી બીજી સર્વ વૃત્તિઓનો નિરોધ થઈ જતાં અન્ય વૃત્તિઓનો નિરોધ કરવા માટે બીજા પ્રયત્નની જરૂર નથી, માટે વૃત્તિનિરોધ સાધ્ય છે, અને એથી વાદીની શંકાનું સમાધાન થઈ શકે છે.

તે પ્રમાણાદિ પાંચ વૃત્તિઓ દરેક બે પ્રકારની છે. એક ક્લિષ્ટ, અર્થાત્ રાજસ, તામસ, પ્રવૃત્તિ, પરિતાપ, ક્રોધ, લોભાદિક અને બીજી અક્લિષ્ટ, અર્થાત્ સાત્ત્વિક, પ્રખ્યા, પ્રસાદ, વગેરે. તાત્પર્ય એ છે કે, જે વૃત્તિઓ[2] ધર્મ, અધર્મ, વાસનાના સમૂહને ઉત્પન્ન કરે છે, તે અવિદ્યાદિ ક્લેશનું મૂળ હોવાથી ક્લિષ્ટ કહેવાય છે, અને જે વૃત્તિઓ પ્રકૃતિ પુરુષના સ્વરૂપનું યથાર્થ જ્ઞાન કરે છે, તે ગુણાધિકારની વિરોધિની[3] હોવાથી અક્લિષ્ટ કહેવાય છે.

જો કે પ્રાણી માત્ર રાગદ્વેષયુક્ત હોવાથી ક્લિષ્ટ વૃત્તિપ્રવાહવાળાં જ હોય છે, તોપણ અભ્યાસ અને વૈરાગ્યદ્વારા ક્લિષ્ટવૃત્તિઓના પ્રવાહને દબાવી દઈ, અક્લિષ્ટ વૃત્તિપ્રવાહવાળાં પણ થઈ શકે છે. અર્થાત્ જ્યારે અભ્યાસ અને વૈરાગ્યની ન્યૂનતા થાય છે, ત્યારે ક્લિષ્ટનો પ્રવાહ વધી જાય છે; અને જ્યારે અભ્યાસ તથા વૈરાગ્યનું પ્રાબલ્ય થાય છે, ત્યારે અક્લિષ્ટ પ્રવાહનો વધારો થઈ જાય છે; પણ જ્યારે દીર્ઘકાલ પર્યંત નિરંતર સત્કારપૂર્વક સેવવાથી અભ્યાસ અને વૈરાગ્ય દૃઢ થઈ જાય છે, ત્યારે એકવારે જ ક્લિષ્ટ વૃત્તિઓને દબાવી દઈ અક્લિષ્ટ વૃત્તિઓ જ નિરંતર વહ્યા કરે છે અને પ્રતિદિન અક્લિષ્ટ સંસ્કારોને જ પેદા કરે છે, તે પછી એ અક્લિષ્ટ સંસ્કારોથી પણ અક્લિષ્ટ વૃત્તિઓ જ ઉત્પન્ન થાય છે. એવી રીતે અસંપ્રજ્ઞાત સમાધિ સૂધી આ વૃત્તિસં-

---

૧–આ કથનથી જે આશંકા થઈ હતી, કે વૃત્તિઓ અસંખ્ય હોવાથી નિરોધ દુર્ઘટ છે, તે શંકા ઉચ્છિન્ન થઈ ગઈ. કેમકે પાંચે વૃત્તિઓના નિરોધથી સર્વ વૃત્તિઓનો નિરોધ થવો, એ કાંઈ દુર્ઘટ નથી.

૨–ચાલુ સૂત્રના क्लिष्टाऽक्लिष्ट પદનો ભાષ્ય અનુસાર અર્થ કરે છે, "જે" ઇત્યાદિથી–

૩–ધર્મ અને અધર્મના ઉત્પાદનદ્વારા આગામી જન્મો વગેરેનો આરંભ કરવો, તે ગુણોનો અધિકાર છે, અને વિવેકખ્યાતિનો ઉદય થવો, એ જ એ અધિકારનો અવધિ છે. એટલા માટે જ વિવેકખ્યાતિરૂપ સાત્વિક અક્લિષ્ટ વૃત્તિઓ, ગુણાધિકારની વિરોધિની છે.

સ્કારચક્ર[1] નિરંતર ફરતું રહે છે. અસંપ્રજ્ઞાત સમાધિમાં એ અક્લિષ્ટ વૃત્તિઓનો પણ નિરોધ કરવો પડે છે, તેથી અસંપ્રજ્ઞાત સમાધિ જ આ વૃત્તિસંસ્કારરૂપ ચક્રની સીમા છે.[2] પછી જ્યારે વિવેકખ્યાતિનો ઉદય થવાથી ચિત્ત પણ પોતાના કર્તવ્યથી નિવૃત્ત થઈ જાય છે, અને અક્લિષ્ટ વૃત્તિઓ પણ પરવૈરાગ્યદ્વારા નિરુદ્ધ થઈ જાય છે, ત્યારે ચિત્ત, કૃતકાર્ય થઈ આત્મસ્વરૂપથી[3] અભિન્ન બની જાય છે, અથવા પ્રલય એટલે પોતાની કારણ પ્રકૃતિમાં લીન[4] થઈ જાય છે. આ ચિત્તની પ્રલયાવસ્થા જ યોગની પરાકાષ્ઠા (સીમા) છે. અહીંઆ એ ક્રમ એવો છે કે- પ્રથમ વિવેક વગેરે અક્લિષ્ટવૃત્તિઓના આશ્રયથી ક્લિષ્ટવૃત્તિઓનો નિરોધ કરવો. પછી પર વૈરાગ્યદ્વારા વિવેકખ્યાતિ વગેરે અક્લિષ્ટ વૃત્તિઓનો નિરોધ કરવો. એ અભિપ્રાયથી જ સૂત્રકારે (क्लिष्टाऽक्लिष्टाः) એવો યથાક્રમ નિર્દેશ કર્યો છે. ॥ ૫ ॥

જે પાંચવૃત્તિઓ સામાન્ય રીતે પાંચમા સૂત્રમાં કહી છે, તે જ વૃત્તિઓ હવે ભિન્ન ભિન્ન નામથી કહે છે.

सू–प्रमाण–विपर्यय–विकल्प–निद्रा–स्मृतयः ॥ ६ ॥

સૂત્રાર્થ-પ્રમાણ, વિપર્યય, વિકલ્પ, નિદ્રા અને સ્મૃતિ, આ પાંચ, ચિત્તની વૃત્તિઓ છે. ॥ ૬ ॥

૧–વૃત્તિઓથી સંસ્કાર અને સંસ્કારોથી વૃત્તિઓ, અને ફરી વૃત્તિઓથી સંસ્કારનું નિત્ય થયા કરવું, એ વૃત્તિસંસ્કાર ચક્ર કહેવાય છે.

૨–સીમાનો અર્થ અવધિ અથવા તો હદ છે. તેનો ભાવ એ છે કે, અક્લિષ્ટ વૃત્તિઓના અવલંબનદ્વારા ક્લિષ્ટ વૃત્તિઓનો પરિત્યાગ કરી પાછો વૈરાગ્યથી અક્લિષ્ટ વૃત્તિઓનો પણ નિરોધ કરવો પડે છે, એટલે કે અસંપ્રજ્ઞાત સમાધિ સુધી પણ અક્લિષ્ટ વૃત્તિઓની પરંપરા હોવાથી તે સમાધિ અવધિ કહેવાય છે.

૩–'स आत्मा सर्वगो रामनित्योदितमहावपुः। यन्मनाङ् मननीं शक्तिं धत्ते तन्मन उच्यते' એ વચનથી વસિષ્ઠ મુનિએ સંકલ્પ વિકલ્પરૂપ ક્રિયા ધારણ કરવાથી આત્માને જ મન કહ્યું છે; અને જ્યારે સમાધિના જોરથી સંકલ્પવિકલ્પ નિવૃત્ત થાય છે, ત્યારે તે આત્મસ્વરૂપે રહે છે.

૪ 'લીન' એટલે વસિષ્ઠ કથિત સ્વરૂપ નાશ અને અરૂપ નાશ સમજવું. તેમાં એટલું વિશેષ છે કે, જીવન્ મુક્તિમાં ચિત્તનો સ્વરૂપનાશ થાય છે અને વિદેહમુક્તિમાં અરૂપનાશ થાય છે. જીવન્ મુક્તિકાળમાં રૂપ રહેતાં છતાં પણ ચિત્ત નપુંસક થઈ પડ્યું રહે છે, તેથી તેનો સ્વરૂપનાશ થયો કહેવાય છે અને વિદેહ મુક્તિમાં ચિત્તરૂપનો પણ અભાવ થવાથી ત્યાં અરૂપનાશ છે.

હવે યથાક્રમ એ પાંચે વૃત્તિઓનાં લક્ષણ કહેવાની ઈચ્છાવાળા આચાર્ય પ્રથમ કહેલી પ્રમાણવૃત્તિના સામાન્ય લક્ષણ જણાવતાં વિભાગ કરે છે.

सू–प्रत्यक्षाऽनुमानाऽऽगमाः प्रमाणानि ॥ ७ ॥

સૂત્રાર્થ–પ્રત્યક્ષ, અનુમાન અને આગમ એવી રીતે પ્રમાણના ત્રણ ભેદ છે.

પૂર્વે કહેલી પંચવૃત્તિઓમાંથી જે પ્રથમ, પ્રમાણ નામની વૃત્તિ છે, તે, પ્રત્યક્ષ, અનુમાન અને આગમ, એવા ભેદથી ત્રણ પ્રકારની છે.

અહીં મૂળ સૂત્રમાં प्रमाणानि એ પદની આવૃત્તિ[1] કરવી અને એવી રીતે प्रमाणनुं સામાન્ય લક્ષણ કહી, તે પછી તેની વિભાગપરત્વે યોજના કરવી યોગ્ય છે; નહિ તો સૂત્રકારે આ સૂત્રમાં प्रमाण તે શું, તે કહ્યા વગર પ્રથમથી જ જે વિભાગો કરી દીધા છે, તે અસંગત જણાય છે. અર્થાત્ શાસ્ત્રનો એ સિદ્ધાંત છે કે–પ્રથમ સામાન્ય લક્ષણનું કથન કરી, પછી વિશેષ લક્ષણનો વિભાગ કરવો જોઇએ. પરંતુ અહીં પ્રમાણના સામાન્ય લક્ષણનું કથન ન કરતાં વિભાગનું લક્ષણ કહેવાથી સૂત્રકારની ન્યૂનતા પ્રતીત થાય છે.[2] એ ન્યૂનતાના નિવારણ માટે અહીં પણ प्रमाणानि એ પદનું બેવાર ઉચ્ચારણ કરીને એક પદને રૂઢ અને એક પદને (प्रमीयते येन तत्प्रमाणम् એવી રીતના) પ્રમાકરણરૂપ અર્થમાં વ્યુત્પન્ન માની, પ્રમાનું જે કરણ–સાધન (જનક), તે પ્રમાણ કહેવાય[3] છે; એવી રીતે પ્રથમ સામાન્ય લક્ષણનો આશ્રય કરી, પછી આ પ્રમાણ, પ્રત્યક્ષ, અનુમાન અને આગમ, એવા ભેદથી ત્રણ પ્રકારનું છે, એમ પ્રમાણનો વિભાગ કરી લેવો. તેમાં અનધિગત[4] અબાધિત પદાર્થવિષયક જે પૌરુષેય બોધ (પુરુષ-

---

૧–એક શબ્દનું અનેકવાર ઉચ્ચારણ કરવું, એનું નામ આવૃત્તિ.

૨–જેમ વિપર્યય, વિકલ્પ વગેરે વૃત્તિઓનું સૂત્રકારે ભિન્ન ભિન્ન લક્ષણ કહેલું છે, તેમ प्रमाणवृत्तिनुं લક્ષણ ન કહેવાથી ન્યૂનતાપત્તિ દોષ જાણી લેવો.

૩–અહીં એટલું વિશેષ પણ જાણી લેવું, કે અવ્યુત્પન્ન પ્રમાણપદ લક્ષ્યપર છે અને વ્યુત્પન્ન પ્રમાણપદ લક્ષણપર છે.

૪–જે પ્રમાનું જનક હોવાથી તે ચિત્તવૃત્તિ પ્રમાણ કહેવાય છે. (प्रमायाः करणम्=प्रमाणम्) એ પ્રમાનું લક્ષણ કહ્યું છે, 'અનધિગત' ઇત્યાદિથી. જે વસ્તુ, પ્રથમ કોઈ જ્ઞાનનો વિષય થઈ નથી, તે 'અનધિગત' કહેવાય છે; અને જે વસ્તુવિષયકજ્ઞાનને અન્ય જ્ઞાન બાધક ન હોય, તે 'અબાધિત' કહેવાય છે. એવી રીતનું વસ્તુવિષયક જે પુરુષનિષ્ઠ જ્ઞાન, તે પ્રમા કહેવાય છે. ટુંકમાં કહીએ તો

નિષ્ઠજ્ઞાન) તે પ્રમા કહેવાય છે. તેનેજ યથાર્થ અનુભવ કે સત્યજ્ઞાન કહે છે. એ યથાર્થ અનુભવવાળી પ્રમા, ચક્ષુ વગેરે ઇંદ્રિયોદ્વારા વા લિંગ-જ્ઞાનદ્વારા વા આપ્તવાક્યના શ્રવણદ્વારા ચિત્તવૃત્તિથી ઉત્પન્ન થાય છે એથી ચિત્તવૃત્તિ પ્રમાનું કરણ (સાધન–જનક) હોવાથી તેને **प्रमाण** કહે છે.

ત્યાં એટલું વિશેષ છે કે, ચક્ષુ વગેરે ઇંદ્રિયોદ્વારા વિષયાકાર ચિત્તની વૃત્તિનો ઉદય થાય છે, તે **प्रत्यक्ष प्रमाण**ના નામથી ઓળખાય છે; જે વૃત્તિ, લિંગ જ્ઞાનદ્વારા ઉત્પન્ન થાય છે, તે **अनुमान प्रमाण** કહેવાય છે. અને આપ્તનાં વચનો શ્રવણ કરવાથી જે ચિત્તવૃત્તિ ઉત્પન્ન થાય છે, તે **શબ્દ प्रमाण** વા **आगम** કહેવાય છે. એ ત્રણ પ્રમાણો દ્વારા પુરુષને જે જ્ઞાન થાય છે, તે ફલપ્રમા કહેવાય છે. એવી રીતે પ્રમા પણ ચિત્તવૃત્તિરૂપ પ્રમાણોના ત્રણ પ્રકારને લીધે પ્રત્યક્ષપ્રમા, અનુમિતિપ્રમા અને શાબ્દી પ્રમા, એવા ભેદથી ત્રણ પ્રકારની છે.

ભાવાર્થ એ છે કે[1]–ચક્ષુ આદિ ઇંદ્રિયદ્વારા[2] ઘટાદિ બાહ્ય પદાર્થોથી ચિત્તનો વૃત્તિદ્વારા સંબંધ થાય છે તેથી થતી ઘટાદિ પદાર્થ રૂપ અમુક જાતિ–વિશિષ્ટ અને અમુક વ્યક્તિ–વિષયક 'આ ઘટ છે' એવા આકારવાળી ચિત્તની જે વૃત્તિ તે પ્રત્યક્ષ પ્રમાણ કહેવાય છે. અને ત્યાર પછી (**अहं घटं जानामि**[3]) 'હું ઘડો જાણું છું' એવા આકારવાળું વિષય સહિત ચિત્તવૃત્તિ સંબંધી પુરુષનિષ્ઠજ જ્ઞાન તે ફલપ્રમા કહેવાય છે. અહીં

–પ્રમા એટલે વસ્તુવિષયક યથાર્થ જ્ઞાન. એ જ્ઞાનને અનધિગત કહેવાથી સ્મૃતિ-જ્ઞાનના પ્રમાત્વનું વારણ થાય છે. કેમકે સ્મૃતિ પ્રથમ અન્ય જ્ઞાનની વિષયીભૂત વસ્તુવિષયક હોવાથી તે અનધિગત વિષયક નથી. વળી એ જ્ઞાનને અબાધિત કહેવાથી શુક્તિમાં (છીપમાં) ભ્રમથી જે રજત (રૂપા)નું જ્ઞાન થાય છે, તે ભ્રમજ્ઞાનના પ્રમાત્વનું વારણ કરે છે. કારણ કે એ જ્ઞાન, "આ રૂપું નથી" એવા, ઉત્તર કાળમાં થવાવાળા જ્ઞાનથી બાધિત છે. એટલા માટે તેનો વિષય બાધિત છે. ફલિતાર્થ એટલો છે કે, સ્મૃતિ અને ભ્રમથી ભિન્ન જે જ્ઞાન હોય છે, તે **प्रमा** કહેવાય છે.

૧–એવી રીતે સામાન્ય પ્રકારથી પ્રમા અને પ્રમાણનાં લક્ષણ કહી, હવે વિશેષરૂપથી પ્રત્યક્ષ વગેરે પ્રમાણના લક્ષણોનાં નિરૂપણને માટે 'ભાવાર્થ એ છે કે,' ઇત્યાદિ કહે છે.

૨–જેમ તળાવમાંથી પાણી ક્ષેત્રમાં લઈ જવાને માટે, ધોરીયા કરેલા હોય છે, તેમ ચિત્તવૃત્તિઓને બાહ્ય પદાર્થોમાં આવવાને ચક્ષુ વગેરે ધોરીયા-રૂપી દ્વાર છે.

૩–હું ઘટવિષયક જ્ઞાનવાળો છું, એ તેનો અર્થ છે.

એટલું પણ વિશેષ જાણી લેવું કે, સાંખ્ય-યોગ મતમાં પ્રકૃત પ્રકરણમાં પ્રમાણ, પ્રમા-પ્રમાણ, પ્રમા, પ્રમાતા અને સાક્ષી એવા ભેદથી પાંચ પદાર્થ મનાય છે. જેમ તળાવનું જળ નીક (ધોરીયા) દ્વારા ક્ષેત્રમાં પેસી ક્ષેત્રાકાર થઈ જાય છે; તેમ નેત્ર વગેરે ઇંદ્રિયોદ્વારા બાહ્ય વિષયોથી સંબદ્ધ થઈ તે તે આકારરૂપ પરિણામને પામેલા ચિત્તની 'આ ઘટ છે' એવા આકારવાળી જે ચિત્તવૃત્તિ[1] તે 'બૌદ્ધપ્રમા' કહેવાય છે. વિષયના સંબંધદ્વારા નેત્રાદિ ઇંદ્રિયો એ પ્રમાની જનક છે, તેથી તેઓ પ્રમાણ કહેવાય છે અને જે પૂર્વોક્ત ચિત્તવૃત્તિ છે, તે ઇંદ્રિયોનું ફળ અને પુરુષનિષ્ઠ જ્ઞાનરૂપ ફલ-પ્રમાનું કરણ હોવાથી 'પ્રમા-પ્રમાણ,' એ નામથી પણ ઓળખાય છે.[2] અને જે પુરુષનિષ્ઠ બોધ છે, તે 'કેવળ પ્રમા' જ કહેવાય છે. કેમકે તે ફળ હોવાથી કોઈનું કરણ નથી, અને જે બુદ્ધિ પ્રતિબિંબિત ચેતન, એ પ્રમાનું આશ્રય છે, તે 'પ્રમાતા' કહેવાય છે અને જે બુદ્ધિવૃત્તિથી ઉપહિત શુદ્ધ ચેતન છે, તે 'સાક્ષી' કહેવાય છે.

જો કે વિજ્ઞાન ભિક્ષુએ "**प्रमाता चेतनं शुद्धः**" એ વાકયથી શુદ્ધ ચેતનને પ્રમાતા કહેલું છે તે, "**असंगो ह्ययं पुरुषः**[3]" ઇત્યાદિ શ્રુતિ વિરુદ્ધ હોવાથી ત્યાજ્ય જાણવું. વળી શુદ્ધને પ્રમાતા કહેવું, એ યુક્તિથી પણ વિરુદ્ધ છે. કેમકે શુદ્ધ નામ નિખિલ ધર્મરહિતનું છે, અને પ્રમાતા નામ પ્રમારૂપ ધર્મ વિશિષ્ટનું છે, તેથી ધર્મરહિત ધર્મ વિશિષ્ટ છે. આવી રીતે કહેવું એ અવશ્ય યુક્તિ વિરુદ્ધ જ કહેવાય અને વળી ચિત્તમાં પ્રતિબિંબિત ચેતન જ પ્રમાનો આધાર હોવાથી પ્રમાતા છે, કાંઈ શુદ્ધ ચેતન નથી. વિજ્ઞાન ભિક્ષુ ચેતનને પ્રમાતા કહે છે, તે અયોગ્ય છે.

તાત્પર્ય એ છે કે, પ્રમારૂપ જે બોધ છે, તે પુરુષનો મુખ્ય ધર્મ નથી. કેમકે મુખ્ય ધર્મ માનવાથી '**साक्षी चेता केवलो निर्गुणश्च**'[4] ઇત્યાદિ વેદ

૧-અહીં ચિત્ત અને બુદ્ધિ બંને એકજ છે, એ વિસરી ન જવું.

૨-ઇંદ્રિયોની અપેક્ષાથી બુદ્ધિવૃત્તિની પ્રમા, અને ફલપ્રમારૂપ પુરુષ-નિષ્ઠ બોધની અપેક્ષાથી પ્રમાણ હોવાથી બૌદ્ધપ્રમા કે પ્રમા-પ્રમાણ, આ બન્ને તેનાં નામ છે.

૩-આ સર્વનો આત્મભૂત જે પુરુષ તે અસંગ છે, અર્થાત્ કોઈ ધર્મોની સાથે સંબદ્ધ ન હોવાથી નિર્ધર્મક છે.

૪-ચેતન પુરુષ નિર્ગુણ હોવાથી કેવળ સાક્ષી છે, એવો તેનો ભાવ છે.

વચન અસંગત થઈ જશે, પણ ચિત્તમાં પ્રતિબિંબિત એવો ચેતન પુરુષ ચિત્તથી ભિન્ન છતાં ઉપચાર બુદ્ધિથી (ગૌણ બુદ્ધિથી) તેનો પુરુષમાં પ્રયોગ કર્યો છે.

એટલા માટે "ज्ञानं नैवात्मनो धर्मो न गुणो वा कथंचन । ज्ञानस्वरूप एवाऽऽत्मा नित्यः सर्वगतः शिवः" (જ્ઞાનઆત્માનો ધર્મ વા ગુણ નથી, પણ આત્મા તો જ્ઞાનસ્વરૂપ જ છે) ઇત્યાદિ વાક્યોમાં શુદ્ધ પુરુષને સાક્ષી કહેલો છે અને વિજ્ઞાન ભિક્ષુએ પણ દ્વિતીય પાદના ૨૦મા સૂત્રના વ્યાખ્યાનમાં આરોપથી પ્રમાનો આધાર કહી, વાસ્તવિક રીતે પુરુષને બુદ્ધિનો સાક્ષી જ માન્યો છે.[1]

"વળી સાંખ્ય પ્રવચન ભાષ્યમાં પણ "पुरुषस्तु प्रमासाक्ष्येव न प्रमाता"[2] એ વાક્યથી પુરુષને પ્રમાનો સાક્ષી કહીને પ્રમાના આશ્રયત્વનો નિષેધ કર્યો છે. એવી રીતે શ્રુતિ, સ્મૃતિ, યુક્તિ અને સ્વોક્તિની સાથે વિરોધ હોવાથી પુરુષને પ્રમાતા કહેવામાં વિજ્ઞાન ભિક્ષુની ભૂલ જ છે, એમ સિદ્ધ થાય છે.

જો કે વિજ્ઞાનભિક્ષુએ પણ કહેલું છે કે, જો બુદ્ધિને જ પ્રમાતા માનવામાં આવે, તો પુરુષની સિદ્ધિ નહિ થાય! આ કથન પણ યોગ્ય નથી. કેમકે જેમ ચેતન વિના વ્યવહાર સિદ્ધ ન હોવાથી ચેતનભુત પ્રમાતા માની પુરુષની સિદ્ધિ માનવામાં આવે છે, તેમ સાક્ષીભૂત ચેતન વિના પણ વ્યવહાર સિદ્ધિના અભાવથી સાક્ષીરૂપવડે પણ પુરુષ સિદ્ધ થઈ શકે છે.[3] એટલે પૂર્વોક્ત વ્યવસ્થા જ ઠીક છે, એમ જાણી લેવું.

આ સ્થળે વિશેષ બીજું એ પણ જાણી લેવું કે, કપિલ મુનિએ "द्वयोरेकतरस्य वाऽप्यसन्निकृष्टार्थपरिच्छित्तिः प्रमा"[4] એ સૂત્રથી બુદ્ધિ અને

૧–'कल्पितं दर्शनकर्तृत्वं वस्तुतस्तु बुद्धेः साक्ष्येव पुरुषः' આ પ્રમાણે બીજા પાદના ૨૦મા સૂત્રમાં વિજ્ઞાનભિક્ષુનો લેખ છે અને તેમાં પુરુષમાં પ્રમા કહ્યો છે તે એક કલ્પના છે. પરંતુ સાક્ષીત્વ વાસ્તવિક છે, એ તેનો ભાવ છે.

૨–સાંખ્યના ૮૭મા સૂત્રના વ્યાખ્યાનમાં જુઓ.

૩–જો અમે કેવળ બુદ્ધિને પ્રમાતા માનીએ, તો એ કથન સંભવિત હોઈ શકે કે, "બુદ્ધિને પ્રમાતા માનવાથી પુરુષ સિદ્ધ થશે નહિ.' પણ તે તો અમે માનતા જ નથી. પરંતુ બુદ્ધિ પ્રતિબિંબિત ચેતનને પ્રમાતા માનીએ છીએ, ત્યારે પુરુષનો અભાવ શી રીતે સિદ્ધ થઈ શકે છે? એ પણ વિચારવાનું છે.

૪–અજ્ઞાત અર્થનું જે જ્ઞાન, તે પ્રમા છે. બુદ્ધિ અને પુરુષ એ બંનેનો આ પ્રમા ધર્મ છે, વા એક બુદ્ધિનો જ ધર્મ જાણવો, એવું સૂત્રનું તાત્પર્ય છે. આ સૂત્ર પ્રથમાધ્યાયમાં ૮૭ મું છે.

પુરુષ એ બંનેને જ પ્રમાના આધાર કહેલા છે, તેથી જ અમે પૂર્વે, પૌરુષેયપ્રમાની અપેક્ષાથી ચિત્તવૃત્તિને પ્રમાણ અને બૌદ્ધ પ્રમાની અપેક્ષાથી ચક્ષુ વગેરેને પ્રમાણ કહેલાં છે. વાસ્તવિક રીતે બે પ્રમા માનવાની કાંઈ આવશ્યકતા નથી, માટે જ એ સૂત્રના વ્યાખ્યાનમાં વેદવ્યાસજીએ ચિત્તવૃત્તિને પ્રમાણ અને પૌરુષેય બોધને પ્રમા કહેલી છે, કાંઈ ચિત્તવૃત્તિને પ્રમા કહેલી નથી. તેથી જ પૂર્વોક્ત સાંખ્યસૂત્રમાં '**एकतरस्य वा**' એવી રીતના અનિયમબોધક 'વા' શબ્દનો પ્રયોગ કર્યો છે અને વાચસ્પતિમિશ્રને પણ એ જ અભિમત છે. પરંપરાથી જ[1] પ્રમાકરણ હોવાથી ચક્ષુ વગેરેને પ્રમાણ કહેવાય છે, કાંઈ સાક્ષાત્ પ્રમાણ નહિ. સાક્ષાત્ પ્રમાણ તો ચિત્તની વૃત્તિ જ છે, એ તત્ત્વ છે.

એ પૂર્વ[2] વિચારથી એવું સિદ્ધ થયું કે-ઇંદ્રિયદ્વારા ઘટ વગેરે આકારરૂપ જે ચિત્તવૃત્તિ, તે પ્રત્યક્ષ પ્રમાણ, અને તજ્જન્ય જે પુરુષનિષ્ઠજ્ઞાન, તે પ્રત્યક્ષપ્રમાનું વાચ્ય છે, અને જે ચિત્તવૃત્તિ, સપક્ષોમાં વિદ્યમાન અને વિપક્ષોથી વ્યાવૃત્ત લિંગના જ્ઞાનદ્વારાએ પેદા થાય છે, તે **अनुमान प्रमाण** કહેવાય છે. અર્થાત્ જે વસ્તુ-વિશેષ, અજ્ઞાત હોવા છતાં કોઈ હેતુદ્વારા સામાન્યરૂપથી સિદ્ધ થાય છે, તે સાધ્ય કહેવાય છે અને તે સાધ્ય, જે સ્થાનમાં નિયમપૂર્વક વર્તે છે, તે સપક્ષ કહેવાય છે અને જે સ્થાનમાં કદાપિ સાધ્યની સત્તાનો સંભવ ન હોઈ શકે, તે વિપક્ષ કહેવાય છે. અને જેમાં સાધ્યની સિદ્ધિ કરાય છે, તેને પક્ષ કહે છે. જે દ્વારાએ પક્ષમાં સાધ્યની વિદ્યમાનતા પ્રતીત થાય છે, તે લિંગ વા હેતુ કહેવાય છે. જે દૃષ્ટાંતથી પક્ષમાં સાધ્યની સત્તાનો નિશ્ચય થાય છે, તે ઉદાહરણ કહેવાય છે.[3]

૧-ચિત્તવૃત્તિની વિષયાકારતા કરવામાં પરંપરા કારણ હોવાથી ચક્ષુ વગેરે પ્રમાણ છે. અર્થાત્ પ્રમાણનાં ઉપયોગી હોવાથી ઇંદ્રિયો પ્રમાણ છે, એ તેનો ભાવ છે.

૨-પ્રસંગે પ્રાપ્ત થયેલા વિચારને સમાપ્ત કરી હવે સારાર્થ કથનપૂર્વક અનુમાન વગેરે પ્રમાણોનાં લક્ષણ કહેવાનો આરંભ કરે છે, 'એ પૂર્વ' ઇત્યાદિથી.

૩-પર્વત વહ્નિવાળો છે, ધૂમ સંબદ્ધ હોવાથી પાકશાળાની પેઠે એ સ્થળમાં પર્વત પક્ષ છે. કેમકે તેમાં અજ્ઞાત રહેલા અગ્નિને સાધવો છે. એ પ્રમાણે વહ્નિ સાધ્ય છે અને ધૂમ હેતુ છે, અને પાકશાળા દૃષ્ટાંત છે. ચાલુ પ્રસંગમાં પાકશાળા સપક્ષ છે. કેમકે તેમાં સાધ્યભૂત વહ્નિનું રહેવું નિશ્ચિત છે; અને જળાશય (તળાવ વગેરે) વિપક્ષ છે, કેમકે તેમાં વહ્નિ રહેવાનો સંભવ નથી.

અહીં વળી પ્રયોગરચના એ છે:-ચંદ્ર, સૂર્ય, તારા વગેરે[1] ગમનશીલ છે. કેમકે જે દેશમાં તેઓ પૂર્વે સ્થિત હતા, તે દેશથી ભિન્ન દેશમાં પ્રતીત થાય છે. જે અન્યત્ર સ્થિત થઈ અન્યત્ર પ્રતીત થાય છે, તે અવશ્ય ગમનશીલ છે; કેમકે જે પુરુષ ગમનશીલ નથી, તે એક સ્થળે સ્થિત હોય ત્યારે અન્ય સ્થળે પ્રાપ્ત થતો નથી, એટલે બીજે સ્થળે જઈ શકતો નથી; જેમ વિંધ્યાદિ પર્વત. અહીં દેશાંતર પ્રાપ્તિરૂપ લિંગ સપક્ષભૂત પુરુષોમાં વિદ્યમાન છે; અને વિપક્ષભૂત પર્વત વગેરેથી વ્યાવૃત્ત છે. વળી દેશાંતર પ્રાપ્તિરૂપ લિંગના જ્ઞાનથી પેદા થયેલી પક્ષસ્વરૂપ સૂર્ય વગેરેમાં ગમનરૂપ જે સાધ્ય જ્ઞાનાકાર ચિત્તવૃત્તિ, તે અનુમાન પ્રમાણુ થયું અને તજ્જન્ય જે 'સૂર્ય વગેરે ગમનશીલ છે' આવા પ્રકારનું પુરુષનિષ્ઠ જે જ્ઞાન, તે 'અનુમિતિ પ્રમા'[2] થઈ. એ પ્રમાણે જે ચિત્તવૃત્તિ આપ્ત ઉચ્ચરિત વાક્યથી ઉદય પામે છે, તે **आगम प्रमाण** કહેવાય છે. અર્થાત્ જે શબ્દથી આપ્ત પુરુષ પોતાના દૃષ્ટ, શ્રુત અને અનુમિત પદાર્થોનો બીજા પુરુષોના ચિત્તમાં પોતાના સમાન જ્ઞાન પેદા કરવા સારુ ઉપદેશ કરે છે, તે શબ્દથી શ્રોતાની તજ્જન્ય તદર્થ વિષયક ચિત્તવૃત્તિ તેનો આગમ પ્રમાણુ વા શબ્દપ્રમાણુથી વ્યવહાર થાય છે અને તજ્જન્ય પુરુષનિષ્ઠ જે જ્ઞાન, તે 'શાબ્દી પ્રમા' કહેવાય છે.

તત્ત્વજ્ઞાન યુક્ત અને કારુણ્યયુક્ત તેમજ જોયા પ્રમાણે અને સાંભળ્યા પ્રમાણે પદાર્થનો કહેનારો જે પુરુષ હોય છે, તે આપ્ત કહેવાય છે. આમ કહેવાથી જે ભ્રમ, પ્રમાદ, વિપ્રલિપ્સા, કરણાપાટવ[3] વગેરે પુરુષના

–તેથી સપક્ષમાં વિદ્યમાન અને વિપક્ષમાં અવિદ્યમાન જે ધૂમરૂપ લિંગ છે. તેના જ્ઞાનથી 'જ્યાં ધૂમ ત્યાં વહ્નિ અવશ્ય હોય છે' એવી રીતના નિયમસ્મરણુ પ્રયુક્ત, પર્વતમાં જે વહ્નિ વિષયક ચિત્તવૃત્તિ થઈ, તે અનુમાન પ્રમાણુ કહેવાય છે.

૧–ભાષ્યકારે કહેલા અનુમાનપ્રયોગનું અત્ર પ્રદર્શન કરવામાં આવે છે. 'ચંદ્ર, સૂર્ય,' ઇત્યાદિથી.

૨–આ સ્થળમાં સૂર્ય વગેરે પક્ષ છે, કેમકે તેમાં ગમન સિદ્ધ કરવું છે. ગમન સાધ્ય છે, દેશાંતર પ્રાપ્તિલિંગ છે, કેમકે તે ગમનશીલ સપક્ષ પુરુષોમાં વિદ્યમાન છે, અને ગમનરહિત પર્વત વગેરે વિપક્ષોમાં અવિદ્યમાન છે. જેમકે પુરુષ એ અન્વયી ઉદાહરણુ છે. વિંધ્યપર્વત એ વ્યતિરેકી ઉદાહરણુ છે.

૩–કહેવા યોગ્ય પદાર્થના સંદેહને **ભ્રમ** કહે છે અને ચિત્તના ચાંચલ્યથી કહેવા યોગ્ય પદાર્થનો નિશ્ચય ન થવો, તેને **પ્રમાદ** કહે છે. અન્ય પ્રકારથી

દોષથી યુક્ત પુરુષ હોય છે, તે અનાપ્ત કહેવાય છે, અને તેનો ઉપદેશ પ્રમાણજનક ગણાતો નથી, એ અર્થ ફલિત થયો.

ભાવાર્થ એ છે કે-વેદ વિરુદ્ધવાદી અનાપ્ત ચાર્વાક વગેરેએ ઉચ્ચારણ કરેલા શબ્દોથી જે અર્થબોધ થાય છે, તે માત્ર બોધ છે, પણ કાંઈ પ્રમાણભૂત નથીજ અને મનુ વગેરે મહર્ષિઓના વચનથી જે બોધ થાય છે, તે પ્રમાણભૂત જાણવો; કેમકે તે આપ્તોક્ત અને વેદમૂલક છે. એટલા માટે જ "यः कश्चित् कस्यचिद्धर्मो मनुना परिकीर्तितः । स सर्वोऽभिहितो वेदे सर्वज्ञानमयो हि सः"[1] આ શ્લોકથી ભૃગુમુનિએ મનુપ્રોક્ત ધર્મને વેદમૂલક કહેલો છે.

જો કે મનુનાં વચનો વેદોક્ત અર્થનાં પ્રતિપાદક છે. તથા પુનરુક્તદોષ અને અનુવાદ દોષથી ગ્રસ્ત છે, છતાં પણ તેની પ્રમાણતા ઘટી શકતી નથી; કેમકે અપૂર્વ અર્થના પ્રતિપાદક વાક્યને જ મીમાંસકો પ્રમાણ માને છે, બીજાને પ્રમાણ માનતા નથી. તોપણ વેદમાં કોઈ શાખામાં અષ્ટકા વગેરે કર્મોની ઉત્પત્તિ અને કોઈ શાખામાં દેવતા તથા કોઈ શાખામાં મંત્ર તથા વિનિયોગ લખેલા છે. મનુ ભગવાને આ ભિન્ન ભિન્ન સ્થળે વર્ણવેલા ધર્મોનો લોકોપકારાર્થે સુખબોધ થવા માટે એકત્ર સંગ્રહ કરેલો છે, તેથી એકત્ર સંગ્રહરૂપ અપૂર્વ અર્થના પ્રતિપાદક હોવાથી અને વેદને અનુકૂલ હોવાથી મનુવચન પ્રામાણિક જ[2] છે.

-જાણેલા પદાર્થનું અન્ય પ્રકારે પ્રતિપાદન કરવું, તેનું નામ **વિપ્રલિપ્સા** છે. તેને **પ્રતારણા** પણ કહે છે, અન્ય વર્ણના ઉચ્ચારણની ઇચ્છા હોવા છતાં પણ ઇંદ્રિયો દૂષિત હોવાથી અન્ય વર્ણનું ઉચ્ચારણ થઈ જવું તે **કરણાપાટવ** છે.

૧-જે કંઈ વર્ણ અને આશ્રમના ધર્મ મનુએ પ્રતિપાદન કર્યાં છે, તે સઘળા વેદમાં લખ્યા છે. કેમકે મનુ સઘળા વેદના જ્ઞાતા હોવાથી સર્વજ્ઞ છે.

૨-કોઈ એમ પણ કહે છે કે-'વેદની ઘણીક શાખાઓ ઉચ્છિન્ન થઈ ગઈ છે, અને તેમાં સ્માર્તધર્મનું પ્રતિપાદન કર્યું છે. મનુ ભગવાન્ સર્વજ્ઞ હોવાથી તે બધી શાખાને જાણતા હતા, તેથી એ શાખાઓના ધર્મોને જ મનુએ નિબદ્ધ કર્યાં છે, એટલે પુનરુક્તિ દોષયુક્ત અને વેદ વિરુદ્ધ ન હોવાથી મનુવચન પ્રામાણિક છે.' પરંતુ એ મત મનુના ભાષ્યકાર મેધાતિથિ ભટ્ટ અયુક્ત-અયોગ્ય માને છે તેથી માન્ય નથી. કારણ કે વેદની જેટલી શાખાઓ વેદમાં લખી છે, તેથી અધિક શાખાઓ માનીને તેઓનો ઉચ્છેદ માનવામાં કાંઈ પ્રમાણ નથી.

આ સઘળા વિષયોનું આ સ્થળે વિસ્તારપૂર્વક વર્ણન કરવું ઉપયોગી નથી, કેમકે આ પ્રમેયશાસ્ત્ર છે, તેથી આ વિષયમાં આટલું જ બસ છે. ॥ ૭ ॥

આવી રીતે પ્રમાણસંજ્ઞક વૃત્તિના વિભાગનું પ્રતિપાદન કરીને હવે ક્રમપ્રાપ્ત દ્વિતીય વિપર્યયવૃત્તિનું લક્ષણ કહે છે.

सू—विपर्ययो मिथ्याज्ञानमतद्रूपप्रतिष्ठम् ॥ ८ ॥

સૂત્રાર્થ–વસ્તુના યથાર્થ સ્વરૂપમાં જેની સ્થિતિ નથી એવું જે મિથ્યાજ્ઞાન તે વિપર્યય કહેવાય છે.

(मिथ्याज्ञानम्) દોરડીમાં દોરડીનું નહિ પણ સર્પનું જે જ્ઞાન થાય છે તે બાધિતજ્ઞાન છે, ને તે (विपर्ययः) વિપર્યયજ્ઞાન અથવા મિથ્યાજ્ઞાન છે. કેમકે તે જ્ઞાન (अतद्रूपप्रतिष्ठम्) વસ્તુના યથાર્થ રૂપમાં રહેતું નથી.

અર્થાત્ દોરડીમાં સર્પનું મિથ્યા જ્ઞાન વા એક ચંદ્રમાં બે ચંદ્રરૂપ જે મિથ્યાજ્ઞાન[1] થાય છે, તે વિપર્યય કહેવાય છે. કેમકે તે પોતાના રૂપમાં સ્થિત નથી. જે વસ્તુના યથાર્થરૂપથી કોઈ પણ દિવસ પ્રચ્યુત ન હોઈ વસ્તુના યથાર્થ રૂપને જ ભાસમાન કરે છે, તે તદ્રૂપપ્રતિષ્ઠ (યથાર્થ રૂપમાં) હોવાથી સત્યજ્ઞાન છે. જ્યાં વસ્તુ તો એક છે, અને ચિત્તવૃત્તિ અન્ય પ્રકારની છે, ત્યાં ચિત્તની વૃત્તિ તે વસ્તુના યથાર્થરૂપમાં સ્થિત હોતી નથી, માટે તે અતદ્રૂપપ્રતિષ્ઠિત હોય છે, તેથી તેનું નામ વિપર્યયજ્ઞાન કહેવાય છે. ભાવ એ છે કે, જેમ અગ્નિના સંયોગથી પીગળેલી કલાઈ વા ચાંદી વગેરે ધાતુ કોઈ મુષમાં ઢાળી દેવાથી મુષના જેવો આકાર ધારણ કરે છે; તેમ ચિત્ત પણ મુષસ્થાને પ્રાપ્ત થયેલી બહારની વસ્તુથી સંબદ્ધ થઈ સંયુક્ત વસ્તુના સમાનાકારે પરિણામ પામીને તદાકાર થઈ જાય છે. ચિત્તનું આ વિષયાકાર પરિણામજ વૃત્તિ વા જ્ઞાન કહેવાય છે અને તે પ્રમાણને નામે ઓળખાય છે.

જો મુષ અન્ય પ્રકારની હોય, પરંતુ કોઈ દોષથી ઢાળેલી ધાતુમય વસ્તુમાં કાંઈ વિલક્ષણતા થઈ જાય, તો તે વસ્તુનો આકાર દોષવાળો હોવાથી અને સ્વરૂપમાં બરાબર બનેલી નહિ હોવાથી તે દોષવાળી જ કહેવાય છે. એ પ્રમાણે જ જો વસ્તુનો આકાર કાંઈ બીજો જ હોય અને ચિત્તની વૃત્તિ કોઈ દોષથી બીજા આકારની થઈ જાય, તો તે ચિત્તનો

૧–મિથ્યાજ્ઞાન એ લક્ષણ છે અને વિપર્યય એ લક્ષ્ય છે. મિથ્યાજ્ઞાન શામાટે છે? તેમાં હેતુ દર્શાવવા માટે अतद्रूपप्रतिष्ठम् એ પ્રમાણે કહેલું છે.

આકાર પણ વસ્તુના જેવા આકારનો ન હોવાથી સ્વરૂપમાં અપ્રતિષ્ઠિત થયો ગણાય છે અને તેથી ઉત્પન્ન થતું જ્ઞાન મિથ્યા, વા દુષ્ટ વા ભ્રાંતિજ્ઞાન કહેવાય છે. જેમકે એક ચંદ્ર હોય છતાં બે ચંદ્ર દેખાય અને દોરીમાં સર્પનું જ્ઞાન થાય એ મિથ્યા છે, તેમ વસ્તુથી વિલક્ષણ ચિત્તના આકારને જ વિપર્યય જ્ઞાન કહે છે.[૧] અને વળી[૨] જે જ્ઞાન, નિજરૂપમાં પ્રતિષ્ઠિત નથી તે જ્ઞાન અતદ્રૂપાપ્રતિષ્ઠ કહેવાય છે. અર્થાત્, ચંદ્રમાં જે એક ચંદ્રનું જ્ઞાન અને સર્પમાં જે સર્પજ્ઞાન, તે નિજરૂપમાં પ્રતિષ્ઠિત હોવાથી પ્રમાણજ્ઞાન છે; અને એક ચંદ્રમાં બે ચંદ્રનું જ્ઞાન તથા દોરડીમાં સર્પનું જ્ઞાન, તે ભવિષ્યત્ કાળમાં થવાવાળા યથાર્થ જ્ઞાનથી બાધિત હોવાને લીધે નિજરૂપમાં અપ્રતિષ્ઠિત છે. કેમકે ઉત્તરકાલિક જ્ઞાને, પોતાના રૂપથી પ્રચ્યુત કરીને તેની પ્રતિષ્ઠાનો ભંગ કર્યો છે.

સર્પ વિષયવાળું સર્પજ્ઞાન, કોઈ જ્ઞાનથી બાધિત થતું નથી તેથી સ્વરૂપ પ્રતિષ્ઠિત થઈને પ્રમાણ કહેવાય છે; અને રજ્જુ [૩]વિષયવાળું સર્પજ્ઞાન, ઉત્તર કાળમાં થનારા યથાર્થ જ્ઞાનથી બાધિત હોવાથી સ્વરૂપમાં અપ્રતિષ્ઠિત થવાથી વિપર્યયજ્ઞાન કહેવાય છે.

જે જ્ઞાન ઉત્તર જ્ઞાનથી બાધિત થઈ જાય છે, તે જ્ઞાન પ્રમાણ ગણાતું નથી. જે જ્ઞાન યથાર્થ વસ્તુના વિષયવડે અબાધિત હોય છે, તે જ પ્રમાણ કહેવાય છે. તેથી જ સત્ય પદાર્થવિષયક એક ચંદ્રના જ્ઞાનથી મિથ્યા થયેલા બે ચંદ્રના જ્ઞાનનો બાધ થઈ જાય છે.

૧–વિષયના સમાન આકારથી પરિણામ પામેલી ચિત્તવૃતિને પ્રમાણ કહે છે અને વિષયથી વિલક્ષણ આકારથી પરિણામ પામેલી ચિત્તવૃત્તિને વિપર્યય કહે છે, એટલો ઉપરનો ભાષ્યનો સાર છે.

૨–'अतद्रूपा प्रतिष्ठम्' આ પદમાં તદ્રૂપથી વસ્તુનું તેના રૂપમાં રહેવું એવો અર્થ કરી વસ્તુના સ્વરૂપમાં અસ્થિત (નહિ રહેલા) જ્ઞાનને વિપર્યય કહેલું છે. હવે તદ્રૂપથી જ્ઞાનનું નિજરૂપ ગ્રહણ કરી અર્થાંતર કહે છે–'અને વળી' ઇત્યાદિથી.

૩–જેવી રીતે વિપર્યય જ્ઞાન, પોતાના સ્વરૂપમાં અપ્રતિષ્ઠિત છે, તેવી રીતે સંશય પણ ઉત્તરકાલિક જ્ઞાનથી બાધિત થવાને લીધે પોતાના રૂપમાં અપ્રતિષ્ઠિત છે. એવી રીતે સંશય પણ વિપર્યયનો અંતર્ગત થાય છે, તેને લીધે ન્યૂનતા ન જાણવી. જેમ કે 'અશ્રાદ્ધભોજી' એ શબ્દમાં શરુઆતના નિષેધાર્થક અકારનો, ભોજીની સાથે સંબંધ છે, તેથી શ્રાદ્ધમાં જે ભોજન નથી કરતો, એવો અર્થ કરવો યુક્ત છે. તેવી જ રીતે અહીં અકારના, प्रतिष्ठ શબ્દ સાથે અન્વયવડે પોતાના રૂપમાં જે પ્રતિષ્ઠિત હોય, તે तद्रूप–अप्रतिष्ठित જાણવું.

વિપર્યય સંજ્ઞાવાળી ચિત્તની જે વૃત્તિ છે, તે જ અવિદ્યા કહેવાય છે અને તે વિપર્યય જ્ઞાન, અવિદ્યા, અસ્મિતા, રાગ, દ્વેષ અને અભિનિવેશ, એવા ભેદથી પાંચ પ્રકારનું છે. તેને જ પાંચ ક્લેશ પણ કહે છે.[1]

તે પાંચ ક્લેશોને જ "**तमो मोहो महामोहस्तामिस्रो ह्यंधसंज्ञितः । अविद्या पंचपर्वैषा प्रादुर्भूता महात्मनः**" આ વિષ્ણુપુરાણના વાક્યમાં, તમ, મોહ, મહામોહ, તામિસ્ર, અંધતામિસ્ર, એ પાંચ યોગ્ય નામોથી નિર્દેશ કર્યો છે.

આ પાંચે ક્લેશોનાં અનુક્રમથી તમ વગેરે જે નામાંતર છે, તે અવાંતર ભેદથી બાસઠ પ્રકારનાં છે. એ પ્રમાણે સાંખ્ય સ્મૃતિમાં પણ કહેલું છે કે–

भेदस्तमसोऽष्टविधो मोहस्य च दशविधो महामोहः ।
तामिस्रोऽष्टादशधा तथा भवत्यंधतामिस्रः ॥ ४८ ॥

અર્થાત્–પ્રકૃતિ, મહત્તત્ત્વ, અહંકાર અને શબ્દાદિ પંચ તન્માત્રારૂપ અષ્ટ પ્રકૃતિ અથવા વિકૃતિરૂપ અનાત્મ પદાર્થોમાં જે આત્મબુદ્ધિરૂપ અજ્ઞાન, તે તમ કહેવાય છે. એ અવિદ્યા સંજ્ઞાવાળું તમ, આઠ બાબતમાં રહેલું હોવાથી આઠ પ્રકારનું છે.

આ પ્રમાણે ગૌણફળરૂપ અણિમાદિ ઐશ્વર્યોમાં જે પરમપુરુષાર્થ રૂપ જ્ઞાન છે, તે અસ્મિતા સંજ્ઞાવાળો મોહ કહેવાય છે. એ પણ અણિમાદિની[2] આઠ સંખ્યા હોવાથી આઠ પ્રકારનો છે. એ પ્રમાણે આઠ પ્રકારના ઐશ્વર્ય સંપાદનથી જે શબ્દ, સ્પર્શ, રૂપ, રસ, ગંધ સંજ્ઞાવાળા લૌકિક અને દિવ્ય વિષયોમાં અનુરાગ થાય છે, તે રાગ સંજ્ઞાવાળો મહામોહ કહેવાય છે. તે પણ દશ વિષય સંબંધી[3] હોવાથી દશ પ્રકારનો છે. એ પ્રમાણે એ વિષયોના ભોગ અર્થે પ્રવૃત્ત થતાં, કોઈ પ્રતિબંધકના બળથી એ વિષયોનો ભોગ લાભ ન થવાથી પ્રતિબંધકને

૧–એવા કથનથી જે આશંકા ઉત્પન્ન થવાની સંભાવના હતી કે, "અવિદ્યાદિ પંચ ક્લેશો પણ ચિત્તવૃત્તિ હોવાથી ચિત્તની વૃત્તિઓ પાંચ જ છે, એવી સૂત્રકારની ઉક્તિ ન્યૂનતાદોષગ્રસ્ત હોવાથી અસંગત છે." તે શંકા પણ ઉચ્છિન્ન થઈ ગઈ. કેમકે એ સઘળી, વિપર્યય વૃત્તિમાં સમાઈ જાય છે. ક્લેશોનું લક્ષણ દ્વિતીય પાદના તૃતીયાદિ સૂત્રોમાં કહેવાશે.

૨–અણિમાદિ ઐશ્વર્યોનું નિરૂપણ તૃતીય પાદના ૪૫ મા સૂત્રમાં કહેવાશે.

૩–આ લોકના અને દિવ્ય, એટલે દેવલોકમાં હોવાવાળા પાંચ પાંચ શબ્દાદિ વિષય મળીને દશ વિષય છે.

માટે જે દ્વેષ થાય છે, તે તામિસ્ર કહેવાય છે. તે પણ દશ પ્રકારના વિષયોની અપ્રાપ્તિરૂપ હોવાથી અઢાર પ્રકારનો છે. એવી રીતે આઠ પ્રકારના ઐશ્વર્યની પ્રાપ્તિ થયા છતાં અને દશ પ્રકારના વિષયોની પણ પ્રાપ્તિ થયા છતાં પણ એ સઘળું કલ્પને અંતે નાશ થશે એવો જે અભિનિવેશ (ચિત્તનો ભય) તે અંધતામિસ્ર કહેવાય છે. તે પણ અષ્ટ ઐશ્વર્ય અને દશ પ્રકારના વિષયને લઇને થાય છે તેથી અઢાર પ્રકારનો છે. આ સઘળાં અજ્ઞાનમૂલક અને દુઃખજનક હોવાથી અજ્ઞાન, અવિદ્યા, વિપર્યયજ્ઞાન, ભ્રાંતિજ્ઞાન, ક્લેશ વગેરે નામોથી શાસ્ત્રમાં તેનો વ્યવહાર કરવામાં આવ્યો છે. ॥ ૮ ॥

હવે ક્રમે કરીને પ્રાપ્ત થયેલી ત્રીજી વિકલ્પવૃત્તિનું લક્ષણ કહે છે.

सू–शब्दज्ञानाऽनुपाती वस्तुशून्यो विकल्पः ॥ ९ ॥

સૂત્રાર્થ–શબ્દ સાંભળ્યા પછી વસ્તુથી શૂન્ય જે જ્ઞાનરૂપ ચિત્તવૃત્તિ તે વિકલ્પ કહેવાય છે.

(वस्तुशून्यः) જે જ્ઞાન વસ્તુથી શૂન્ય છે, અર્થાત્ જે જ્ઞાનનો વિષય મિથ્યા છે, કિંતુ (शब्दज्ञानाऽनुपाती) શબ્દજ્ઞાનના પ્રભાવથી જ અનુપતનવાળો છે અર્થાત્, જે મિથ્યા પદાર્થના આકારથી ઉત્પન્ન થાય છે તે, 'विकल्पः' વિકલ્પ કહેવાય છે.

અર્થાત્, શબ્દજન્યજ્ઞાન થયા પછી થનારું મિથ્યા પદાર્થ વિષયક ચિત્તનું જે પરિણામ તે વિકલ્પ કહેવાય છે.

જેમકે (राहोः शिरः) 'રાહુનું માથું' આ શબ્દથી જ્ઞાન થયા પછી સર્વ લોકો જાણે છે કે, રાહુનું માથું છે; પરંતુ શાસ્ત્રદૃષ્ટિથી વિચાર કરીએ તો માથાનું નામ જ રાહુ છે; દેવદત્તનું વસ્ત્ર છે, એ વાક્યમાં વસ્ત્રભિન્ન અને દેવદત્તભિન્ન માલુમ પડે છે, તેમ અહીં નથી. માટે આ બોધ એટલે જ્ઞાન વસ્તુશૂન્ય થયો. અર્થાત્, વસ્તુ વિનાનો મિથ્યા વિષય થયો તેથી તેને વિકલ્પ કહે છે.

આવી રીતે (चैतन्यं पुरुषस्य स्वरूपं) એ જ્ઞાન પણ વિકલ્પાત્મક જ છે. કેમકે ચૈતન્ય પુરુષનું સ્વરૂપ છે, એવો આ વાક્યનો અર્થ છે. પરંતુ જેમ દેવદત્તથી વસ્ત્ર ભિન્ન છે, તેમ ચૈતન્ય કાંઈ પુરુષથી ભિન્ન નથી. કેમકે પુરુષ જ ચેતન છે, તેથી આ જ્ઞાન પણ વસ્તુશૂન્ય હોવાથી વિકલ્પ છે.

आशंका–જો શબ્દજ્ઞાન પછી જ વિકલ્પાત્મકવૃત્તિ ઉદય પામતી હોય, તો તેનો શબ્દપ્રમાણમાં અંતર્ભાવ થાય છે, કેમકે જે ચિત્તની વૃત્તિ

શબ્દ જ્ઞાનાનુપાતી[1] છે, તે જ શબ્દ પ્રમાણરૂપે કહેવાય છે. અને જો વસ્તુશૂન્ય ચિત્તવૃત્તિનું નામ વિકલ્પ છે, તો તેનો અંતર્ભાવ વિપર્યયમાં થાય છે. કેમકે જે વસ્તુશૂન્યવૃત્તિ હોય છે, તે વિપર્યય કહેવાય છે. માટે બંનેથી ભિન્ન બીજી એક નવીન વિકલ્પવૃત્તિ માનવાનું ફળ શું છે!

समाधान–જો કે શબ્દજ્ઞાન થયા પછી વિકલ્પવૃત્તિ ઉદય પામે છે, તો પણ તે પ્રમાણના નામથી કહેવાતી નથી. કારણ કે જો એથી જ્ઞાનના વિષયનો બાધ થતો ન હોત, તો અમે તેને શબ્દપ્રમાણ સહેલથી કહી શકત; પરંતુ તેમ થતું નથી. કારણ કે વિચાર કરવાથી આ પૂર્વોક્ત જ્ઞાન મિથ્યા વસ્તુ સંબંધી હોવાથી બાધ પામે છે, તેથી તે પ્રમાણ થઈ શકતું નથી. આ પ્રકારે જો કદાચ સઘળા માણસોને બોધ થતો ન હોત, અને ઉત્તરકાલિક જ્ઞાનથી બાધ પણ થઈ જતો હોત તો તેને વિપર્યય જ્ઞાન કહી શકાત, પણ તેમ તો થતું નથી. કેમકે, '**चैत्रस्य वस्त्रम**' ચૈત્રનું કપડું એ શબ્દના પ્રયોગથી ચૈત્ર અને કપડાનો પરસ્પર ભેદ હોવાથી વિશેષ્ય વિશેષણ ભાવ પ્રતીત થાય છે; તે જ પ્રમાણે "**चैतन्यं पुरुषस्य स्वरूपम**" ચૈતન્ય, પુરુષનું સ્વરૂપ છે, એ વાક્યથી પણ વિશેષ્ય વિશેષણ[2] ભાવ પ્રતીત થાય છે, એથી વિપર્યય જ્ઞાન પણ નથી. ચૈતન્ય અને પુરુષ એક છે, અને તેમ હોવાથી વિશેષ્ય વિશેષણભાવ અસંભવિત છે, ત્યારે એ જ્ઞાન વસ્તુશૂન્ય હોવાથી મિથ્યાજ્ઞાન સમાન પ્રતીત થાય છે, પણ વાસ્તવિક રીતે ત મિથ્યાજ્ઞાન નથી.

માટે જ સૂત્રકારે વિકલ્પવૃત્તિને પ્રમાણ અને વિપર્યય જ્ઞાનથી ભિન્ન જ કહી છે. જેમાં સર્વ લોકોને બાધબુદ્ધિ (ભ્રમ) ઉદય પામે છે, તે વિપર્યયજ્ઞાન, અને અતિ નિપુણ શાસ્ત્રવેત્તાઓને વિચારદ્વારા જેમાં બાધજ્ઞાન થાય છે, તે વિકલ્પજ્ઞાન કહેવાય છે, આવો[3] વિપર્યય અને વિકલ્પ વચ્ચે ભેદ છે.

૧–अनुपाती શબ્દજ્ઞાનની પછી હોવાવાળું.

૨–**चैत्रस्य वस्त्रम्** એમાં ચૈત્ર વિશેષણ અને વસ્ત્ર વિશેષ્ય છે તેમ અહીં પણ પુરુષ વિશેષણ અને ચૈતન્ય વિશેષ્ય છે.

૩–એ આશયથી જ પૂર્વ સૂત્રમાં વાચસ્પતિ મિશ્રે મિથ્યાજ્ઞાન શબ્દવડે સર્વ જનોના અનુભવમાં આવતા બાધ (અભાવ) જ્ઞાનનું ગ્રહણ કરેલું છે. જો સામાન્ય રીતે મિથ્યાજ્ઞાનનું ગ્રહણ થતું હોત, તો વિકલ્પજ્ઞાનમાં પણ વિપર્યયજ્ઞાનનું લક્ષણ વિદ્યમાન હોવાથી વિપર્યય લક્ષણ અતિવ્યાપ્તિયુક્ત થઈ જાત. વિજ્ઞાનભિક્ષુએ તો વિપર્યયલક્ષણમાં, વિકલ્પભિન્ન, એટલું બીજું વિશેષણ આપીને અતિવ્યાપ્તિદોષનું વારણ કર્યું છે.

એ વિકલ્પવૃત્તિ જ કોઈ સ્થળે અભિન્ન પદાર્થોનો ભેદ જણાવે છે. જેમકે '**राहोः शिरः**' રાહુનું માથું. અને કોઈ સ્થળે ભિન્ન પદાર્થોની અભિન્નતા જણાવે છે. જેમકે '**अयःपिंडो दहति**' લોઢાનો ગોળો બાળે છે.[1]

એવી રીતે '**प्रतिषिद्धवस्तुधर्मा निष्क्रियः पुरुषः**' એ વાક્ય પણ વિકલ્પ-જ્ઞાન જ છે. કેમકે "સઘળા પદાર્થોમાં રહેલા ધર્મોથી રહિત અને ક્રિયાના અભાવવાળો" પુરુષ છે, એવો તે વાક્યનો અર્થ છે, તે આ સાંખ્ય યોગમતથી વિરુદ્ધ છે. કેમકે જો અમે એક સ્વતંત્ર અભાવ પદાર્થનો સ્વીકાર કરીએ તો એમ કહી શકાય, કે ક્રિયાના અભાવવાળો પુરુષ છે; પણ અભાવરૂપી પદાર્થનો અમારા (સાંખ્યયોગ) મતમાં સ્વીકાર કરવામાં આવતો નથી. કેમકે જે આધારમાં લોક અભાવ માને છે, તે આધાર-ને જ અમે અભાવસ્વરૂપ માનીએ છીએ, અને વળી અભાવરૂપ અન્ય પદાર્થના અભાવથી વિશેષ્ય વિશેષણ ભાવનો અહીં અસંભવ છતાં પણ જે પૂર્વોક્ત વ્યવહાર થાય છે, તેને વિકલ્પજ્ઞાનાત્મક જ જાણવો.

તાત્પર્ય એ છે–જેમ નૈયાયિકાદિ મતમાં આ ભૂતળમાં ઘટનો અભાવ છે. ત્યાં ભૂતળને આધાર અને અભાવને પદાર્થાંતર માનીને ઘટાભાવને આધેય માને છે, તેમ સાંખ્ય યોગમતાનુયાયી વિદ્વાનો માનતા નથી. પણ ભૂતળનું જે કૈવલ્ય લક્ષણ (એકલાપણારૂપ) પરિણામ વિશેષ છે, તે જ ઘટાભાવ છે, કાંઈ અધિકરણભૂત ભૂતળથી તે ભિન્ન નથી, એમ યોગવાળા માને છે. 'આ વનમાં[2] આમ્રનાં વૃક્ષ છે.' આ દૃષ્ટાંતમાં જેમ વન અને વૃક્ષો એક જ છે છતાં પણ આધાર આધેય ભાવ પ્રતીત થાય છે; તેમ ભૂતળ અને ઘટાભાવ એક હોવા છતાં પણ ભૂતળમાં ઘટાભાવ છે, એવી રીતનો આધાર આધેય ભાવ જાણી લેવો.[3]

એ પ્રમાણે 'બાણ સ્થિત હતું, બાણ સ્થિત છે, અને બાણ સ્થિત

૧–अयःपिंड એ લોઢાના ગોળાનું નામ છે. આહીં દાહ કરવાનો યદ્યપિ અગ્નિનો ધર્મ છે, તથાપિ અભેદથી લોકો લોઢાના પિંડને દાહ કરનાર કહે છે.

૨–જો ભૂતળ અને ઘટાભાવ એ બંને એક જ છે, તો પછી ભૂતળમાં ઘટાભાવ છે, એ આધાર આધેયભાવ કેમ હોય ? કેમકે ભિન્ન ભિન્ન પદાર્થોનો જ આધાર આધેયભાવ હોઈ શકે છે. એ આશંકાનું વારણ કરે છે. "આ વનમાં" ઇત્યાદિથી.

૩–અહીં વિચારાન્તર કઠિન જાણી છોડી દીધો છે. જેને એ વિચાર બાબતમાં જોવું હોય, તેણે અમારા (સ્વામીશ્રી આત્મસ્વરૂપજીના) કરેલા યોગ-તત્ત્વસમીક્ષાપ્રકાશમાં જોવું.

થશે.'[1] ઇત્યાદિ વ્યવહાર પણ વિકલ્પાત્મક જ છે. કેમકે અહીં બાણમાં ગતિ નિવૃત્તિના અનુકૂળ યત્નનો[2] અભાવ હોવાથી બાણમાં કર્તૃત્વ અને તે કર્ત્તામાં વર્તમાનકાળાદિના ત્રણ પ્રત્યયના અર્થનો અસંભવ છે. કેવળ ગતિ નિવૃત્તિ માત્ર, स्था ધાતુનો અર્થ પ્રતીત થાય છે, એટલે એ પણ વસ્તુશૂન્ય હોવાથી વિકલ્પાત્મક જ છે.

એ પ્રમાણે 'अनुत्पत्तिधर्मा पुरुषः' એ વાકયથી 'ઉત્પત્તિરૂપ ધર્મના અભાવવાળો પુરુષ છે.' એવો જે અર્થબોધ થાય છે તે પણ વિકલ્પાત્મક જ છે. કેમકે અભાવરૂપ બીજા પદાર્થોને નહિ સ્વીકારવાથી પુરુષ વ્યતિરિક્ત ક્રિયાના અભાવનો અહીં સંભવ નથી, અને વળી વસ્તુશૂન્ય હોવાથી પણ જે શબ્દ જ્ઞાનના પ્રભાવથી 'અનુત્પત્તિ ધર્મવાળો પુરુષ છે,' એવો જે બોધ છે, તે પણ વિકલ્પાત્મક જ છે. એ પ્રમાણે अहं (હું) એ વ્યવહાર પણ વિકલ્પાત્મક જ છે. કેમકે અહીં ચેતન અને અહંકારનું પરસ્પર ભિન્નત્વ હોવા છતાં પણ બંનેનું અભેદજ્ઞાન પ્રતીત થાય છે. એથી ભિન્ન વિષયક અભિન્નાત્મક હોવાથી તે પણ વિકલ્પ જ છે, અને જે જે ચિત્તવૃત્તિ વસ્તુના સ્વરૂપની અપેક્ષા વગર કેવળ શબ્દજ્ઞાનના પ્રભાવથી જ મિથ્યા પદાર્થનું જ્ઞાન ઉત્પન્ન કરે છે, તે સર્વને વિકલ્પાત્મક જ[3] જાણવી. ॥૯॥

હવે અવસર પ્રાપ્ત નિદ્રાવૃત્તિનું લક્ષણ કહે છે.

सू—अभावप्रत्ययाऽऽलंबनावृत्तिर्निद्रा ॥ १० ॥

સૂત્રાર્થ–અભાવ વિષયક જ્ઞાનનો આશ્રય કરવાવાળી ચિત્તવૃત્તિનું નામ નિદ્રા છે.

૧–યથાક્રમ ભૂત, વર્ત્તમાન, ભવિષ્યકાળનું એ ઉદાહરણ છે.

૨–યત્નગુણ ચેતનનો છે અને બાણ જડ છે, તેથી બાણમાં યત્નનો અભાવ છે.

૩–બીજા દર્શનકારો વિકલ્પાત્મક વૃત્તિને નથી માનતા, તેઓના ભ્રમના ઉન્મૂલન સારુ અનેક ઉદાહરણો દેખાડ્યાં છે, એમ જાણવું.

૪–પૂર્વસૂત્રોની પેઠે આ સૂત્રમાં પણ વૃત્તિનિરૂપણરૂપી પ્રકરણના બળથી વૃત્તિ શબ્દનો લાભ થઈ જવાથી આ સૂત્રમાં વૃત્તિ શબ્દ નિરર્થક લાગશે. તોપણ જેમ નૈયાયિકાદિ બીજા લોકો નિદ્રાને વૃત્તિરૂપ ન માનીને કેવળ જ્ઞાનનો અભાવ માને છે, તેમ યોગસૂત્રકાર માનતા નથી. પરંતુ નિદ્રા પણ ચિત્તની એક વૃત્તિ છે, તે જણાવવા સારુ જ સૂત્રમાં વૃત્તિ શબ્દ વાપર્યો છે, ને એ બાબત આ સૂત્રના વિવેચનમાં આગળ સ્પષ્ટ થઈ જશે.

સર્વ પદાર્થોના અભાવવિષયક જે પ્રત્યય (જ્ઞાન), તેનું આલંબન (આશ્રય) કરવાવાળી જે ચિત્તવૃત્તિ, તેનું નામ નિદ્રા. અથવા[1] તો જાગ્રત સ્વપ્ન વૃત્તિઓના અભાવનું કારણ જે બુદ્ધિનિષ્ઠ સત્ત્વગુણને આચ્છાદક તમોગુણ અથવા તો અજ્ઞાન તે ચિત્તવૃત્તિના આલંબન (વિષય) છે, તેનું નામ નિદ્રા કહેવાય છે. આ ચિત્તવૃત્તિનું જ નામાંતર સુષુપ્તિ અવસ્થા છે. એ વૃત્તિવાળા પુરુષને જ સુષુપ્ત અથવા અંતઃપ્રજ્ઞ કહે છે.

ભાવાર્થ એ છે કે-જે સમયે તમોગુણ બુદ્ધિનિષ્ઠ સત્વગુણને અને રજોગુણને તિરસ્કૃત કરીને પ્રકટ થાય છે અને સર્વ ઇંદ્રિયોને ઢાંકી દે છે, તે સમયમાં દ્વારરૂપ ઇંદ્રિયોના અભાવથી બુદ્ધિનું વિષયાકાર પરિણામ ન હોવાથી જે અજ્ઞાનરૂપથી પરિણામ પામેલો તમોગુણ હોય છે, તેને વિષય કરવાવાળી તમોગુણ પ્રધાન ચિત્તની વૃત્તિ નિદ્રા કહેવાય છે.

આ વૃત્તિ જ સુષુપ્તિમાં થવાવાળાં સ્વરૂપભૂત સુખને અને અજ્ઞાનનો અનુભવ કરે છે. અહીં એટલું વિશેષ જાણવાનું છે કે, યોગમતમાં સુષુપ્તિ અવસ્થાને ચિત્તની વૃત્તિ માનવાથી ચિત્તવૃત્તિ જ સુષુપ્તિકાળના સુખને અને અજ્ઞાનને જાણે છે; વેદાંત મતમાં અંતઃકરણનો અવિદ્યામાં લય માનવામાં આવે છે તેથી સુષુપ્તિમાં ચિત્તવૃત્તિનો અભાવ હોય છે, તેથી ચિત્તમાં રહેનારું વાસનાવાળું ને અજ્ઞાનોપાધિક ચેતન જ સુષુપ્તિકાળનાં સુખને અને અજ્ઞાનને જાણે છે. એટલા માટે સુષુપ્તિ કાળના સુખાદિકોને સાક્ષિભાસ્ય (સાક્ષીથી જાણવામાં આવે એવાં) કહેલાં છે.

જો કે[2] અહીં વિજ્ઞાનભિક્ષુએ શ્રુતિઓનું તાત્પર્ય ન જાણી એમ કહેલું છે કે-"જેમ જાગ્રત અને સ્વપ્ન અવસ્થા, ચિત્તની વૃત્તિ છે, તેમ સુષુપ્તિ પણ ચિત્તની જ વૃત્તિ છે, કાંઈ અવિદ્યાની નથી. અને સુષુપ્તિકાળમાં થનારું અજ્ઞાન તથા સુખ, સાક્ષી ભાસ્ય છે, એવું શ્રી શંકરાચાર્યનું કથન અસંગત છે. કેમકે સાક્ષી અપરિણામી હોવાથી તેમાં સંસ્કારોના અભાવથી સ્મરણનો સંભવ હોઈ શકતો નથી."[3] વિજ્ઞાનભિક્ષુની આ ઉક્તિ,

---

૧–પ્રત્યય પદને જ્ઞાનાર્થક માની સૂત્રના અર્થનું નિરૂપણ કરી હવે વાચસ્પતિમિશ્રના મતથી પ્રત્યય પદનો કારણરૂપ અર્થ માની સ્વામિશ્રી વ્યાખ્યાનાંતર કરે છે, 'અથવા' ઇત્યાદિથી.

૨–હવે સ્વામીજી, પ્રસંગાનુસાર યોગવાર્તિકની સમાલોચના કરે છે. "જો કે" ઇત્યાદિથી.

૩–નિદ્રામાંથી ઉઠેલા પુરુષને સ્મરણ થાય છે કે-'મે સુખથી શયન કર્યું

યુક્ત નથી, કેમકે જો સુષુપ્તિકાળમાં ચિત્તની ક્રિયા વિદ્યમાન હોય, તો એવો સંભવ હોઈ શકે, કે સુષુપ્તિમાં ચિત્ત જ અજ્ઞાનાદિનો પ્રકાશ કરે છે; પરંતુ તેમ સંભવતું નથી. કેમકે સુષુપ્તિકાળમાં ચિત્તનો લય હોવાથી, ત્યાં ચિત્ત નિષ્ક્રિય થઈ જાય છે. એથી જ **"सुषुप्तिकाले सकले विलीने तमोऽभिभूतः सुखरूपमेति[1]" "ज्ञानानामुपसंहारे बुद्धेः कारणता स्थितिः, वटबीजे वटस्येव सुषुप्तिरभिधीयते[2]"** વગેરે શ્રુતિ સ્મૃતિઓમાં સુષુપ્તિ અવસ્થામાં અંતઃકરણ, અવ્યાકૃત અવિદ્યારૂપ રહે છે, આવું પ્રતિપાદન કરેલું છે.

વળી બૃહદારણ્યક ઉપનિષદ્‌ના ચતુર્થ અધ્યાયના અજાતશત્રુ ગાર્ગ્યના સંવાદમાં સુષુપ્તિ અવસ્થાનિરૂપક પ્રકરણ પણ **"गृहीतं वाक् चक्षुः गृहीतं श्रोत्रं गृहीतं मनः"** ઇત્યાદિ શ્રુતિથી સુષુપ્તિ અવસ્થામાં વાક્, નેત્ર, શ્રોત્ર વગેરેની સાથેજ અંતઃકરણનો અજ્ઞાનમાં લય કહેલો છે.

ગૌડપાદાચાર્યે પણ **"लीयते हि सुषुप्तौ तन्निगृहीतं न लीयते"** ઇત્યાદિ વચનથી ચિત્તના લય અને નિગ્રહના ભેદથી સુષુપ્તિથી સમાધિનો ભેદ નિરૂપણ કર્યો છે. "સુષુપ્તિકાળમાં ચિત્ત, સ્વકારણરૂપ અજ્ઞાનમાં લય પામે છે અને સમાધિકાળમાં ચિત્ત નિગૃહીત થાય છે. (અર્થાત્ સુષુપ્તિમાં તમોગુણ પ્રધાન અવિદ્યામાં ચિત્તનો લય થાય છે અને સમાધિમાં અવિદ્યા વગેરે અનર્થથી રહિત, પુરુષના નિજરૂપમાં ચિત્ત સ્થિતિ કરે છે. આવો સુષુપ્તિ અને સમાધિ વચ્ચે ભેદ છે, એ જ ગૌડપાદાચાર્યના વાક્યનો અર્થ છે.)

વળી **"सता सोम्य तदा संपन्नो भवति"** એ છાંદોગ્ય શ્રુતિમાં અને **"प्राज्ञेनात्मना संपरिष्वक्तो न बाह्यं किंचन वेद नांतरम्"** એ બૃહદારણ્યક શ્રુતિમાં

અને કાંઈ પણ જાણ્યું નહિ.' એવું સ્મરણ, ત્યારે થઈ શકે, કે જ્યારે સુષુપ્તિકાળમાં સુખાદિનું જ્ઞાન અને તજ્જન્ય સંસ્કાર હોય. પણ સાક્ષી, પરિણામશૂન્ય હોવાથી તેમાં જ્ઞાન વા સંસ્કારરૂપ પરિણામનો સંભવ નથી. એથી સુખાદિક, સાક્ષિભાસ્ય નથી, પણ ચિત્તવૃત્તિભાસ્ય છે, એવો વિજ્ઞાનભિક્ષુનો કહેવાનો આશય છે.

૧–સુષુપ્તિકાળમાં સઘળી બાહ્યાંતર ઇંદ્રિયોનો લય હોવાથી કેવળ તમોગુણ પ્રધાન અજ્ઞાનયુક્ત થયેલો પુરુષ, પોતાના સુખરૂપમાં સ્થિત થઈ રહે છે, એવો એ કૈવલ્યશ્રુતિનો અર્થ છે.

૨–જેવી રીતે વડના બીજમાં અવ્યક્તરૂપે વડનું વૃક્ષ રહેલું છે, તેવી રીતે સઘળા બાહ્યજ્ઞાનના અભાવપૂર્વક, જે બુદ્ધિ વગેરેનું અજ્ઞાનમાં અવ્યક્તરૂપે રહેવું, તે 'સુષુપ્તિ' શબ્દવડે કહેવાય છે, એવો એનો અર્થ છે.

પણ ચિત્તોપાધિક જીવનું નિજરૂપમાં અવસ્થાન કહીને ઉપાધિભૂત ચિત્તનો લય જણાવેલો છે.

(ઉદ્દાલક મુનિ પોતાના પુત્ર શ્વેતકેતુને કહે છે કે, હે સોમ્ય-પ્રિયદર્શન પુત્ર! જે સમયમાં ગાઢ નિદ્રા હોવાથી પુરુષ સુષુપ્ત થઈ જાય છે, તે સમયે જીવ, સદ્‌રૂપ બ્રહ્મની સાથે મળી જાય છે. અર્થાત્ અંતઃકરણનો લય થવાથી અંતઃકરણના સંસર્ગ જીવભાવને છોડીને પોતાના સ્વરૂપમાં સ્થિતિ કરે છે, આવો એ છાંદોગ્ય શ્રુતિનો અર્થ છે. જેવી રીતે કામુક પુરુષ પ્રિયરમણીના આલિંગનથી, વિષય સુખમાં મગ્ન થઈ, બહારના અને અંદરના કોઈ પણ વિષયોને જાણતો નથી, તેવી રીતે સુષુપ્તિકાળમાં જીવ પણ પોતાના પ્રજ્ઞાનઘન સ્વરૂપના આલિંગનથી પોતાના સ્વરૂપભૂત આનંદમાં મગ્ન થઈ, બહારના અને અંદરના પદાર્થોને જાણતો નથી. અર્થાત્ ઈંદ્રિયોનો લય થવાથી બાહ્ય જાગ્રત પદાર્થોનું જ્ઞાન અને ચિત્તનો લય હોવાથી સ્વાપ્નાદિક પદાર્થોનું જ્ઞાન હોતું નથી, પણ સ્વરૂપ સુખમાંજ જીવ મગ્ન રહે છે. એ બૃહદારણ્યક શ્રુતિનો અર્થ છે).[1]

સુષુપ્તિમાં ચિત્તાદિનો લય હોવાથી જ પુરાણોમાં તેને નિત્યપ્રલય કહેલો છે. વિજ્ઞાનભિક્ષુએ પણ "**समाधिसुषुप्तिमोक्षेषु ब्रह्मरूपता**[2]" એ સાંખ્યસૂત્રના વ્યાખ્યાનમાં સુષુપ્તિમાં બુદ્ધિનો લય માનેલો છે, અને વળી શ્રુતિ, સ્મૃતિ અને સ્વોક્તિની સાથે વિરોધ હોવાથી અહીં પણ ચિત્તના લયનો અભાવ કહેવામાં વિજ્ઞાનભિક્ષુનો મોટો પ્રમાદ (ગફલત) થયેલો છે.

જો કે [3]સૂત્રકારે સુષુપ્તિને ચિત્તની વૃત્તિ કહી છે તેનું તાત્પર્ય એ છે કે–યોગમતમાં સત્કાર્યવાદનો અંગીકાર કરેલો હોવાથી સૂક્ષ્મરૂપે કારણમાં રહેવું તેને લય કહે છે. સ્થૂલચિત્તનો સુષુપ્તિમાં અભાવ છે

૧–આ શ્રુતિઓમાં શુદ્ધ બ્રહ્મમાં જ જીવના લયનું નિરૂપણ કરેલું છે, તોપણ અજ્ઞાનયુક્ત ચેતનમાં જ લય જાણવો; નહિ તો મુક્તિ અને સુષુપ્તિ, સમાન થવાથી સુષુપ્તોની પેઠે મુક્ત પુરુષોનો પુનર્જન્મ, અથવા મુક્તિની પેઠે સુષુપ્તિથી પુનરુત્થાન અભાવ, એવા બે દોષનો પ્રસંગ આવશે. વધારે હકીકત, ગૌડપાદીય આગમપ્રકરણના ભાષ્યમાં જોવી.

૨–અધ્યાય ૫ સૂત્ર ૧૧૬.

૩–જો સુષુપ્તિમાં ચિત્તનો લય માનતા હો, તો સૂત્રકારે સુષુપ્તિને ચિત્તની વૃત્તિ કેમ કહી? એ શંકાના વારણ માટે સ્વામીજી, સૂત્રકારના તાત્પર્યનું નિરૂપણ કરે છે. "જો કે" ઇત્યાદિ કહીને.

તોપણ કારણભૂત અવિદ્યારૂપથી તે વિદ્યમાન જ છે. તેથી જ કારણની અવસ્થામાં પ્રાપ્ત થયેલી ચિત્તની વૃત્તિ હોવાથી સૂત્રકારે સુષુપ્તિને ચિત્તની વૃત્તિ કહી છે, કાંઈ સાક્ષાત્ કહી નથી.

અથવા તો જેવી રીતે નિરોધ નામના અસંપ્રજ્ઞાતમાં ચિત્તનો લય થાય છે તોપણ નિરોધને ચિત્તનો ધર્મ કહી શકાય છે, તેવી રીતે સુષુપ્તિમાં ચિત્તનો લય હોવા છતાં પણ સુષુપ્તિને ચિત્તની વૃત્તિ કહેલી છે. અર્થાત્ ચિત્તનો વિકાસ હોય છે ત્યારે પુરુષ પ્રબુદ્ધ કહેવાય છે અને ચિત્તનો સંકોચ હોય છે ત્યારે પુરુષ સુષુપ્ત કહેવાય છે. માટે ચિત્તના સદ્ભાવ અસદ્ભાવને લઈને જ ચિત્તની જાગ્રદાદિ અવસ્થા કહેવાય છે. તે પ્રમાણે સુષુપ્તિમાં ચિત્ત ન હોવાથી નિરોધની પેઠે સુષુપ્તિ પણ ચિત્તની વૃત્તિ જાણવી.

અથવા કારણભૂત અવિદ્યાપદવાચ્ય પ્રકૃતિ અને કાર્યભૂત ચિત્તને એક માની સુષુપ્તિને ચિત્તની વૃત્તિ કહી છે. કાર્ય કારણને અભેદ માનીને જ કોઈ સ્થળમાં પ્રધાન પુરુષના અવિવેકને અને કોઈ સ્થળમાં બુદ્ધિ પુરુષના અવિવેકને આ શાસ્ત્રમાં બંધનો હેતુ[1] માન્યો છે.

વિજ્ઞાનભિક્ષુએ પણ સાંખ્યના ૫૮ મા સૂત્રના વ્યાખ્યાનમાં સ્થૂલ અને સૂક્ષ્મ એવી બે પ્રકારની બુદ્ધિ માનીને (જ્યાં બુદ્ધિનો અવિવેકથી ૫ ... શય છે; ત્યાં પણ કારણાવસ્થાને પામેલી સૂક્ષ્મ બુદ્ધિનું ગ્રહણ કરીને પ્રકૃતિને જ ગ્રહણ કરવી.) એ પ્રમાણે કાર્ય કારણનો અભિન્ન નિર્દેશ માન્યો છે.[2]

ઉપર એમ કહેલું હતું કે-"સાક્ષી અપરિણામી હોવાથી તેનું ભાસકત્વ (પ્રકાશકત્વ) કેવી રીતે બને?" આ શંકા પણ શાંકર મતના અજ્ઞાનથી જ છે. કેમકે વેદાંતી, કેવળ ચેતનને ભાસક માનતા હોત તો જ્ઞાનરૂપ ક્રિયાનો આધાર હોવાથી ચેતનને પરિણામી કહેતે, પણ તેમ માનતા નથી. કેમકે અવિદ્યા વૃત્તિદ્વારા જ ચેતનને વેદાંતી ભાસક માને છે, તે

૧–દ્વિતીય પાદના ૧૫ મા સૂત્રમાં ભાષ્યકારે પ્રધાનપુરુષના સંયોગને બંધ કારણ કહેલું છે, અને ૧૭ મા સૂત્રમાં બુદ્ધિપુરુષના સંયોગને બંધનો હેતુ કહેલો છે. એ પ્રમાણે બીજે ઘણે સ્થળે છે.

૨–એ પ્રમાણે શ્રુતિ અને સ્મૃતિની સાથે વિરોધ ન આવવાથી પૂર્વોક્ત યુક્તિવાળી, મારી વ્યવસ્થા જ ઠીક માનવી એવો સ્વામીજીનો બોલવાનો ભાવાર્થ છે.

પ્રમાણે સાક્ષાત્ ક્રિયાનો આધાર ન હોવાથી પુરુષ અપરિણામી જ છે, કાંઈ ભાસક હોવાથી તે પરિણામી[1] થઈ શકતો નથી.

જો કોઈ એમ કહે કે, "અવિદ્યાની વૃત્તિને દ્વાર માનવાથી નિદ્રા સાક્ષિભાસ્ય કેમ કહી શકાય ?" આ શંકા પણ શાંકર મતના અજ્ઞાનથી જ કહેવામાં આવે છે, કેમકે અવિદ્યાની વૃત્તિ વિના જ ચેતન જેનો પ્રકાશ કરે, એનું નામ કાંઈ સાક્ષિભાસ્ય નથી; પણ ઇંદ્રિય અનુમાન વગેરે પ્રમાણ વિના કેવળ વૃત્તિ માત્રથી જ જેનો પ્રકાશ કરે છે, તે સાક્ષિભાસ્ય કહેવાય છે. તેટલા માટે જ સાક્ષિભાસ્ય સ્થળમાં પદ્મપાદાચાર્યે (अहं अहं) ઇત્યાકાર અંતઃકરણની વૃત્તિ માની છે. એ પ્રમાણે સર્વજ્ઞ મુનિએ પણ પ્રાતિભાષિક (મિથ્યા રજત જ્ઞાન) સ્થળમાં રજતાકારને અવિદ્યાની વૃત્તિ માની છે.

આ પ્રસંગાનુસાર વિચારથી એ સિદ્ધ થયું કે, અજ્ઞાનનો તથા સુખનો અનુભવ કરનારી ચિત્તની કારણાવસ્થાપન્ન જે સૂક્ષ્મ વૃત્તિ છે, તે નિદ્રાપદની વાચ્ય છે.

आशंका–જેમ નૈયાયિકાદિ સુષુપ્તિ અવસ્થામાં સર્વ જ્ઞાનનો અભાવ માને છે, તેમ તમે પણ નિરોધની પેઠે વૃત્તિઓનો અભાવ જ સુષુપ્તિમાં કેમ નથી માનતા ?

समाधान–જો સુષુપ્તિમાં સર્વ વૃત્તિઓનો અભાવ માનીશું તો નિદ્રામાંથી ઉઠેલા જાગ્રત થયેલા પુરુષને સ્મરણ થાય છે કે "મેં સુખે .ન કર્યું અને કાંઈ જાણ્યું નહિ" તે સ્મરણ ઉત્પન્ન થાશે નહિ, કેમકે એવો નિયમ છે કે, જેનો કાંઈ સંસ્કાર અંતઃકરણમાં સ્થિત રહે છે, તે જ પદાર્થનું પુરુષને સ્મરણ થાય છે, બીજાનું સ્મરણ થતું નથી, અને સંસ્કાર, જ્ઞાન વગર ઉત્પન્ન થઈ શકતો નથી, તો પ્રબુદ્ધ પુરુષમાં રહેલા સ્મરણ જ્ઞાનદ્વારા એવું અનુમાન થાય છે કે, સુષુપ્તિકાળમાં સુખ અને જ્ઞાનાભાવવાળું તેને જ્ઞાન હતું. તે જ્ઞાન, કારણાવસ્થાપન્ન સૂક્ષ્મચિત્તની વૃત્તિ વા અવિદ્યાનું વૃત્તિસ્વરૂપ છે,[2] કેમકે અન્ય જ્ઞાનનો ત્યાં સંભવ નથી. તે પ્રમાણે સુખાદિ આકારવૃત્તિની વિદ્યમાનતાથી ત્યાં વૃત્તિનો અભાવ માનવો અયુક્ત છે. આ ઠેકાણે

૧–અને સુખાદિ જ્ઞાનજન્ય સંસ્કાર અવિદ્યાનિષ્ઠ હોવાથી પુરુષ અપરિણામી છે, એ સિદ્ધ થયું.

૨–અહીં એટલું વિશેષ છે કે, સુષુપ્તિમાં તે જ્ઞાન, ચિત્તવાસનાથી વાસિત અજ્ઞાનની વૃત્તિ છે, અને જાગ્રતમાં તે, ચિત્તરૂપથી પરિણામ પામેલી અજ્ઞાનની વૃત્તિ છે.

એટલું પણ વિશેષ જાણી લેવું, કે નિદ્રામાં સત્ત્વગુણના લેશ સહિત તમોગુણનો જે પ્રચાર હોય છે, તે નિદ્રામાંથી ઉઠેલા પુરુષને જ–સુખથી હું સુતો હતો, મારું મન પણ પ્રસન્ન છે, અને મારી પ્રજ્ઞા પણ સ્વચ્છ છે–એવી રીતનું જ્ઞાન થાય છે; અને જે નિદ્રામાં રજોગુણના લેશ સહિત તમોગુણનો પ્રચાર હોય છે, તે નિદ્રામાંથી ઉઠેલા પુરુષનું–દુ:ખપૂર્વક હું સુતો હતો, મારું મન પણ અકર્મણ્ય (ઢીલું) છે, કેમકે તે સ્થિર નથી પણ નિત્ય ભ્રમણ કરી રહેલું છે–એવી રીતનું જ્ઞાન હોય છે; અને નિદ્રામાં કેવળ તમોગુણની જ પ્રબળતા હોય છે, એ નિદ્રામાંથી ઉઠેલા પુરુષનું–હું ખૂબ ગાઢ નિદ્રામાં મૂઢ થઈને સુતો હતો, મારું શરીર ભારે છે, અને મારું ચિત્ત પણ થાકી ગયું છે, આળસયુક્ત છે, કેમકે બાંધેલા ચોરના જેવું સ્તબ્ધ બની ગયું છે–એવી રીતનું જ્ઞાન હોય છે. જો સુષુપ્તિકાળના સુખાદિક વિષયોનો અનુભવ માનવામાં આવે નહિ, તો પ્રબુદ્ધ પુરુષનું આ ત્રણ પ્રકારનું સ્મરણ અયોગ્ય થઈ પડે.

અર્થાત્ આ ત્રણ પ્રકારનું જ્ઞાન, પ્રત્યક્ષ નથી તો પણ સ્મૃતિરૂપ છે. તે સ્મૃતિ, અજ્ઞાત વિષયની થઈ શકતી નથી. માટેજ નિદ્રાને વૃત્તિનો અભાવ ન માની વૃત્તિ વિશેષ જ માનવી એ ઉચિત છે.

ઉપરના વિચારથી નૈયાયિકોનો આ ભ્રમ હતો કે–"સુષુપ્તિમાં જ્ઞાન સાધન ઇંદ્રિયોના અભાવથી અને પ્રબોધકાળમાં સ્મરણ ન હોવાથી સુષુપ્તિમાં સઘળા જ્ઞાનનો અભાવ હોય છે." તે પણ ઉચ્છન્ન થયો. કારણ કે પૂર્વોકત પ્રકારથી એ બંને હેતુ અસિદ્ધ છે.[1]

आशंका–જો કે પ્રમાણાદિ વૃત્તિઓ જ વિક્ષેપજનક હોવાથી યોગની વિરોધિની છે, કાંઈ નિદ્રાવૃત્તિ યોગની વિરોધિની નથી. કેમકે નિદ્રા તો એક પ્રકારની એકાગ્રતા છે તેથી તે, યોગની પ્રતિપક્ષી નથી.

समाधान–ના, તમારું એ પ્રમાણે માનવું ભૂલભરેલું છે, કારણ કે તમોગુણ પ્રધાનથી નિદ્રા પણ સબીજ નિર્બીજ સમાધિની પ્રતિપક્ષી છે, તેથી બીજી વૃત્તિઓની પેઠે તે પણ નિરોધ કરવા લાયક જ છે. એટલા માટે જ નિરોધ કરવા લાયક વૃત્તિઓમાં સૂત્રકારે તેની પણ ગણના કરી છે.

ગૌડપાદાચાર્યે પણ "**उपायेन निगृह्णीयाद्विक्षिप्तं कामभोगयोः। सुप्रसन्नं लये**

૧–સુષુપ્તિમાં અવિદ્યાની વા સૂક્ષ્મ ચિત્તની વૃત્તિ માનવાથી, જ્ઞાન સાધનનો અભાવરૂપ હેતુ અસિદ્ધ છે અને સ્મરણ સદ્ભાવથી સ્મરણ અભાવરૂપ હેતુ અસિદ્ધ છે.

चैव यथा कामो लयस्तथा" ઇત્યાદિ વચનોથી નિદ્રાવૃત્તિનો નિગ્રહ યોગીએ કરવો જાઇએ, એમ ઉપદેશ આપ્યો છે.

વિષયભોગમાં પ્રવૃત્તિદ્વારા વિક્ષિપ્ત થયેલા ચિત્તનો અને શ્રમના અભાવથી નિદ્રા પામેલા પ્રસન્નચિત્તનો અભ્યાસ વગેરે ઉપાયથી નિગ્રહ કરવો ઉચિત છે. કેમકે જેવું વિક્ષિપ્ત ચિત્ત, અનર્થનો હેતુ છે, તેમ લયથી પ્રસન્નતા પામેલું ચિત્ત પણ અનર્થ પેદા કરે છે. એ ગૌડપાદીય વાક્યનો અર્થ[1] છે. ॥ ૧૦ ॥

હવે ક્રમપ્રાપ્ત સ્મૃતિ વૃત્તિનું લક્ષણ કહે છે.

सू–अनुभूतविषयाऽसम्प्रमोषः स्मृतिः ॥ ११ ॥

સૂત્રાર્થ–અનુભવેલા વિષયોનું જ્ઞાન સાચવી રાખનાર વૃત્તિનું નામ સ્મૃતિ છે.

(**अनुभूत विषय**) પ્રથમ કોઈ જ્ઞાનથી અનુભૂત થયેલો જે વિષય, તેનું ફરીથી (**असंप्रमोष**) ચિત્તમાં આરોહપૂર્વક તન્માત્ર વિષયક જે જ્ઞાન, તે સ્મૃતિ કહેવાય છે.

અર્થાત્, પ્રત્યક્ષાદિ પ્રમાણદ્વારા અનુભૂત (અનુભવ કરેલાં) વિષયનું જે ફરીથી ઉદ્બોધક સમીપપણાથી સંસ્કારદ્વારા ચિત્તમાં જે સ્ફુરણ, અથવા ચિત્તનું જે પરિણામ તેને સ્મૃતિ કહે છે.

તાત્પર્ય એ છે કે-જ્યારે કોઈ વસ્તુ દૃષ્ટ અથવા શ્રુત થાય ત્યારે અવશ્ય જ એક પ્રકારનો ચિત્તમાં તદાકાર સંસ્કાર અંકુરિત થઈ જાય છે. પછી જ્યારે કોઈ સમયે ઉદ્બોધક[2] સામગ્રી ઉપસ્થિત હોવાથી તે ચિત્તમાં રહેવાવાળા સંસ્કાર પ્રફુલ્લિત થઈ જાય છે, ત્યારે તે જાણેલા પદાર્થના આકારથી ચિત્તને રંજન કરીને ચિત્તને તદાકાર જ કરી દે છે. આ જ્ઞાત પદાર્થવિષયક ચિત્તનું જે તદાકાર પરિણામ, તે જ સ્મૃતિ વા સ્મરણ કહેવાય છે.

ચિત્તમાં અનેક પ્રકારના સંસ્કાર વિદ્યમાન હોય છે, તોપણ જેની

૧–સુષુપ્તિમાં સબીજ અજ્ઞાનયુક્ત ચેતનમાં ચિત્ત લીન થાય છે અને સમાધિમાં શુદ્ધ નિર્બીજ બ્રહ્મરૂપમાં અવસ્થિત થાય છે, માટે લયથી નિવૃત્ત કરીને શુદ્ધ બ્રહ્મસ્વરૂપમાં સ્થિતિ સંપાદન કરવી, એ જ યોગીનું પરમ કર્તવ્ય છે.

૨–માતાપિતાના સ્મરણમાં રાગ (પ્રીતિ) ઉદ્બોધક સામગ્રી છે, અને શત્રુવિષયક સ્મરણમાં દ્વેષ, ઉદ્બોધક સામગ્રી છે, તથા ભણેલું યાદ આવવામાં અભ્યાસ એ ઉદ્બોધક સામગ્રી છે, એવી રીતે બીજું પણ તર્કવિતર્કથી જાણી લેવું.

ઉદ્બોધક સામગ્રી પાસે તૈયાર હોય છે, તે જ સંસ્કાર, સ્મરણને પેદા કરે છે, બીજો કોઈ સંસ્કાર, સ્મરણને પેદા કરતો નથી. તે ઉદ્બોધક સામગ્રી કોઈ સ્થળે ચિત્તની એકાગ્રતા, કોઈ સ્થળે અભ્યાસ, કોઈ જગાએ સહચાર જ્ઞાનાદિ[1] હોય છે, અને કોઈ સ્થળે એકલો સ્નેહ જ ઉદ્બોધક સામગ્રી હોય છે. દાખલા તરીકે–તે મારી માતા–એવું સ્મરણ સ્નેહથી થાય છે.

અનુભવ અને સ્મૃતિની વચ્ચે એટલો જ ભેદ છે કે–અનુભવ અજ્ઞાત વસ્તુવિષયક હોય છે અને સ્મૃતિ જ્ઞાતવસ્તુ વિષયક હોય છે. કેમકે સ્મૃતિનો એવો નિયમ છે કે, જેટલો વિષય અનુભવે પ્રકાશિત કર્યો હોય, એટલા વિષયથી અધિક વિષયને તે પ્રકાશિત નથી કરતી. જો તે અધિક વિષયને પ્રકાશિત કરે તો તે પણ અજ્ઞાત વિષયને પ્રકાશિત કરવાથી અનુભવ જ થઈ જશે. તેટલા માટે સૂત્રકારે **"असंप्रमोष"** એ પદ આપ્યું છે.

અહીં **मुष्=स्तेये** એ ધાતુથી **संप्रमोष** શબ્દ નિષ્પન્ન હોવાથી સંપ્રમોષનો અર્થ ચોરી એવો છે. અને અસંપ્રમોષનું નામ તસ્કરતાના અભાવનું છે. જેમ લોકમાં પુત્ર, પોતાના પિતાની વસ્તુ સિવાય બીજા કોઇની વસ્તુનું ગ્રહણ કરે તેથી તે ચોર કહેવાય છે, પણ પોતાના પિતાની ચીજનું ગ્રહણ કરવાથી તે ચોર કહેવાતો નથી; તેમ સ્મરણ જ્ઞાન પણ પોતાના પિતારૂપ[2] અનુભવથી પ્રકાશિત જે પદાર્થ છે, તેથી અન્ય કોઈ વિષયનો પ્રકાશ કરવાથી જ સંપ્રમોષ (ચોરી)વાળો કહેવાશે; કાંઈ અનુભવ પ્રકાશિત વિષયનો પ્રકાશ કરવાથી (સંપ્રમોષ) ચોરીવાળો કહેવાશે નહિ. તે સ્મરણજ્ઞાન, અનુભૂત વિષયથી અધિક વિષયનો પ્રકાશ કરતું નથી તેથી તે સંપ્રમોષથી રહિત છે. આ અનુભૂત વિષયથી અધિક વિષયનો પ્રકાશ ન કરવો, તે જ સ્મૃતિમાં અસંપ્રમોષ છે.

પણ અહીં એટલું વિશેષ જાણી લેવું કે–અસંપ્રમોષ પદથી અધિક

૧–જેમ કોઈ પુરુષે પૂર્વે રથ સહિત સારથિ દીઠો હોય, અને પછી કેવળ સારથિ જ દૃષ્ટિગોચર થાય, તો તે સારથિનું જ્ઞાન જ ઉદ્બોધક થઈ તેને રથનું સ્મરણ કરાવી દે છે, તે સહચારજ્ઞાન કહેવાય છે. ઉદ્બોધક સામગ્રીની સંખ્યા અને સંજ્ઞા, ન્યાયદર્શનમાં બતાવેલી છે. જેને જોવું હોય તેણે સ્વામીજીનિર્મિત ન્યાયદર્શનપ્રકાશના ત્રીજા અધ્યાયમાં બીજા આહ્નિકના ૪૪ મા સૂત્રના વિવરણમાં જોવું.

૨–સ્મરણજ્ઞાન સંસ્કારદ્વારા અનુભવજન્ય હોવાથી અનુભવનો પુત્ર જ છે. માટે અનુભવને પિતા કહેલ છે.

વિષયનું ગ્રહણ ન કરવું એવો જ અર્થ થાય છે, પણ કાંઈ ન્યૂન વિષયનું ગ્રહણ ન કરવું, એવા અર્થનો લાભ થતો નથી અને વળી જ્યાં (તે મારી માતા) એવી રીતનું સ્મરણ ન હોઈ કેવળ (હાય મારી મા) એવી રીતનું પ્રમુષ્ટતત્તાક[1] સ્મરણ થાય છે, ત્યાં પણ લક્ષણ સમન્વય થયો. કારણ કે ત્યાં પણ તત્તારૂપ "તે" એ અંશનો સંપ્રમોષ હોવાથી, (અગર જો કે અનુભવથી એ ન્યૂન વિષયક છે,) તથાપિ અધિક વિષયનું ગ્રહણ ન કરવાથી અહીં પણ અસંપ્રમોષ વિદ્યમાન જ છે.

વિજ્ઞાનભિક્ષુએ એ લક્ષણ સમન્વયને ન જાણીને પ્રમુષ્ટતત્તાક સ્મરણને અનુભવ માનેલો છે, તે તેની અદાર્શનિકતા (શાસ્ત્રઅનભિજ્ઞતા)નું ચિહ્ન છે. કારણ કે કોઈ પણ દાર્શનિક, પ્રમુષ્ટતત્તાક સ્મરણને અનુભવ માનતો નથી.

आशंका–ચિત્ત જે સ્મરણ કરે છે, તે પ્રત્યયમાત્ર (જ્ઞાનમાત્ર)નું જ સ્મરણ કરે છે? વા ગ્રાહ્યમાત્ર (વિષયમાત્ર)નું સ્મરણ કરે છે? અથવા ગ્રાહ્ય–ગ્રહણ (વિષય અને જ્ઞાન) એ બંનેનું જ[2] સ્મરણ કરે છે?

समाधान–જ્ઞાનવિષયક અનુભવના અભાવથી વિષયનું જ સ્મરણ થવું સંભવિત છે, તોપણ પૂર્વ અનુભવનું ગ્રાહ્ય ગ્રહણ ઉભયાકાર વિશિષ્ટ હોવાથી તજ્જન્ય સંસ્કાર પણ ઉભયાકાર સંયુક્ત થઈ ગ્રાહ્યગ્રહણ ઉભય સ્વરૂપ જ સ્મૃતિને ઉત્પન્ન કરે છે, કાંઈ એક વિષયક નહિ. એટલે કે જ્ઞાનસંબદ્ધ વિષયનું જ સ્મરણ થાય છે, કેવળ જ્ઞાનનું કે કેવળ વિષયનું સ્મરણ થતું નથી.

તાત્પર્ય એ છે કે–અનુભવ, સંસ્કાર, સ્મરણ, એ ત્રણેનું સમાન આકારથી ભાન થાય છે, વિભિન્ન આકારથી નહિ. અને 'હું ઘટ વિષયક જ્ઞાનવાળો છું' એ અનુભવમાં ઘટ અને ઘટજ્ઞાન એ બંનેનું જ ભાન થાય છે, તો તે અનુભવજન્ય સંસ્કાર પણ બંને વિષયવાળો માનવો પડશે અને એ સંસ્કારજન્ય સ્મૃતિ પણ ઉભય વિષયક જ

૧–તે મારી માતા, એ સ્મરણમાં (તે) એવો જે અંશ છે, તે (તત્તા) એવા નામથી વ્યવહૃત છે, અને જ્યાં એ તત્તાનો પ્રમોષ (અભાવ) હોય છે, તે સ્મરણ, પ્રમુષ્ટતત્તાક કહેવાય છે.

૨–અગર જો કે ભાષ્યકારોએ (किं प्रत्ययस्य चित्तं स्मरति आहो स्विद् विषयस्य) એ ભાષ્યમાં બે જ વિકલ્પ કર્યા છે, તોપણ ઉભય ગ્રહણનો સિદ્ધાંત કરવાથી ત્રીજો વિકલ્પ પણ ભાષ્યકારોને અભિપ્રેત છે, એ આશયથી ત્રીજા વિકલ્પનો ઉપન્યાસ કર્યો છે, તે જાણવું.

હોવાનું ઉચિત છે, એક વિષયક નહિ. તેથી એવું ફલિત થાય છે કે, ગ્રાહ્ય અને ગ્રહણ એ બંનેનો જ સ્મૃતિ પ્રકાશ કરે છે, કાંઈ એકનો નહિ. તે સ્મૃતિ બે પ્રકારની છે. એક મિથ્યા પદાર્થની સ્વપ્નાવસ્થામાં હોય છે, અને બીજી યથાર્થ પદાર્થની જાગૃત અવસ્થામાં હોય છે.

વળી [1]સ્વપ્ન એ માનસ વિપર્યય જ્ઞાનવિશેષ જ છે, કાંઈ સ્મૃતિ નથી. કેમકે સ્મૃતિ માનવાથી સ્વપ્નમાં આવું જે જ્ઞાન થાય છે કે, "આ ઘોડો દોડે છે." તે અયોગ્ય થઈ જશે. કેમકે તે જ્ઞાનનો પ્રત્યક્ષ સ્થળમાં જ સંભવ થઈ શકે છે, સ્મૃતિના સ્થળમાં નહિ. સ્મૃતિના સ્થળમાં તો "તે ઘોડો" એવી રીતનું જ જ્ઞાન થવું ઉચિત છે, કારણ કે તે તો સ્મૃતિનો આકાર છે અને સ્વપ્ન પછી જાગેલા માણસને સ્મરણ થાય છે કે 'મેં રાજાને જોયો' તે પણ અયોગ્ય થશે. કેમકે સ્મૃતિવાદીના મતમાં 'મેં અમુક રાજાનું સ્મરણ કર્યું' એવી રીતનો જ સ્મરણનો સંભવ થઈ શકે છે, બીજી રીતનો નહિ.

એવી રીતે સ્વપ્નને સ્મૃતિ ન માનવી, પણ સ્વપ્નમાં નૂતન જ પ્રાતિભાસિક (મિથ્યા) પદાર્થોની મનોમયી રચના અને તેનું મિથ્યા પ્રત્યક્ષ જ્ઞાન થાય છે, એ જ માનવું યુક્ત છે.

એટલા માટે જ બૃહદારણ્યક ઉપનિષદ્‌માં (**न तत्र रथा न रथयोगा न पंथानो भवंत्यथ रथान् रथयोगान् पथः सृजते**)[2] એ શ્રુતિથી નૂતન પ્રાતિભાસિક સૃષ્ટિની ઉત્પત્તિનું નિરૂપણ કરેલું છે. તોપણ સ્મૃતિની પેઠે સ્વપ્નજ્ઞાન પણ સંસ્કારજન્ય હોવાથી સંસ્કારજન્યત્વરૂપ સાદૃશ્યનો આશ્રય કરીને જ ભાષ્યકારે સ્વપ્નને સ્મૃતિ કહેલી છે, પણ વસ્તુગતિથી કાંઈ એ સ્મૃતિ નથી. એમ સમજીને વિરોધનો પરિહાર કરી લેવો.[3] એથી જ યોગસૂત્ર ઉપરના વ્યાસ ભાષ્યના વ્યાખ્યાનમાં વાચસ્પતિમિશ્રે (આ

૧–શ્રુતિ વગેરેની સાથે અવિરોધ સારુ સ્વપ્ન સંબંધી સ્મૃતિ પ્રતિપાદક ભાષ્યના તાત્પર્યના નિરૂપણ માટે વિચારાંતરનું સ્વામીશ્રી ઉત્થાપન કરે છે, "વળી" ઇત્યાદિથી.

૨–તે સ્વપ્નાવસ્થામાં રથ નથી, રથયોગ (અશ્વ) પણ નથી, અને રથને ચાલવાનો માર્ગ પણ નથી, પરંતુ નૂતન જ રથ, અશ્વ તથા માર્ગને જીવ ઉત્પન્ન કરી લે છે, એવો શ્રુતિનો અર્થ છે.

૩–સ્વપ્નમાં અને સ્મૃતિમાં વિષય દૂર હોવાથી સ્વપ્ન અને સ્મૃતિ બંને સરખાં છે.

સ્વપ્ન એ સ્મૃતિ નથી પણ વિપર્યય લક્ષણયુક્ત હોવાથી વિપર્યય જ છે. સ્મૃતિની સદૃશ પ્રતીત થવાથી ભાષ્યકારે સ્મૃતિ કહેલી છે, પણ ખરું જોતાં તે સ્મૃતિ નથી.)[1] એવી રીતે સ્વપ્નને વિપર્યયજ્ઞાન જ માનેલું છે, પણ સ્મૃતિ માનેલી નથી.

જો કે શારીરિક ભાષ્યમાં ભગવાન્ શંકરાચાર્યે[2] સ્વપ્નને સ્મૃતિ કહેલી છે, તે પણ ઉપર લખેલા અભિપ્રાય પ્રમાણે કહેલું છે, એમ જાણી લેવું.

એ પૂર્વોક્ત[3] સ્મૃતિજ્ઞાન, પ્રમાણ, વિપર્યય, વિકલ્પ, નિદ્રા, સ્મૃતિ સંજ્ઞાવાળી વૃત્તિઓના અનુભવથી જ ઉત્પન્ન થાય છે, પણ સ્વતંત્ર ઉત્પન્ન થતું નથી, તેથી જ સઘળી વૃત્તિઓને અંતે તેનું નિરૂપણ કરાયું છે.

આ સર્વ[4] પ્રમાણાદિ વૃત્તિઓ સુખ, દુઃખ, તથા મોહ સ્વરૂપ છે, અને સુખ, દુઃખ, મોહ એ કલેશ સ્વરૂપ[5] છે, માટે એ વૃત્તિઓનો નિરોધ કરવો ઉચિત છે. સૂત્રકારે રાગ, દ્વેષ, અવિદ્યા વગેરેને જ કલેશ કહેલાં છે, પણ કાંઈ સુખ, દુઃખ, મોહને કહેલાં નથી, તોપણ સુખ દુઃખ રાગ દ્વેષના જનક હોવાથી કલેશ જ જાણવા. એથી જ સૂત્રકાર, દ્વિતીય-પાદમાં **'सुखानुशयी रागः । दुःखानुशयी द्वेषः'** એ બંને સૂત્રોથી સુખ દુઃખને કલેશજનક કહેશે. મોહ અને અવિદ્યા એક હોવાથી મોહ પણ કલેશ જ છે અને કલેશજનક સુખ દુઃખ મોહ સ્વરૂપ હોવાથી એ સઘળી વૃત્તિઓ અવશ્ય નિરોધ કરવા લાયક છે, એવો સાર નીકળે છે.

એ પાંચ પ્રકારની વૃત્તિઓનો નિરોધ કરવાથી જ સંપ્રજ્ઞાત અને તે દ્વારા અસંપ્રજ્ઞાત યોગનો લાભ થાય છે. ૧૧

પૂર્વ પ્રકરણમાં નિરોધ કરવા લાયક વૃત્તિઓનું નિરૂપણ કરીને હવે "એ વૃત્તિઓના નિરોધના ઉપાય શા છે" એ શંકાના શમનાર્થે

---

૧ नेयं स्मृतिरपि तु विपर्ययः तल्लक्षणोपपन्नत्वात् स्मृत्याभासतया तु स्मृतिरुक्ता' એવો વાચસ્પતિ મિશ્રનો લેખ છે.

૨–દ્વિતીય અધ્યાયના બીજા પાદના ૨૯ મા સૂત્રનું ભાષ્ય (अपि च स्मृतिरेषा यत्स्वप्नदर्शनम्) ઇત્યાદિ જુઓ.

૩–પ્રસંગ પ્રાપ્ત વિચારને સમાપ્ત કરી હવે પ્રકૃત વિચારનું અનુસરણ કરે છે.

૪–જે કલેશોથી પુરુષ દુઃખી થાય છે, તેનો નિરોધ કરવો પુરુષને ઉચિત છે; કાંઈ પ્રમાણાદિ વૃત્તિઓનો નિરોધ કરવો ઉચિત નથી, કેમકે એ સઘળી કલેશજનક નથી, એ આશંકાનું વારણ કરે છે. 'એ સર્વ' ઇત્યાદિથી.

૫–સાત્ત્વિક રાજસ તામસ વૃત્તિઓનાં યથાક્રમ સુખ, દુઃખ અને મોહ એ નામાંતર છે.

જે ઉપાયોના સેવનથી તે વૃત્તિઓનો નિરોધ થાય છે, તે ઉપાયોના પ્રતિપાદક સૂત્રને કહે છે.

सू–अभ्यासवैराग्याभ्यां तन्निरोधः ॥ १२ ॥

સૂત્રાર્થઃ–અભ્યાસ અને વૈરાગ્યવડે વૃત્તિઓનો નિરોધ થાય છે.

(**अभ्यासवैराग्याभ्याम्**) હવે પછી જેનું લક્ષણ કહેવાશે એવા અભ્યાસ અને વૈરાગ્યથી (**तन्निरोधः**) તે પૂર્વોક્ત વૃત્તિઓનો નિરોધ (અટકાવ) થાય છે. અર્થાત્, ચિત્તવૃત્તિનો નિરોધ કરવાના બે ઉપાય છે. એક અભ્યાસ અને બીજો વૈરાગ્ય. ચિત્તની જે સ્વાભાવિક બહિર્મુખ પ્રવાહશીલતા છે, તે વૈરાગ્યદ્વારા નિવૃત્ત થાય છે અને અભ્યાસના જોરથી તેની આત્માના તરફ જનારી આંતરિક પ્રવાહશીલતા સ્થિર થઈ જાય છે.

ભાવ એ છે કે–ચિત્ત નામની[1] નદીના બે પ્રવાહ છે. એક તો કલ્યાણવહ છે અને બીજો પાપવહ છે. જે પ્રવાહ આત્મા અને અનાત્માના વિવેકરૂપી માર્ગથી વહેતો થકો કૈવલ્ય પર્યંત પહોંચીને વિશ્રાંત થાય છે, તે કલ્યાણવહ પ્રવાહ કહેવાય છે; અને જે પ્રવાહ અવિવેકરૂપ માર્ગથી વહેતો થકો વિષયભોગ પર્યંત પહોંચીને શાંત પડે છે, તે પાપવહ કહેવાય છે. એ બંનેમાંથી જે વિષયભોગરૂપ પાપવહ પ્રવાહ છે, તે વિષયમાં દોષ જોવારૂપ વૈરાગ્યથી નિરોધ પામે છે; અને જે વિવેકરૂપ કલ્યાણવહ પ્રવાહ છે, તે વિવેકજ્ઞાનના અભ્યાસથી પ્રકટ થાય છે. આ રીતે અભ્યાસ અને વૈરાગ્ય બન્ને વૃત્તિના નિરોધના ઉપાય છે.

અર્થાત્, જેમ તીવ્રવેગવાળા નદીના પ્રવાહને પ્રથમ સેતુબંધનદ્વારા મંદવેગવાળો કરીને પછી નહેરદ્વારા ક્ષેત્રના તરફ તિરકસ ગતિવાળો કરી શકાય છે; તેમ ચિત્તનદીના વિષયપ્રવાહરૂપી વેગને પણ પ્રથમ વૈરાગ્યદ્વારા અટકાવીને પછી અભ્યાસદ્વારા વિવેકી કરાય છે. સમાધિ ઉત્પન્ન કરવામાં અભ્યાસ અને વૈરાગ્ય એ બંનેનો સમુચ્ચય જ જાણવો. અર્થાત્ એ બન્ને ઉપયોગી છે એમ સમજવું. કાંઈ એકલા અભ્યાસથી કે એકલા વૈરાગ્યથી ચિત્તનો નિરોધ થાય છે, એમ વિકલ્પ માનવો નહિ. તેથી જ શ્રીકૃષ્ણ ભગવાને "**अभ्यासेन तु कौन्तेय वैराग्येण च गृह्यते**" એ વાક્યમાં સમુચ્ચયબોધક **चकार**ને ગ્રહણ કર્યો છે.

૧–(चित्तनदी नामोभयतो वाहिनी) ઇત્યાદિ ભાષ્યનો અનુવાદ કરતાં અભ્યાસ વૈરાગ્ય એ બંનેના કર્તવ્યના ભેદથી સમુચ્ચય પ્રદર્શન કરે છે. (ચિત્ત નામની નદી) ઇત્યાદિથી.

સૂત્રકારે પણ (**अभ्यासवैराग्याभ्याम्**) એવી રીતના સમાસઘટિત પદથી ઉપાદાનદ્વારા એવું જ જણાવેલું છે. કેમકે વિકલ્પ અર્થમાં એવી રીતનો સમાસ સંભવે નહિ.

કેવળ વૈરાગ્યથી જ ચિત્ત બાહ્યની પ્રવૃત્તિ કરતું અટકી જઈને અંતર્મુખ થઈ શકે છે, તોપણ તેની અંતર્મુખતાની સ્થિરતાને માટે અભ્યાસની પણ જરૂર છે. કેમકે સ્થિરતા વિના ચિત્તની એકાગ્રતા થાય નહિ.

સૂત્રકારે પ્રથમ અભ્યાસને ગ્રહણ કર્યો છે, તથાપિ યોગ્યતાનુસાર કાર્યાનુરોધથી પ્રથમ વૈરાગ્ય જ ગ્રહણ કરવા યોગ્ય છે.[1]

અભ્યાસ અને વૈરાગ્યનું સામર્થ્ય સર્વ કરતાં અધિક અને વિલક્ષણ છે. તે આ પછીનાં બે સૂત્રની વ્યાખ્યામાં કહેવામાં આવશે. ॥ ૧૨ ॥

એ બંને ઉપાયોમાંથી પહેલા ઉપાય અભ્યાસનું લક્ષણ હવે કહે છે.

सू–तत्र स्थितौ यत्नोऽभ्यासः ॥ १३ ॥

સૂત્રાર્થઃ–તેમાં ચિત્તની સ્થિરતાને માટે જે યત્ન, તે અભ્યાસ કહેવાય.

(**तत्र**) તે પૂર્વોક્ત નિરોધમાં (**स्थितौ**) ચિત્તની સ્થિરતાને માટે જે (**यत्न**) માનસ ઉત્સાહપૂર્વક યમાદિ અંગોનું અનુષ્ઠાન, તે (**अभ्यासः**) અભ્યાસ કહેવાય છે.

અર્થાત્, રાજસ તામસવૃત્તિ રહિત ચિત્તની જે પ્રશાંતવાહિતા (સાત્વિક વૃત્તિના પ્રવાહરૂપ વિમલતા નામવાળી સ્થિતિ તે) સ્થિતિ પ્રાપ્ત કરવા માટે માનસિક ઉત્સાહપૂર્વક દૃઢ થઈને યમનિયમ વગેરે અંગો પાળવામાં તત્પરતારૂપ જે યત્ન, તેનું નામ અભ્યાસ.

આ અભ્યાસ જ સ્થિરતા સંપાદન કરી ચિત્તને એકાગ્ર કરી દે છે. અભ્યાસમાં એક અદ્ભૂત શક્તિ વિશેષ જોવામાં આવે છે. એટલે કે જો કોઈ અસાધ્ય કાર્ય હોય, તો તે પણ કેવળ અભ્યાસના બળથી સિદ્ધ થાય છે. જુઓ કે જે વિષ[2] અફીણ વગેરેના ભક્ષણથી પુરુષ મરણ પામે છે અથવા તો મૂર્ચ્છિત થઈ જાય છે, તે વિષ વગેરેના સેવનનો અભ્યાસ કરનાર પુરુષ, તેને વશીભૂત કરી લે છે, અને ઉલટું એ

૧–ભાવ એ છે કે, જ્યાં સુધી વૈરાગ્યથી ચિત્તની અંતર્મુખતા થઈ નહિ હોય ત્યાં સુધી અભ્યાસ નિર્વિષય જ છે. કેમકે અંતર્મુખતાની સ્થિરતા માટે જ અભ્યાસની જરૂર છે; અને અંતર્મુખતા, વૈરાગ્ય વિના બની શકતી નથી. તેથી જ પ્રથમ વૈરાગ્ય જ ધારણ કરવો યોગ્ય છે.

૨–વિષ, સોમલ, અફીણ આદિ શબ્દથી ગાંજા વગેરેનું ગ્રહણ કરી લેવું.

વિષાદિકના ન સેવવાથી તે પુરુષ મૃતપ્રાય થઈ જાય છે. આવી રીતે જ્યારે મુમુક્ષુ પણ ચિત્તની સ્થિરતાને માટે અભ્યાસનિષ્ઠ બને છે, ત્યારે તે સ્થિરતા પણ તેને અવશ્ય તાબે થાય છે, કેમકે દુઃસાધ્યને સુસાધ્ય કરી દેવું, એ અભ્યાસની પાસે કાંઈ દુષ્કર નથી. ॥ ૧૩ ॥

હવે એ અભ્યાસ, જે પ્રકારે દૃઢમૂળ થઈને અનાદિકાળથી પ્રવૃત્ત થયેલા વિષય વાસનાજનિત વ્યુત્થાન સંસ્કારનો નાશ કરે છે, તે પ્રકારનો ઉપદેશ કરે છે.

सू–स तु दीर्घकाल–नैरंतर्य–सत्काराऽऽसेवितो दृढभूमिः ॥ १४ ॥

સૂત્રાર્થઃ–તે અભ્યાસ જો લાંબા કાળ લગી, નિરંતર, અને શ્રદ્ધાપૂર્વક સેવવામાં આવે તો પાકા પાયાનો થાય છે.

(**स तु**) તે જે ઉપર કહેલો અભ્યાસ (**दीर्घकाल**) બહુકાળપર્યંત, (**नैरंतर्य**) વ્યવધાનરહિત, (**सत्कारासेवितः**) બ્રહ્મચર્ય, શ્રદ્ધા, ભક્તિપૂર્વક સેવવાથી (**दृढभूमिः**) દૃઢ અવસ્થાવાળો થાય છે.

અર્થાત્, તે અભ્યાસ જો તિતિક્ષા, બ્રહ્મચર્ય, શ્રદ્ધાપૂર્વક, ઓંકારાદિ જપરૂપ વિદ્યાથી આદરપૂર્વક નિત્ય લાંબા કાળ સૂધી સેવવામાં આવે તો તે અભ્યાસ દૃઢાવસ્થાવાળો થાય છે. તે કદાપિ વ્યુત્થાનના સંસ્કારોથી બાધ પામતો નથી, પણ ઉલટું તેઓનો તિરસ્કાર કરે છે.

ભાવ એ છે કે[1] આ ચિત્ત અનાદિકાળથી વિષયભોગની વાસનાથી થનારા વ્યુત્થાનના સંસ્કારથી ચંચળતાનો જ અભ્યાસ કરતું ચાલ્યું આવે છે; તેથી ચંચળતા એ ચિત્તનો એક સ્વાભાવિક ધર્મ જ થઈ ગયો છે. તેની એ સ્વાભાવિક ચંચળતા, આગંતુક કે અલ્પકાળ સાધ્ય કોઈ પણ ઉપાયથી નિવૃત્ત થાય, એ અસંભવિત છે; તેથી જે ઉપાયવડે તે ચંચળા પરાભવ પામે, અને સ્થિરતા જે ચિત્તનો સ્વાભાવિક ધર્મ છે તે થઈ જાય આવો ઉપાય, યોગ મેળવનારાએ ગ્રહણ કરવા યોગ્ય છે અને એવો ઉપાય, અભ્યાસની દૃઢતા શિવાય બીજો કોઈ જોવામાં આવતો નથી. તેથી લાંબા કાળ સૂધી અભ્યાસનું અનુષ્ઠાન કર્યા કરવું, એ જ એ સ્થિરતાનો મુખ્ય ઉપાય છે. "લાંબા કાળ સૂધી" એટલે દિવસમાં એક બે વાર

---

૧ અનાદિકાળથી પ્રવૃત્ત થયેલી ચંચળતાના પ્રવાહને આધુનિક અભ્યાસ શી રીતે પરાભવ કરી શકે છે, એ આશંકાનું વારણ કરવા સૂત્ર તથા ભાષ્યનું તાત્પર્ય કહે છે, "ભાવ એ છે કે" ઇત્યાદિથી.

અથવા એક બે ઘડી તે અભ્યાસ કરવાથી કાર્ય સિદ્ધ થતું નથી, પણ નિરંતર એટલે વ્યવધાનરહિત જ અભ્યાસ કરાય, અને તે પણ અવજ્ઞા-પૂર્વક નહિ, પણ શ્રદ્ધાદિપૂર્વક કરાય તો જ કાર્ય સિદ્ધ થાય, અને એ જ યમાદિ અભ્યાસની દૃઢતાનો ઉપાય છે. એ ઉપાય બહુ કષ્ટસાધ્ય જાણીને છોડી ન દેતાં માનસિક ઉત્સાહથી ખેદરહિત થઈને તેમાં નિરંતર તત્પર રહેવું. એથી જ શ્રીકૃષ્ણ ભગવાને **"स निश्चयेन योक्तव्यो योगोऽनिर्विण्णचेतसा"** એ વચનથી ખેદરહિત થઈને જ યોગાનુષ્ઠાન કરવાનું કહ્યું છે.[1]

શ્રી ગૌડપાદાચાર્યે પણ, **"उत्सेक उदधेर्यद्वत् कुशाग्रेणैकबिंदुना । मनसो निग्रहस्तद्वत् भवेदपरिखेदतः"** ॥[2] એ વાક્યથી ટિટ્ટિભ (ટીટોડી)ના દૃષ્ટાંતદ્વારા ખેદને દૂર કરીને મનનો નિગ્રહ કરવાનું કહેલું છે એ સાર છે. ॥૧૪॥

હવે જે એકાગ્રતાની દૃઢતાને માટે અભ્યાસની દૃઢતાની જરૂર છે, તે એકાગ્રતાના સાધનભૂત અને એકાગ્રતાના વિરોધી વિષયપ્રવૃત્તિને દૂર કરનારા અપર વૈરાગ્યનું લક્ષણ કહે છે.

૧–નિરોધ કષ્ટસાધ્ય હોવાથી બહુ કાળાભ્યાસવડે ઉપરામ (સિદ્ધ) થવો સંભવિત છે. એ હેતુથી જ ભગવાને 'ખેદરહિત' એમ કહેલું છે, એ તેનું રહસ્ય છે.

૨–જેમ ટિટ્ટિભ (ટીટોડી) પક્ષીએ કુશના અગ્રભાગ જેવી પોતાની ચાંચથી એક એક બિંદુ સમુદ્રમાંથી પાણી ઉલેચવાનો નિશ્ચય કર્યો હતો, તેમ ખેદ તજીને નિશ્ચયથી જ મનનો નિગ્રહ થાય છે, ખેદથી થતો નથી, એવો ગૌડપાદીય વાક્યનો અર્થ છે. ટિટ્ટિભાખ્યાન, શંકરાનંદકૃત આત્મપુરાણમાં વિસ્તારથી કહેલું છે. તેનો સંક્ષેપ સાર એવો છે કે–સમુદ્રના તરંગદ્વારા પોતાના ઇંડાં સમુદ્રમાં પડવાથી ટિટ્ટિભપંખીએ એવી પ્રતિજ્ઞા કરી કે, મારાં બચ્ચાંને તો સમુદ્ર લઈ ગયો, પણ જ્યાં સૂધી સમુદ્રનું શોષણ નહિ થાય, ત્યાં સૂધી હું નિવૃત્ત નહિ થાઉં, એવી પ્રતિજ્ઞા અને આશયથી સમુદ્રને સૂકાવવા સારુ ચાંચદ્વારાએ સમુદ્રમાંથી એક એક બુંદ બહાર નાંખવા લાગ્યો. એ જોઈ બીજાં પક્ષીઓ કહેવા લાગ્યાં કે, "શું આવી રીતે કદી સમુદ્ર શુષ્ક થશે ખરો?" એ સાંભળી ટિટ્ટિભે બધાંને એક જ જાતનો જવાબ દીધા કર્યો કે, "મારી કાંઈ એવી પ્રતિજ્ઞા નથી કે એક દિવસ, વા વર્ષ, વા આ જન્મે જ સમુદ્ર શુષ્ક કરવો. પરંતુ અનેક જન્મ વીતે તોપણ હું, સમુદ્ર શુષ્ક કર્યા વગર નહિ રહું, એવી મારી પ્રતિજ્ઞા છે." પછી ટિટ્ટિભનું એવી રીતનું સાહસ જોઈ પક્ષીઓના રાજા ગરુડજીએ તેનાં ઇંડાં અપાવ્યાં. એવી રીતે 'આ કામ ક્યારે પુરું થશે,' એવી ભાવનાનો ત્યાગ કરી નિરંતર અભ્યાસમાં યોગીએ તત્પર રહેવું, પણ કાંઈ ખેદ કરવો નહિ, એ તેમાં રહેલું રહસ્ય છે.

सू–दृष्टाऽऽनुश्रविकविषयवितृष्णस्य वशीकारसंज्ञा वैराग्यम् ॥ १५ ॥

સૂત્રાર્થઃ-ઇહલોકના જોયેલાં અને પરલોકના સાંભળેલા વિષયોમાં જેની તૃષ્ણા નિર્વેદ પામી છે એવા પુરુષ અનિચ્છા (તીરસ્કાર) તે વશીકાર એ નામનો વૈરાગ્ય કહેવાય છે.

(दृष्ट) આલોકમાં દૃષ્ટિએ પડતા ઐહિક ભોગમાં ઉપયોગી માલા, ચંદન, વનિતાવિલાસ, ભોજનપાન વગેરે વિષય, (आनुश्रविक) વેદાદિદ્વારા શ્રુત સ્વર્ગમાં હોનાર અમૃતપાન, અપ્સરા ભોગ વગેરે ઐશ્વર્ય તથા વિદેહભાવનો અને પ્રકૃતિલયતાનો[1] આનંદ, આ સર્વ વિષયો ઉપર (वितृष्णस्य) તૃષ્ણાથી રહિત મુમુક્ષુના ચિત્તમાં જે અનિચ્છા (ઇચ્છાનો અભાવ) હોય છે, તે વશીકાર નામનો અપરવૈરાગ્ય કહેવાય છે.[2]

અર્થાત્, ગુણદોષના વિવેકદ્વારા વિષયોમાં દોષદૃષ્ટિવાળા ચિત્તની, ઉપસ્થિત થયેલા ઐહિકપારલૌકિક વિષયોમાં રાગદ્વેષ વિના જ હેયોપાદેય[3] વિનાની જે સ્થિતિ થાય છે, તેનું નામ વશીકાર વૈરાગ્ય છે. આ વૈરાગ્ય જ બાહ્ય વિષયની પ્રવૃત્તિને રોકવામાં એક મુખ્ય ઉપાય છે.

અભ્યાસની પેઠે આ વૈરાગ્યનું પણ વિલક્ષણ કાર્ય કરવાપણું કોઇથી અજાણ્યું નથી. કેમકે આ લોકમાં પ્રત્યક્ષ જણાય છે કે, મનુષ્યોને જે વસ્તુમાં ઉત્કટ વૈરાગ્ય પેદા થઈ જાય છે, તે વસ્તુને માટે ફરીથી કદાપિ વિરક્ત પુરુષનું ચિત્ત ચલાયમાન થતું નથી. પણ ઉલટું વસ્તુ ઉપસ્થિત હોતાં તે ગ્લાનિ યુક્ત થાય છે.

આ રીતે જ્યારે સંસારના સર્વ વિષયોમાં દોષદૃષ્ટિ થઇને વૈરાગ્યનો ઉદય થાય છે, ત્યારે ફરીથી એ વિરકતનું ચિત્ત કોઈ પણ વિષયભોગ માટે ચલાયમાન થતું નથી. વિષયના ભોગને માટે ચિત્ત ચંચળ ન થાય, એ જ બાહ્ય વૃત્તિનું રોકાઈ જવું છે. એટલે વૈરાગ્યદ્વારા ચિત્તની બાહ્ય પ્રવૃત્તિ રોકાઈ જાય છે, એ સંભવિત છે.

પરંતુ દોષવિષયોમાં દોષનું ચિંતન કર્યા વિના વૈરાગ્ય થતો નથી, માટે પ્રથમ દોષ ચિંતનરૂપ પ્રસંખ્યાન-બળ જ[4] મુમુક્ષુએ પ્રાપ્ત કરવા યોગ્ય છે.

૧-વિદેહ અને પ્રકૃતિલયનું પ્રતિપાદન, આ પાદના ૧૯ મા સૂત્રમાં થશે.

૨-અગર જો કે સૂત્રમાં અપરવૈરાગ્યનું નામ કહેલું નથી, તોપણ અગ્રિમ સૂત્રમાં પરવૈરાગ્યનું લક્ષણ કહેલું હોવાથી અહીં અપરવૈરાગ્ય જ છે, એમ જાણવું.

૩-હેય=ત્યાગ કરવા યોગ્ય; ઉપાદેય=ગ્રહણ કરવા યોગ્ય.

૪-વિષયભોગને દુઃખરૂપ જાણી વિષયોમાં દોષભાવનાની દઢતા થઈ

વિષયોમાં દોષદૃષ્ટિ એવી કરવાની છે કે–"ધન વગેરે સંપત્તિ વિના વનિતાદિ ભોગ વિલાસ થવા અસંભવિત છે; અને ધનને સંપાદન કરવામાં, રક્ષણ કરવામાં, અને વ્યય (ખર્ચ) કરવામાં દુઃખ વિના લેશ પણ સુખ નથી." વળી સ્વર્ગમાં પણ અધિક ઐશ્વર્યવાળાનો ઉત્કર્ષ સહન ન થવો, સમાન ઐશ્વર્યવાળાની સાથે સ્પર્દ્ધા થવી અને પુણ્યક્ષય થયા પછી પાછાં ફરતાં મર્ત્યલોકમાં અવતરવું, એ વગેરેને દોષચિંતન જાણવાં.[1]

અહીં[2] વશીકાર સંજ્ઞક વૈરાગ્યના કથનથી બીજા પૂર્વ ભાવી ત્રણ વૈરાગ્યનું પણ ગ્રહણ જાણી લેવું. કેમકે એ ત્રણ વિના વશીકાર વૈરાગ્યનું હોવું સંભવતું નથી.

ભાવ એવો છે કે-યતમાન, વ્યતિરેક, એકેંદ્રિય અને વશીકાર, આવા ચાર ભેદથી વૈરાગ્યનાં ચાર નામ છે. તેમાં "ચિત્તમાં રહેનારા રાગ દ્વેષાદિ મળ જે ઇંદ્રિયોને પોતપોતાના વિષયમાં પ્રવૃત્ત કરાવે છે, તે રાગ દ્વેષાદિ મળ ઇંદ્રિયોને વિષયોમાં પ્રવૃત્ત ન કરે તો સારું." એવા વિચારથી રાગાદિ મળની નિવૃત્તિ સારુ મૈત્રી[3] વગેરે ભાવનાનું જે અનુષ્ઠાન કરવું, તે વૈરાગ્ય **यतमान**ના[4] નામથી ઓળખાય છે.

મૈત્રી વગેરે ભાવનાનું સેવન કરતાં કરતાં જે ચિકિત્સક (વૈદ્ય) ની પેઠે પકવ અને અપકવ મળોનો વ્યતિરેક નિશ્ચય (આટલા ચિત્તમળ નિવૃત્ત થઈ ચૂક્યા છે, આટલા મળ નિવૃત્ત થવાવાળા છે, અને આ મળો નિવૃત્ત થતા જાય છે, એવી રીતે નિવૃત્ત થયેલા અને વિદ્યમાન

જવી, એ જ પ્રસંખ્યાન બળ કહેવાય છે. વિષયભોગ કેવા દુઃખરૂપ છે, તે બીજા પાદના ૧૫ મા સૂત્રમાં કહેવાશે.

૧–જેણે સારી રીતે દોષદૃષ્ટિની ભાવના કરવી હોય, તેણે યોગવાસિષ્ઠનું વૈરાગ્ય પ્રકરણ સાંભળવું.

૨–અપર વૈરાગ્ય ચાર પ્રકારનો હોવા છતાં સૂત્રકારે એક જ પ્રકારનો કેમ કહ્યો, એના સમાધાન માટે "અહીં" ઇત્યાદિ કહે છે.

૩–મૈત્રી વગેરે ભાવનાનું નિરૂપણ, આ પાદના ૩૩ મા સૂત્રમાં થશે. જે રીતે મૈત્રી વગેરે ભાવનાથી રાગાદિમળ નિવૃત્ત થાય છે, તે રીત પણ એ સૂત્રના વ્યાખ્યાનમાં કહેવાશે.

૪–સંસારમાં સારઅસારનો શાસ્ત્રદ્વારા નિશ્ચય ગુરુમુખ કરવા સારુ જે ઉદ્યોગ, તે પણ "યતમાન" જાણવો.

ચિત્તમળોનું જે જૂદા જૂદા રૂપથી જ્ઞાન) તે व्यतिरेक નામવાળો વૈરાગ્ય કહેવાય છે.[૧]

અને જ્યારે નિવૃત્ત થયેલા ચિત્તમળ, ઇંદ્રિયોને વિષયોમાં પ્રવૃત્તિ કરાવવામાં અસમર્થ થઈ કેવળ ચિત્તમાત્રમાં જ રહેલા કાંઇક કાંઇક વિષયોમાં ઉત્કંઠિત રહે છે, ત્યારે તે, વૈરાગ્યની ત્રીજી અવસ્થા एकेन्द्रिय નામે ઓળખાય છે.

પછી જ્યારે વિવેકના જોરથી સઘળા વિષયોમાં ઉપેક્ષા બુદ્ધિ થવાથી તે ઉત્કંઠા પણ નિવૃત્ત થઈ જાય છે, ત્યારે તે વૈરાગ્યની તુરીયાવસ્થા, वशीकार નામે કહેવાય છે.

સૂત્રકારે વૈરાગ્યની તુરીયાવસ્થા જ કહી છે, અને એ અવસ્થા જ અપર વૈરાગ્યની સીમા છે, તથા તે ઉપર કહેલા ક્રમથી જ ઉત્પન્ન થાય છે. એ પ્રકારે અહીં વશીકાર સંજ્ઞાવાળા વૈરાગ્યના કથનથી પૂર્વભાવી ત્રણે વૈરાગ્યનો પણ લાભ થાય છે.[૨] કેમકે એ ત્રણ વિના તેની ઉત્પત્તિનો અસંભવ છે. ॥૧૫॥

એવી રીતે સંપ્રજ્ઞાતયોગના સાધનભૂત અપર વૈરાગ્યનું લક્ષણ પ્રતિપાદન કરીને, હવે સંપ્રજ્ઞાત સમાધિનું ફલભૂત અને અસંપ્રજ્ઞાત સમાધિનું કારણ જે પર વૈરાગ્ય, તેનું લક્ષણ કહે છે.

सू–तत् परं पुरुषख्यातेर्गुणवैतृष्ण्यम् ॥ १६ ॥

સૂત્રાર્થઃ–પુરુષ એટલે આત્માનું જ્ઞાન થવાથી સંસાર ઉપર જે અભાવ, તે પર વૈરાગ્ય કહેવાય છે.

(**पुरुषख्यातेः**) વિવેક જ્ઞાનના ઉદયથી જે (**गुणवैतृष्ण्यम्**) ગુણનાં કાર્યરૂપ વિવેકજ્ઞાનમાં પણ તૃષ્ણાનો અભાવ થવો, (**तत् परम्**) તે પર વૈરાગ્ય કહેવાય છે.

અર્થાત્, ઐહિક પારલૌકિક વિષયોમાં દોષદૃષ્ટિદ્વારા વિરક્ત થયેલા ચિત્તમાં જે ગુણસ્વરૂપ પ્રકૃતિથી ભિન્નરૂપ એવા પુરુષની (નિજરૂપ) સાક્ષાત્કારરૂપ જે પુરુષખ્યાતિ,[૩] તે પુરુષખ્યાતિથી જે ગુણવૈતૃષ્ણ્ય (સમા-

---

૧–નિવૃત્ત મળોથી વિદ્યમાન મળોને પૃથક્પણે ઓળખીને તેની નિવૃત્તિ કરવી, એ જ વ્યતિરેક વૈરાગ્યનું ફળ છે. ૨–વશીકારના ગ્રહણથી સઘળાનું ગ્રહણ હોવાથી તે કહેવાના અભાવથી અહીં ન્યૂનતા દોષ નથી, એ સાર છે. ૩–પુરુષ ચેતન, શુદ્ધ તથા અનંત છે અને પ્રકૃતિ જડ, મલિન અને સાંત હોવાથી તે પુરુષથી ભિન્ન છે, એવી રીતની ભિન્નરૂપતાથી પુરુષનો સાક્ષાત્કાર, તેનું નામ પુરુષખ્યાતિ છે.

ધિના ફળભૂત વિવેક ખ્યાતિમાં પણ તૃષ્ણાનો અભાવ), તે પર વૈરાગ્ય કહેવાય છે.

ભાવ એ છે કે-સંપ્રજ્ઞાત સમાધિમાં વિદ્યમાન ધ્યેયાકાર વૃત્તિના નિરોધને લીધે તેમાં જે વૈરસ્યજ્ઞાન અર્થાત્ સમાધિના ફળની ઇચ્છાનો પણ અભાવ, તે પર વૈરાગ્ય કહેવાય[1] છે.

એ વૈરાગ્યને જ જ્ઞાનપ્રસાદ માત્ર કહે છે, કેમકે તેમાં રજોગુણનો કે તમોગુણનો ગંધમાત્ર પણ રહેતો નથી. આ વૈરાગ્યનો ઉદય થવાથી જ યોગી, ધર્મમેઘસમાધિનિષ્ઠ હોઇને પોતાના મનમાં એમ માને છે કે, "જે મારે પ્રાપણીય હતું, તે પ્રાપ્ત થયું અને ક્ષય કરવા યોગ્ય જે પંચક્લેશ હતા, તે પણ મારા ક્ષીણ એટલે નષ્ટ થયા અને જે ધર્માધર્મ સમૂહથી ઘટીયંત્રવત્, જન્મોત્તર મરણ અને મરણોત્તર જન્મ, પુરુષને પ્રાપ્ત થાય છે, તે મારો ધર્માધર્મ સમૂહ પણ નિરંતર ઉચ્છિન્ન થઈ ગયો."

આ વૈરાગ્ય જ, જ્ઞાનની પરાકાષ્ઠા (અવધિ) છે અને કૈવલ્ય પણ એ વૈરાગ્યનું અવિનાભાવિ[2] છે. ॥ ૧૬ ॥

એવી રીતે નિરોધના ઉપાયભૂત અભ્યાસ વૈરાગ્યનું લક્ષણ પ્રતિપાદન કરીને હવે નિરુદ્ધ ચિત્તવૃત્તિવાળા યોગીને જે સંપ્રજ્ઞાત સમાધિ પ્રાપ્ત થાય છે, તેના અવાંતર ભેદ સાથે સ્વરૂપનો નિર્દેશ કરે છે.

सू—वितर्कविचाराऽऽनंदाऽस्मितास्वरूपाऽनुगमात् संप्रज्ञातः ॥१७॥

સૂત્રાર્થઃ-સંપ્રજ્ઞાત સમાધિ ચાર પ્રકારની છે. તેનાં નામોઃ-(૧) વિતર્કાનુગત (૨) વિચારાનુગત (૩) આનંદાનુગત (૪) અસ્મિતાનુગત.

વિતર્ક, વિચાર, આનંદ, અસ્મિતા નામના સ્વરૂપોના અનુગમ (સંબંધ)થી જે નિરોધ, તે નિરોધ સંપ્રજ્ઞાત કહેવાય છે.

અર્થાત્, જે ભાવનામાં સંશય વિપર્યય જ્ઞાનના અભાવપૂર્વક યથાર્થ

૧—જે જે ત્રિગુણાત્મક બુદ્ધિનું કાર્ય છે, તે બધું યોગીઓને હેય એટલે ત્યાજ્ય કોટિમાં છે; અને વિવેકખ્યાતિ પણ સત્ત્વગુણાત્મક અને બુદ્ધિનું કાર્ય છે, તેથી તે પણ ત્યાજ્ય છે, એવા અભિપ્રાયથી તેમાં જે તૃષ્ણાનો અભાવ, તે પર વૈરાગ્ય છે.

૨—પર વૈરાગ્યનો ઉદય થવાથી કૈવલ્ય પ્રાપ્તિમાં કાંઈ પણ વિલંબ થતો નથી, એથી કૈવલ્ય એ, વૈરાગ્યનું અવિનાભાવિ છે. જેના અસ્તિત્વથી જેનું અસ્તિત્વ અવશ્ય જ હોય, તેનું નામ અવિનાભાવિ છે.

રૂપથી ધ્યેય[1] વસ્તુનું જ્ઞાન થાય છે, તે ભાવના વિશેષનું નામ સંપ્રજ્ઞાત છે. એ સંપ્રજ્ઞાત, ધ્યેયના ભેદથી વિતર્કાનુગત, વિચારાનુગત, આનંદાનુગત અને અસ્મિતાનુગત એવા ભેદથી ચાર પ્રકારની છે. તે ભાવના વિશેષને જ સવિકલ્પ સમાધિ વા સવિકલ્પ યોગ કહે છે.

ભાવ એ છે કે, વિષયાંતરના પરિહારપૂર્વક કોઈ ધ્યેય પદાર્થમાં વારંવાર ચિત્તનો નિવેષ તેનું નામ ભાવના છે. તે ભાવનાનો વિષયભૂત જે ભાવ્ય છે, તે ગ્રાહ્ય, ગ્રહણ અને ગૃહીતૃ ભેદથી ત્રણ પ્રકારનો છે. એ ત્રણમાંથી ગ્રાહ્ય પણ સ્થૂળ અને સૂક્ષ્મના ભેદથી બે પ્રકારનો છે. જેમ ધનુર્વિદ્યામાં નિપુણ થવાવાળો પુરુષ, પ્રથમ સ્થૂલ લક્ષ્યને વીંધીને પછી સૂક્ષ્મ લક્ષ્યના વેધનમાં તત્પર થાય છે; તેમ યોગેચ્છુ પુરુષ પણ પહેલાં સ્થૂળ ધ્યેયની ભાવના દૃઢ કરીને પછી સૂક્ષ્મ વિષયની ભાવનામાં પ્રવૃત્ત થાય છે. કાંઈ એકદમ સૂક્ષ્મ લક્ષ્યમાં પ્રવૃત્ત થતો નથી.

એટલે કે, સ્થૂળ પંચ મહાભૂતવિષયક વા પાંચભૌતિક સ્થૂળ ચતુર્ભુજાદિરૂપ વિષયક જે ભાવના અને સ્થૂલ ભૂતોનાં કારણ, સૂક્ષ્મભૂત પંચતન્માત્રવિષયક જે ભાવના, તે બંનેનું નામ ગ્રાહ્યભાવના છે. તેને જ ગ્રાહ્યસમાપત્તિ અથવા ગ્રાહ્ય સમાધિ પણ કહે છે.

તેમાં સ્થૂલવિષયક ભાવનાનું નામ વિતર્કાનુગત સંપ્રજ્ઞાત[2] અને સૂક્ષ્મવિષયક ભાવનાનું નામ વિચારાનુગત સંપ્રજ્ઞાત છે.

સત્ત્વપ્રધાન અહંકારના કાર્યભૂત દશ ઇંદ્રિય સંબંધી જે ભાવના તેનું નામ ગ્રહણ સમાપત્તિ અથવા તો ગ્રહણ સમાધિ કહેવાય છે; તે જ આનંદાનુગત સંપ્રજ્ઞાત કહેવાય છે.

એ પ્રમાણે ઇંદ્રિયોના કારણ અહંકાર, વા બુદ્ધિ, વા પ્રકૃતિ, વા

---

૧ જેનું ધ્યાન કરાય છે, તે ધ્યેય વા ભાવ્ય કહેવાય છે. ભાવના અને ધ્યાન એ બંને સમાનાર્થક જાણવાં.

૨ અહીં એટલું વિશેષ પણ જાણી લેવું કે, જે ભાવનામાં પંચભૂતોના (કયું ભૂત પ્રથમ ઉત્પન્ન થયું અને કયા ભૂતમાં કયો ધર્મ છે, એવી રીતથી) પૂર્વાપર અનુસંધાનપૂર્વક ચિત્તની વૃત્તિ વિદ્યમાન રહે છે, તે ભાવના, સવિતર્ક નામની છે અને જેમાં એ અનુસંધાનને છોડી દઈ કેવળ વસ્તુમાત્ર વિષયક ચિત્તવૃત્તિ હોય છે, તે નિર્વિતર્ક સમાપત્તિ કહેવાય છે. પણ અહીં એ બંનેનું નામ વિતર્કાનુગત સંપ્રજ્ઞાત જાણવું. એ જ પ્રમાણે સવિચાર નિર્વિચાર પણ જાણી લેવું. એ સઘળું ૪૨-૪૩ અને ૪૪ મા સૂત્રમાં સ્પષ્ટ થશે.

પુરુષવિષયક જે ભાવના, તેનું નામ ગૃહીતૃ સમાપત્તિ અથવા ગૃહીતૃ સમાધિ કહેવાય છે; તેનું જ નામ અસ્મિતાનુગત સંપ્રજ્ઞાત છે.

આ ચારેય સમાધિઓમાં જે પ્રથમ વિતર્ક સમાધિ છે, તે વિતર્ક, વિચાર, આનંદ અને અસ્મિતા આ ચારેથી યુક્ત છે. તેનું કારણ એ છે કે, ઘટાદિ કાર્યમાં મૃત્તિકાની પેઠે સઘળા કાર્યમાં કારણ અનુગત (અંદર રહેલું તે) રહે છે, એવો શાસ્ત્રનો નિયમ છે. તે પ્રમાણે સ્થૂળભૂતો, તન્માત્રાનાં કાર્ય હોવાથી સ્થૂળભૂતોમાં સૂક્ષ્મભૂત અનુગત છે અને પંચતન્માત્રા એ અહં-કારનું કાર્ય હોવાથી તન્માત્રાદ્વારા અહંકાર પણ અનુગત છે. એવી રીતે અહંકાર, એ બુદ્ધિનું કાર્ય હોવાથી અહંકારાદિદ્વારા બુદ્ધિ પણ સ્થૂળ-ભૂતોમાં અનુગત થઈ (અંદર રહેલી) છે. એ પ્રમાણે સ્થૂળભૂતોની ભાવના કરવાથી તેમાં સઘળાંની ભાવના સમાઈ જાય છે. એથી સ્થૂળભૂતવિષયક ભાવના ચારેયથી યુક્ત છે, એમ સિદ્ધ થયું.

એ પ્રમાણે સવિચાર સંપ્રજ્ઞાત પણ ત્રણથી અનુગત છે. કેમકે એ ભાવનામાં સ્થૂળભૂતોનું ભાન ન હોવાથી[1] તે વિતર્કરહિત છે. એ પ્રમાણે સાનંદસંપ્રજ્ઞાત બેથી અનુગત છે. કારણ કે એ ભાવનામાં સ્થૂળ સૂક્ષ્મભૂતનું ભાન ન હોવાથી તે વિતર્ક અને વિચારથી રહિત છે.

એ પ્રમાણે અસ્મિતાનુગત[2] સંપ્રજ્ઞાતને એકાનુગત જાણવી. કેમકે તેમાં અસ્મિતા માત્રને છોડીને કોઈ બીજાનું ભાન હોતું નથી.

આ સર્વ સમાધિઓ સાલંબ અને સબીજ છે. કેમકે એ સર્વેમાં કોઈ કોઈ પણ ધ્યેયનું આલંબન તથા બીજભૂત અજ્ઞાન[3] હોય છે.

એ હેતુથી એ સમાધિઓનું ફળ, મુક્તિથી ભિન્ન બીજું જ વાયુ-પુરાણમાં નીચે પ્રમાણે કહેલું છેઃ-

"दश मन्वंतराणीह तिष्ठंतीन्द्रियचिंतकाः, भौतिकास्तु शतं पूर्णं सहस्रं त्वाभिमानिकाः। बौद्धा दश सहस्राणि तिष्ठंति विगतज्वराः पूर्णं शतसहस्रं तु तिष्ठंत्यव्यक्तचिंतकाः। पुरुषं निर्गुणं प्राप्य कालसंख्या न विद्यते॥" (આપણા સંવત્સરના માપથી ૪૩ લાખ ૨૦ હજાર વર્ષ, ચાર યુગનું પ્રમાણ છે, અને એ ચાર યુગ જ્યારે

---

૧ કાર્યમાં કારણ અનુગત રહે છે, કાંઇ કારણમાં કાર્ય અનુગત રહેતું નથી: એથી તન્માત્રાની ભાવનામાં સ્થૂલભૂતની ભાવના થતી નથી.

૨–અહીં અસ્મિતાથી અહંકાર અને પ્રકૃતિ તથા અહંકારોપાધિક પુરુષ એ ત્રણે સમજવા.

૩–આત્માને મૂકી સ્થૂળ ભૂતાદિ અનાત્માનું ધ્યાન કરવું, એ અહીં અજ્ઞાન છે.

૨૫૫૬૫ વાર વ્યતીત થાય છે, ત્યારે એક મન્વંતર થાય છે) શ્લોકાર્થઃ- "જે માણસો ઇંદ્રિયોનું ચિંતન કરે છે, તેઓ દેહપાત પછી દશ મન્વંતર સૂધી ઇંદ્રિયોમાં લીન રહે છે; અને જેઓ પાંચ ભૂતોની ભાવના કરે છે, તેઓ સો મન્વંતર સૂધી ભૂતોમાં લીન રહે છે; અને જેઓ અહંકારની ભાવના કરે છે, તેઓ હજાર મન્વંતર સૂધી અહંકારમાં; તથા જેઓ બુદ્ધિની ભાવના કરે છે, તેઓ દશ હજાર મન્વંતર સૂધી બુદ્ધિમાં; તથા જેઓ પ્રકૃતિની ભાવના કરે છે, તેઓ લાખ મન્વંતર સૂધી પ્રકૃતિમાં લીન રહે છે. તેઓ સર્વે ફરીથી સંસારમાં આવે છે. કેમકે તેઓનો એટલો જ અવધિ છે. એથી આ સર્વ સમાધિઓ સમાધિના આભાસરૂપ હોવાથી મુમુક્ષુઓએ તજવા લાયક છે, અને જે માણસ, અસંપ્રજ્ઞાત સમાધિથી સ્વસ્વરૂપભૂત નિર્ગુણ પુરુષને પામે છે, તેની કાળ સંખ્યા નથી. અર્થાત્, અસંપ્રજ્ઞાત સમાધિવાળા, ભવબંધનમાંથી મુક્ત થઇને ફરીથી આ સંસારમાં આવતા નથી."

અહીં પ્રસંગોપાત્ત એ પણ જાણી લેવું કે, આ પાદના ૧૪ મા સૂત્રમાં સમાધિના જે ગ્રાહ્ય, ગ્રહણ અને ગૃહીતૃ સમાપત્તિરૂપ ત્રણ ભેદ કહેલા છે, તે જ સમાધિઓના ગ્રાહ્યના સ્થૂળ અને સૂક્ષ્મ ભેદથી બે પ્રકાર માની, અહીં ચાર ભેદ નિરૂપણ કર્યા છે. કાંઈ એમ ન જાણવું કે, તે ત્રણ બીજા છે અને આ ચાર બીજા છે. તે માટે જ તે બંનેને એકઠા મેળવી અહીં અમે નિરૂપણ કર્યાં છે. ॥૧૭॥

એ પ્રકારે અપર વૈરાગ્યજન્ય સંપ્રજ્ઞાત સમાધિનું નિરૂપણ કરી હવે પરવૈરાગ્યજન્ય અસંપ્રજ્ઞાત સમાધિનું લક્ષણ કહે છે.

सू-विरामप्रत्ययाऽभ्यासपूर्वः संस्कारशेषोऽन्यः ॥ १८ ॥

સૂત્રાર્થઃ-સર્વ વૃત્તિઓના લયનો હેતુ જેપર વૈરાગ્ય, તેનો અભ્યાસ છે સાધન જેનું એવી, અને સાત્વિક સંસ્કારો જ જેમાં શેષ રહે છે એવી અસંપ્રજ્ઞાત સમાધિ જાણવી.

(**विरामप्रत्ययाऽभ्यासपूर्वः**) પૂર્વે કહેલી[1] ભાવનાના વિરામનો એટલે અભાવનો જે પ્રત્યયભૂત એટલે કારણભૂત પરવૈરાગ્ય, તે વૈરાગ્યનો

૧-વિરામ એ નામ પૂર્વોક્ત વિતર્કાદિ ભાવનાના ત્યાગનું છે, અને પ્રત્યય નામ કારણનું છે. તે પ્રમાણે વિરામનું કારણભૂત જે પરવૈરાગ્ય, તેનો અભ્યાસ છે પૂર્વ એટલે કારણ જેનું, તે **विरामप्रत्ययाऽभ्यासपूर्वः** થયું. એ જ આશયથી સૂત્રનો અર્થ કરે છેઃ-"પૂર્વે કહેલો" ઇત્યાદિથી.

અભ્યાસપૂર્વક જે (संस्कार शेषः) નિર્વૃત્તિક ચિત્તની કોઈ એક અવસ્થા, તે (अन्यः) સંપ્રજ્ઞાત સમાધિથી ભિન્ન, અસંપ્રજ્ઞાત છે.

અર્થાત્ જેમ ભુંજેલું બીજ, અંકુરોત્પાદનમાં અસમર્થ હોઇને કેવળ સ્વરૂપમાત્રે શેષ કહેવાય છે, તેમ નિરુદ્ધ થયેલું ચિત્ત પણ વૃત્તિ-રૂપ કાર્ય કરવામાં અસમર્થ હોઇને સંસ્કાર માત્ર શેષ કહેવાય છે. એ પ્રમાણે ચિત્તનું સંસ્કાર શેષરૂપથી રહેવું એ કાંઈ અનાયાસથી થતું નથી, પણ પરવૈરાગ્યના અભ્યાસથી જ પ્રાપ્ત થાય છે અને પરવૈરાગ્યના અભ્યાસથી જે સંસ્કાર શેષરૂપ નિખિલ વૃત્તિઓનો નિરોધ, તેને સં-પ્રજ્ઞાતથી જૂદી અસંપ્રજ્ઞાત સમાધિ જાણવી, એ ફલિતાર્થ છે.

ભાવ એ છે કે–જેમ સંપ્રજ્ઞાતમાં કોઈ ધ્યેયનું આલંબન (આશ્રય) રહે છે, તેમ અસંપ્રજ્ઞાત યોગમાં આલંબન રહેતું નથી. એથી નિરાલંબ પર વૈરાગ્ય જ તેનો ઉપાય હોઈ શકે છે, કાંઈ સાલંબ અપર વૈરાગ્ય હોઈ શકતો નથી, કેમકે અર્થશૂન્ય[1] હોવાથી પર વૈરાગ્ય જ અસંપ્રજ્ઞાત સરખો છે, અપર વૈરાગ્ય નથી.

એ પર વૈરાગ્યનો અભ્યાસ કરવાથી નિરાલંબ થયેલું ચિત્ત અભાવ પ્રાપ્તની તુલ્ય થાય છે એટલે નાશ પામે છે.

એ અસંપ્રજ્ઞાત યોગને જ નિર્બીજ સમાધિ કહે છે. કેમકે સંસારના બીજભૂત અવિદ્યાદિ કલેશોનો આ દશામાં અભાવ થઈ જાય છે.

એ દશાને પામેલો પુરુષ જ 'બ્રહ્મવિદ્વરિષ્ઠ,' એવા નામથી ભૂષિત થાય છે અને તે જ તુર્યગા નામ જ્ઞાનની સાતમી ભૂમિકા છે, તથા તે જ યોગની પરાકાષ્ઠા છે.

એ અવસ્થામાં યોગીનું ચિત્ત, વૃત્તિ વિનાનું થઈ કેવળ બ્રહ્મસ્વરૂપે જ[2] રહે છે, કાંઈ પોતાના ચંચળરૂપથી કે ધ્યેયાકારથી રહેતું નથી. એથી જ તેને નિરાલંબ સમાધિ કહે છે.

૧–અર્થશૂન્ય=ધ્યેયરૂપ આલંબન રહિત. અર્થાત્ કાર્યના સમાન રૂપ-વાળું જ કારણ હોઈ શકે છે, પણ વિભિન્નરૂપવાળું હોતું નથી. એથી ગુણ વૈતૃષ્ણ્યરૂપ પર વૈરાગ્ય જ અસંપ્રજ્ઞાનું કારણ હોઈ શકે છે, પણ અપર વૈરાગ્ય, કારણ હોઈ શકતું નથી. કેમકે તે વિરૂપ છે.

૨–"मनसो वृत्तिशून्यस्य ब्रह्माकारतया स्थितिः । असंप्रज्ञातनामासौ समाधिर-भिधीयते॥" વગેરે વચનોનો ભાવ એવો છે કે, વૃત્તિરહિત ચિત્તનું બ્રહ્મસ્વરૂપે રહેવું, તેનું નામ અસંપ્રજ્ઞાત છે.

એ સઘળી પૂર્વોક્ત વૃત્તિઓનો નિરોધ બે પ્રકારનો છે. એક ઉપાય પ્રત્યય જે હવે પછી કહેવાશે, તે શ્રદ્ધા વગેરે ઉપાયથી પેદા થનાર; અને બીજો ભવ પ્રત્યય, અર્થાત્ અનાત્મભૂત પદાર્થમાં આત્મત્વ બુદ્ધિ થવારૂપી અજ્ઞાનથી પેદા થનાર. આ બંનેમાંથી જે ઉપાય પ્રત્યય નિરોધ છે, તે યોગીઓને થાય છે, અને તે જ મુક્તિનો ઉપાય હોવાથી મુમુક્ષુને ઉપાદેય (ગ્રાહ્ય) છે. તે બાબત આવતા ૨૦ મા સૂત્રથી કહેવાશે.

હવે યોગીઓને તજવા યોગ્ય જે ભવ પ્રત્યય નિરોધ, તે કયા પુરુષોને થાય છે, તેનું નિરૂપણ કરે છે.

सू–भवप्रत्ययो विदेहप्रकृतिलयानाम् ॥१९॥

સૂત્રાર્થઃ–ભવ પ્રત્યય નામની સમાધિ વિદેહ યોગી અને પ્રકૃતિ લય યોગીને સિદ્ધ થાય છે.

વિદેહ અને પ્રકૃતિ લયોને જે વૃત્તિ નિરોધ પ્રાપ્ત થાય છે, તે ભવ પ્રત્યય અર્થાત્ અજ્ઞાનજન્ય છે. ભવ નામ સંસારનું છે, અને સંસારનું કારણ અજ્ઞાન[1] છે, તથા સંસાર નામ જન્મમરણના પ્રવાહનું છે, અને ભવ (સંસાર)નો જે પ્રત્યય=કારણ; વા ભવ (અજ્ઞાન)જ છે, પ્રત્યય (કારણ) જેનું, તે 'ભવ પ્રત્યય' કહેવાય છે.

એટલે કે, વિદેહ અને પ્રકૃતિ લયવાળાને હોવાવાળો જે નિરોધ, તે અજ્ઞાનજન્ય તથા જન્મમરણનું કારણ છે. અર્થાત્ તે, મુક્તિનો ઉપાય નથી, એ સાર છે.

ભાવાર્થ એ છે કે–જે માણસ ભૂત અથવા ઇંદ્રિયોમાંથી કોઈ એક પદાર્થમાં આત્માપણાની ભાવના કરીને તેનું જ સમાધિમાં આલંબન કરી ધ્યાન કરે છે, તે વિદેહ કહેવાય છે, કેમકે તે દેહપાત પછી ભૂત વા ઇંદ્રિયોમાં લીન હોવાથી દેહરહિત થઈ જાય છે અને જે પુરુષ, પ્રકૃતિ મહત્તત્ત્વ અહંકાર અને પંચતન્માત્રાઓમાંથી કોઈ એક પદાર્થમાં આત્મભાવના કરી તેનું જ સમાધિમાં આલંબન કરે છે, તે પ્રકૃતિલય કહેવાય છે; કેમકે તે દેહપાત પછી પ્રકૃતિમાં લીન થાય છે.

૧–भवंति=जायंते जतवोऽस्याम् इति भवोऽविद्या એ વાચસ્પતિમિશ્રના લેખ અનુસારે ભવ નામ અજ્ઞાનનું પણ છે, એ આશયથી "સંસારનું કારણ અજ્ઞાન એમ કહેલું છે. ઉત્પન્ન થાય છે પ્રાણી જે નિમિત્તથી વા જેના હોવાથી તે ભવ કહેવાય છે, એ વાચસ્પતિમિશ્રના વાક્યનો અર્થ છે. અવિદ્યાથી જ જન્મમરણ હોવાથી અવિદ્યા જ અહીં ભવ પદની વાચ્ય છે, એ સાર છે.

એ બંને જ્યાં સૂધી પોતપોતાના ધ્યેયમાં લીન રહે છે, ત્યાં સૂધી શરીર-ઇંદ્રિય-વિષય-સંયોગના અભાવથી તેની ચિત્તવૃત્તિઓ નિરુદ્ધ રહે છે. લય સમયમાં હોનાર પૂર્વોક્ત જે ચિત્તવૃત્તિનિરોધ, તે ભવપ્રત્યય કહેવાય છે. અર્થાત્ પ્રકૃતિ વગેરે અનાત્મવસ્તુવિષયક આત્મત્વજ્ઞાનરૂપ અજ્ઞાનથી પેદા થનાર છે, અને જન્મમરણનું કારણ છે. કેમકે અવધિ પછી પાછું તેમનું સંસારમાં આવવું થાય છે. કોની ભાવના કરનાર કેટલા કાળ પછી લયાવસ્થાને ત્યાગી સંસારમાં આવે છે, તે પૂર્વે પૃષ્ઠ ૬૦ માં સ્પષ્ટ કહેલું છે.

પૂર્વે[1] કહેલો વિદેહ સંજ્ઞાવાળો દેવ, સંસ્કાર માત્ર શેષ ચિત્તથી લયાવસ્થામાં કૈવલ્યપદના સરખું[2] પદ અનુભવ કરતો, અવધિ આવ્યા પછી તેવી રીતના સંસ્કાર વિપાકને[3] અતિક્રમણ કરી લે છે. અર્થાત્ પાછો સંસારમાં આવે છે અને પ્રકૃતિલય પણ પ્રકૃતિમાં અધિકાર સહિત[4] ચિત્તના લયકાળમાં કૈવલ્યપદના સરખું પદ અનુભવે છે, પણ તે કૈવલ્ય પદ સરખા પદનો અનુભવ પણ, તેટલો કાળ જ થાય છે કે, જેટલો કાળ ચિત્ત, અધિકારના જોરથી પ્રકૃતિથી વિભિન્ન થઈ સંસારમાં આગમનશીલ થતું નથી.

અહીં એટલું વિશેષ એ પણ જાણી લેવું કે, જે વિવેકજ્ઞાનયુક્ત થયેલું ચિત્ત લયભાવને પામે છે, તે નિરધિકાર હોવાથી સંસારથી વિમુક્ત થઈ જાય છે, અને જે ચિત્ત વિવેકજ્ઞાનથી રહિત હોય છે, તે ચિત્ત સાધિકાર હોવાથી સંસારમાં આવે છે.

આ પ્રમાણે વિદેહલય અને પ્રકૃતિલય યોગી વિવેકજ્ઞાન શૂન્ય હોવાથી તે પણ સાધિકાર ચિત્તવાળા છે. એથી જેમ વર્ષાકાળ આવવાથી

૧–એ પ્રમાણે સૂત્રના અર્થનું નિરૂપણ કરી હવે "ते हि स्वसंस्कारमात्रोपयोगेन चित्तेन कैवल्यपदमिवाऽनुभवंतः" ઇત્યાદિ ભાષ્યનો અનુવાદ કરતાં "એ પૂર્વે કહેલો" ઇત્યાદિ કહે છે.

૨–અગર જો કે અધિકાર વિશિષ્ટચિત્તના સદ્ભાવથી પ્રકૃતિલયપદ કૈવલ્યથી વિલક્ષણ છે, તોપણ તેમાં વૃત્તિઓનો અભાવ હોવાથી કૈવલ્યની બરોબર તેને કહેલો છે, એથી તે સરખું કહેલું છે.

૩–વિપાક નામ ફળનું છે, અર્થાત્ જે ભાવનાજન્યસંસ્કારથી પ્રકૃતિની લયતા પ્રાપ્ત થઈ હતી, તે સંસ્કારના ફળનો ભોગ કરી ફરી સંસારમાં આવે છે.

૪–જે ચિત્તમાં વિવેકજ્ઞાનનો ઉદય થયો નથી, તે ચિત્ત અધિકારસહિત કહેવાય છે.

દેડકાં વગેરેનો દેહ જે મૃત્તિકાભાવને પામેલો છે છતાં પણ તે પાછો મૃત્તિકાથી વિયુક્ત થઈ દેડકાના ભાવને પામે છે; તેમ પ્રકૃતિમાં લયભાવ પામેલું ચિત્ત પણ પોતાની અવધિ પછી સંસારોન્મુખ થઈ જાય છે.

આવી રીતે પ્રકૃતિલયરૂપ નિરોધ, જન્મમરણનો નાશક ન હોવાથી તે, મુમુક્ષુઓને હેય (તજવા લાયક) છે, એ સૂત્ર અને ભાષ્યકારનું રહસ્ય છે, અને એ જ તત્ત્વ (નિષ્કર્ષ) છે.

અગર[1] જો કે વિજ્ઞાનભિક્ષુએ અહીં 'ભવ' શબ્દને જન્માર્થક માની "વિદેહ પ્રકૃતિલયોને સાધનના અનુષ્ઠાન વિના જ કેવળ જન્મમાત્રનિમિત્તથી જ અસંપ્રજ્ઞાતયોગનો લાભ થઈ જાય છે, અને અધિકાર સમાપ્તિ પછી વિદેહ અને પ્રકૃતિલય મુક્ત થઈ જાય છે."[2] એમ જે કહેલું છે તે પ્રકૃત ભાષ્યના અર્થના અજ્ઞાનને લીધે જ કહેલું હોવાથી અયુક્ત જાણવું.

અર્થાત્, આ સૂત્રના અવતરણમાં ભાષ્યકારે "उपायप्रत्ययो योगिनां भवति" એ વાકયથી "યોગીઓનો નિરોધ પરવૈરાગ્યાદિ ઉપાયથી થાય છે." એવું વિશેષ પ્રકારે કહેવાથી બીજો જે ભવ પ્રત્યયનિરોધ છે તે, યોગીઓને ઉપાદેય નથી, પરંતુ હેય છે, એમ સ્પષ્ટ રીતે સૂચવ્યું છે.

તે આ ઉપાયપ્રત્યયની ઉપાદેયતા અને ભવપ્રત્યયની હેયતા, કૈવલ્ય જનકત્વ અને કૈવલ્ય અજનકત્વરૂપ કારણથી જ ઉત્પન્ન થઈ શકે છે, બીજી રીતે નહિ. કેમકે જો બંને નિરોધ અસંપ્રજ્ઞાત પદના અર્થમાં અને કૈવલ્યજનક હોત તો એકનું યોગીઓથી ઉપાદેયપણું અને એકનું હેયપણું, એવો વિભાગ ઠીક થઈ શકત નહિ. તે આ ભાષ્યોક્ત વિભાગ "विदेहाः प्रकृतिलया अपि मुच्यंते" એ વચનથી, વિદેહ અને પ્રકૃતિલયની મુક્તિ કહેનાર વિજ્ઞાનભિક્ષુના મતથી બની શકતા નથી. કેમકે એ મતમાં બંને નિરોધ, મુક્તિના હેતુ હોવાથી એકને હેય અને બીજાને ઉપાદેય કહેવું સંભવે નહિ. અને અમારા મતથી તો પ્રકૃત્યાદિ અનાત્મ પદાર્થ વિષયક આત્મત્વરૂપ અજ્ઞાનજન્ય જે વિદેહ પ્રકૃતિલયોનો નિરોધ છે તે મુક્તિનો હેતુ ન હોવાથી હેય છે, અને પર વૈરાગ્યાદિ ઉપાયજન્ય જે

૧–હવે શ્રી સ્વામીજી પ્રસંગોપાત્ત યોગવાર્તિકની સમાલોચના કરે છે; "અગર જો કે" ઇત્યાદિથી.

૨–"महदादिदेवानां साधनानुष्ठानं विनैवाऽसंप्रज्ञातयोगो जन्मनिमित्तको भवति" "विदेहाः प्रकृतिलया अपि अधिकार समाप्तौ मुच्यंते" એ યોગવાર્તિકનો આ અનુવાદ છે.

ઉપાયપ્રત્યયસંજ્ઞક અસંપ્રજ્ઞાત છે, તે મુક્તિનો હેતુ હોવાથી યોગીઓને ઉપાદેય છે, એવો ભાષ્યોક્ત વિભાગ ખરેખર યુક્ત છે.

જ્યારે ભાષ્યકારે (**कैवल्यपदमिवानुभवंति यावन्नपुनरावर्ततेऽधिकारवशाच्चित्तम्** એ વાક્યથી) "જ્યાં સૂધી અધિકારના જોરથી ચિત્તની પુનરાવૃત્તિ થતી નથી, ત્યાં સૂધી તે કૈવલ્યપદનો અનુભવ કરે છે." એવી રીતે સ્પષ્ટ જ વિદેહપ્રકૃતિલયોની મુક્તિનો અભાવ કહીને પુનરાવૃત્તિ નિરૂપણ કરેલી છે, તો પછી પ્રકૃતિલયોને મુક્ત કહેવામાં વિજ્ઞાનભિક્ષુનો પ્રમાદ નહિ તો શું કહેવાય?

તેમ આ પાદના ૨૪ મા સૂત્રમાં જ્યારે ભાષ્યકારે સ્પષ્ટ જ (**प्रकृतिलीनस्योत्तरा बंध कोटिः** એ વાક્યથી) "પ્રકૃતિલયોને ફરીથી સંસારમાં આગમનને લીધે બંધન છે," આમ કહ્યું છે, તો પછી પ્રકૃતિલયોને અહીં મુક્ત કહેવામાં વિજ્ઞાનભિક્ષુને અસ્થાને કેમ ભ્રમ થયો હશે?

આશ્ચર્ય તો એ છે કે, અહીં પ્રકૃતિલયોની મુક્તિ માનીને પાછું (**प्रकृतिलया अपि पुनराविर्भवंति**[1] એ વાક્યથી) સાંખ્ય પ્રવચનભાષ્યમાં પોતે જ પ્રકૃતિલયોની પુનરાવૃત્તિ કેમ માની?

એ પ્રમાણે ભાષ્યનાં વચન સાથે તથા પોતાનાં વચન સાથે વિરોધ હોવાથી પ્રકૃતિલયોની મુક્તિ થાય છે એવું વિજ્ઞાનભિક્ષુનું કહેવું અયોગ્ય છે, એમ સિદ્ધ થાય છે.

"ભવ નામ અજ્ઞાનનું છે, એ વાચસ્પતિ મિશ્રની ઉક્તિ અસંગત છે. કેમકે અજ્ઞાનીઓને પરવૈરાગ્ય હોવાની સંભાવના નથી." એમ જે વિજ્ઞાનભિક્ષુએ કહેલું છે,[2] તે પણ સ્થૂલ દૃષ્ટિવાળું હોવાથી તજવા યોગ્ય છે.

અર્થાત્ કાંઈ ભાષ્યકારે પરવૈરાગ્ય વગેરે ઉપાયથી થનાર અસંપ્રજ્ઞાતના બે પ્રકાર કહેલા નથી, કે જેથી વિજ્ઞાનભિક્ષુનો વાચસ્પતિ મિશ્ર ઉપર આક્ષેપ હોય; પણ સંસ્કાર માત્ર શેષ એવો જે નિખિલવૃત્તિનો નિરોધ તેના બે પ્રકાર કહેલા છે. તેમાં વિદેહ અને પ્રકૃતિલયોને જે, (તે તે) લયપ્રયુક્ત નિરોધ હોય છે, તે અજ્ઞાનપૂર્વક હોવાથી "ભવપ્રત્યય" છે, અને પરવૈરાગ્યાદિ ઉપાયોથી થનારા નિરોધને "ઉપાયપ્રત્યય" કહે

---

૧ ત્રીજા અધ્યાયના ૫૪ મા સૂત્રનું સાંખ્ય પ્રવચન ભાષ્ય જુઓ.

૨ "भवोऽविद्येति वाचस्पतिमिश्रोक्तमसंगतं परवैराग्यस्याऽविदुष्यसंभवात्" એ વિજ્ઞાનભિક્ષુનો લેખ છે.

છે. આ પ્રમાણે ભવપ્રત્યય વૈરાગ્યજન્ય ન હોવાથી ભવ શબ્દનો અજ્ઞાન અર્થ માનવામાં કંઈ દોષ નથી, પણ કેવળ દ્વેષ માત્ર જ છે.[1]

અહીં એ પણ જાણી લેવું ઉચિત છે કે, અગાઉ કહેલા ગ્રાહ્ય-ગ્રહણ સમાપત્તિવાળા યોગીઓનું નામ વિદેહ, અને ગૃહીતૃ સમાપત્તિવાળા યોગીઓનું નામ પ્રકૃતિલય છે. એ બંને પુનરાવૃત્તિશીલ છે. આ સર્વ વાયુપુરાણના વચનથી પૂર્વે કહી ગયા છીએ.

એથી ભવપ્રત્યય નિરોધ પુનરાવૃત્તિનો હેતુ હોવાથી તજવા યોગ્ય જાણવો. ॥૧૯॥

એ પ્રમાણે ભવપ્રત્યયનું નિરૂપણ કરીને હવે યોગીઓને ઉપાદેય (ગ્રહણ કરવા યોગ્ય) જે ઉપાય પ્રત્યય નિરોધ, તેનું નિરૂપણ કરે છે.

सू—श्रद्धा—वीर्य—स्मृति—समाधि—प्रज्ञापूर्वक इतरेषाम् ॥ २० ॥

સૂત્રાર્થઃ-શ્રદ્ધા, વીર્ય, સ્મૃતિ, સમાધિ, પ્રજ્ઞા—એ પાંચ છે. પૂર્વ પૂર્વ સાધનો જેમાં છે એવો આ ઉપાયપ્રત્યય સમાધિ બીજા (ઉંચ કોટીના) યોગીઓને લાગે છે.

(**इतरेषाम**) વિદેહ પ્રકૃતિલયોથી જુદા યોગીઓને જે સંસ્કારશેષ નિરોધ થાય છે, (તે **श्रद्धा—वीर्य—स्मृति—समाधि—प्रज्ञापूर्वकः**) શ્રદ્ધા વગેરે ઉપાય પૂર્વક અર્થાત્ **શ્રદ્ધા** વગેરે ઉપાયોથી થાય છે.

પ્રથમ[2] યોગને માટે **શ્રદ્ધા** જોઈએ, શ્રદ્ધા એ ચિત્તની પ્રસન્નતાનું નામ છે. તે શ્રદ્ધાને જ અભિરુચિ વા ઉત્કટ ઇચ્છા પણ કહે છે. તે શ્રદ્ધા, શાસ્ત્ર, આચાર્ય વગેરેના ઉપદેશથી જાણેલી વસ્તુ વિશેની હોય છે, અન્ય વિષયની હોતી નથી. તે શ્રદ્ધા જ, માતાની પેઠે કલ્યાણકારિણી થઈ અનર્થપાતથી યોગીઓની રક્ષા કરે છે. શ્રદ્ધાયુક્ત માણસનો, જે વિવેકાર્થે યોગ

૧—आशंका જો ભવપ્રત્યય નિરોધને પરવૈરાગ્યજન્ય કહ્યો હોત, તો આપ એમ કહી શકત કે, "અજ્ઞાનીઓને ભવપ્રત્યય હોય છે, તો તેમાં પરવૈરાગ્ય ક્યાંથી?" समाधान—ના, અમે તેમ કહ્યું નથી. પણ લયપ્રયુક્તને ભવપ્રત્યય અને ઉપાયજન્યને ઉપાયપ્રત્યય કહીએ છીએ, તેથી કાંઈ દોષ નથી. જો ભવપ્રત્યયમાં પરવૈરાગ્યની અપેક્ષા માનો, તો પછી ઉપાયપ્રત્યય કરતાં તેમાં વિલક્ષણતા શી? કેમકે બંને જ પરવૈરાગ્યજન્ય છે, તેથી જ ભવપ્રત્યયમાં પરવૈરાગ્યની અપેક્ષા નથી, એ સિદ્ધ થયું. એવો ભાષ્યનો ભાવ છે.

૨—(श्रद्धा=चेतसःसंप्रसादः) ઇત્યાદિ ભાષ્યવચન અનુસારે શ્રદ્ધા વગેરેનું લક્ષણ કહે છે. "શ્રદ્ધા" ઇત્યાદિથી.

વિષયક ઉત્સાહ (એક જાતનો પ્રયત્ન) તે વીર્ય કહેવાય છે. એ વીર્ય પણ શ્રદ્ધાવડે જ ઉત્પન્ન થાય છે, સ્વતઃ નહિ. એ વીર્યને જ ધારણા કહે છે. અને શ્રદ્ધાથી પેદા થયેલું વીર્ય અને એ વીર્યવાળા પુરુષને ધ્યેય વસ્તુ સંબંધી વૃત્તિની એકતાનતારૂપ જે ધ્યાન ઉપસ્થિત થાય છે, તેનું નામ અહીં **સ્મૃતિ** જાણવું. આ સ્મૃતિ નામના ધ્યાનવડે જ યોગીનું ચિત્ત, વિક્ષેપરહિત થયેલું સમાહિત (સંપ્રજ્ઞાતનિષ્ઠ) થઈ જાય છે. અને એ સમાધિનિષ્ઠ ચિત્તમાં પછી પ્રજ્ઞાવિવેક (જ્ઞાનનું આધિક્ય) ઉત્પન્ન થાય છે. એ જ્ઞાનના આધિક્યથી જ યોગીને વસ્તુનું યથાર્થ જ્ઞાન થાય છે. પછી એ વિવેકજ્ઞાનના અભ્યાસથી વિવેકજ્ઞાન વિષયક વૈરાગ્યરૂપ જ્ઞાનપ્રસાદ માત્ર પરવૈરાગ્યનો ઉદય થવાથી અસંપ્રજ્ઞાત સમાધિ થાય છે.

એટલી બધી સાધનસંપત્તિ થવાથી અસંપ્રજ્ઞાત સમાધિનો લાભ થાય છે.

ભાવાર્થ એ છે કે-શ્રદ્ધા, વીર્ય=ધારણા, સ્મૃતિ=ધ્યાન, સંપ્રજ્ઞાત સમાધિ, અને પ્રજ્ઞાજ્ઞાન પ્રસાદ માત્ર પરવૈરાગ્ય, એ ઉપાયોથી પેદા થતો જે સંસ્કાર શેષ નિરોધ, તે યોગીઓને માટે ઉપાદેય ઉપાયપ્રત્યય અસંપ્રજ્ઞાત કહેવાય છે.[1] ॥૨૦॥

પૂર્વજન્મનો પુણ્ય પરિપાક મંદ, મધ્યમ અને તીવ્ર હોવાથી ઉપર કહેલા શ્રદ્ધાદિ ઉપાય કોઈ પુરુષને મૃદુ, કોઇને મધ્યમ અને કોઇને તીવ્ર થાય છે. એ હેતુથી કોઈ યોગી મૃદુ ઉપાય, કોઈ મધ્યમ ઉપાય અને કોઈ યોગી અધિક ઉપાયવાળો હોય છે.[2]

એ ત્રણે યોગીઓમાંથી મૃદુ ઉપાયવાળા યોગી પણ ત્રણ પ્રકારના છે. કોઈ મૃદુસંવેગ,[3] અર્થાત્ મંદવૈરાગ્યવાળા; કોઈ મધ્યસંવેગ, અર્થાત્

૧–અહીં ૧૮ મા સૂત્રમાં જે અસંપ્રજ્ઞાતરૂપ અર્થનું વાચક "अन्यः" એ પદ છે, તે પદનો ૧૯, ૨૦, ૨૧, ૨૨, ૨૩ મા સૂત્રોમાં અન્વય જાણવો. એથી જ એ સઘળા સૂત્રોમાં અસંપ્રજ્ઞાત પદનો લાભ થાય છે, એમ જાણવું

૨–મૃદુ નામ કોમળ, શિથિલ અલ્પ વા મંદનું છે. અને જે તીવ્ર ન હોય, વા મંદ ન હોય, પણ સામાન્ય હોય, તેને મધ્યમ કહે છે. અને અધિક નામ તીવ્રનું કે દઢનું છે. પૂર્વજન્મના સંસ્કાર વશથી કોઈ ધીમે ધીમે ઉપાયોનું અનુષ્ઠાન કરે છે, કોઈ સામાન્ય ભાવે અનુષ્ઠાન કરે છે અને કોઈ દઢ થઇને તીવ્રરૂપથી અનુષ્ઠાન કરે છે, એથી ત્રણ ભેદ છે.

૩–સંવેગ નામ વૈરાગ્યનું છે. અગર જોકે વિજ્ઞાનભિક્ષુ વગેરેએ ઉપાયાનુ-

સામાન્યવૈરાગ્યવાળા; અને કોઈ અધિમાત્રસંવેગ, અર્થાત્ તીવ્રવૈરાગ્યવાળા-એવી રીતે વૈરાગ્યના તારતમ્યથી મધ્યમ ઉપાય અને અધિમાત્ર ઉપાયવાળા યોગીઓ પણ ત્રણ ત્રણ પ્રકારના છે એમ જાણી લેવું.

એ પ્રમાણે સઘળા મળી યોગીઓના એકંદર નવ ભેદ[1] થયા. જેમકે ૧ મૃદુ ઉપાય, મૃદુ સંવેગ, ૨ મૃદુ ઉપાય મધ્ય સંવેગ, ૩ મૃદુ ઉપાય તીવ્રસંવેગ, ૪ મધ્યોપાય મૃદુસંવેગ, ૫ મધ્યોપાય મધ્યસંવેગ, ૬ મધ્યોપાય તીવ્રસંવેગ, ૭ અધિકોપાય મૃદુસંવેગ, ૮ અધિકોપાય મધ્યસંવેગ, ૯ અધિકોપાય તીવ્રસંવેગ.

એ નવમાંથી છેલ્લા યોગીઓને સર્વ કરતાં જલદી સમાધિલાભ થાય છે, અને બીજાઓને ઉપાયાનુસારે કાંઈ કાંઈ વિલંબથી સમાધિનો લાભ થાય છે.

એજ હવે સૂત્રકાર કહે છે.

सू-तीव्रसंवेगानामासन्नः ॥ २१ ॥

સૂત્રાર્થઃ-તીવ્ર વૈરાગ્યવાળા પુરુષને સમાધિ સમીપ છે.

આ સૂત્રના આદિમાં ભાષ્યકારે (**अधिमात्रोपायानाम**) એટલો વધારે પાઠ કર્યો છે. તેથી એવો અર્થ થાય છે કે, જે અધિક ઉપાયવાળો (દૃઢ શ્રદ્ધાદિ ઉપાયવાળો) તીવ્રસંવેગ (તીવ્રવૈરાગ્યયુક્ત) છે, તેઓને (**आसन्नः**) જલદી જ સમાધિનો લાભ તથા સમાધિનું ફળ થાય છે.

તેઓના કરતાં અધિકોપાય મધ્યસંવેગ યોગીઓને સમાધિલાભમાં કાંઇક વિલંબ થાય છે; અને તેઓના કરતાં અધિકોપાય મૃદુસંવેગ યોગીઓને સમાધિલાભમાં કાંઈ વિલંબ થાય છે. ઇત્યાદિ ઊહાપોહથી જાણી લેવું. ॥૨૧॥

હવે તીવ્ર વૈરાગ્યના પણ ત્રણ ભેદ માનીને તેમાં વિશેષ કહે છે.

सू-मृदुमध्याऽधिमात्रत्वात् ततोऽपि विशेषः ॥ २२ ॥

સૂત્રાર્થઃ-મૃદુ, મધ્ય અને અધિમાત્રપણાને લીધે તીવ્ર સંવેગવાળા યોગીને વિશેષતઃ સમાધિ સાધ્ય છે.

ધ્યાનમાં શીઘ્રતાનું નામ સંવેગ કહેલુ છે, તે અધિકોપાય કહેવાથી જ શીઘ્રતાનો બોધ થાય છે માટે અસંગત જાણવું. એટલા માટે સંવેગ નામ વૈરાગ્યનું જ જાણવું.

૧-પ્રથમ શ્રદ્ધા, વીર્ય, સ્મૃતિ, સમાધિરૂપ ઉપાયો, મંદ, મધ્યમ, તીવ્ર હોવાથી યોગીઓના ત્રણ ભેદ કહ્યા. પાછા વૈરાગ્યના મંદ, મધ્યમ, અને તીવ્ર ભેદથી એક એકના ત્રણ ભેદ કહ્યા. એવી રીતે બધા મળીને નવ થયા તે ગણાવે છે "એ પ્રમાણે" ઇત્યાદિ.

તીવ્ર વૈરાગ્ય પણ (मृदुमध्याऽधिमात्रत्वात्) મંદ, મધ્ય, ને તીવ્રના ભેદથી ત્રણ પ્રકારનો છે (ततोऽपि) તે તીવ્રત્વાદિ વિશેષને લીધે પણ (विशेषः) સમાધિના લાભમાં વિશેષ હોય છે.

અર્થાત મધ્ય વૈરાગ્ય વિશિષ્ટ અધિમાત્રોપાય યોગીઓના કરતાં મૃદુતીવ્ર વૈરાગ્ય વિશિષ્ટ અધિમાત્રોપાય યોગીઓને સમાધિનો લાભ ઝટ થાય છે, અને તેમના કરતાં મધ્ય તીવ્ર વૈરાગ્યવાળા અધિકોપાય યોગીઓને શીઘ્રતર (ઘણો વહેલો) સમાધિનો લાભ થાય છે; અને તેના કરતાં અધિમાત્રતીવ્ર વૈરાગ્યવિશિષ્ટ અધિકોપાય યોગીઓને શીઘ્રતમ (ઘણો જ વહેલો) સમાધિનો લાભ થાય છે.

આ પ્રમાણે યોગીઓએ અધિક ઉપાય અને અધિક તીવ્ર વૈરાગ્યના લાભમાં જ યત્નશીલ થવું ઉચિત છે. અર્થાત્ આળસ ન કરવું, એ તાત્પર્ય છે. ॥ ૨૨ ॥

હવે શું? ઉપર કહેલા ઉપાયોથી જ અત્યંત શીઘ્ર સમાધિનો લાભ થાય છે, કે બીજો પણ કોઈ સહેલો ઉપાય છે, કે જેથી સમાધિનો લાભ થાય? એ આકાંક્ષાના નિવારણ અર્થે સૂત્રકાર સહેલો ઉપાય કહે છે.

सू–ईश्वरप्रणिधानाद्वा ॥ २३ ॥

સૂત્રાર્થઃ–અથવા ઈશ્વરનું પ્રણિધાન કરવાથી ચિત્તવૃત્તિનો નિરોધ થાય છે.

(वा) અથવા, (ईश्वरप्रणिधानात्) ઈશ્વરની ઉપાસનાથી પણ અત્યંત શીઘ્ર સમાધિનો લાભ થાય છે.[1]

અર્થાત્ કાયિક, વાચિક, માનસિક સર્વ વ્યાપારો ઈશ્વરને આધીન જાણવા, અને જે કાર્ય કરવું, તેના ફળ ઉપર દૃષ્ટિ ન રાખી શારીરિક સુખનું અનુસંધાન ન કરી, તે સર્વ કર્મોનાં ફળને ઈશ્વરપ્રતિ સમર્પણ કરવાં, તથા ઈશ્વરના ધ્યાનમાં જ મગ્ન થઈ એકતાનથી ઈશ્વરના નામનું ચિંતન કરવું; એ સર્વ ઈશ્વર પ્રણિધાન કહેવાય છે, અને તે જ ભક્તિ છે.

એ ભક્તિ વિશેષથી પ્રસન્નતાપૂર્વક અભિમુખ થયેલા ઈશ્વર, અભિધ્યાનથી (સંકલ્પ માત્ર[2]થી) તે યોગી ઉપર અનુગ્રહ કરી દે છે. એ

૧–અહીં विशेषः એ પદનો પૂર્વસૂત્રથી અનુવર્તન કરી અર્થ કરે છે; "અત્યંતશીઘ્ર, સમાધિનો લાભ થાય છે" એ પ્રમાણે.

૨–"આ મારા ભક્તને શીઘ્ર જ સમાધિનો લાભ થઈ જાઓ" એવી રીતના સંકલ્પનું નામ અભિધ્યાન છે, માટે કહે છે, "સંકલ્પ માત્રથી." ઇતિ.

અભિધ્યાનરૂપ ઈશ્વરાનુગ્રહથી પણ અત્યંત જલદી જ સમાધિનો લાભ તથા સમાધિનું ફળ, યોગીને મળે છે.

શ્રી ભગવદ્ગીતામાં પણ अनन्याश्चिन्तयंतो मां ये जनाः पर्युपासते । तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम्" એ વચનથી ઈશ્વર પ્રણિધાનને યોગક્ષેમનું નિર્વાહક કહેલું[1] છે. ॥ ૨૩ ॥

પ્રધાન અને પુરુષથી ભિન્ન બીજો કોણ ઈશ્વર છે, કે જેના પ્રણિધાનથી જલદી સમાધિનો લાભ થાય છે? એ સાંખ્ય મતાનુયાયી[2]ની આશંકાના નિવારણ માટે સૂત્રકાર ઈશ્વરનું લક્ષણ કહે છે.

सू—क्लेशकर्मविपाकाऽऽशयैरपरामृष्टः पुरुषविशेष ईश्वरः ॥ २४ ॥

સૂત્રાર્થઃ—કલેશ, કર્મ, વિપાક અને આશયોથી ત્રણે કાળમાં સંસર્ગરહિત એવો જે પુરુષ વિશેષ તે ઈશ્વર કહેવાય.

(क्लेश) હવે પછી જે કહેવાશે તે અવિદ્યાદિ પંચકલેશો (कर्म) રાગાદિ કલેશથી પેદા થતાં શુભાશુભ કર્મ, (विपाक) ધર્માધર્મથી પેદા થનાર સુખદુઃખરૂપ ફલ, (आशय) સુખદુઃખના ભોગથી પેદા થનાર વિવિધ વાસના. એ ચારે પદાર્થોથી (अपरामृष्टः) અસંબદ્ધ, જે (पुरुषःविशेष) બીજા સર્વ પુરુષોથી વિશેષ (વિભિન્ન, ઉત્તમ) ચેતન, તે ઈશ્વર છે.

અર્થાત્ ચિત્તની સાથે એકરૂપતાપન્ન જીવનો જે અવિદ્યા આદિ ઔપાધિક ધર્મ છે, તે ધર્મોના સંબંધથી રહિત જે વિશુદ્ધ સત્ત્વગુણ પ્રધાન ચિત્તોપાધિક, નિત્ય જ્ઞાનૈશ્વર્યાદિ ધર્મયુક્ત, સત્યકામ, સત્યસંકલ્પ ચેતન, તેનું નામ ઈશ્વર અને તે સર્વ પુરુષોથી વિશેષ છે.

૧—અપ્રાપ્ત વસ્તુની પ્રાપ્તિ કરી દેવી, તેનું નામ યોગ છે; અને પ્રાપ્ત થયેલી વસ્તુનું રક્ષણ કરી તેનો નાશ ન થવા દેવો, તેનું નામ ક્ષેમ છે. જે માણસો અનન્ય (એકતાન) થયેલા મારું ધ્યાન કરી મારી ઉપાસના કરે છે, તે નિત્ય અભિયુક્ત=ધ્યાનનિષ્ઠ માણસોનો યોગક્ષેમ હું વહું છું. (પ્રાપ્ત કરું છું.) એ શ્રી ભગવદ્ વચનનો અર્થ છે. (અધ્યાય-૯ શ્લો-૨૨).

૨—આ શંકા કરવાવાળા નિરીશ્વરવાદી સાંખ્યનો એ આશય છે કે—ચેતન અને જડ એ બંનેથી જ સઘળું જગત્ વ્યાપ્ત છે. જો ઈશ્વર, ચેતન છે, તો ચિતિશક્તિ, અસંગ અને ઉદાસીન હોવાથી ભક્તો ઉપર તેનો અનુગ્રહ કેવો! અને જો જડ હોય તો પ્રકૃતિ વા પ્રકૃતિ કાર્યોમાંથી જ કોઈએક ઈશ્વર કહેવાશે. કેમકે પદાર્થાંતર માનવું એ અપ્રામાણિક છે. એ પ્રમાણે જડ હોવાથી તેને ચેતનના ધર્મ સાથે સંબંધ કેવો? એટલે કે પ્રકૃતિ પુરુષ સિવાય ત્રીજો ઈશ્વર માનવું, એ અયોગ્ય છે.

आशंका–લક્ષણ તેજ કહેવાય છે કે, જે અસાધારણ ધર્મ હોય; અને અસાધારણ ધર્મ એ છે કે, જે લક્ષ્યથી અન્યમાં ન રહીને કેવળ લક્ષ્યમાત્રમાં જ વિદ્યમાન રહે. માટે એ લક્ષણ જો ઈશ્વર માત્રમાં રહી અન્ય કોઈમાં વિદ્યમાન ન હોય, ત્યારે અસાધારણ ધર્મ હોવાથી લક્ષણ કહેવાય, બીજી રીતે નહિ. અને અહીં કલેશાદિ રાહિત્યરૂપી ઈશ્વરનું લક્ષણ, ઈશ્વર તથા પુરુષ એ બંનેમાં વર્ત્તવાથી અસાધારણ ધર્મપણાનો તેમાં સંભવ નથી. તેથી સારી રીતે એ લક્ષણ, અતિવ્યાપ્તિરૂપ દોષ-યુક્ત હોવાથી દુષ્ટ થાય છે. અર્થાત્, સાંખ્ય યોગ મતમાં કલેશાદિ સઘળા ધર્મોને ચિત્તનિષ્ઠ માનીને પુરુષને અસંગ માનવામાં આવે છે. જેમ ઈશ્વર કલેશાદિથી નિર્મુક્ત છે, તેમ પુરુષ પણ કલેશાદિથી વિમુક્ત જ છે. તે પ્રમાણે કલેશાદિ રાહિત્યરૂપ ધર્મનું લક્ષ્ય ઈશ્વરથી અન્ય અલક્ષ્ય પુરુષોમાં વર્તવાથી એ લક્ષણ અતિવ્યાપ્તિ દોષવાળું હોવાથી અસંગત છે.[1] અને ઈશ્વર તથા પુરુષો, સમાન હોવાથી ઈશ્વરને પુરુષોથી વિશેષ કહેવો એ કેવળ અયુક્ત જ છે.

समाधान–એ વાત સત્ય છે કે, ઈશ્વર અને પુરુષ એ બંને, સ્વાભાવિક કલેશાદિના સંબંધથી રહિત છે. પરંતુ તેમાં એટલું વિશેષ છે કે, પુરુષ અવિવેકથી ચિત્તને પોતાનાથી ભિન્ન ન જાણીને ઉપાધિભૂત ચિત્તનિષ્ઠ કલેશાદિથી બંધાઈ જાય છે, અને ઈશ્વર, વિવેકદ્વારા સદા કલેશથી મુક્ત જ રહે છે.

વળી ઔપાધિક કલેશોના સંબંધથી રહિત જે ચેતન, તે ઇશ્વર છે, એવું લક્ષણ નિર્દુષ્ટ થાય છે. કેમકે પુરુષોમાં ઔપાધિક કલેશોનો સંબંધ હોવાથી તે લક્ષણ ત્યાં ઘટતું નથી.

તાત્પર્ય એ છે કે–જેમ રાજા અને સેનાનો પરસ્પર સ્વસ્વામિભાવ સંબંધ હોવાથી સેનાએ કરેલા જય પરાજયનો, સ્વામીરૂપ રાજાને વિશે વ્યવહાર થાય છે; કેમકે તે તેના ફલનો ભોક્તા છે. એ પ્રમાણે ચિત્ત અને પુરુષનો પણ પરસ્પર સ્વસ્વામિભાવ સંબંધ હોવાથી ચિત્તમાં રહેલા અવિદ્યાદિ કલેશોનો પુરુષમાં વ્યવહાર થાય છે.[2] કેમકે તે તેના ફલનો ભોક્તા છે.

૧–પુરુષ વિશેષ કહેવાથી જ કલેશાદિ રહિતનો બોધ થઈ જાય છે, તો પછી કલેશાદિ રહિત વિશેષણ શા માટે? એ પણ એક દોષ જાણવો.

૨–જે પ્રમાણે યુદ્ધાદિદ્વારા રાજા ઉપર ઉપકાર કરવાથી સેનાને સ્વ, અને દ્રવ્યદાનાદિદ્વારા સેના ઉપર ઉપકાર કરવાથી રાજાને સ્વામી કહે છે. તે પ્રમાણે

આ પ્રમાણે પુરુષમાં જે ક્લેશાદિનો સંબંધ વા સુખાદિનો ભોગ હોય છે, તે સર્વે ચિત્તરૂપ ઉપાધિને લીધે હોવાથી ઔપાધિક જ છે, સ્વાભાવિક નથી. એથી જ કઠ ઉપનિષદ્‌માં "**आत्मेंद्रियमनोयुक्तं भोक्तेत्याहुर्मनीषिणः**"[1] એ શ્રુતિદ્વારા ઉપાધિના સંબંધથી પુરુષને ભોક્તા કહેલો છે. તે આ ઔપાધિક ક્લેશોનો સંબંધ, અવિવેકને લીધે હોવાથી વિવેકશાળી ઈશ્વરમાં તે સંભવતો નથી. એ જ ઔપાધિક ભોગના સંબંધનું ન હોવું, ઈશ્વરમાં પુરુષથી વિશેષ છે.

आशंका–જો ક્લેશાદિના[2] સંબંધથી રહિત જ ઈશ્વર કહેવાતો હોય, તો મુક્ત પુરુષ વા પ્રકૃતિલીન પુરુષ જ ઈશ્વર કેમ ન મનાય? કેમકે તે પણ ક્લેશાદિના સ્પર્શથી રહિત છે. એથી જ કપિલ મુનિએ ઈશ્વર પ્રતિપાદક શ્રુતિઓને "**मुक्तात्मनः प्रशंसा उपासासिद्धस्य वा**"[3] એવા સૂત્રથી મુક્ત અને સિદ્ધ પુરુષોના નિરુપણપરત્વે પ્રતિપાદન કરીને પછી તૃતીયાધ્યાયમાં "**स हि सर्ववित् सर्वस्य कर्ता**" "**ईदृशेश्वरसिद्धिः सिद्धा**"[4] એ સૂત્રોથી પ્રકૃતિલીનોને ઈશ્વર માની પ્રકૃતિ પુરુષથી વ્યતિરિક્ત ઈશ્વરનો અભાવ માન્યો છે. તેથી પુરુષ વિશેષનું કથન ફરી પણ અસંગત થાય છે. કારણ કે ઈશ્વર બદ્ધ પુરુષોથી વિશેષ છે, તોપણ મુક્ત પુરુષોથી વિશેષ છે જ નહિ.

ઇંદ્રિયોદ્વારા વિષયોનું ગ્રહણ કરી પુરુષપ્રતિ નિવેદન કરવાથી ચિત્તને સ્વ, અને સ્વસન્નિધિથી અચેતન ચિત્તને પણ ચેતન તુલ્ય કરવાનો ઉપકારક હોવાથી ચેતનને સ્વામી કહેવામાં આવે છે. એ પ્રમાણે પરસ્પર ઉપકાર્ય ઉપકારક ભાવ હોવાથી ચિત્તનો અને પુરુષનો સ્વસ્વામિભાવ સંબંધ જાણી લેવો.

૧–જ્ઞાની લોકો, શરીર, ઇંદ્રિય અને મનથી યુક્ત આત્માને ભોક્તા કહે છે, શુદ્ધને નહિ, એવો એ શ્રુતિનો અર્થ છે.

૨–**कैवल्यं प्राप्तास्तर्हि सन्ति च बहवः केवलिनः** એ ભાષ્યનું અનુસરણ કરી આ શંકા ઉત્થાપન કરે છે. "જો ક્લેશાદિ" વગેરેથી.

૩–"**यः सर्वज्ञः सर्ववित्.**" "**स हि सर्ववित् सर्वस्य कर्ता**" ઇત્યાદિ શ્રુતિઓમાં જે સર્વજ્ઞ, સર્વનો કર્તા, એમ પ્રતિપાદન કરેલું છે, તે, મુક્ત પુરુષની પ્રશંસાને માટે વા યોગાભ્યાસરૂપ ઉપાસનાસિદ્ધ યોગીઓની સ્તુતિને માટે પ્રતિપાદન કરેલું છે. કાંઈ તે શ્રુતિઓ, ઈશ્વર પ્રતિપાદક નથી: એવો સાંખ્યના પ્રથમાધ્યાયના ૯૫ મા સૂત્રનો અર્થ છે.

૪–એ પૂર્વે કહેલો પ્રકૃતિલીન જ પ્રબુદ્ધ થયેલો સર્વવિત સર્વકર્ત્તા કહેવાય છે. એવા ઈશ્વરની સિદ્ધિ જ અમારા મતમાં સિદ્ધ છે. નિત્ય ઐશ્વર્યશાળી ઈશ્વર વિવાદગ્રસ્ત છે, એવો ૫૬ અને ૫૭ મા સાંખ્ય સૂત્રનો અર્થ છે.

समाधान-જોકે મુક્ત પુરુષ પણ ક્લેશોથી રહિત છે, તોપણ તે નિત્યમુક્ત કહી શકાતો નથી. કેમકે તે પૂર્વે ક્લેશયુક્ત હતો, પછી સાધનોના અનુષ્ઠાનથી પ્રાકૃત, વૈકારિક અને દાક્ષિણિકરૂપી ત્રણ બંધનોનું છેદન કરી[1] ક્લેશરહિત થયેલો છે. એ પ્રમાણે પ્રકૃતિલીન પણ નિત્ય-મુક્ત નથી. કેમકે તે પણ પોતાની અવધિ પછી સંસારમાં આવવાથી ભાવિક્લેશોના સંબંધથી યુક્ત છે; અને ઈશ્વરને એ ક્લેશો સાથે સંબંધ, ભૂતકાળમાં નહોતો, તથા ભવિષ્યકાળમાં પણ થનાર નથી. એથી તે નિત્યમુક્ત હોવાથી મુક્ત અને પ્રકૃતિલીન પુરુષોથી વિશેષ છે.

અર્થાત્[2] જેમ મુક્ત પુરુષને પૂર્વે બંધકોટિ હતી, તે ઈશ્વરને ભૂતકાળમાં પણ બંધકોટિ નથી, અને જેમ પ્રકૃતિલીનને ઉત્તરકાળમાં બંધકોટિની સંભાવના છે તેમ ઈશ્વરમાં ભવિષ્યમાં પણ બંધકોટિ નથી. પરંતુ એ તો સદૈવ મુક્ત અને સદૈવ ઈશ્વર છે. તેથી તે પ્રકૃતિલીન અને મુક્ત એ બંને પુરુષોથી વિશેષ છે.

ભાવ એ છે કે–જે ચેતન, ભૂત, વર્ત્તમાન અને ભવિષ્ય એ ત્રણે કાળમાં ઔપાધિક ક્લેશથી નિર્મુક્ત છે, તે જ અમારા મતમાં ઈશ્વર છે. અને મુક્ત–પ્રકૃતિલીન પુરુષ, ત્રણે કાળમાં ક્લેશોથી નિર્મુક્ત નથી. કેમકે મુક્ત પુરુષ, કૈવલ્યપ્રાપ્તિની પૂર્વે ક્લેશયુક્ત હતો, અને પ્રકૃતિ-લીન પુરુષ, લય હોવાની પૂર્વે અથવા લય હોવાની અવધિ પછી ક્લેશ-યુક્ત થાય છે, એથી તે ઈશ્વર નથી.[3]

વળી પૂર્વોક્ત સાંખ્યસૂત્રનો અભિપ્રાય બીજો છે, તે બીજે સ્થળે[4] સ્પષ્ટ છે.

૧–પ્રકૃતિલીન પ્રાકૃત બંધનવાળા, વિદેહ પુરુષ વૈકારિક બંધનવાળા, અને યજ્ઞાનુષ્ઠાનશીલ દાક્ષિણિક બંધનવાળા કહેવાય છે. મુક્ત પુરુષ, એ ત્રણે બંધનોથી રહિત છે.

૨–"ते हि त्रीणि बंधनानि छित्वा कैवल्यं प्राप्ताः" ઇત્યાદિ ભાષ્યાનુસાર સમાધાન કરીને હવે "यथा मुक्तस्य पूर्वा बंधकोटिः प्रज्ञायते नैवमीश्वरस्य" ઇત્યાદિ ભાષ્યનો અનુવાદ કરતાં પૂર્વોક્ત અર્થને સ્પષ્ટ કરે છે. "અર્થાત્" ઇત્યાદિથી.

૩–મુક્ત પુરુષો સંકલ્પરહિત હોવાથી વેદોક્ત સત્ય સંકલ્પત્વાદિરૂપ ધર્મ-વિશિષ્ટ ઈશ્વર, અવશ્ય જ માનવા યોગ્ય છે, તે પણ જાણવું.

૪–સ્વામીજી નિર્મિત સાંખ્યદર્શન પ્રકાશમાં તે સ્પષ્ટ છે. અર્થાત્ જો નિત્ય ઐશ્વર્યશાળી ઈશ્વર કોઈ મનાશે, તો વૈરાગ્યની દૃઢતા થશે નહિ. કેમકે પુરુષને નિત્ય ઐશ્વર્યની ઇચ્છા, વૈરાગ્યની પ્રતિબંધક થશે એથી વૈરાગ્યની દૃઢતા સારુ ઈશ્વરનો અભાવ સાંખ્યમાં કહેલો છે, કાંઈ વસ્તુ ગતિથી કહેલો નથી.

વળી ઈશ્વરરૂપ પ્રેરક ન માનવાથી જડ એવી પ્રકૃતિની સંસાર રચનામાં પ્રવૃત્તિ પણ ઘટી શકશે નહિ. કેમકે લોકમાં જોવામાં આવે છે કે, જે જડ પદાર્થ છે, તે ચેતનની પ્રેરણા વિના પોતાનું કાર્ય પેદા કરવામાં અસમર્થ હોય છે. જેમકે સારથિ વિના રથ ચલાવવો મુશ્કીલ છે. અને પુરુષ, અસંગ, નિષ્ક્રિય હોવાથી તેમાં પ્રેરકત્વ સંભવતું નથી. તેથી વિશુદ્ધ સત્ત્વોપાધિક નિત્ય જ્ઞાન ક્રિયા ઐશ્વર્યવાળો ચેતનરૂપ ઈશ્વર, અવશ્ય જ માનવો યોગ્ય છે.

માટે શ્વેતાશ્વતર ઉપનિષદ્‌માં "मायां तु प्रकृतिं विद्यान्मायिनं तु महेश्वरम्"[१] એ મંત્રથી ઈશ્વરને માયાસંજ્ઞક પ્રકૃતિનો પ્રેરક કહેલો છે.

અને ભગવદ્‌ગીતામાં પણ "मयाऽध्यक्षेण प्रकृतिः सूयते सचराचरम्" એ વચનથી શ્રી ભગવાને પોતાને માયાના અધ્યક્ષ માનીને "મારી જ પ્રેરણાથી પ્રકૃતિ, ચરાચર પ્રપંચને ઉત્પન્ન કરે છે." એવી રીતે ઈશ્વરને માયાનો પ્રેરક કહેલો છે.

જો કે ચેતનભૂત ઈશ્વરમાં જ્ઞાન વા પ્રેરણાદિ ક્રિયારૂપ પરિણામ હોવાનો સંભવ હોઈ શકતો નથી, કેમકે તે રજતમ ગુણથી રહિત વિશુદ્ધ ચિત્તનો ધર્મ છે; અને ચિત્તની સાથે નિત્યમુક્ત ઈશ્વરનો સ્વસ્વામિભાવ સંબંધ અસંભવિત છે; તથાપિ જેમ અન્ય પુરુષોનો અવિદ્યાને લીધે ચિત્તની સાથે સ્વસ્વામિભાવ સંબંધ છે, તેમ ઈશ્વરની સાથે અવિદ્યાથી સંબંધ નથી. પણ ચિત્તના સ્વભાવને જાણતાં, જ્ઞાનધર્મોપદેશદ્વારા તાપત્રયથી પીડિત જનોનો ઉદ્ધાર કરવા માટે અને પ્રકૃત્યાદિની પ્રેરણાદ્વારા સંસારની રચના માટે જ તે, વિશુદ્ધ સત્વરૂપ ચિત્તને ધારણ કરે છે, કાંઈ અજ્ઞાનથી ધારણ કરતો નથી.

આ રીતે ચિત્તના સંગનો પરિણામીપણાનો કારક અજ્ઞાનયુક્ત હોવાને લીધે ઈશ્વરમાં જ્ઞાન અથવાં તો પ્રેરણાનો અસંભવ હોતો નથી.

અર્થાત્ જે અવિદ્યાના સ્વભાવને ન જાણી અવિદ્યાનું સેવન કરે છે, તે જ ભ્રાંત કહેવાય છે, પણ જે અવિદ્યાનો સ્વભાવ જાણીને તેનું સેવન કરે છે, તે ભ્રાંત નથી. જેમ નટ, પોતાનામાં રામ કૃષ્ણાદિ ભાવનો આરોપ કરી અનેક લીલા કરવાથી ભ્રાંત કહેવાતો નથી, તેમ ઈશ્વર પણ ચિત્ત-

---

૧–માયા પ્રપંચનું ઉપાદાન કારણ છે, અને માયાનો સ્વામી પ્રેરક પરમેશ્વર નિમિત્ત કારણ છે; એવો શ્રુતિનો ભાવ છે.

દ્વારા અનેક લીલા કરવાથી ભ્રાંત કહેવાતો નથી, પણ વિદ્વાન્ જ કહેવાય છે, એ વાત વાસ્તવિક છે.

आशंका–જો કે ધર્મ અને જ્ઞાનના ઉપદેશદ્વારા પુરુષોનો ઉદ્ધાર કરવાની ઇચ્છા હોવાથી પરમેશ્વર, માયાસંજ્ઞક વિશુદ્ધ સત્વસ્વરૂપ ચિત્તરૂપ ઉપાધિને ધારણ કરે છે, અને ઉપાધિને ધારણ કરવાથી જ પૂર્વોક્ત ઇચ્છા થાય છે, એવી રીતે અન્યોન્યાશ્રય દોષનો સંભવ છે.[1]

समाधान–અન્યોન્યાશ્રય દોષ આવતો નથી, કારણ કે બીજાંકુરવત્ સંસાર અનાદિ હોવાથી વ્યવસ્થાને લીધે દોષનો અભાવ જાણી લેવો.

અર્થાત્ જેવી રીતે કોઈ પુરુષ એવું ચિંતન (પ્રણિધાન) કરીને શયન કરે કે "હું પ્રાતઃકાળમાં વહેલો ઉઠી અમુક કાર્ય અવશ્ય કરીશ" તો એ સંસ્કાર વશથી તે અવશ્ય વહેલો ઉઠી તે કાર્યમાં પ્રવૃત્ત થઈ જશે; તેવી રીતે ઉત્પત્તિ પ્રલયરૂપ પ્રવાહનું અનાદિત્વ હોવાથી કોઈ સર્ગના અવધિકાળમાં જ્યારે પરમેશ્વરની સંહાર કરવાની ઇચ્છા થાય છે, ત્યારે તે પોતાના ચિત્તમાં "જ્યારે પ્રલયકાળનો અવધિ થશે, ત્યારે ફરીથી હું વિશુદ્ધ ચિત્તને ગ્રહણ કરીશ." એવા ચિંતનથી જ પ્રલયમાં ઉન્મુખ થવાથી પ્રધાનમાં લય પામેલું ચિત્ત પણ, ચિંતનના સંસ્કારથી વશ થઈ ફરી કાર્યોન્મુખ થઈ જાય છે. તેથી ઈશ્વરના પ્રણિધાનને અને વિશુદ્ધ ચિત્તને ગ્રહણ કરવાને અનાદિ હોવાથી અન્યોન્યાશ્રય દોષ નથી.

आशंका–જે આ પૂર્વોક્ત ઈશ્વરમાં વિશુદ્ધ સત્વમય ચિત્તના ગ્રહણ દ્વારા સર્વોત્કૃષ્ટતા નિરૂપણ કરી છે, તે ઉત્કૃષ્ટતા, સનિમિત્ત–સપ્રમાણ (પ્રમાણ સિદ્ધ) વા નિષ્પ્રમાણ છે? જો સપ્રમાણ હોય તો તે પ્રમાણ કયું છે? અને જો પ્રમાણ રહિત હોય તો માનનીય કેમ થાય? વળી જો એમ કહેવાય કે શ્રુતિ, સ્મૃતિ, પુરાણ વગેરે શાસ્ત્રો ઈશ્વરની સર્વોત્કૃષ્ટતામાં પ્રમાણ છે, તો તે સંભવતું નથી. કેમકે પ્રત્યક્ષ વા અનુમાનથી અનુભવ કરેલા પદાર્થનો પ્રતિપાદક જે વાક્યવિશેષ, તે જ શાસ્ત્ર કહેવાય છે. અને ઈશ્વરની સર્વોત્કૃષ્ટતા કોઈને પ્રત્યક્ષ નથી, એથી શાસ્ત્ર પણ પ્રમાણ થઈ શકતું નથી. વળી એમ કહો કે, ભ્રમ પ્રમાદાદિ પુરુ-

---

૧–ઉદ્ધારની ઇચ્છા થવાથી ઈશ્વર ચિત્તનું ગ્રહણ કરે છે અને ચિત્ત ગ્રહણ કરવાથી જ ઉદ્ધારની ઇચ્છા થાય છે, એ પ્રમાણે પરસ્પરની અપેક્ષા હોવાથી અન્યોન્યાશ્રય દોષ જાણવો.

ષનિષ્ઠ દોષથી[1] રહિત સર્વજ્ઞ ઈશ્વરના પ્રત્યક્ષભૂત વેદ જ ઈશ્વરની સર્વજ્ઞતામાં પ્રમાણ છે, તો એ પણ અન્યોન્યાશ્રય દોષગ્રસ્ત હોવાથી મુક્ત નથી. કેમકે પ્રથમ વેદરૂપ પ્રમાણથી ઇશ્વરની સર્વજ્ઞતા સિદ્ધ થાય, તો ઈશ્વરપ્રણીત વેદ, પ્રમાણ થાય અને વેદમાં પ્રામાણ્ય જ્ઞાન હોય, તો તે પ્રમાણદ્વારા ઈશ્વરની સર્વજ્ઞતા સિદ્ધ થાય.

સમાધાન–યદ્યપિ અન્ય કોઈ શાસ્ત્ર, ઈશ્વરની સર્વોત્કૃષ્ટતા સિદ્ધ કરવામાં પ્રમાણ થઈ શકતું નથી, તથાપિ સર્વજ્ઞ ઈશ્વરપ્રણીત વેદને તેમાં પ્રમાણ માનવામાં કોઈ બાધક નથી. કેમકે અન્ય પ્રમાણદ્વારા ઈશ્વર નિર્ભ્રાન્ત અને સર્વજ્ઞ સિદ્ધ હોવાથી ઈશ્વરપ્રણીત વેદની પ્રમાણતા સ્વતઃસિદ્ધ છે.

અર્થાત્, ઈશ્વરપ્રણીત તે તે કાર્યસાધક મંત્ર તથા તે તે રોગનિવારક ઔષધ પ્રતિપાદક આયુર્વેદના પ્રામાણ્યમાં તો કોઇને સંદેહ નથી. કેમકે તેનાં ફળ પ્રત્યક્ષ દૃષ્ટ છે.[2] કેવળ બીજા ભાગમાં પ્રામાણ્યનો સંદેહ છે. કેમકે અન્ય ભાગ અલૌકિક અર્થપ્રતિપાદક હોવાથી ત્યાં પ્રત્યક્ષનો સંભવ નથી. તે અન્ય ભાગમાં પ્રામાણ્યનો સંદેહ પણ તેટલા કાળ સૂધી છે કે, જેટલા કાળ સૂધી તેના વક્તામાં સર્વજ્ઞતા અને યથાર્થ વકતૃત્વનો નિશ્ચય ન થાય.[3]

જ્યારે મંત્રાયુર્વેદ ભાગના નિર્માણથી એવો નિશ્ચય થયો કે, ઈશ્વર સર્વજ્ઞ અને યથાર્થવક્તા છે, ત્યારે ઈશ્વરની સર્વોત્કૃષ્ટતા બાબત થયેલો સંદેહ પણ સારી રીતે ઉચ્છિન્ન થાય છે. કેમકે સ્થાલીપુલાક ન્યાયથી[4]

૧–ભ્રમ વગેરે દોષોનું નિરૂપણ પૂર્વે ૭મા સૂત્રમાં કરેલું છે.

૨–અર્થાત્, જે જે કાર્યસિદ્ધિને અર્થે જે જે મંત્ર અને જે જે રોગની નિવૃત્તિને અર્થે જે જે ઔષધ પ્રતિપાદન કરેલાં છે, તે પોતપોતાનું ફળ ઉત્પન્ન કરવામાં સમર્થ જ જોવામાં આવે છે; અસમર્થ જોવામાં આવતાં નથી. એટલે સત્યાર્થ પ્રતિપાદક તે વેદ ભાગના પ્રામાણ્યમાં સંદેહનો સંભવ નથી.

૩–શબ્દે જણાવેલા અર્થના પ્રામાણ્યમાં વક્તાને આપ્ત વા સર્વજ્ઞ જાણવો, એ એક મુખ્ય કારણ છે, એવો શાસ્ત્રનો નિયમ છે.

૪–સ્થાલી નામ તપેલીનું છે, અને પુલાક નામ સિદ્ધોન્મુખ તંદુલ (પાકવા આવેલો ભાત) નું છે. જેમ પાચક, (રસોઈ કરનાર) તપેલીમાંથી એક ચોખાનો દાણો કહાડી લઈ તેને જોઈ પરીક્ષા કરી લે છે કે, તપેલી માંહેના બીજા ચોખા પાકા છે કે કાચા, તેમ અહીં પણ મંત્ર–આયુર્વેદરૂપ ભાગમાં પ્રત્યક્ષ ફળના દર્શનદ્વારાએ પ્રામાણ્ય નિશ્ચયવત્ બીજા તત્સમાન વેદ ભાગમાં પ્રામાણ્ય નિશ્ચય જાણવો, એવો આ દષ્ટાંતનો ભાવ છે.

બીજા ભાગના વક્તાની પણ સર્વજ્ઞતા યુક્તિસિદ્ધ છે. એ પ્રમાણે વેદોનું પ્રમાણ હોવાથી વેદપ્રતિપાદિત ઈશ્વરની સર્વજ્ઞતા, સત્યકામતા અને નિત્યજ્ઞાનૈશ્વર્યશાલીતારૂપ ઉત્કૃષ્ટતા સપ્રમાણક છે, એમ સિદ્ધ થાય છે.[૧]

એ પૂર્વોક્ત[૨] સર્વજ્ઞતાદિરૂપ ધર્મ તથા વેદરૂપ શાસ્ત્ર, એ બંને જ ઈશ્વરના વિશુદ્ધ સત્વગુણમય ચિત્તમાં વિદ્યમાન છે, અને એ બંનેનો પરસ્પર નિમિત્ત નૈમિત્તિકભાવ સંબંધ અનાદિ જ છે.[૩]

એ પૂર્વોક્ત ઉત્કૃષ્ટતાથી જ ઈશ્વર, નિત્યમુક્ત અને ઐશ્વર્યશાલી કહેવાય છે.

જેવી રીતે એ ઈશ્વર, મુક્ત પુરુષોથી વિલક્ષણ છે, તેવી રીતે અણિમાદિ ઐશ્વર્યશાલી યોગીઓથી પણ તે વિશેષ છે. કેમકે તેનું એ ઐશ્વર્ય સામાન્ય અને અતિશયથી રહિત છે. અર્થાત્ જેમ યોગીઓનું ઐશ્વર્ય બીજા કોઈ યોગીના ઐશ્વર્યની સમાન હોય છે, અથવા બીજા કોઈ યોગીના ઐશ્વર્યથી કમ હોય છે, તેમ ઈશ્વરનું ઐશ્વર્ય નથી, પણ તે તો સર્વોત્કૃષ્ટ છે.

ભાવ એ છે કે, એ ઈશ્વરનું ઐશ્વર્ય, કોઈ બીજા અધિક ઐશ્વર્યવડે અતિશય વિશિષ્ટ થઈ શકતું નથી. કેમકે એ અમારો સિદ્ધાંત છે કે, જે સઘળા કરતાં અતિશય ઐશ્વર્યવાળો છે, તેનું નામ ઈશ્વર છે. અર્થાત્ જેમાં ઐશ્વર્યની અવધિ હોય, તે જ ઈશ્વર કહેવાય છે.

૧–પ્રત્યક્ષ ફળ દેખાડવાથી આયુર્વેદકર્ત્તાને ભ્રમરહિત સર્વજ્ઞ જાણવો. અને સર્વજ્ઞ ઈશ્વર નિર્મિત હોવાથી વેદોને પ્રમાણ જાણવા. એ પ્રમાણે અન્યોન્યાશ્રય નથી, એ તેનો ભાવ છે. એ કહેવાથી જે શંકા હતી કે–"પોતાનું ઐશ્વર્ય બતાવવા માટે ઈશ્વરે મિથ્યા જ પોતાની પ્રશંસા વેદમાં લખી છે." એ પણ નિવૃત્ત થઈ. કેમકે આયુર્વેદાદિકના દેખવાથી તેવો કદાપિ સંભવ હોઈ શકતો નથી કે ઈશ્વર, પ્રતારણા (વંચના) થી મિથ્યા ઉપદેશ પણ કરી શકે છે. આ વિષયનો વિસ્તાર જેને જોવો હોય, તેણે સ્વામીજી કૃત ન્યાયદર્શન પ્રકાશના દ્વિતીયાધ્યાયના પ્રથમ આહ્નિકમાં ૫૭ મા સૂત્રથી તે ૬૭ મા સૂત્ર સૂધીના વિવરણમાં જોવું.

૨–હવે "एतयोः शास्त्रोत्कर्षयोरीश्वरसत्वे वर्तमानयोरनादिः संबंधः"। એ ભાષ્યનું અનુવાદ કરે છે. "એ પૂર્વોક્ત" ઈત્યાદિથી.

૩–ઈશ્વરના ચિત્તમાં વર્ત્તમાન વિશુદ્ધ સત્વનો પ્રકર્ષ તે નિમિત્ત કારણ છે અને વેદ તેનું કાર્ય છે. એ પ્રમાણે ઈશ્વરના ચિત્તમાં વિદ્યમાન બંનેનો પરસ્પર નિમિત્ત નૈમિત્તિક ભાવ સંબંધ છે.

એ પ્રમાણે ઈશ્વરના સમાન ઐશ્વર્યવાળું પણ કોઈ નથી. કેમકે જો બીજો કોઈ તેના સમાન ઐશ્વર્યવાળો માનવામાં આવશે, તો તે સત્ય સંકલ્પાદિ ધર્મવાળો માનવો પડશે, કેમકે તેજ ઈશ્વરનું લક્ષણ છે. એવી રીતે કોઈ એક વસ્તુવિષયક એ બંને તુલ્ય બળવાળાના (આ નૂતન થાઓ, આ પુરાણ થાઓ; આ આજ જ મૃત્યુ પામો, આ સદા અમર રહો, એ પ્રકારે બંનેના) વિરુદ્ધ વિરુદ્ધ સંકલ્પ થશે, તો બંનેનો સંકલ્પ સિદ્ધ નહિ થાય. કેમકે એક વસ્તુમાં બે જાતના વિરુદ્ધ ધર્મ રહેતા નથી. અને જો એકનો સંકલ્પ સત્ય અને બીજાનો મિથ્યા માનવામાં આવે તો જેનો સંકલ્પ મિથ્યા થાય તેને ઈશ્વર કેમ કહેવાય? જો એમ કહો કે બંનેના અભિપ્રાય એક હોવાથી બંને સત્ય સંકલ્પ છે, તો અનેક ઈશ્વર માનવામાં પ્રયોજન જ શું છે! જો એમ કહો કે સર્વે એકત્ર થઈ કાર્ય કરે છે, તો તે સભા (પંચાયત, કમિટી) હોવાથી કોઈ પણ ઈશ્વર નહિ કહેવાય. એવી રીતે ઈશ્વરના સમાન ઐશ્વર્યવાળો કોઈ છેજ નહિ, એ નિર્વિવાદ છે.

એ પ્રમાણે જે જીવની પેઠે ક્લેશભાગી, પુણ્ય પાપનો કર્તા અને સુખ દુ:ખનો ભોક્તા નથી, તથા જેનું ઐશ્વર્ય, સામ્ય અને અતિશયથી રહિત છે, તે ક્લેશમુક્ત નિત્ય નિરતિશય અનાદિ અનંત સર્વજ્ઞ પુરુષ વિશેષ, ઈશ્વર કહેવાય છે, એ વાત સિદ્ધ થઈ. ॥ ૨૪॥

એ પ્રકારે ઈશ્વરની સત્તા તથા જ્ઞાનક્રિયા શક્તિની ઉત્કૃષ્ટતામાં વેદશાસ્ત્ર તથા જ્ઞાની–યોગીઓનો અનુભવ પ્રમાણ હોવાથી પણ વાદીનો ભ્રમ મટાડવા સારુ સૂત્રકાર અનુમાનરૂપ બીજા પ્રમાણનો ઉપન્યાસ કરે છે.[1]

सू—तत्र निरतिशयं सर्वज्ञबीजम् ॥ २६ ॥

સૂત્રાર્થ:–તે ઈશ્વરમાં સર્વોત્કૃષ્ટ જ્ઞાન છે.

(**तत्र**) તે પૂર્વોક્ત ઈશ્વરમાં (**सर्वज्ञबीजम**) સર્વજ્ઞતાનું[2] (**बीज**) કારણભૂત

૧–અર્થાત્ સાધનસંપન્ન જિજ્ઞાસુ વા ભક્ત વા જ્ઞાની, વા યોગીઓના ચિત્તમાં તો ઈશ્વર સ્વભાવથીજ પ્રકાશમાન છે, એટલે એમને સમજાવવાને માટે તો અનુમાનાદિરૂપ પ્રમાણાંતરની અપેક્ષા છેજ નહિ, પરંતુ જે લોક ખોટા શુષ્ક તર્કદ્વારા ઈશ્વરનું નિરાકરણ કરે છે, તેમના બોધ અર્થે પ્રમાણાંતરનો ઉપન્યાસ કરવામાં આવે છે, એ એનો ભાવ છે.

૨ (**सर्वज्ञबीजम्**) અહીં સર્વજ્ઞ પદ સર્વજ્ઞતારૂપ અર્થનું વાચક છે, એવા આશયથી કહે છે, "સર્વજ્ઞતાનું" ઇતિ. કોઈ પુસ્તકમાં (**सार्वज्ञबीजम्**) એવો

જે જ્ઞાન, તે (**निरतिशयम्**) અતિશયથી રહિત છે. અર્થાત્ સર્વ કરતાં ઉત્તમ છે.

અર્થાત્, સત્વગુણના ન્યૂનાધિક હોવાથી કોઈ પુરુષ વર્ત્તમાન કાળના જ પદાર્થોને જાણે છે; અને કોઈ ભૂતકાળના, ભવિષ્ય કાળના તથા વર્ત્તમાન કાળના એમ ત્રણ કાળના જ પદાર્થને જાણે છે; તથા કોઈ પુરુષ સ્થૂળ વસ્તુને જાણે છે, કોઈ સૂક્ષ્મ વસ્તુને જાણે છે અને કોઈ એક વસ્તુને જાણે છે, કોઈને અનેક વસ્તુનું જ્ઞાન હોય છે. એ પ્રમાણે સાતિશયતા (ઓછાવત્તાપણાના) ધર્મવાળું જે સર્વજ્ઞતાનું કારણભૂત જ્ઞાન, તે વૃદ્ધિ પામીને જ્યાં નિરતિશયતાને પ્રાપ્ત થાય છે, તે સર્વજ્ઞ ઈશ્વર છે.

ભાવ એવો છે કે–જે પદાર્થ ન્યૂનાધિકયરૂપ ધર્મવિશિષ્ટ હોવાથી સાતિશય હોય છે, તે અવશ્ય જ કોઈ સ્થળે કાષ્ઠા (પરિસીમા) ને પામેલો નિરતિશય થઈ જાય છે.[1] જેમકે અણુપરિમાણ પરમાણુમાં અને મહત્વ પરિમાણ આકાશમાં, કાષ્ઠાને પામી નિરતિશય થઈ જાય છે, તેમ અહીં પણ ન્યૂનાધિકયરૂપ ધર્મવિશિષ્ટ હોવાથી જ્ઞાનની નિરતિશયતા અવશ્ય થવી જોઇએ; તેથી જેમાં જઈ જ્ઞાન છેવટ પામીને નિરતિશયરૂપથી વિદ્યમાન રહે છે, તે જ ઈશ્વર છે.

અર્થાત્, જેમ ખસખસ, સરસવ, ચણા, આમળું, બીલું, કૂણસ વગેરેમાં પૂર્વપૂર્વની અપેક્ષાથી ઉત્તર ઉત્તરમાં બૃહત્ (મોટું) પરિમાણ અને ઉત્તર ઉત્તરની અપેક્ષાની પૂર્વપૂર્વમાં અણુ (નાનું) પરિમાણ હોવાથી તે બંને પરમાણુની સાતિશયને લીધે પરમાણુમાં અને આકાશમાં[2]

પણ પાઠ જોવામાં આવે છે, પણ વ્યાખ્યાકારોને તે પાઠ સંમત નથી. જ્ઞાન હોવાથી જ સર્વજ્ઞતારૂપ ધર્મનો લાભ થાય છે, તેથી સર્વજ્ઞતાનું કારણ હોવાથી જ્ઞાન જ સર્વજ્ઞ બીજનો અર્થ અહીં જાણવો.

૧–જે વસ્તુ કોઇની અપેક્ષાથી ન્યૂન વા અધિક હોય, તે સાતિશય કહેવાય છે. અને જે પદાર્થ કાષ્ઠા (અવધિ)ને પામેલો કોઈ સ્થળે વિશ્રામ પામી જાય તે નિરતિશય કહેવાય છે.

૨–અણુ પરિમાણની વિશ્રાંતિ પરમાણુમાં અને મહત્પરિમાણની વિશ્રાંતિ આકાશ આત્મા વગેરેમાં છે. કેમકે પરમાણુથી અધિક કોઈ નાનું નથી અને આકાશ વગેરેથી કોઈ મોટું નથી. જાળીઆ વગેરેમાંથી ઘરમાં પડેલા સૂર્યકિરણમાં જણાતી નાની નાની રજ, વા તેનો છઠ્ઠો અવિભાજ્ય વિભાગ પરમાણુ કહેવાય છે.

વિશ્રાંતિ હોવાથી ત્યાં નિરતિશયતા થાય છે. તે પ્રમાણે કીટ, પશુ, પક્ષી, મનુષ્ય, મુનિ, યોગી વગેરેમાં વિદ્યમાન સાતિશય જ્ઞાન પણ જ્યાં જઈ કાષ્ઠાને પામી જાય છે, ત્યાં તેની નિરતિશયતા છે અને જેમાં તે નિરંતર વિદ્યમાન છે, તે નિરતિશય જ્ઞાનશાલી પરમેશ્વર કહેવાય છે.

એ કહેવાથી એ અનુમાન જણાવ્યું કે, પુરુષોમાં દેખાતું જે સાતિશય (એકથી એકમાં અધિક) જ્ઞાન, તે કોઈ ઠેકાણે નિરતિશય હોય છે. કેમકે જે વસ્તુ સાતિશય હોય છે, તે કોઈ સ્થળે નિરતિશય અવશ્ય થાય છે. દ્રષ્ટાંત તરીકે બીલા વગેરેમાં દેખાતા મહત્વનું આકાશમાં અને સરસવ વગેરેમાં દેખાતા અણુત્વનું પરમાણુમાં અવધિ થાય છે. એ અનુમાનદ્વારા જેમાં નિરતિશય જ્ઞાન સિદ્ધ થાય છે, તે જ ઈશ્વર છે.

જો કે એ અનુમાનથી સામાન્ય રૂપ માત્રથી જ કોઈ એક વસ્તુની સિદ્ધિ થાય છે, પણ વિશેષ રૂપથી સિદ્ધિ થતી નથી. કેમકે સામાન્ય રૂપથી જ બોધન કરવામાં અનુમાન સમર્થ છે, વિશેષ રૂપથી નથી. તોપણ શ્રુતિ, સ્મૃતિ, ઇતિહાસ, પુરાણરૂપ આગમથી વિષ્ણુ, શિવ વગેરે સંજ્ઞા વિશેષ જાણી લેવી.

જે પ્રકારે જ્ઞાનની કાષ્ઠાનો આધાર ઈશ્વરને કહેલો છે, તે પ્રકારે ધર્મ, વૈરાગ્ય, યશ, ઐશ્વર્ય, શ્રી વગેરે સંપત્તિની કાષ્ઠાનો આધાર પણ ઈશ્વર જ જાણવો. એ પ્રમાણે વાયુ પુરાણોક્ત ષડ્ અંગ તથા દશ અવ્યયતાનો આધાર પણ ઈશ્વર જાણવો. તેમાં[1] સર્વજ્ઞતા, તૃપ્તિ, અનાદિજ્ઞાન, સ્વતંત્રતા, અલુપ્તચેતનતા અને અનંતશક્તિ એ ષડ્ અંગ છે; અને જ્ઞાન, વૈરાગ્ય, ઐશ્વર્ય, તપ, સત્ય, ક્ષમા, ધૃતિ, સ્રષ્ટૃત્વ, આત્મસંબોધ, અને અધિષ્ઠાતૃત્વ, એ દશ અવ્યયતા છે.[2] અવ્યયતા નાશના અભાવનું નામ છે અર્થાત્ એ દશ સર્વદા ઈશ્વરમાં વિદ્યમાન રહે છે.

૧–"सर्वज्ञता तृप्तिरनादिबोधः स्वतंत्रता नित्यमलुप्तशक्तिः । अनंतशक्तिश्च विभोर्विधिज्ञाः षडाहुरंगानि महेश्वरस्य ॥" આ વાયુપુરાણના શ્લોક અનુસાર ષડ્-અંગની પરિગણના કરે છે; 'તેમાં' ઈત્યાદિથી. (सर्वज्ञता) કાલત્રયના નિખિલ પદાર્થોનું યથાવત્ જાણવું, (तृप्ति) અપ્રાપ્ત વસ્તુવિષયક પ્રાપ્તિની ઇચ્છાનો અભાવ, (अनादिबोध) સ્વભાવસિદ્ધ અજન્યજ્ઞાન, (स्वतंत्रता) કાર્ય કરવામાં અપરાધીનતા, (नित्यमलुप्तशक्तिः) કોઈ કાળમાં પણ સામર્થ્યરહિત ન હોવું તે, (अनंतशक्तिः) અનેક સામર્થ્ય.

૨–"ज्ञानं वैराग्यमैश्वर्यं तपः सत्यं क्षमा धृतिः । स्रष्टृत्वमात्मसंबोधो ह्यधिष्ठातृत्वमेव च ॥ अव्ययानि दशैतानि नित्यं तिष्ठति शंकरे ॥" એ વાયુપુરાણના વચનનો

आशंका–જો એવો નિત્યતૃપ્ત વૈરાગ્યાતિશયશાલી ઈશ્વર હોય, તો તેની સંસારરચનામાં પ્રવૃત્તિ કેમ થઈ? કેમકે રાગ અને પ્રયોજન એ બંને જ પ્રવૃત્તિમાં કારણ હોય છે અને નિત્યતૃપ્ત વૈરાગ્યશાલી પરમેશ્વરમાં એ બંનેની સંભાવના નથી. વળી જો એમ કહો કે કૃપાથી સંસાર રચવામાં તે પ્રવૃત્ત થયો, તો સૃષ્ટિના આદિ કાળમાં પ્રાણીઓનો અભાવ હોવાને લીધે કૃપાનો વિષય જ કોણ હોય? અને જો કૃપાથી પ્રવૃત્ત થાય છે, તો કોઈને સુખી, કોઈને દુઃખી, કોઈને ધનિક અને કોઈને રંક એ પ્રકારે વિષમદૃષ્ટિ રાખવાનું કારણ શું? કેમકે કૃપાળુ પુરુષની પ્રવૃત્તિ સુખજનક જ હોય છે, પણ દુઃખજનક[1] હોતી નથી.

समाधान–જો કે ઈશ્વર, નિત્યતૃપ્ત વૈરાગ્યયુક્ત હોવાથી તેની આત્મપ્રયોજનને લીધે પ્રવૃત્તિ થઈ શકતી નથી, તોપણ કલ્પ મહાપ્રલયમાં લીન પુરુષો ઉપર અનુગ્રહ કરવા માટે તેની પ્રવૃત્તિ સંભવે છે; અને અદૃષ્ટ અનુસાર ફળ દેવાથી તેનામાં વિષમદૃષ્ટિ પણ નથી; અને જ્ઞાનધર્મોપદેશદ્વારા પ્રાણીઓનો ઉદ્ધાર કરવો, એ જ તેની પ્રવૃત્તિનું કારણ હોવાથી તેમની પ્રવૃત્તિ નિષ્પ્રયોજન પણ નથી.

અર્થાત્, સંસાર અનાદિ હોવાથી પૂર્વ[2] પૂર્વ સર્ગમાં કરેલાં કર્મોનાં ફલપ્રદાનને માટે અને જ્ઞાનધર્મોપદેશદ્વારા પ્રાણીઓના ઉદ્ધારને માટે નિત્યતૃપ્તની પણ કરુણાથી પ્રવૃત્તિનો સંભવ હોઈ શકે છે અને જેવી રીતે લોકમાં રાજા વગેરે સ્વામી, પોતાના સેવકોને કાર્યાનુસાર ન્યૂનાધિક દ્રવ્ય પ્રદાનરૂપ વિષમ ફલ દેવાથી વિષમ દૃષ્ટિવાળા કહેવાતા નથી; તે પ્રમાણે ઈશ્વર પણ પૂર્વ પૂર્વ સર્ગમાં કરેલાં કર્મનું અનુરૂપ ફળ

આ પ્રમાણે અનુવાદ છે કે–જ્ઞાન, વૈરાગ્ય, ઐશ્વર્ય, તપ, સત્ય, ક્ષમા, ધૃતિ, સરજવાપણું, આત્મસંબોધ (પોતાના રૂપનું યથાર્થ જ્ઞાન) અને અધિષ્ઠાતાપણું, (પ્રેરણાદ્વારા માયા ઉપર અધ્યક્ષતા) એ દશ અવ્યયો શંકરમાં નિત્ય રહે છે.

૧–આશંકા કરવાવાળા નિરીશ્વર સાંખ્યનો એ અભિપ્રાય છે કે, ઈશ્વરની સૃષ્ટિરચનામાં પ્રવૃત્તિ આત્મપ્રયોજનાર્થે છે, પરપ્રયોજનાર્થે છે, વા નિષ્પ્રયોજન છે? જો પોતાના પ્રયોજન માટે છે, એમ કહો, તો નિત્યતૃપ્ત કેમ કહેવાય? અથવા કૃપાથી પરપ્રયોજન માટે છે, એમ કહો, તો સુખ દુઃખવાળા પ્રાણીઓની રચના તેણે કેમ કરી? જો નિષ્પ્રયોજન કહો, તો ઉન્મત્ત હોવાથી યથાર્થ જ્ઞાનશાલિતા અને સર્વજ્ઞતા કેમ હોય?

૨–સંસાર અનાદિ હોવાથી "સંસાર જ નથી તો કૃપા કોની ઉપર કરે છે?" એ શંકા પણ ઉડી જાય છે.

હેવાથી વિષમ દૃષ્ટિવાળો થતો નથી; અને કર્મનાં ફળ તે અવશ્ય દે છે, એ જ ઇશ્વરની કૃપા છે.

એ પ્રમાણે પ્રાણીઓ ઉપરનો અનુગ્રહ જ પ્રવૃત્તિનું કારણ છે, અન્ય કોઈ નથી, એમ સિદ્ધ થાય છે.

પોતાના પ્રયોજન વિના પણ કૃપાથી પ્રવૃત્તિ થાય છે, એમ નિરીશ્વરવાદી પંચશિખાચાર્ય પણ માને છે. કેમકે તેમણે એમ કહેલું છે કે, આદિ વિદ્વાન્ પરમર્ષિ[1] કપિલમુનિ ભગવાને યોગબળ નિર્મિત ચિત્તનો આશ્રય કરી કૃપાથી જિજ્ઞાસુ આસુરિ નામના બ્રાહ્મણને પંચવિંશતિ તત્ત્વોનો ઉપદેશ કર્યો. ॥ ૨૫ ॥

હવે પૂર્વ સૂત્રોક્ત અનુમાનદ્વારા બ્રહ્માદિ જ નિરતિશય જ્ઞાનના આધાર કેમ ન હોય? એ આશંકાનું નિવારણ કરતાં બ્રહ્માદિકોથી પણ ઈશ્વરની વિશેષતા કહે છે.

सू–सः एषः[2]–पूर्वेषामपि गुरुः कालेनाऽनवच्छेदात् ॥ २६ ॥

સૂત્રાર્થઃ–તે આ પરમેશ્વર કાળવડે પરિમિત ન હોવાથી પ્રાચીન ગુરુઓના પણ ગુરુ છે.

(**स एषः**) તે આ પરમેશ્વર (**पूर्वेषाम्**) પૂર્વે ઉત્પન્ન થયેલા બ્રહ્માદિ દેવોના (**अपि**) પણ (**गुरुः**) ઉપદેષ્ટા વા જનક છે. કેમકે (**कालेनाऽनवच्छेदात्**) કાળવડે અવચ્છિન્ન (પરિમિત) ન હોવાથી.

અર્થાત્ જેમ બ્રહ્માદિ દેવતા સૃષ્ટિના મહાપ્રલયમાં, ઉત્પત્તિ વિનાશશીલ હોવાથી કાળપરિચ્છિન્ન[3] છે, તે પ્રમાણે ઈશ્વર નથી. કેમકે તે સર્વદા વિદ્યમાન હોવાથી કાળપરિચ્છેદથી રહિત છે, એટલા માટે બ્રહ્માદિક દેવતાઓને ઉત્પન્ન કરી તેઓને જ્ઞાન આપવાથી, તે ઈશ્વર સઘળાનો ગુરુ, જનક અથવા ઉપદેષ્ટા છે.

૧–(आदिविद्वान् निर्माणचित्तमधिष्ठाय कारुण्यात् भगवान् परमर्षिरासुरये जिज्ञासमानाय तंत्रं (तत्त्वं) प्रोवाच) એવું પંચશિખાચાર્યનું વચન છે.

૨–ભાષ્યકારે એ સૂત્રના આદિમાં (स एषः) એ વાક્યનો સંબંધ કર્યો છે, તેથી સૂત્રની સાથે જ લખ્યું છે. કેટલાક વ્યાખ્યાકાર તો તે પદને સૂત્રસ્થ જ કહે છે.

૩–જે પદાર્થ કોઈ કાળમાં હોય અને કોઈ કાળમાં ન હોય, તે કાળપરિચ્છિન્ન કહેવાય છે. બ્રહ્માદિ પણ સૃષ્ટિની પૂર્વે અને મહાપ્રલયની પછી રહેતા નથી, તેથી તેઓ પણ કાળપરિચ્છિન્ન કહેવાય છે.

એ પ્રમાણે જેમ વર્તમાન સર્ગના આદિમાં જ્ઞાનઐશ્વર્યયુક્ત પરમેશ્વર સિદ્ધ છે, તેમ પૂર્વ સર્ગોના આદિમાં પણ એવી રીતે વિદ્યમાન હોવાથી તે પરમેશ્વર જ અનાદિ, સર્વજ્ઞ, નિરતિશય જ્ઞાનનો આધાર છે, પણ બ્રહ્માદિ તેવા નથી, એમ સિદ્ધ થાય છે.

બ્રહ્માને ઉત્પન્ન કરી તેમ જ જ્ઞાનોપદેશ દીધો છે તે, **"यो ब्रह्माणं विदधाति पूर्वं यो वै वेदांश्च प्रहिणोति तस्मै"**[1] ઈત્યાદિ વેદવાક્યમાં પ્રસિદ્ધ જ છે. ॥ ૨૬ ॥

એવી રીતે પૂર્વ પ્રકરણથી ઇશ્વરનું નિરૂપણ કરી, હવે તે ઈશ્વરનું પ્રણિધાન કરવા સારુ પ્રથમ ઈશ્વરનો વાચક કહે છે:-

सू—तस्य वाचकः प्रणवः ॥ २७ ॥

સૂત્રાર્થ:-તેનો વાચક શબ્દ ઓમ્ છે.

(**तस्य**) તે ઈશ્વરનો (**वाचकः**) બોધક શબ્દ (**प्रणवः**) ઓંકાર છે.

અર્થાત્, જેમ શૃંગ પૂછ સાસ્નાવાળું[2] પશુ વિશેષ (ગાય-બળદ)નો વાચક 'ગો' શબ્દ છે, તેમ સર્વજ્ઞતાદિ ધર્મવાળા પરમેશ્વરનો વાચક ઓંકાર છે, અને ઈશ્વર એ ઓંકારનો વાચ્ય છે.

એથી જ યોગી યાજ્ઞવલ્કયે **"अदृष्टविग्रहो देवो भावग्राह्यो मनोमयः। तस्योंकारः स्मृतो नाम तेनाऽऽहूतः प्रसीदति"**[3] ॥ એ વાકયથી ઓંકારને પરમેશ્વરનું નામ કહેલું છે.

૧-"तं ह देवमात्मबुद्धिप्रकाशं मुमुक्षुर्वै शरणमहं प्रपद्ये" ઉપર આપેલા મંત્રનો આ શેષભાગ છે. જે પરમાત્મા, સૃષ્ટિની શરુઆતે બ્રહ્માને પેદા કરે છે અને જે પરમેશ્વર, તે બ્રહ્માને વેદોનું સંપ્રદાન કરે છે, અર્થાત્ ઉપદેશદ્વારા બ્રહ્માના હૃદયમાં પ્રકાશ કરે છે, તે આત્મબુદ્ધિપ્રકાશક દેવના શરણને હું મુમુક્ષુ પામું છું. આ યજુર્વેદીય શ્વેતાશ્વતરોપનિષદના છઠ્ઠા અધ્યાયમાં ૧૮ મો મંત્ર છે, તેનો અર્થ એ છે કે, ઈશ્વરની જ્ઞાનશક્તિનું આશ્રયણ કરીને જ બ્રહ્માદિક સર્વજ્ઞ કહેવાય છે. વસ્તુતઃ મુખ્ય સર્વજ્ઞ તો ઈશ્વર જ છે.

૨-ગાયોને ગળે કામળા અથવા ગોદડી જેવો લટકતો જે માંસલ ભાગ હોય છે, તે સાસ્ના કહેવાય છે.

૩-(अदृष्टविग्रह) ઇંદ્રિયોનો અવિષય જે ભાવગ્રાહ્ય મનોગમ્ય દેવ છે, તે પરમેશ્વરનું 'ૐકાર' એ નામ છે. કેમ કે ૐકારરૂપ નામથી બોલાવેલ પરમેશ્વર પ્રસન્ન થઈ જાય છે, એવો તેનો અર્થ છે. જેમ 'ગો'પદનું ઉચ્ચારણ કરતાં તરત જ શૃંગાદિવિશિષ્ટ વ્યક્તિવિશેષ ચિત્તમાં ભાસ્યમાન થાય છે.

કોઈ એમ પણ કહે છે કેઃ-પ્રતિમામાં વિષ્ણુબુદ્ધિની તુલ્ય ઓંકારમાં બ્રહ્મબુદ્ધિનો ઉપદેશ હોવાથી ઓંકાર એ, બ્રહ્મનો પ્રતીક છે. એથી જ "एतदाऽऽलंबनं श्रेष्ठमेतदालंबनं परम्" એ મંત્રથી યમરાજાએ નચિકેતા પ્રતિ ઓંકારને શ્રેષ્ઠ આલંબન કહેલું છે.

જે અધિષ્ઠાનમાં બ્રહ્મબુદ્ધિથી બ્રહ્મની ઉપાસના કરાય છે, તે પ્રતીક વા આલંબન કહેવાય છે, જેમ શાલગ્રામ વગેરે.

आशंका–જો[1] સૂત્રકારે ઈશ્વર અને પ્રણવનો વાચ્યવાચકભાવ સંબંધ કહેલો છે, તે સંકેતકૃત (સંકેતજન્ય) છે? વા પ્રદીપના પ્રકાશની પેઠે સંકેતદ્યોત્ય છે? અર્થાત્ એ પદથી અમુક અર્થનો શ્રોતાને બોધ થાય એવા પ્રકારની ઈશ્વરની ઇચ્છાનું નામ સંકેત છે? ઘટ પદથી સ્થૂલ ગોળ ઉદર અને શંખ જેવી ગરદનવાળા પદાર્થનો બોધ થાય, એ ઇચ્છાનું સ્વરૂપ છે. શું તમે આ સંકેત જ ઘટ પદના સ્થૂલ ઉદરાદિરૂપ અર્થની સાથે સંબંધને ઉત્પન્ન કરે છે, એમ માનો છો? વા ઘટ પદમાં સ્થૂલોદરાદિરૂપ અર્થના બોધની શક્તિ તો પ્રથમ જ હતી, પણ સંકેતે એને જણાવી દીધી, (જેમ વિદ્યમાન રૂપને જ દીપ પ્રકાશ કરે છે) તેમ તમે માનો છો?[2]

समाधान–જે પ્રમાણે [3]મીમાંસક, શબ્દ અને અર્થના સંબંધને નિત્ય માને છે, તે પ્રમાણે અમારા મતમાં પણ શબ્દાર્થનો વાચ્યવાચક-ભાવ સંબંધ નિત્ય જ છે. કેવળ સંકેત માત્રથી એ સંબંધની અભિ-વ્યક્તિ થાય છે. કાંઈ તે સંબંધ સંકેતજન્ય નથી.

તેમ ૐકારના ઉચ્ચારણથી પણ તરત જ સચ્ચિદાનંદ પરમાત્માનું ચિત્તમાં ભાન થાય છે. તેથી એ બંનેનો પરસ્પર વાચ્યવાચક ભાવ સંબંધ છે, એવો તેનો ભાવાર્થ છે. વાચક, અભિધાયક, સંજ્ઞા, નામ, એ સઘળા એકાર્થક છે. વાચ્ય, અભિધેય, સંજ્ઞી, નામી, એ સઘળાં પણ એકાર્થક જાણવાં.

૧–"**किमस्य संकेतकृतं वाच्यवाचकत्वं अथ प्रदीपप्रकाशवदवस्थितम्**" એ ભાષ્યાનુસારે શંકાનું ઉત્થાપન કરે છે. "જો" ઇત્યાદિથી.

૨–જો સંકેતથી વાચ્યવાચકભાવ સંબંધની ઉત્પત્તિ માનવામાં આવે તો જન્ય હોવાથી સંબંધ અનિત્ય કહેવાશે, અને જો સંકેતથી ઉત્પન્ન નથી થતો, પરંતુ સંકેતથી તેવી રીતે પ્રત્યક્ષ કરાય છે, એ પ્રકારે સંકેતને દ્યોતક માનશો, તો સંબંધ નિત્ય કહેવાશે. એ બંનેમાં કયો મત સંમત છે, એવો પૂછનારનો ભાવ છે.

૩–"**स्थितोऽस्य वाच्यस्य वाचकेन सह संबंधः**" ઇત્યાદિ ભાષ્યનો અનુવાદ કરતાં અંતિમ મતને સંગત માની સિદ્ધાંત કરે છે. "જે પ્રમાણે" એમ કહીને.

અર્થાત્, જેમ પિતા–પુત્રનો પરસ્પર જન્યજનકભાવ સંબંધ વિદ્યમાન છે ને તે “આ એનો પિતા છે અને આ એનો પુત્ર છે.” એવી રીતના સંકેતથી પ્રકાશ કરાય છે, કાંઈ તે સંકેતથી જ તે પિતા અને તે પુત્ર થયેલા નથી. તેમ ઈશ્વરકૃત સંકેત પણ વિદ્યમાન શબ્દાર્થ સંબંધનો પ્રકાશ કરે છે, કાંઈ નવો ઉત્પન્ન કરતો નથી.

એવી રીતે સર્વ ઠેકાણે સંકેત એ વિદ્યમાન સંબંધને પ્રકાશ કરે છે, પણ સંબંધનો જનક નથી, એમ જાણવાનું છે. એ સંકેત જેવો આ સર્ગમાં છે, તેવો જ બીજા સર્ગમાં પણ વિદ્યમાન જ હતો. એથી પૂર્વ પૂર્વ સંબંધના અનુસારે ઉત્તર ઉત્તર સર્ગમાં ભગવાન્ સંકેત કરે છે, એમ સમજવું નહિ.

એવી રીતે અનાદિસિદ્ધ વાચ્યવાચકભાવ સંબંધને સંકેતદ્વારા દ્યોત્ય માની વેદાર્થજ્ઞાતા મીમાંસક લોકો શબ્દાર્થ સંબંધને નિત્ય[1] માને છે. ॥ ૨૭ ॥

એ પ્રમાણે જે સાધકે, ઈશ્વર અને પ્રણવનો વાચ્યવાચકભાવ સંબંધ જાણી લીધો છે, તેના પ્રતિ કર્ત્તવ્ય પ્રણિધાનનું પ્રતિપાદન કરે છે. (विज्ञातवाच्यवाचकत्वस्य योगिनः[2])

सू–तज्जपस्तदर्थभावनम् ॥ २८ ॥

સૂત્રાર્થઃ–તે (પ્રણવ)નો જપ કરવો અને તેનો **અર્થ** જે પરમાત્મા તેનું ધ્યાન ધરવું.

(**विज्ञातवाच्यवाचकत्वस्य योगिनः**) જે સાધકે (યોગીએ) ઈશ્વર અને પ્રણવનો પૂર્વોક્ત પ્રકારે વાચ્યવાચકભાવ સંબંધ જાણી લીધો છે, એવા સાધકને (**तज्जपः**) તે પ્રણવ (ૐકાર) નો જપ અને (**तदर्थ**) તે પ્રણવના અર્થભૂત ઈશ્વરનું (**भावनम्**) ચિંતન કરવું યોગ્ય છે.

અર્થાત્, પ્રણવના જપપૂર્વક ઈશ્વરનું ધ્યાન કરવું, યોગીને ઉચિત છે. કારણ કે તેનું નામ ઈશ્વરપ્રણિધાન છે.

૧–યદ્યપિ પ્રલયમાં પોતાની શક્તિ સહિત જ શબ્દ, પ્રધાનમાં લય પામી જાય છે; તથાપિ ફરીથી સર્ગ કાળમાં શક્તિ સહિત જ તે આવિર્ભાવ પામે છે; કાંઈ શક્તિ રહિત આવિર્ભાવ પામતો નથી, માટે પૂર્વ સંબંધાનુસાર જ સંકેત થાય છે; કાંઈ વિલક્ષણ થતો નથી. તેથી એ વ્યવહાર પરંપરાથી શબ્દાર્થ સંબંધ નિત્ય છે, એ જ તત્ત્વ છે.

૨–એટલા પાઠનો ભાષ્યકારે સૂત્રના આદિ ભાગમાં અધ્યાહાર કર્યો છે તેથી જ તેનો ઉપન્યાસ કર્યો છે.

એવી રીતે પ્રણવનો જપ કરતા અને તેના અર્થભૂત ઈશ્વરનું ચિંતન કરતા યોગીનું ચિત્ત એકાગ્ર થઈ જાય છે, અને ત્યાર પછી નિજરૂપનો સાક્ષાત્કાર પણ તેને થઈ જાય છે.

જો કે જપ અને ઈશ્વરભાવનાનો એક કાળમાં સંભવ હોઈ શકે નહિ, તથાપિ ભાવનાની પૂર્વે અને ભાવનાની પછી જપ કરવો, એવો ક્રમ જાણવો.[1]

એથી જ વ્યાસજીએ "स्वाध्यायाद् योगमासीत योगात्स्वाध्यायमामनेत्, स्वाध्याययोगसंपत्त्या परमात्मा प्रकाशते"[2] એ વચનથી એ જ ક્રમે ઉપદેશ કરેલો છે.

[3]જો કે "ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म व्याहरन् मामनुस्मरन्। यः प्रयाति त्यजन् देहं स याति परमां गतिम्"[4] એ વાક્યથી શ્રીકૃષ્ણ ભગવાને ઈશ્વરપ્રણિધાનને જ સાક્ષાત્ મોક્ષ આપનાર કહેલો છે. તોપણ "आस्थितो योगधारणाम्" એ પૂર્વવાક્ય સાથે એકવાક્યતા કરી (ૐકાર જપપૂર્વક ઈશ્વર ધ્યાનથી યોગને પામેલો યોગી પરમ ગતિને પામે છે, એવી રીતે અર્થ કરી) સમન્વય કરી લેવો; નહિ તો સૂત્રકારે જે ઈશ્વરપ્રણિધાનને સમાધિ લાભદ્વારા મોક્ષને આપનાર કહેલો છે તે થાશે નહિ. ॥ ૨૮ ॥

"શું, ઈશ્વરપ્રણિધાનથી કેવળ સમાધિનો જ લાભ થાય છે કે તેનું

૧–ચિત્તને સઘળી તરફથી નિવૃત્ત કરી કેવળ ઈશ્વરમાં સ્થિર કરી દેવાનું નામ ભાવના છે. એથી એક કાળે બંનેનો સંભવ નથી. સામાન્ય રીતે સ્મરણ કરવામાં તે એક સાથે હોય, તેમાં કોઈ રીતનો બાધ જાણવો નહિ.

૨–સ્વાધ્યાય નામ પ્રણવ જપનું છે. પ્રણવ જપ કર્યા પછી યોગાભ્યાસ કરવો અને યોગાભ્યાસ કરી ફરી પ્રણવ જપ કરવો, એવી રીતે જપયોગની સંપત્તિ હોવાથી પરમાત્માનો સાક્ષાત્કાર થઈ જાય છે, એમ એ શ્લોકનો ભાવાર્થ છે.

૩–સૂત્રકારે અગાઉ ૨૩મા સૂત્રથી અને દ્વિતીય પાદમાં ૪૫મા સૂત્રથી ઈશ્વરપ્રણિધાનને, સમાધિસિદ્ધિનું સાધન કહેલું છે, અને ભગવાન્ શ્રીકૃષ્ણે તેને મોક્ષનો ઉપાય કહેલો છે, એ વિરોધનો પરિહાર કરવા સારુ 'જો કે' ઈત્યાદિથી કહે છે. અથવા બંને પ્રમાણોથી ઈશ્વરપ્રણિધાન, બંને ફળોને દેવાવાળું છે, એવી રીતે વિરોધાભાવ જાણી લેવો.

૪–બ્રહ્મના વાચક પ્રણવનો જપ અને મારું સ્મરણ જે પુરુષ કરે છે, તે, દેહનો ત્યાગ કર્યા પછી પરમ ગતિને પામે છે, એવો શ્રીકૃષ્ણના વાક્યનો અર્થ છે. (ગીતા અધ્યાય ૮ શ્લોક ૧૩).

કાંઈ બીજું ફળ છે?" એ આકાંક્ષાના નિવારણ અર્થે સૂત્રકાર, ફલાંતર પણ કહે છે.

सू–ततः प्रत्यक्चेतनाऽधिगमोऽप्यन्तरायाऽभावश्च ॥ २९ ॥

સૂત્રાર્થઃ–ઈશ્વરપ્રણિધાન કરવાથી આત્માનો સાક્ષાત્કાર પણ થાય છે અને વિઘ્નોનો અભાવ થાય છે.

(**ततः**) તે પૂર્વોક્ત ઈશ્વરપ્રણિધાનથી (**प्रत्यक्चेतन**) અંતઃકરણમાં[1] રહેલા ચેતનરૂપ આત્માનો (**अधिगमोऽपि**) સાક્ષાત્કાર પણ થઈ જાય છે. (**च**) અને (**अन्तरायाऽभावः**) હવે પછી કહેવામાં આવનારા અંતરાય=(વિઘ્નોનો) અભાવ થઈ જાય છે.

અર્થાત્, જેવી રીતે ઈશ્વરપ્રણિધાનથી સમાધિનો લાભ થઈ જાય છે, તેવી રીતે અંતરાયો (વિઘ્નો)ના અભાવદ્વારાએ પોતાના શુદ્ધ રૂપનો પણ સાક્ષાત્કાર થઈ જાય છે.

કાંઈ ઈશ્વરપ્રણિધાનથી તરત સમાધિનો જ લાભ થાય છે, એમ ન જાણવું. પરંતુ અંતરાય નિવૃત્તિપૂર્વક સ્વરૂપ સાક્ષાત્કાર પણ સાથે સાથે જ થઈ જાય છે, તે જાણવાને માટે જ સૂત્રમાં (**अपि**) પદ કહ્યું છે.

ભાવાર્થ એ છે કે, ઈશ્વરભાવનાથી જેવી રીતે પુરુષવિશેષ ઈશ્વર શુદ્ધ, પ્રસન્ન, કેવળ, અનુપસર્ગ[2] છે, તેવી રીતે હું પણ શુદ્ધ અસંગ છું, એવી રીતનો પુરુષને નિશ્ચય થાય છે, અને તેને જ પ્રત્યક્ચેતનાધિગમ, પુરુષદર્શન અથવા પુરુષસાક્ષાત્કાર કહે છે.

યદ્યપિ ઈશ્વરભાવનાથી ઈશ્વરનો જ સાક્ષાત્કાર થવો ઉચિત છે, આત્માનો નહિ; કેમકે એવો નિયમ છે કે, જેની ભાવના કરાય છે તેનો જ સાક્ષાત્કાર થાય છે, બીજાનો[3] નહિ; તથાપિ ઈશ્વર અને પુરુષ પરસ્પર અત્યંત સરખા હોવાથી પુરુષના સાક્ષાત્કારનો પણ સંભવ હોઈ શકે છે.

૧–જડવર્ગ પ્રકૃતિ વગેરેથી પ્રતિકૂલ (વિલક્ષણ) રૂપથી જે પ્રતીત થતું ચેતન, તે પ્રત્યક્ચેતન કહેવાય છે. તેનું નામ જીવ છે. અથવા (પ્રત્યક્) અંતઃકરણમાં હોવાવાળો જે ચેતન, તે પ્રત્યક્ ચેતન છે. સર્વ પ્રકારે પ્રત્યક્ ચેતન નામ જીવાત્માનું છે, તેથી જ કહ્યું છે–"અંતઃકરણમાં" વગેરે.

૨–પ્રસન્ન=ક્લેશરહિત. કેવળ=ધર્માધર્મરહિત. અનુપસર્ગ=જન્મ, અવસ્થા, ભોગરૂપ વિઘ્નોથી રહિત.

૩–કામિનીની ભાવના કરવાથી કામિનીનો જ સાક્ષાત્કાર થાય છે, કાંઈ સનકાદિક ઋષિઓનો સાક્ષાત્કાર થતો નથી.

અર્થાત્, વિજાતીય વસ્તુની ભાવનાથી વિજાતીય વસ્તુનો સાક્ષાત્કાર થવો યદ્યપિ અસંભવિત છે, તથાપિ સજાતીય ભાવનાથી સજાતીયનો સાક્ષાત્કાર થવો અનુપપન્ન (અસંભવિત) નથી. કેમકે એક શાસ્ત્રના અભ્યાસથી સજાતીય શાસ્ત્રનો અનુભવ લોકમાં પ્રત્યક્ષ દૃષ્ટ છે.

વ્યવધાનનો અભાવ[1] થયા પછી પ્રથમ ઈશ્વરનો સાક્ષાત્કાર ન હોઈ પોતાના રૂપનો જ સાક્ષાત્કાર થાય છે, એવો સૂત્રકારનો આશય છે. ॥૨૯॥

ઈશ્વરપ્રણિધાનથી જે અંતરાયોનો અભાવ થાય છે, તે અંતરાયો કયા? જો એમ કહો કે, જે ચિત્તને વિક્ષિપ્ત કરી એકાગ્રતાથી પ્રચ્યુત કરી દે છે, તે જ અંતરાયો છે, તો તેની સંખ્યા કહેવી જોઈએ, કે તે કેટલા છે? તે આકાંક્ષાના નિવારણ અર્થે સૂત્રકાર અંતરાયોનું સ્વરૂપ કહે છે;–

सू–व्याधिस्त्यानसंशयप्रमादाऽऽलस्याऽविरतिभ्रांतिदर्शनाऽलब्धभूमिकत्वाऽनवस्थितत्वानि चित्तविक्षेपास्तेऽन्तरायाः ॥ ३० ॥

સૂત્રાર્થઃ–વ્યાધિ, સ્ત્યાન, સંશય, પ્રમાદ, આલસ્ય, અવિરતિ, ભ્રાંતિદર્શન, અલબ્ધ ભૂમિકત્વ, અનવસ્થિતત્વ, આ નવ (चित्तविक्षेपाः) ચિત્તનો વિક્ષેપ કરનાર છે. (ते) તે જ નવ (अंतरायाः) યોગમાં વિઘ્ન છે.

અર્થાત્, એ નવના હોવાથી જ પૂર્વોક્ત પ્રમાણાદિ વૃત્તિઓ ઉત્પન્ન થઈ ચિત્તને વિક્ષિપ્ત કરી દે છે અને તેમના અભાવથી ચિત્ત, સ્થિર થાય છે. એ પ્રમાણે અન્વયવ્યતિરેકથી[2] એ નવા યોગના પ્રતિપક્ષી (વિરોધી) છે.

વ્યાધિ=ધાતુ–રસ–કરણનું વૈષમ્ય. અર્થાત્,[3] વાત, પિત્ત, કફ

૧–જેની ભાવના કરી છે, તેનો સાક્ષાત્કાર ન થતાં આત્માનો જ સાક્ષાત્કાર કેમ થાય છે, તેનો ઉત્તર કહ્યો છે. "વ્યવધાનનો અભાવ હોવાથી" એ વાકયથી.

૨–એ નવના હોવાથી વિક્ષેપનું હોવું, એ અન્વય છે, અને તેઓના ન હોવાથી વિક્ષેપનો અભાવ થવો, એ વ્યતિરેક છે.

૩–શરીર ધારણ કરનાર અથવા સ્થિતિમાં રાખનાર વાત, પિત્ત, અને કફ એ ત્રણેનું નામ ધાતુ છે. તેમની ઇયત્તા (પ્રમાણ)નો ત્યાગ થઈ ન્યૂનાધિકપણું થઈ જવું, તેનું નામ ધાતુ વૈષમ્ય છે. તેને વૈદ્યકશાસ્ત્રમાં ધાતુપ્રકોપ કહે છે. પરિપાકદશાને પામેલા ભુકતપીત અન્નજળના સારનું નામ રસ છે. તેનું વૈષમ્ય એ છે કે, ખાધેલું પીધેલું જલદી હઝમ ન થાય તે. કરણ નામ નેત્રાદિક ઇંદ્રિયોનું છે. તેનું વૈષમ્ય એ છે જે–કમ દેખવું, કમ સાંભળવું વગેરે. તેજ "અર્થાત્" ઇત્યાદિથી કહેવામાં આવે છે.

સંજ્ઞાવાળા ત્રણે ધાતુઓમાંથી કોઈ એકનો પ્રકોપ થઈ, તેમનું ન્યૂનાધિકપણું થઈ જવું, તેનું નામ ધાતુવૈષમ્ય છે અને ભુક્તપીત (ખાધેલા પીધેલા) અન્નજળનો સારી રીતે પરિપાક ન થવો, તેનું નામ રસવૈષમ્ય છે. નેત્ર વગેરે ઇંદ્રિયોની શક્તિનું મંદ મધ્યમ થઈ જવું, તેનું નામ કરણવૈષમ્ય છે. એ ધાતુ, રસ, કરણ વૈષમ્યનું નામ વ્યાધિ–રોગ છે.

સ્ત્યાન=ચિત્તનું અકર્મણ્યપણું. અર્થાત્ ઇચ્છા હોવા છતાં પણ કોઈ કાર્ય કરવાનું સામર્થ્ય ન હોવું તેનું નામ સ્ત્યાન છે.

સંશય=હું યોગ સાધી શકીશ કે નહિ, અથવા તે યોગરૂપ કાર્ય, સિદ્ધ થશે કે નહિ, એવી રીતની બે પ્રકારની શંકા કરવાવાળું જે જ્ઞાન, તે સંશય છે.

પ્રમાદ=સમાધિનાં સાધનોમાં ઉત્સાહપૂર્વક પ્રવૃત્તિ કરવી નહિ તે.

આલસ્ય=શરીર અને ચિત્તના ગુરુત્વથી પ્રવૃત્તિનો અભાવ. ગુરુત્વ એટલે ભારેપણું. તેમાં શરીરનું ભારેપણું કફના પ્રકોપથી થાય છે અને મનનું ભારેપણું તમોગુણના આધિક્યથી થાય છે.

અવિરતિ=વિષય અને ઇંદ્રિયના સંયોગથી ચિત્તની વિષયોમાં તૃષ્ણા હોવાથી વૈરાગ્યનો અભાવ.

ભ્રાંતિદર્શન=વિપર્યયજ્ઞાન અર્થાત્ અન્યવસ્તુમાં અન્ય પ્રકારનું જ્ઞાન.[1]

અલબ્ધભૂમિકત્વ=કોઈ પ્રતિબંધને લીધે, હવે પછી કહેવામાં આવનારી મધુમતી વગેરે યોગભૂમિનો લાભ ન થવો તે.

અનવસ્થિતત્વ=કોઇએક યોગભૂમિનો કથંચિત્ (કોઈપણ પ્રકારે) લાભ હોવા છતાં તેમાં ચિત્તની નિરંતર સ્થિતિનો અભાવ. અર્થાત્, હરકોઈ યોગની અવસ્થાનો લાભ થવાથી જો તેમાં જ યોગી કૃતકૃત્ય માની લેશે, તો સમાધિના અલાભથી ચિત્ત, સ્થિર થશે નહિ. કેમકે સમાધિના લાભથી જ ચિત્ત સ્થિર થાય છે, અન્યથા નહિ. એ પ્રમાણે સમાધિના અલાભથી ચિત્તની જે અસ્થિરતા, તેનું નામ અનવસ્થિતત્વ છે.[2]

આ નવ જ ચિત્તવિક્ષેપ, યોગમળ, યોગપ્રતિપક્ષ, યોગાંતરાય, એવા નામથી પ્રસિદ્ધ છે. ॥ ૩૦ ॥

૧–અહીં યોગપક્ષમાં વિપર્યયજ્ઞાન એ જ છે કે, યોગનાં સાધનોને અસાધન જાણવાં અને અસાધનોને સાધન જાણવાં. ૨–જે હેતુથી સમાધિના લાભ વિના ચિત્ત, સ્થિર થતું નથી, તે જ અનવસ્થિતત્વ કહેવાય છે. તેટલા માટે સમાધિના લાભમાં જ પુરુષે પ્રયત્ન કરવો ઉચિત છે, આ તેનો ભાવ છે.

કેવળ એ નવ જ યોગના પ્રતિબંધક છે, એમ ન જાણવું, પણ એ નવના હોવાથી બીજા પણ પ્રતિબંધક ઉત્પન્ન થાય છે, એવા આશયથી સૂત્રકાર બીજાઓનું સ્વરૂપ પણ કહે છેઃ-

सू-दुःखदौर्मनस्याऽङ्गमेजयत्वश्वासप्रश्वासा विक्षेपसहभुवः ॥ ३१ ॥

સૂત્રાર્થઃ-દુઃખ, દૌર્મનસ્ય, અંગમેજયત્વ, શ્વાસ, પ્રશ્વાસ, એ પાંચ પણ (**विक्षेपसहभुवः**) ઉપર કહેલા વિક્ષેપોની સાથે થાય છે.

અર્થાત્, પૂર્વોક્ત વિક્ષેપોના હોવાથી આ પાંચ બીજા પ્રતિબંધક પણ ઉપસ્થિત થાય છે.

દુઃખ=જેનો સંબંધ થતાં પીડા પામેલો માણસ, તેની નિવૃત્તિ માટે યત્ન કરે છે, તે દુઃખ કહેવાય છે. તે દુઃખ આધ્યાત્મિક, આધિભૌતિક અને આધિદૈવિક ભેદથી ત્રણ પ્રકારનું છે.

તેમાં કામ ક્રોધાદિજન્ય જે માનસ પરિતાપ અને વાતપિત્તાદિ પ્રકોપજન્ય જે દેહમાં હોવાવાળા જ્વરાદિ રોગ, એ સઘળાં આધ્યાત્મિક દુઃખ છે.[1] એ પ્રમાણે સિંહ, વાઘ, સર્પ વગેરે ભૂતોથી ઉત્પન્ન થયેલાં જે દુઃખ, તે આધિભૌતિક છે અને વજ્રપાત, ગ્રહપીડા, અતિ વૃષ્ટિ, અતિ ગરમી વગેરેથી ઉત્પન્ન થયેલાં જે દુઃખ, તે આધિદૈવિક છે.

દૌર્મનસ્ય=ઇચ્છેલા પદાર્થવિષયક ઇચ્છા પૂર્ણ ન થવાથી ચિત્તમાં જે ક્ષોભ ઉત્પન્ન થાય છે, તે દૌર્મનસ્ય કહેવાય છે.

અંગમેજયત્વ=દેહના પ્રત્યેક અંગમાં કંપ થવો તે.[2]

શ્વાસ=ઇચ્છા વિના જ બહારના વાયુનો નાસિકાથી અંદર પ્રવેશ થવો તે.

પ્રશ્વાસ=ઇચ્છા વિના જ અંદરના વાયુનું બહાર નીકળી જવું. એ પાંચે, વિક્ષિપ્ત ચિત્તવાળા યોગીને થાય છે; પણ સમાહિત ચિત્તવાળાને થતા નથી, માટે તેઓ વિક્ષેપસહભુવ કહેવાય છે. ॥ ૩૧ ॥

૧-જો કે સઘળાં દુઃખ, મનનો ધર્મ હોવાથી માનસજ છે, તોપણ જે કેવળ મનથી જ જન્ય હોય, તે માનસ કહેવાય અને જે બીજા કોઈ દ્વારાએ મનથી જન્ય હોય, તે તે નામથી કહેવાય છે, એટલો તેમાં ભેદ છે. આત્મા નામ મનનું અને શરીરનું પણ છે. એ બંનેના અધિકારથી (નિમિત્તથી) જે દુઃખ ઉત્પન્ન થાય, તે આધ્યાત્મિક કહેવાય છે. એથી જ આધ્યાત્મિકના બે ભેદ કહેલા છે, એમ સમજવું.

૨-તેમાં શરીરનું કંપવું, સમાધિના અંગભૂત આસનનું વિરોધી છે. એ પ્રમાણે શ્વાસને રેચકપ્રાણાયામનો તથા પ્રશ્વાસને પૂરકપ્રાણાયામનો વિરોધી જાણવો.

આ સઘળા વિક્ષેપ, સમાધિના વિરોધી છે, તેથી પૂર્વોક્ત અભ્યાસ અને વૈરાગ્યવડે જ તેમનો નિરોધ કરવો યોગ્ય છે.[1] એ અભ્યાસ વૈરાગ્યની હકીકત, ઉપર કહેવાઈ ગઈ છે. હવે એ બંનેમાંથી પૂર્વોક્ત ઈશ્વર-પ્રણિધાનરૂપ અભ્યાસના વિષયનો ઉપસંહાર કરે છે.

सू—तत्प्रतिषेधार्थमेकतत्त्वाऽभ्यासः ॥ ३२ ॥

સૂત્રાર્થઃ–(**तत्प्रतिषेधार्थम्**) તે પૂર્વોક્તિ વિક્ષેપોનો નાશ કરવા માટે (**एकतत्त्वाभ्यासः**) એક તત્ત્વનો અભ્યાસ કરવો.

અહીં એક શબ્દ, પ્રધાન અર્થનો વાચક છે, તેથી એક તત્ત્વનો અર્થ પ્રધાન તત્ત્વ એમ થાય છે. તે પ્રધાન તત્ત્વ અહીં ઈશ્વર છે. તે ઈશ્વર-રૂપ આલંબનમાં વારંવાર ચિત્તનો નિવેશ કરવો, તેનું નામ એક તત્ત્વનો અભ્યાસ છે, અને તેનું જ નામ ઈશ્વરપ્રણિધાન કહેવાય છે. તેથી એવો અર્થ થાય છે કે, એ સઘળા વિક્ષેપોની નિવૃત્તિ માટે પૂર્વોક્ત ઇશ્વરપ્રણિ-ધાન યોગીએ કર્યા કરવું.

જો કે 'એક તત્ત્વ' શબ્દથી કોઈ પણ એક તત્ત્વનું જ ગ્રહણ કરવાનો અહીં સંભવ થઈ શકે છે, કાંઈ ઈશ્વરરૂપ વિશેષ તત્ત્વના ગ્રહણનો સંભવ હોઈ શકતો નથી; તો પણ આ ઈશ્વરપ્રણિધાનનું પ્રકરણ છે તેથી ઈશ્વરનું જ અહીં ગ્રહણ કરવું ઉચિત છે. કેમકે શાસ્ત્રનો એ નિયમ છે કે, જ્યાં અનેકાર્થ હોવાથી શબ્દના અર્થ વિશેષનો નિશ્ચય ન થાય, ત્યાં પ્રકરણબળથી જ અર્થવિશેષનું ગ્રહણ કરવું.[2]

વળી "**उपसंहरन्निदं सूत्रमाह**" એ વચનથી ભાષ્યકારે એ સૂત્રના ઉપ-સંહાર (સમાપ્તિ) વિષે નિરૂપણ કરેલું છે, અને ઉપસંહાર તેનો જ હોય છે, કે જેનો ઉપક્રમ (આરંભ) કર્યો હોય. અહીં ઉપક્રમ, ઈશ્વરપ્રણિ-ધાનનો જ છે, તેથી તેનો જ ઉપસંહાર થવો ઉચિત છે, બીજાનો નહિ.

એ પ્રમાણે ઉપક્રમ ઉપસંહારની એક રૂપતાના બળથી એક તત્ત્વ

૧–યદ્યપિ ઈશ્વરપ્રણિધાનરૂપ અભ્યાસ જ, સૂત્રકારે વિક્ષેપનો નિવર્તક કહેલો છે, તોપણ એ ભાષ્યકારના વચનથી વૈરાગ્યને પણ તેનો સહકારી જાણી લેવો.

૨–જેમ 'સૈંધવ' શબ્દના, લવણ અને અશ્વરૂપ અનેક અર્થ છે, પણ ભોજનરૂપ પ્રકરણના બળથી લવણરૂપ અર્થનો અને ગમનરૂપ પ્રકરણના બળથી અશ્વરૂપ અર્થનો નિશ્ચય થાય છે; તેમ અહીં પણ પ્રકરણના બળથી વિશેષ અર્થનો નિશ્ચય જાણી લેવો.

શબ્દને ઈશ્વરાર્થક માની, અહીં ઈશ્વરપ્રણિધાનનું જ ગ્રહણ કરવું યોગ્ય છે, પણ કોઈ એક તત્ત્વના અભ્યાસનું નહિ, એ સિદ્ધ થાય છે.

જો કે યોગવાર્તિકકાર વિજ્ઞાનભિક્ષુ તથા ભોજવૃત્તિકારે એ ઉપક્રમોપસંહારની એકરૂપતા ન જાણી એક તત્ત્વ શબ્દનો અર્થ, હર કોઈ એક સ્થૂલ તત્ત્વ એવો માન્યો છે, પણ તે પ્રકરણવિરુદ્ધ તથા પૂર્વોક્ત ભાષ્યકારોએ કહેલા ઉપસંહારના કથનથી વિરુદ્ધ છે, તેથી તજવા યોગ્ય છે.

વળી પૂર્વના ૨૯ મા સૂત્રથી ઈશ્વરપ્રણિધાનમાં જે અંતરાય આવે છે, તેની નિવૃત્તિનો ઉપાય કહી, પછી અંતરાય કયા છે, એ આકાંક્ષા થવાથી ૩૦ અને ૩૧ મા સૂત્રોથી અંતરાયોના સ્વરૂપનો નિર્દેશ કરી, ફરી આ સૂત્રથી તેમના અભાવ માટે એક તત્ત્વાભ્યાસ કહેલો છે. એ પ્રમાણે એ ઈશ્વરપ્રણિધાનને આરંભમાં વિક્ષેપની નિવૃત્તિનો ઉપાય કહેલો છે, તેનો જ અહીં ઉપસંહાર કરવો ઉચિત છે. કેમકે તેનું નામ ઉપક્રમોપસંહારની એકરૂપતા છે.

જો એમ કહો કે, જેમ ઈશ્વરપ્રણિધાન, વિક્ષેપોની નિવૃત્તિનો ઉપાય છે, અને એક તત્ત્વાભ્યાસ પણ એક સ્વતંત્ર જૂદો જ ઉપાય સૂત્રકારે કહેલો છે, તો પછી સૂત્રકારે "**एकतत्त्वाभ्यासो वा**" એવી રીતના વિકલ્પબોધક 'વા' શબ્દનો પ્રયોગ કેમ ન કર્યો? કેમકે "વા" શબ્દનો પ્રયોગ કરવાથી જ (અથવા વિક્ષેપોની નિવૃત્તિ માટે એક તત્ત્વનો જ અભ્યાસ કરવો, કાંઈ ઈશ્વરપ્રણિધાનનો નિયમ નથી.) ઈશ્વરપ્રણિધાન એ જ અર્થ હોઈ શકે છે, બીજી રીતે નહિ.

વળી "**यथाभिमतध्यानाद्वा**" એ ૩૯ મા સૂત્રથી જ્યારે આગળ કોઈ એક સ્થૂલ તત્ત્વના અભ્યાસ વિષે કહેવાનું છે, તો પછી અહીં તે કહેવાની જરૂર શી?

અહીં પ્રસંગથી એ પણ અવશ્ય જાણવા યોગ્ય છે કે, જો કે[1] વૈનાશિક[2]

૧–અહીં ભાષ્યકારે "यस्य तु प्रत्यर्थनियतं प्रत्ययमात्रं क्षणिकं च चित्तं तस्य सर्वमेव चित्तमेकाग्रं नास्त्येव विक्षिप्तम्" ઇત્યાદિ ગ્રંથથી બૌદ્ધલોકને અભિમત ચિત્તની ક્ષણિકતાનું નિરાકરણ કરેલું છે. એથી એ ભાષ્યનો અનુવાદ કરતાં સંક્ષેપથી ક્ષણિકવાદનું ખંડન કરે છે. "જો કે" ઇત્યાદિથી.

૨–વૈનાશિક નામ બૌદ્ધોનું છે. કેમકે તેઓ સઘળા પ્રપંચને ક્ષણિક હોવાથી વિનાશશીલ માને છે.

લોક, ચિત્તને ક્ષણિકત્વ પ્રયુક્ત, પ્રત્યર્થનિયત, પ્રત્યયમાત્ર[1] માને છે, તેમના મતમાં સમગ્ર ચિત્ત એક એક વિષયમાં જ નિયત સ્થિત હોવાથી અનેક વિષયગમનશીલતારૂપ વિક્ષેપના અભાવથી એકાગ્ર ચિત્તનો સંભવ હોઈ શકતો નથી. એ પ્રમાણે વૈનાશિક ગુરુ બુદ્ધદેવે જે વિક્ષેપ નિવૃત્તિને માટે અને શિષ્યોને ચિત્તની એકાગ્રતા કરવા માટે ભાવનાનો ઉપદેશ કર્યો છે, તે નિરર્થક થઈ જાય છે. કેમકે જ્યારે સઘળા વિષયોથી નિવૃત્ત કરીને કોઈ એક વિષયમાં ચિત્તની નિરંતર સ્થિતિ કરાય, ત્યારે જ ચિત્ત એકાગ્ર થયું, એમ કહી શકાય છે. તેટલા માટે એક વિષયમાં ચિત્તની નિરંતર સ્થિતિ બૌદ્ધ સિદ્ધાંતથી વિરુદ્ધ છે. કેમકે તે ચિત્તને પ્રત્યર્થનિયત અને ક્ષણિક માને છે.

એથી બુદ્ધદેવનું કથન એકાગ્રતાના ઉપદેશથી વિરુદ્ધ હોવાથી ચિત્તને પ્રત્યર્થનિયત માનવું, તે સ્વસિદ્ધાંત વિરુદ્ધ છે.[2] એ પ્રમાણે ચિત્ત, પ્રત્યર્થનિયત પણ નથી, એમ સિદ્ધ થાય છે.

आशंका–જો બૌદ્ધ એમ કહે કે,[3] એક વિષયના પરિત્યાગપૂર્વક અન્ય અન્ય વિષયમાં ગમનશીલતાને અમે વિક્ષેપ કહેતા નથી, અને એક વિષયમાં નિરંતર સ્થિત રહેવાને એકાગ્રતા કહેતા નથી; પણ ચિત્ત નીલપીતાદિ અનેક પરસ્પર વિભિન્ન વિષયાકાર હોવાથી જે ક્ષણ ક્ષણમાં ચિત્ત વિલક્ષણાકાર ધારણ કરે છે, તે વિક્ષેપ છે; અને જ્ઞાન માત્ર હોઈ જે નિરંતર સદૃશ વિષયાકારથી ચિત્તનો પ્રવાહ થવો, તે એકાગ્રતા છે. એ એકાગ્રતા અમારા મતમાં પણ સંભવિત હોઈ શકે છે. કેમકે યદ્યપિ ચિત્ત, ક્ષણિક છે, તથાપિ પ્રથમ ક્ષણે જે વિષયમાં ગમન કરી ચિત્ત, સમાપ્ત થઈ જાય છે, તેના સદૃશ વિષયમાં જ બીજી ક્ષણે ચિત્તનું નિરંતર ઉત્પન્ન

૧–દ્વિતીય ક્ષણમાં જે નષ્ટ થાય, તે ક્ષણિક કહેવાય છે. ક્ષણિક હોવાથી ચિત્ત, પ્રત્યર્થ નિયત છે. અર્થાત્, જે વિષયને ચિત્ત, ગ્રહણ કરે છે, તે વિષય છોડીને બીજા વિષયનું ગ્રહણ ન કરતાં એ જ વિષયમાં સમાપ્ત થઈ જાય છે. અર્થાત્ ચિત્ત, પ્રત્યયમાત્ર એટલે વૃત્તિરૂપ આધેયથી રહિત થયેલું નિરાધાર છે.

૨–"સઘળો જ વસ્તુસમૂહ, ક્ષણિક અને દુઃખ સ્વરૂપ છે, ઇત્યાદિ ભાવનાના પરિપાકથી ચિત્ત એકાગ્ર થાય છે." એવી બૌદ્ધોની ઉક્તિ, "વદતો વ્યાઘાત" દોષયુક્ત હોવાથી અપ્રામાણિક છે. પોતાના જ વાક્યથી જ્યાં પોતાની ઉક્તિનો વિરોધ હોય, તે "વદતો વ્યાઘાત" દોષ કહેવાય છે. એ ભાવ છે.

૩–"योऽपि सदृशप्रत्ययप्रवाहेण चित्तमेकाग्रं मन्यते" ઇત્યાદિ ભાષ્યનો અનુવાદ કરતાં બૌદ્ધોના અભિપ્રાયનું વર્ણન કરે છે, "જો બૌદ્ધ એમ કહે કે" ઇત્યાદિથી.

અને સમાપ્ત કરવું સાધ્ય છે. કેમકે સદૃશ પ્રવાહનું ધારણ કરવું, એ જ અમારા મતમાં એકાગ્રતા છે.

समाधान–ત્યારે તેમને એ પૂછીએ છીએ કે, જે આ સદૃશ પ્રત્યયની પ્રવાહશીલતારૂપ એકાગ્રતા છે, તે પ્રવાહ ચિત્તનો (ઉત્તરોત્તર ધારારૂપ ચિત્તના પ્રવાહનો) ધર્મ છે, કે પ્રવાહાંશનો, (પ્રત્યેક ચિત્તની વ્યક્તિનો) ધર્મ છે? જો ચિત્તના પ્રવાહનો ધર્મ કહેશો, તો પ્રત્યેક વ્યક્તિઓથી ભિન્ન એક કોઈ ચિત્ત પ્રવાહ જ નથી કે જેનો તમે ધર્મ કહી શકો.[1]

વળી વસ્તુમાત્ર આપના મતમાં ક્ષણિક હોવાથી, ચિત્તપ્રવાહ પણ વસ્તુ હોવાથી ક્ષણિક માનવો પડશે. એ પ્રમાણે સ્થિર એક આશ્રયના અભાવથી એકાગ્રતારૂપ ધર્મનું નિરંતર રહેવું, એ સહજ અસંભવિત થાય છે.[2]

જો પ્રત્યેક ચિત્તવ્યક્તિઓના ધર્મ કહેશો, તો પછી ગમે તો, વિલક્ષણ પ્રત્યય પ્રવાહશાલી હોય, અથવા સદૃશ વિષય પ્રવાહશાલી હોય, તોપણ તેને સર્વથા પ્રત્યર્થનિયત જ કહેવો પડશે.[3] કેમકે જે વિષયમાં ઉત્પન્ન થયો, તે વિષયમાં સમાપ્ત હોવાથી અનેક ગમનરૂપ વિક્ષેપનો અહીં સંભવ નથી.

એ પ્રમાણે વિક્ષેપની નિવૃત્તિ સારુ બુદ્ધે જે એકાગ્રતાનો ઉપદેશ કર્યો, તે પણ પાછો અસંગત થઈ જાય છે. એ કરતાં તો સ્વભાવથી અનેક વિષયોમાં ગમનશીલ અને ઉપાયદ્વારાએ એક વિષયમાં સ્થિરતાવાળું એક સ્થિર ચિત્ત અવશ્ય માનવું ઉચિત છે.

વળી જો એક ચિત્તને સ્થિર ન માની, ક્ષણે ક્ષણે ભિન્ન ભિન્ન ચિત્ત માનીશું તો પૂર્વ ક્ષણમાં અન્ય ચિત્તથી જાણવામાં આવેલા પદાર્થનું, બીજે ક્ષણે ઉત્પન્ન થયેલા બીજા ચિત્તથી સ્મરણ શી રીતે થશે? કેમકે

૧–પ્રત્યેક પ્રત્યેક મળેલી ચિત્ત વ્યક્તિ જ ચિત્તપ્રવાહ કહેવાય છે. કાંઈ વ્યક્તિઓથી ભિન્ન ચિત્તનો પ્રવાહ નથી. કેમકે પ્રવાહવાળાથી ભિન્ન પ્રવાહ કોઈ વસ્તુ નથી, એ ભાવાર્થ છે.

૨–એકાગ્રતા પણ એક વસ્તુ જ છે. તે પ્રમાણે વસ્તુ હોવાથી એકાગ્રતા પણ ક્ષણિક માનવી પડશે, એ પણ વિચારવા જેવું છે.

૩–સદૃશ પ્રત્યયપ્રવાહ પણ વસ્તુ હોવાથી ક્ષણિક જ છે. તો પછી નિરંતર એકાગ્રતા પ્રવાહનો સંભવ કેમ હોય, તે પણ વિચારવા જેવું છે.

અનુભવ સંસ્કાર અને સ્મૃતિ એ ત્રણનો એક જ આશ્રય હોય છે, કાંઈ જૂદા જૂદા આશ્રય હોતા નથી.[૧]

અને એક ચિત્તે કરેલા કર્મોનો અન્ય ચિત્ત, ફળભોક્તા પણ કેવી રીતે થશે? કેમકે એવો નિયમ છે કે, જે માણસ કર્મનું અનુષ્ઠાન કરે છે, તે જ તેના કરેલા કર્મનો ભોક્તા થાય છે. નહિ તો અકૃતાભ્યાગમ અને કૃતવિપ્રણાશરૂપ બંને દોષોનો પ્રસંગ આવી પડશે.[૨]

आशंका–જો એમ કહો કે–જેમ પુત્રકૃત શ્રાદ્ધથી પિતૃગણને અને પિતૃકૃત વૈશ્વાનર ઇષ્ટિથી[૩] પુત્રોને ફળ મળે છે, એવું શાસ્ત્રમાં પ્રતિપાદન કર્યું છે. તેમ અન્યચિત્તકૃત કર્મોથી અન્યચિત્તને પણ ફળ મળવું સંભવિત છે.

समाधान–આ પણ આપનું કહેવું યુક્ત નથી. કેમકે જેવો પિતા-પુત્રનો જન્યજનકભાવ સંબંધ છે, તેવો તે પૂર્વચિત્તની સાથે ઉત્તરચિત્તનો જન્યજનકભાવ સંબંધ હોત, તો તમે કહી શકત, કે પૂર્વચિત્તનાં કર્મોના ફળનો ઉત્તરચિત્ત ભોક્તા છે, પણ તેવું તો તમારા મતમાં નથી. કેમકે પરસ્પર સંબંધ રહિત જ નૂતન નૂતન ચિત્ત ક્ષણે ક્ષણે ઉત્પન્ન થાય છે, તેવો તમારો સિદ્ધાંત છે.

વળી જેમ પુત્ર વગેરે, પિતા વગેરેના ઉદ્દેશથી કર્મોનાં અનુષ્ઠાન કરે છે, તેમ કાંઈ પૂર્વચિત્ત ઉત્તરચિત્તના ઉદ્દેશથી કર્મોનું અનુષ્ઠાન કરતું

૧–એમ કદાપિ સંભવતું નથી કે–દેવદત્તે શાસ્ત્રનો અભ્યાસ કર્યો, અને તેનો સંસ્કાર યજ્ઞદત્તને થયો તથા વિષ્ણુદત્તે તેનું સ્મરણ કર્યું. કેમકે જેને જ્ઞાન હોય છે, તેને તેનો સંસ્કાર તથા સ્મરણ હોય છે, તે અનુભવસિદ્ધ છે. બૌદ્ધોના મતમાં એક ક્ષણ પછી પૂર્વચિત્ત નષ્ટ થઇને બીજે ક્ષણે બીજું નવું ચિત્ત ઉત્પન્ન થાય છે, અને એમ હોવાથી અનુભવ થયેલું અન્ય ચિત્ત, સંસ્કાર પામેલું અન્ય ચિત્ત તથા સ્મરણ થયેલું અન્ય ચિત્ત, એવાં ક્ષણિકચિત્તો પ્રત્યક્ષ અનુભવથી વિરુદ્ધ માનવાં પડશે. માટે એક જ સ્થિરચિત્ત માનવું યોગ્ય છે, એ ભાવ છે.

૨–કર્માનુષ્ઠાન વિના ફળની ઉત્પત્તિનું નામ અકૃતાભ્યાગમ છે. કરેલાં કર્મોનાં ફળો આપ્યા વિના કર્મનો નાશ થવો, તેનું નામ કૃતવિપ્રણાશ છે. એકચિત્તનાં કરેલાં કર્મથી જો કોઈ અન્યચિત્તને ફળભોગ મળે, તો ઉત્તર-ચિત્તને વિના કર્મ જ ફળપ્રાપ્તિ હોવાથી અકૃતાભ્યાગમ દોષ અને પૂર્વચિત્તે કરેલાં કર્મનાં ફળ ન મળવાથી તેને કૃતવિપ્રણાશ દોષ થયો.

૩–પુત્રની તેજસ્વિતા, વીરતાદિક માટે પુત્રના જન્મ દિવસે, વૈશ્વાનર દેવતાના ઉદ્દેશથી પિતા જે યજ્ઞ કરે છે, તેનું નામ વૈશ્વાનર ઇષ્ટિ છે. શ્રાદ્ધ તો સ્પષ્ટ જ છે.

નથી, કે જેથી ઉત્તર ચિત્તને તેનું ફળ મળે. પણ તે તો પોતાના જ નિમિત્તે કર્મ કરે છે, ત્યારે ઉત્તરચિત્તને ફળનો સંબંધ કેમ બને? વધારે શું કહીએ! જેટલી તમારી યુક્તિઓ છે, તે સર્વ સઘળી ગોમયપાયસીય ન્યાયથી પણ દુષ્ટ છે.

અર્થાત્[1] જેમ "ગોમય–(છાણ) પણ પાયસ–(બાસુદી)ના સરખું સ્વાદુ અને ભક્ષ્ય છે, કેમકે તે પણ દૂધની પેઠે ગાયથી ઉત્પન્ન થાય છે." એ યુક્તિ દુષ્ટ છે, તેમ આપની પણ સઘળી યુક્તિઓ દુષ્ટ જ છે. વાસ્તવિક રીતે તેનાથી પણ વધારે દુષ્ટ છે. કેમકે તેમાં તો ગોમય (છાણ)ને મિષ્ટ કહેવામાં "ગાયથી ઉત્પન્ન થાય છે." એ હેતુ પણ આપેલો છે, અને આપના મતમાં તો અન્ય ચિત્તે કરેલાં કર્મોનો અન્યચિત્ત ભોક્તા છે, તેમાં હેતુ જ કોઈ મળતો નથી. માટે એક સ્થિરચિત્ત માનવું ઉચિત છે.

વળી જો[2] પ્રતિક્ષણે ચિત્તને અન્યથી અન્ય નૂતન જ માનશો, તો આપને જે આપનો અનુભવ થાય છે કે, "જે હું દેખવાવાળો છું, તે જ હું તેનો સ્પર્શ કરું છું" તે અનુપપન્ન થઈ જશે. કેમકે આ જ્ઞાનમાં દર્શન અને સ્પર્શનનો એક જ કર્તા પ્રતીત થાય છે, ભિન્ન ભિન્ન નહિ.

અર્થાત્[3] "જે હું દર્શન કરતો હતો, તે હું હવે સ્પર્શ કરું છું, અને જે હું સ્પર્શ કરતો હતો, તે જ હું હવે દર્શન કરું છું." એવી રીતનાં ભિન્ન ભિન્ન દર્શન સ્પર્શન વગેરે જ્ઞાનોમાં "**अहं अहं**" (હું હું) એવા પ્રકારનો પ્રતીયમાન, જે એ જ્ઞાનોનો આશ્રય તે, એક જ પ્રતીત થાય છે, વિભિન્ન નહિ. તે આ ભિન્ન ભિન્ન જ્ઞાનોમાં અનુગત જે "**अहं अहं**" (હું હું) એ આકારની અભિન્ન પ્રતીતિ છે તે, જો ચિત્ત અત્યંત ભિન્ન ક્ષણિક મનાશે, તો અનુપપન્ન થઈ જશે. કેમકે અત્યંત ભિન્ન ક્ષણિક ચિત્તોમાં એવી એકાકાર પ્રતીતિ હોવાનો સંભવ નથી અને એ પ્રત્યભિજ્ઞારૂપ પ્રત્યક્ષાનુભવનું[4] માહાત્મ્ય કોઈથી નિષેધ થઈ શકતું નથી.

૧–"कथं चित्तसमाधीयमानमप्येतद् गोमयपायसीयन्यायमाक्षिपति એ ભાષ્યના અર્થનો સ્પષ્ટ અનુવાદ કરે છે. "અર્થાત્" ઇત્યાદિથી.

૨–"किंच स्वात्माऽनुभवापह्नवश्चित्तस्यान्यत्वे प्राप्नोति" એ ભાષ્યનો અનુવાદ કરતાં દોષાંતર કહે છે. "વળી જો" ઇત્યાદિથી.

૩–"यदहमद्राक्षं तत्स्पृशामि" ઇત્યાદિ ભાષ્યના અર્થને સ્પષ્ટ કરે છે. "અર્થાત્" ઇત્યાદિથી. ૪–"જે હું દેખું છું, તે જ હું સ્પર્શ કરું છું." એ પ્રત્યભિજ્ઞા પ્રત્યક્ષનું સ્વરૂપ છે. કપિલમુનિએ પણ "न प्रत्यभिज्ञाबाधात्" અધ્યાય ૧ લાના ૩૫ મા સૂત્રથી એ પ્રકારે ક્ષણિકત્વનું ખંડન કરેલું છે.

કેમકે પ્રત્યક્ષ પ્રમાણ જ સઘળાં પ્રમાણોમાં બળવાળું છે, અને એ પ્રત્યક્ષ પ્રમાણના બળથી જ બીજાં સઘળાં પ્રમાણ સિદ્ધ થાય છે.

આ પ્રમાણે પ્રત્યભિજ્ઞા પ્રત્યક્ષથી ક્ષણિકત્વનો બાધ થાય છે; માટે એક સ્થિર ચિત્ત માનવું જરૂરનું છે. જો કે બૌદ્ધોએ ક્ષણિકત્વની સિદ્ધિના અર્થે, "જે વસ્તુ છે, તે ક્ષણિક છે, કેમકે વસ્તુ હોવાથી. જેમકે દીપની શિખા." એવી યુક્તિ આપેલી છે. તે યુક્તિ પણ, દીપની શિખા અનેક ક્ષણપર્યંત સ્થાયી રહેવાથી, ભ્રમમૂલક છે. એથી જ કપિલ મુનિએ "दृष्टांता-ऽसिद्धेश्च"[1] એ સૂત્રમાં દીપશિખારૂપ દૃષ્ટાંતનું ખંડન કર્યું છે. વિસ્તારથી બીજે સ્થળે આ બાબત સ્પષ્ટ છે.[2] ॥ ૩૨ ॥

એવી રીતે ઈશ્વર પ્રણિધાનરૂપ અભ્યાસ એકાગ્રતાનો ઉપાય છે, એમ નિરૂપણ કરી, હવે જે સાધનોના અનુષ્ઠાનથી રાગદ્વેષાદિ ચિત્તમળ નિવૃત્ત થઈ ચિત્ત પ્રસન્ન (નિર્મળ-સ્વચ્છ) થઈ, ઈશ્વરપ્રણિધાનની યોગ્યતાવાળું થાય છે, તે સાધનોનું પ્રતિપાદન કરે છે.

सू–मैत्रीकरुणामुदितोपेक्षाणां सुखदुःखपुण्याऽपुण्यविषयाणां भावनातः चित्तप्रसादनम् ॥ ३३ ॥

સૂત્રાર્થઃ–સુખી, દુઃખી, પુણ્યવાન્, અને પાપી માણસો ઉપર અનુક્રમે મૈત્રી, દયા, મુદિતા, અને ઉપેક્ષાની ભાવના કરવાથી ચિત્ત પ્રસન્ન થાય છે.

(**सुखदुःखपुण्याऽपुण्यविषयाणाम्**) સુખી, દુઃખી, પુણ્યાત્મા, પાપાત્મા પુરુષો વિષયક યથાક્રમથી (**मैत्रीकरुणामुदितोपेक्षाणाम्**) મિત્રતા, દયા, મુદિતા=હર્ષ, ઉપેક્ષા=ઉદાસીનતા, એ ધર્મોની (**भावनातः**) ભાવનાના

૧–પ્રદીપશિખારૂપ દષ્ટાંતમાં ક્ષણિકત્વ નથી પણ સૂક્ષ્મ અનેક ક્ષણોનું ભાન ન હોવાથી બૌદ્ધોને ક્ષણિકત્વનો ભ્રમ થયો છે. એ વાત સાંખ્યના પ્રથમાધ્યાયના ૩૭મા સૂત્રના અર્થમાં છે.

૨–સ્વામીજીનિર્મિત બૌદ્ધદર્શનસમીક્ષામાં સ્પષ્ટ છે. અર્થાત્–જો ચિત્ત ક્ષણિક હોવાથી અત્યંત ભિન્ન ભિન્ન મનાશે, તો નીલપીતાદિ વિલક્ષણ જ્ઞાન પ્રવાહવાળું ચિત્ત બદ્ધ છે, અને નીલપીતજ્ઞાનાદિરહિત વિશુદ્ધ જ્ઞાન પ્રવાહવાળું ચિત્ત મુક્ત છે, એમ હોવાથી બંધમોક્ષનો એક આશ્રય નહિ રહે, અને ભાવનાનું અનુષ્ઠાન કરવાવાળું ચિત્ત અન્ય અને ભાવનાપરિપાકજન્ય કૈવલ્યફળનો ભોક્તા અન્ય, એ પણ યુક્તિવિરુદ્ધ છે, એમ બૌદ્ધોને માનવું પડશે. એથી બધી રીતે ક્ષણિકવાદ અસંગત છે.

અનુષ્ઠાનથી (**चित्तप्रसादनम्**) ચિત્તની પ્રસન્નતા થાય છે, વા યોગી, ચિત્તને પ્રસન્ન=નિર્મલ કરે છે.

અર્થાત્-જે પુરુષ, સુખસંભોગસંપન્ન (સુખી) છે, તેનાપર મૈત્રીની ભાવના કરવી;[1] જે પુરુષ દુઃખી છે, તેનાપર કૃપાની ભાવના કરવી; જે પુણ્યશાલી છે, તેના ઉપર મુદિતા (હર્ષ)ની ભાવના કરવી, અર્થાત્ તેને જોઈ આનંદિત થવું; અને જે પુરુષ પાપાચરણવાળો છે, તેનાપર ઉપેક્ષા એટલે ઉદાસીનતાની ભાવના કરવી, અર્થાત્ તેની સાથે ઉદાસીનભાવથી વર્તવું.

એવી રીતે એ ચારે ભાવનાના અનુષ્ઠાનથી શુક્લધર્મની[2] ઉત્પત્તિ થાય છે, અને ત્યાર પછી ચિત્ત, પ્રસન્ન થઈ જાય છે. તે પછી પ્રસન્ન થયેલું ચિત્ત એકાગ્રરૂપ સ્થિતિપદનો લાભ મેળવે છે.

ભાવ એવો છે કે, રાગ, દ્વેષ, ઈર્ષ્યા, પારકા ઉપર અપકાર કરવાની ઈચ્છા, અસૂયા, અને અમર્ષ નામના રાજસ તામસરૂપ છ ધર્મો, ચિત્તને વિક્ષિપ્ત કરી મલિન કરી દે છે, તે છ **ચિત્તમળ** કહેવાય છે. એ છ જાતના ચિત્તમળ હોવાથી ચિત્તમાં છ જાતનું કાલુષ્ય પેદા થાય છે. જેમકે રાગ-કાલુષ્ય, દ્વેષકાલુષ્ય, ઈર્ષ્યાકાલુષ્ય, પરાપકાર ચિકીર્ષાકાલુષ્ય, અસૂયા-કાલુષ્ય અને અમર્ષકાલુષ્ય.

રાગકાલુષ્ય-સ્નેહપૂર્વક અનુભવ કરેલા સુખમાંથી "આ સુખ મને સર્વદા પ્રાપ્ત હો." એવા આકારની જે રાજસ વૃત્તિવિશેષ ઉપજે છે, તે રાગકાલુષ્ય કહેવાય છે. કેમકે તે રાગ, સઘળા સુખ સાધનના વિષયોની પ્રાપ્તિ ન થવાથી, ચિત્તને વિક્ષિપ્ત કરી કલુષિત કરી દે છે.

૧-અર્થાત્-સુખી પ્રાણીઓ સાથે મિત્રભાવથી વર્ત્તે. મૈત્રી નામ દ્વેષના અભાવનું અને સ્નેહનું છે. મનુભાષ્યકાર મેધાતિથિ ભટ્ટ તો એમ કહે છે કે-મૈત્રી શબ્દથી દ્વેષના અભાવનું જ ગ્રહણ કરવું, કાંઈ સ્નેહનું નહિ. કેમકે સ્નેહ પણ એક જાતનો રાગ હોવાથી બંધન જ છે. એ પ્રમાણે મુદિતા નામ શોક નિવૃત્તિનું છે, કાંઈ હર્ષનું નહિ. કેમકે હર્ષ પણ એક જાતનો રાગનો હેતુ હોવાથી ત્યાગ કરવા યોગ્ય છે.

૨-જેમ વેદાધ્યયનાદિ નિત્યકર્મથી પેદા થતા, પાપના અંશથી રહિત જે ધર્મ તે શુક્લ કહેવાય છે; તેમ મૈત્રી આદિ ભાવનાથી પેદા થતો ધર્મ, તે પણ શુક્લ જાણવો. કેમકે તે બંનેમાં પાપલેશ ન હોવાથી તે બંને શુદ્ધ સાત્ત્વિક છે અને જે ધર્મ યજ્ઞાદિથી ઉત્પન્ન થાય છે, તે કૃષ્ણ શુક્લ કહેવાય છે. કેમકે તેમાં હિંસાદિજન્ય પાપનો લેશ રહેવાથી તે શુદ્ધ સાત્ત્વિક નથી.

દ્વેષકાલુષ્ય–દુઃખભોગ પછી દુઃખ દેવાવાળા વિષયના અનિષ્ટ ચિંતનપૂર્વક "આ દુઃખ આપનારી વસ્તુ નષ્ટ હો, અને મને દુઃખ ન હો." એવી જે તામસવૃત્તિ વિશેષ થાય છે, તે દ્વેષકાલુષ્ય કહેવાય છે. કેમકે એ દ્વેષ, દુઃખહેતુ સિંહ, વાઘ વગેરેનો અભાવ ન હોવાથી, સર્વદા ચિત્તને વિક્ષિપ્ત કરી કલુષિત કરી દે છે.

ઈર્ષ્યાકાલુષ્ય–બીજા માણસનું ગુણાધિક્ય વા સંપત્તિ આધિક્ય જોઈ ચિત્તમાં જે ક્ષોભ અથવા એક જાતની બળતરા થાય છે, તે ઇર્ષ્યાકાલુષ્ય કહેવાય છે, કેમકે તે પણ ચિત્તને વિક્ષિપ્ત કરી કલુષિત કરી દે છે.

પરાપકારચિકીર્ષા કાલુષ્ય–બીજાનો અપકાર (ભુરું) કરવાની ઇચ્છા. તે પણ ચિત્તને વિહ્વલ કરી કલુષિત કરે છે.

અસૂયાકાલુષ્ય–કોઇના વખાણવા લાયક ગુણોમાં દોષનો આરોપ કરવો. જેમકે વ્રત આચારશીલ પુરુષને દંભી–પાખંડી જાણવો તે.

અમર્ષકાલુષ્ય–કુત્સિત વચન શ્રવણપૂર્વક પોતાના અપમાન પછી તે સહન ન કરતાં તેનો બદલો લેવાની ચેષ્ટા કરવી, તે અમર્ષકાલુષ્ય કહેવાય છે.

આ છ પ્રકારનાં કાલુષ્ય જ પુરુષોના ચિત્તમાં વિદ્યમાન હોવાથી ચિત્તને મલિન કરી વિક્ષિપ્ત કરી નાંખે છે. એટલા માટે ચિત્તમાં તેઓના અસ્તિત્વ માત્રથી જ ચિત્તની પ્રસન્નતા અને એકાગ્રતા દુઃસાધ્ય (કઠિન) બને છે.

મૈત્રી વગેરે ભાવનાથી એ ચિત્તમળોની નિવૃત્તિ કરવી, એ યોગેચ્છુનું પ્રથમ કર્તવ્ય છે; જેથી નિર્મળ થયેલું ચિત્ત, એકાગ્રતાની યોગ્યતાવાળું થઈ જાય, એવો સૂત્રકારનો આશય છે.

તેમાં સુખી[1] પુરુષોની સાથે મિત્રભાવથી વર્તીને રાગ અને ઇર્ષ્યાના કાલુષ્યની નિવૃત્તિ કરવી; અર્થાત્, જ્યારે કોઈ સુખી જોવામાં આવે, ત્યારે તેની સાથે મૈત્રી કરી એમ સમજવું કે, આ સઘળાં સુખ મારા મિત્રનાં છે, તેથી તે મારાં જ છે. એથી જેમ પોતાને રાજ્ય લાભ ન હોય અને પોતાના પુત્રને હોય, તો તેને પોતાનો જાણવાથી રાજ્ય ઉપરનો રાગ નિવૃત્ત થાય છે; તેમ મિત્રના સુખને પણ પોતાનું સુખ માનવાથી રાગ અવશ્ય નિવૃત્ત થઈ જશે. એમ જ્યારે માણસ, પારકું સુખ પોતાનું જ સમજશે, ત્યારે બીજાના ઐશ્વર્યને જોઈ ચિત્તમાં દાહ ન પામતાં પ્રસન્ન થશે, અને ઇર્ષ્યા પણ નિવૃત્ત થઈ જશે.

૧–હવે જે પ્રકારે એ ભાવનાના અનુષ્ઠાનથી રાગાદિ કાલુષ્યની નિવૃત્તિ થાય છે, તે પ્રકારનું ઉપપાદન કરે છેઃ–"સુખી પુરુષોની સાથે" ઇત્યાદિથી.

એ પ્રમાણે દુઃખી પુરુષો ઉપર કૃપા કરીને દ્વેષ તથા પરાપકાર ચિકીર્ષારૂપ કાલુષ્યની નિવૃત્તિ કરવી.

અર્થાત્–જ્યારે કોઈ દુઃખી પુરુષ જોવામાં આવે, તો પોતાના ચિત્તમાં "એ[1] બિચારાને બહુ મોટું કષ્ટ થતું હશે. કેમકે અમારા ઉપર પણ કોઈ સંકટ આવી પડે છે, તો કેટલું દુઃખ ભોગવવું પડે છે, તે અમે જાણીએ છીએ." એવો વિચાર કરી તેનું દુઃખ દૂર કરવાનો યત્ન કરવો; પણ એમ ન જાણવું, કે તેના દુઃખ કે સુખમાં આપણે શું પ્રયોજન છે? જ્યારે એવી રીતની કરુણામયી ભાવના ચિત્તમાં ઉત્પન્ન થાશે, ત્યારે પોતાના જેવી સઘળાના સુખની ચાહનાથી વૈરીનો અભાવ થવાથી દ્વેષ અને પરાપકાર ચિકીર્ષા નિવૃત્ત થઈ જશે.

એ પ્રમાણે જ્યારે પુણ્યાત્મા માણસ જોવામાં આવે ત્યારે ચિત્તમાં "અહો! મોટું ભાગ્ય આનાં માતાપિતાનું, કે જેનાથી આવા પુણ્યશાળી કુલપ્રદીપ સત્પુરુષનો જન્મ થયો છે અને તે પુણ્યશાળીને પણ ધન્યવાદ છે કે, તન મન અને ધનથી પુણ્ય કામમાં પ્રવૃત્ત થયેલો છે." એવી રીતના આનંદને પામે અને એવી રીતની મુદિતા ભાવના ચિત્તમાં ઉત્પન્ન થાશે, ત્યારે અસૂયારૂપી ચિત્તનો મળ પણ અવશ્ય નિવૃત્ત થશે.

એવી રીતે પાપી પુરુષ જોવામાં આવે, તો પોતાના ચિત્તમાં "તે આપણને કુત્સિત વચન બોલશે અને અપમાન કરશે. તેની કુટિલતાનો આપણે બદલો લેવાનું શું પ્રયોજન છે? તે જે ચાહે તે કરે, પોતાના કર્ત્તવ્યનું ફળ પોતે ભોગવશે" એવી રીતથી તેના ઉપર ઉપેક્ષાની ભાવના કરવી. આમ ઉપેક્ષાની ભાવનાથી અમર્ષરૂપ ચિત્તમળ નિવૃત્ત થઈ જાય છે.

એ પ્રમાણે જ્યારે એ ચારે ભાવનાના અનુષ્ઠાનથી, આ સઘળાં કાલુષ્ય નિવૃત્ત થઈ જાય છે, ત્યારે વર્ષાઋતુ પછીના જળની પેઠે ચિત્ત પણ અવશ્ય નિર્મળ થઈ જાય છે. એથી પ્રથમ, એ ચારે ભાવનાના અનુષ્ઠાનથી ચિત્તપ્રસાદન (સ્વચ્છચિત્ત) કરવું, એ રૂપી ફળ થાય છે. ॥ ૩૩ ॥

હવે પ્રસન્ન થયેલું ચિત્ત, જે ઉપાયોદ્વારા સ્થિતિરૂપ એકાગ્રતાનો લાભ કરે છે, તે ઉપાયનું પ્રતિપાદન કરે છે.

૧–હવે "प्राणा यथात्मनोऽभीष्टा भूतानामपि ते तथा । आत्मौपम्येन सर्वत्र दया कुर्वंति साधवः" "એ વૃદ્ધ વાકય અનુસારે કૃપાનો અર્થ કરે છે." ઇત્યાદિ. જેમ આપણા પ્રાણ આપણને પ્રિય છે, તેમ બીજાં પ્રાણીઓને પણ તેમના પ્રાણ પ્રિય જ છે. એવા વિચારથી સાધુ લોકો પોતાના પ્રાણની બરાબર સઘળા ઉપર દયા કરે છે.

सू–प्रच्छर्दनविधारणाभ्यां वा प्राणस्य ॥ ३४ ॥

સૂત્રાર્થઃ–અથવા તો પ્રાણવાયુનું પ્રચ્છર્દન અને વિધારણ કરવાથી ચિત્તની સ્થિરતા કરવી.

(वा) અથવા (प्राणस्य) કોષ્ઠસ્થિત પ્રાણ નામના વાયુનું (प्रच्छर्दन विधारणाभ्याम्) નાસિકાદ્વારા રેચન અને ધારણ કરી ચિત્તની સ્થિરતા સંપાદન કરવી.[1]

અર્થાત્–યોગશાસ્ત્રોક્ત એક જાતના પ્રયત્નથી[2] કોષ્ઠસ્થિત (કોઠામાં=ઉદરમાં રહેલા) વાયુનું પોતાના નાસિકાપુટદ્વારા ધીમે ધીમે રેચન (બહાર કાઢવું) એ પ્રચ્છર્દન શબ્દનો અર્થ છે અને તે રેચિત વાયુનું (બહાર નીકળેલા વાયુનું) ફરી સહસા (તરત) અંદર પ્રવેશ ન થવા દેતાં બહાર જ સ્થાપન કરવું, તે વિધારણ કહેવાય છે અને એ પ્રમાણે પ્રચ્છર્દન પદથી રેચક પ્રાણાયામ તથા વિધારણ પદથી કુંભક પ્રાણાયામનું ગ્રહણ થાય છે.[3]

તેથી એવો અર્થ થાય છે કે, રેચક કુંભક પ્રાણાયામદ્વારા મનની સ્થિરતાનું સંપાદન કરવું.

અહીં સૂત્રમાં જે "वा" શબ્દ છે, તે હવે કહેવાના ઉપાયોના સંગે આ પ્રાણાયામરૂપ ઉપાયનો વિકલ્પબોધક છે. અર્થાત્, હવે પછી કહેવાના ઉપાયોથી ચિત્તની સ્થિતિનું સંપાદન કરવું, વા પ્રાણાયામથી

૧–અહી (मनसः स्थितिं संपादयेत्) એ ભાષ્યના અનુસારે ઉત્તર સૂત્રમાંથી (मनसः) અને (स्थिति निबंधनी) એ પદના એકદેશ સ્થિતિ પદનું આકર્ષણ કરી (संपादयेत्) એ પદનો અધ્યાહાર કરી લેવો. એ આશયથી કહે છે કે:–"ચિત્તની સ્થિરતા સંપાદન કરવી" એમ.

૨–એ સઘળું દ્વિતીય પાદના ૪૯,૫૦,૫૧મા સૂત્રના વ્યાખ્યાનમાં સ્પષ્ટ કહેવાશે.

૩–કોઈ એમ કહે છે કે–વાયુનું અંદર પૂરણ કર્યા વિના વિધારણ સંજ્ઞાવાળા કુંભકનું હોવું અસંભવિત છે, એથી કુંભક વાચક વિધારણ પદથી પૂરકનું પણ ગ્રહણ કરી લેવું. તે પ્રમાણે જ રેચક, પૂરક, કુંભક પ્રાણાયામથી ચિત્તની સ્થિતિનું સંપાદન કરવું એવો સૂત્રાર્થ થાય છે. વાસ્તવિક રીતે તો જેમ વાયુને અંદર પૂરીને રોકી દેવાનું નામ કુંભક છે; તેમ વાયુને બહાર કાઢી રોકવાનું નામ પણ કુંભક જ છે. એથી પૂરક વિના જ કુંભક હોવાથી પૂરક ગ્રહણ કરવાનું કાંઈ પ્રયોજન નથી. આ સઘળું દ્વિતીય પાદના ૪૯ મા વગેરે સૂત્રોમાં સ્પષ્ટ થશે.

કરવું, એ અર્થનો બોધક " वा " શબ્દ છે. કાંઈ એમ ન સમજવું કે, મૈત્રી આદિ ભાવનાથી ચિત્ત પ્રસન્ન કરવું, વા પ્રાણાયામથી કરવું.

એથી જ ભાષ્યકારે પૂર્વ સૂત્રમાં (ततश्च चित्तं प्रसीदति) એ ભાષ્યથી મૈત્રી આદિ ભાવનાને ચિત્ત પ્રસન્નતાનું કારણ અને " ताभ्यां वा मनसः स्थितिं संपादयेत्"[1] એ પ્રકૃત સૂત્રના ભાષ્યથી પ્રાણાયામને મનની સ્થિતિનું સાધન કહેલું છે.

એ પ્રમાણે પહેલાં મૈત્રી આદિ ભાવનાના અનુષ્ઠાનથી ચિત્ત પ્રસન્ન કરવું. પછી પ્રસન્ન થયેલા ચિત્તની સ્થિતિ, ચાહે તો પ્રાણાયામથી અથવા હવે પછી કહેવાના ઉપાયોથી કરવી. કાંઈ એવો આગ્રહ નથી કે, પ્રાણાયામથી જ સ્થિતિ કરવી, એ ફલિતાર્થ છે.

ચિત્ત પ્રસન્ન થયા વિના સ્થિતિનું હોવું અસંભવિત છે, એથી મૈત્રી આદિ ભાવનાનું અનુષ્ઠાન, સાધન છે, અને પ્રાણાયામ વગેરે કહેવાના ઉપાયો સાધ્ય છે, એવો સૂત્રકાર તથા ભાષ્યકારનો આશય છે. તેટલા માટે જ ભાષ્યકારે પૂર્વસૂત્રમાં "प्रसन्नमेकाग्रं स्थितिपदं लभते"[2] એ વાક્યથી પ્રસન્ન થયેલા એકાગ્રચિત્તને સ્થિતિપદના લાભવાળું કહ્યું છે.

ભગવાને પણ અર્જુનને "प्रसन्नचेतसो ह्याशु बुद्धिः पर्यवतिष्ठते"[3] એ વાક્યથી પ્રસન્ન થયેલા ચિત્તને સ્થિતિની યોગ્યતાવાળું કહેલું છે.

તે પ્રમાણે જ મૈત્રી આદિ ભાવનાનો સમુચ્ચય[4] અને સ્થિતિ સાધન પ્રાણાયામ વગેરેનો વિકલ્પ જાણવો.

અત્ર વિજ્ઞાનભિક્ષુએ જે લખેલું છે કે-"મૈત્રી આદિ ભાવનાથી વા પ્રાણાયામથી ચિત્તને પ્રસન્ન કરવું." એ અસંગત થઈ પડે છે. કેમકે મૈત્રી આદિ ભાવના પ્રસન્નતાનું કારણ છે, અને પ્રાણાયામ સ્થિતિનું કારણ છે. એ પ્રકારે કાર્યભેદ હોવાથી વિકલ્પનો અહીં સંભવ નથી.[5]

૧-" ताभ्यां "=તે પ્રચ્છર્દન વિધારણદ્વારા મનની સ્થિતિનું સંપાદન કરવું.

૨-મૈત્રી આદિથી પ્રસન્ન થયેલું ચિત્ત એકાગ્ર થઈ સ્થિતિપદનો લાભ કરી લે છે.

૩-પ્રસન્ન ચિત્તવાળા યોગીની બુદ્ધિ જલદીથી જ સ્થિર થઈ જાય છે. એ ભગવાન્ શ્રીકૃષ્ણના વાક્યનો અર્થ છે. અધ્યાય ૨ જો, શ્લોક ૬૫.

૪-સમુચ્ચય=અર્થાત્ ચિત્ત પ્રસન્નતાને અર્થે મૈત્રી આદિ ભાવનાનું તો અવશ્ય અનુષ્ઠાન કરવું. મનની સ્થિતિ ગમે તે ઉપાયથી કરવી.

૫-જ્યાં એક કાર્યનાં બે સાધન હોય છે, ત્યાં જ વિકલ્પ મનાય છે. બીજે કોઈ સ્થળે વિકલ્પ મનાતો નથી, એવો ભાવ છે.

અગર જો કે પ્રાણનિરોધથી ચિત્તની સ્થિરતા થવી અસંભવ છે. કેમકે ચિત્ત અને પ્રાણ બંને ભિન્ન છે, તોપણ "**द्वे बीजे चित्तवृक्षस्य प्राणस्पंदनवासने। एकस्मिंश्च तयोः क्षीणे क्षिप्रं द्वे अपि नश्यतः**"[1] ઇત્યાદિ વસિષ્ઠ વાકયથી વાસના નિવૃત્તિદ્વારા પ્રાણનિરોધને પણ ચિત્તની સ્થિતિનો ઉપાય જાણવો.

ભાવ એ છે કે–જેમ[2] ઘટી યંત્રમાં (ઘડીઆળમાં) સૂક્ષ્મ સૂચીની (કાંટાની) અદૃશ્યમાન સૂક્ષ્મક્રિયા, અધોવર્ત્તમાન નિરંતર ભ્રમણશીલ યંત્રની (લોલકની) સ્થૂલ ક્રિયાને આધીન છે; તેમ શરીરરૂપ યંત્રમાં પણ અદૃશ્યમાન સૂક્ષ્મ માનસી ક્રિયા, નિરંતર ભ્રમણશીલ પ્રાણવાયુની ક્રિયાને આધીન છે, અને જેમ અધોવર્ત્તમાન યંત્રની ક્રિયાની કોઈ પ્રકારે નિવૃત્તિ કરવાથી સૂચીની ક્રિયા નિવૃત્ત થઈ જાય છે; તેમ અહીં પણ પ્રાણની ક્રિયા નિવૃત્ત થવાથી મનની ક્રિયા નિવૃત્ત થઈ જાય છે. એથી સુતરાં પ્રાણનિરોધથી મનનો નિરોધ થઈ શકે છે. ॥ ૩૪ ॥

હવે જે સ્થિતિના ઉપાયો સાથે પ્રાણાયામનો વિકલ્પ જણાવ્યો છે, તે ઉપાયોનું પ્રતિપાદન કરે છે.

सू–विषयवती वा प्रवृत्तिरुत्पन्ना मनसः स्थितिनिबंधनी ॥३५॥

સૂત્રાર્થઃ–જો વિષયવતી પ્રવૃત્તિ ઉત્પન્ન થાય તો તે મનની સ્થિરતાને કરવાવાળી છે.

(वा) અથવા (**विषयवती**) ગંધાદિ વિષયોનો સાક્ષાત્કાર કરવાવાળી (**प्रवृत्तिः**) યોગીના ચિત્તની વૃત્તિ (**उत्पन्ना**) ઉત્પન્ન થયેલી (**मनसः स्थितिनिबंधनी**) મનની સ્થિતિનું કારણ છે.

અર્થાત્–ગંધ, રસ, રૂપ, સ્પર્શ, અને શબ્દ નામવાળા પાંચ વિષયોને સાક્ષાત્ કરવાવાળી, ઉત્પન્ન થયેલી પણ ચિત્તવૃત્તિઓ, ચિત્તને સ્થિત કરી દે છે.

૧–ચિત્તરૂપ વૃક્ષનાં બે બીજ છે. એક પ્રાણસ્પંદ અર્થાત્ પ્રાણોની નિરંતર ક્રિયા અને એક વાસના. એ બંનેમાંથી એકના નાશથી બીજાનો પણ શીઘ્ર નાશ થઈ જાય છે, એવો વસિષ્ઠ વાકયનો અર્થ છે. એટલે કે બીજભૂત પ્રાણગતિના નિરોધથી વાસનાની નિવૃત્તિદ્વારા ચિત્તની સ્થિતિનું હોવું કાંઈ અસંભવિત નથી, એ એનું તત્ત્વ છે.

૨–અગર જો કે યોગવિષયક યોગીને અનુભવ વિના બીજી કોઈ યુક્તિની અપેક્ષા નથી, તોપણ દૃઢતા માટે યુક્તિ કહે છે–"જેમ" ઇત્યાદિથી.

ભાવ એ છે કે, ગંધાદિ પાંચ વિષય, લૌકિક અને દિવ્ય એવા ભેદથી બે પ્રકારના છે.

તેમાં પૃથ્વી, જળ, તેજ, વાયુ અને આકાશ નામનાં પાંચ સ્થૂલભૂતોમાં દૃશ્યમાન જે ગંધ, રસ, રૂપ, સ્પર્શ અને શબ્દ છે, તે પાંચ લૌકિક છે; કેમકે તેઓનાથી લોકોને સુખ દુઃખ મોહરૂપ ભોગ મળે છે. પંચતન્માત્રાનાં કાર્ય સૂક્ષ્મભૂતોમાં વિદ્યમાન જે ગંધાદિ પંચ સૂક્ષ્મવિષય છે, તે દિવ્ય કહેવાય છે, કેમકે તેઓ દેવોના જ ભોગોપયોગી હોય છે, મનુષ્યના ભોગોપયોગી નથી.[1]

એ પાંચે દિવ્ય વિષયોનો, જે ઉપાયદ્વારા પુરુષોને સાક્ષાત્કાર થઈ જાય છે, તે અહીં "વિષયવતી પ્રવૃત્તિ" એ પદનો વાચ્ય છે. તે પ્રવૃત્તિ, ગંધાદિ વિષયોના ભેદથી પાંચ પ્રકારની છે. જેમકે ગંધપ્રવૃત્તિ, રસપ્રવૃત્તિ, રૂપપ્રવૃત્તિ, સ્પર્શપ્રવૃત્તિ અને શબ્દપ્રવૃત્તિ.

ગંધપ્રવૃત્તિ=પોતપોતાની[2] નાસિકાના અગ્રભાગમાં સંયમથી[3] ચિત્તને એકતાન કરી ધારણ કરવાથી જે દિવ્ય ગંધનો સાક્ષાત્કાર થાય છે, તે ગંધપ્રવૃત્તિ છે. તેને જ દિવ્યગંધસંવિદ્ કહે છે.

રસપ્રવૃત્તિ=જિહ્વાના અગ્રભાગમાં સંયમદ્વારા ચિત્તને લગાડવાથી જે દિવ્યરસનો સાક્ષાત્કાર થાય છે, તે રસપ્રવૃત્તિ કહેવાય છે. તેને જ દિવ્યરસસંવિદ્ કહે છે.

રૂપપ્રવૃત્તિ=તાલુસ્થાનમાં ચિત્તનો સંયમ કરવાથી જે દિવ્યરૂપનો સાક્ષાત્કાર થાય છે, તે રૂપપ્રવૃત્તિ કહેવાય છે. તેને જ દિવ્યરૂપ સંવિદ્ કહે છે.

સ્પર્શપ્રવૃત્તિ=જિહ્વાના મધ્ય ભાગમાં ચિત્તનો સંયમ કરવાથી જે દિવ્યસ્પર્શનો સાક્ષાત્કાર થાય છે, તે સ્પર્શપ્રવૃત્તિ વાચ્ય છે. તેને જ દિવ્યસ્પર્શસંવિદ્ કહે છે.

૧–જેમ લૌકિક ગંધાદિમાં શાંત, ઘોર, મૂઢ નામના ત્રણ ધર્મ છે, તેમ સૂક્ષ્મ ગંધાદિમાં નથી. કેમકે તે સુખાત્મજ છે અને તેથી જ તે દિવ્ય કહેવાય છે. જેને એ વિષય સારી રીતે જાણવો હોય, તેણે સાંખ્ય દર્શન પ્રકાશના પ્રથમાધ્યાયના ૬૨ મા સૂત્રના વિવરણ ઉપર દૃષ્ટિપાત કરવો.

૨–"नासिकाग्रे धारयतोऽस्य या दिव्यगंधसंवित् सा गंधप्रवृत्तिः" ઇત્યાદિ ભાષ્યનો અનુવાદ કરતાં પ્રવૃત્તિઓનાં લક્ષણ કહે છે. "પોતપોતાની" ઇત્યાદિથી.

૩–એક વસ્તુ વિષયક ધારણા, ધ્યાન અને સમાધિ કરવાનું નામ સંયમ છે, તેનું તૃતીયપાદના ૪ થા સૂત્રમાં વર્ણન થશે.

શબ્દપ્રવૃત્તિ=જિહ્વાના મૂળ ભાગમાં ચિત્તનો સંયમ કરવાથી જે શબ્દનો સાક્ષાત્કાર થાય છે, એ શબ્દપ્રવૃત્તિ કહેવાય છે. તેનું જ બીજું નામ દિવ્યશબ્દસંવિદ્ છે. આ પાંચ પ્રકારની પ્રવૃત્તિઓ ઉત્પન્ન થતાં ચિત્તને સ્થિત કરી દે છે.

અર્થાત્, એ પ્રવૃત્તિઓના ઉદ્ભવથી નિજરૂપના સાક્ષાત્કારમાં વા ઈશ્વરના સાક્ષાત્કારમાં પણ યોગીનું ચિત્ત સમર્થ થઈ જાય છે અને પુરુષોને જે આ સંશય થતો હતો કે "ઈશ્વરપ્રણિધાનથી પુરુષનો સાક્ષાત્કાર શી રીતે થશે." તે સંશયને પણ આ પ્રવૃત્તિઓ દૂર કરી દે છે. તેટલા માટે સમાધિપ્રજ્ઞામાં એ દ્વારભૂત છે. અર્થાત્, એ પ્રવૃત્તિઓ હોવાથી સમાધિ પણ અનાયાસે સિદ્ધ થઈ જાય છે.

એવી રીતે ચંદ્ર, સૂર્ય, નક્ષત્ર, મણિ, પ્રદીપ, રત્નપ્રભા વગેરેમાં ચિત્તના સંયમથી જે એ સઘળાનો સાક્ષાત્કાર થાય, તે પણ વિષયવતી પ્રવૃત્તિ જાણવી.

અગર જો કે એ સઘળી પ્રવૃત્તિઓ કૈવલ્યમાં ઉપયોગી ન હોવાથી, આ શાસ્ત્રમાં તેમનું નિરૂપણ કરવું અનુપયોગી છે, તો પણ જેમ અનાત્મ પદાર્થ વિષયક ધારણા કરવાથી અનાત્મ વસ્તુનો સાક્ષાત્કાર થઈ જાય છે, તેમ આત્મ વસ્તુ વિષયક ધારણા કરવાથી આત્માનો પણ સાક્ષાત્કાર થવો કાંઈ અસંભવિત નથી, એ પ્રકારે વિશ્વાસ ઉત્પન્ન કરવા માટે તેનું નિરૂપણ કર્યું છે, એમ જાણવું.

અગર જો કે યુક્તિપૂર્વક શાસ્ત્ર તથા આચાર્યોના ઉપદેશદ્વારા પ્રતિપાદન કરેલો અને જાણેલો પદાર્થ યથાર્થ જ હોય છે, કાંઈ મિથ્યા હોતો નથી. કેમકે શાસ્ત્ર વગેરેની યથાર્થ અર્થપ્રતિપાદન કરવામાં જ શક્તિ છે, કાંઈ મિથ્યાઅર્થ પ્રતિપાદન કરવાનું તેમનું સામર્થ્ય નથી. તેથી શાસ્ત્રે ઉપદેશેલા અર્થમાં સંશયનો અવકાશ ન હોવાથી વિશ્વાસ પેદા કરવાની કાંઈ અપેક્ષા નથી. તો પણ જ્યાં સૂધી જિજ્ઞાસુને શાસ્ત્રપ્રતિપાદિત અર્થોમાંથી કોઈ એક પદાર્થ પ્રત્યક્ષ ન થાય, ત્યાં સૂધી તેને કૈવલ્ય પર્યંત નિખિલ સૂક્ષ્મ વિષયોમાં દૃઢ વિશ્વાસ ન થાય. કેમકે તેને કોઈ એક પણ પદાર્થ પ્રત્યક્ષ ન હોવાથી સઘળા પદાર્થ પરોક્ષ જ પ્રતીત થઈ રહેલા હોય છે. એથી શાસ્ત્રે ઉપદેશેલા અર્થસંબંધી દૃઢતા વગેરે માટે અને સંશય નિવારણ માટે કોઈ એક દેશનું જ્ઞાન પ્રત્યક્ષ કરવું, અવશ્ય કર્ત્તવ્ય છે. પછી જ્યારે શાસ્ત્રાદિ ઉપદિષ્ટ અર્થના એક દેશનું જ્ઞાન

જિજ્ઞાસુને પ્રત્યક્ષ થાય છે, ત્યારે કૈવલ્ય પર્યંત જેટલા સૂક્ષ્મ વિષય છે, તે સઘળામાં તેનો શ્રદ્ધાપૂર્વક દૃઢ વિશ્વાસ થાય છે. તેને માટે જ એ પ્રવૃત્તિનું નિરૂપણ કરાયેલું છે.[1]

એ પૂર્વોક્ત પ્રવૃત્તિઓમાંથી કોઈ એક પ્રવૃત્તિના લાભથી તે તે શાસ્ત્રોક્ત અર્થમાં વશીકારતા (સ્વાધીનતા) થાય છે અને તે તે શાસ્ત્રોક્ત અર્થ પ્રત્યક્ષ કરવામાં પુરુષની સહજ જ શક્તિ બની જાય છે, અને શાસ્ત્રોક્ત અર્થમાં શ્રદ્ધાનું આધિક્ય હોવાથી શ્રદ્ધા, વીર્ય, સ્મૃતિ અને સમાધિનો

૧–અહી વાચસ્પતિ મિશ્રે "एतच्चागमात् प्रत्येतव्यं न युक्तितः" એમ લખેલું છે. તેનો અર્થ એ છે કે, આ સઘળા ઉપદેશ, શાસ્ત્રથી જ નિશ્ચય કરવા યોગ્ય છે, કાંઈ યુક્તિથી નિશ્ચય કરવા લાયક નથી. તેનો ભાવ એ છે કે–એ તો સર્વાનુભવસિદ્ધ છે કે, જો ઇંદ્રિયની સાથે ચિત્તનો સંબંધ ન થાય, તો ગમે તે ઇંદ્રિય સાથે વિષયનો સંસર્ગ થયો હોય અને વિષય સ્થૂળ પણ હોય, તો પણ વિષયનું પ્રત્યક્ષ જ્ઞાન થતું નથી. પરંતુ જ્યારે ઇંદ્રિયની સાથે સારી રીતે ચિત્તનો સંબંધ થાય છે, ત્યારે ઇંદ્રિયમાં એટલું બધું સામર્થ્ય આવી જાય છે, કે તે સૂક્ષ્મ પદાર્થનો પણ વિષય (ભોગ) કરી લે છે. એ પ્રમાણે નાસિકાના અગ્ર ભાગમાં (જ્યાં ઘ્રાણેન્દ્રિયનો નિવાસ છે ત્યાં) ચિત્તનું એકતાન લગાડવાથી દિવ્ય ગંધ વા સૂક્ષ્મ ગંધનો સાક્ષાત્કાર થવો, એ કાંઈ અનુભવ વિરુદ્ધ નથી. એ પ્રમાણે જિવ્હાના અગ્ર ભાગમાં (જ્યાં રસનેંદ્રિયનો નિવાસ છે ત્યાં) ચિત્તને એકતાન કરવાથી દિવ્ય રસ વા સૂક્ષ્મ રસનો પણ સાક્ષાત્કાર થવો, કાંઈ પ્રતીતિ વિરુદ્ધ નથી. પરંતુ તાલુમાં સંયમ કરવાથી જે રૂપનો સાક્ષાત્કાર થાય છે, અને જિહ્વાના મધ્યમાં સંયમ કરવાથી જે સ્પર્શનો સાક્ષાત્કાર થાય છે, તથા જિવ્હા મૂળમાં સંયમ કરવાથી જે શબ્દનો સાક્ષાત્કાર થાય છે, તેમાં કોઈ યુક્તિ વા અનુભવ કામ લાગતાં નથી. માટે એ સ્થાનોમાં યુક્તિનો આશ્રય ન લઈ કેવળ શ્રદ્ધાના બળથી શાસ્ત્રોક્ત રીતિનો જ આશ્રય કરી તેમાં વિશ્વાસ કરવો, એ વાત તો ઠીક છે, પણ તે અમે કેમ કહી શકીએ કે, તાલુસ્થાનથી રૂપગ્રાહક નેત્રેંદ્રિયનો વા જિહ્વામધ્યવડે સ્પર્શ ગ્રાહક ત્વગિંદ્રિયનો વા જિહ્વામૂળથી શબ્દ ગ્રાહક શ્રોત્રેંદ્રિયનો કાંઈ સંબંધ છે કે નહિ? કોણ જાણે, કે તેઓનો પરસ્પર એવો કાંઈ સંબંધ છે, કે જેનાથી તાલુસ્થાનમાં સંયમથી દિવ્યરૂપનો, જિવ્હાના મધ્યમાં અને મૂલ ભાગમાં સંયમથી સ્પર્શ તથા શબ્દનો સાક્ષાત્કાર થઈ જાય છે!

એ પ્રમાણે શાસ્ત્રના કથન ઉપર દૃઢ વિશ્વાસ રાખી કહેલાં સ્થાનોમાં ચિત્તનો સંયમ કરવો. જ્યારે એ સઘળા વિષયોનો સાક્ષાત્કાર થઈ જશે, ત્યારે સઘળા સંદેહ આપોઆપ દૂર થઈ જશે, એમ જાણવું.

લાભ પણ યોગીને નિર્વિઘ્ને થઈ જાય છે. એથી વિશ્વાસને સારુ અને ચિત્તની સ્થિતિને સારુ, પહેલાં એ વૃત્તિઓ સંપાદન કરવી, એ આખા વ્યાખ્યાનનો ભાવ છે. ॥ ૩૫ ॥

હવે પણ ચિત્તની સ્થિરતાનો બીજો ઉપાય કહે છે.

सू—विशोका वा ज्योतिष्मती ॥ ३६ ॥

સૂત્રાર્થઃ–અથવા તો શોક રહિત એવી જ્યોતિષ મતિ (જ્ઞાન) પ્રવૃત્તિ ઉત્પન્ન થાય તો તે ચિત્તને સ્થિર કરી દે છે.

(वा) અથવા (विशोका) શોકરહિત (દુઃખથી શૂન્ય) (ज्योतिष्मती) જ્યોતિષ્મતી નામની પ્રવૃત્તિ, ઉત્પન્ન થાય તો પણ તે ચિત્તને સ્થિર કરી દે છે.[1]

અર્થાત્–જેમ પૂર્વોક્ત વિષયવતી પ્રવૃત્તિઓ ઉત્પન્ન થતાં ચિત્તને સ્થિર કરી દે છે, તેમ શોકરહિત જ્યોતિષ્મતી નામની ઉત્પન્ન થયેલી પ્રવૃત્તિ પણ ચિત્તને સ્થિર કરી દે છે.

હૃદયકમળમાં ચિત્તનો સંયમ કરવાથી જે ચિત્તનો સાક્ષાત્કાર થાય છે અને મનના કારણભૂત અસ્મિતામાં (અહંકારમાં) સંયમ કરવાથી જે અહંકારનો સાક્ષાત્કાર થાય છે, એ બંને પ્રવૃત્તિઓનું નામ વિશોકા જ્યોતિષ્મતી છે.

ભાવ એ છે કે–નાભિની ઉપર[2] દશ અંગુલ પરિમિત દેશમાં અષ્ટદલ રક્તવર્ણવાળું એક પંચછિદ્રયુક્ત કમળ છે, તેનું જ નામ હૃદયકમળ છે. જો કે તે કમળનું મુખ નીચે અને નળિકા ઉપલી તરફ હોવાથી તે પદ્મ અધોમુખ તથા સંકુચિત છે. તોપણ પ્રથમ રેચક પ્રાણાયામના અભ્યાસદ્વારા તે ઉર્ધ્વમુખ અને પ્રફુલ્લિત કરી શકાય છે. તે ઉર્ધ્વમુખ પ્રફુલ્લિત પદ્મના મધ્યમાં સૂર્યમંડલ, અકાર અને જાગ્રતસ્થાન છે. તેના ઉપર ચંદ્રમંડલ, ઉકાર અને સ્વપ્નસ્થાન છે. તેના ઉપર વહ્નિમંડળ, મકાર અને સુષુપ્તિસ્થાન છે. તેના ઉપર આકાશ સ્વરૂપ બ્રહ્મનાદ તથા અર્ધમાત્ર તુરીયસ્થાન છે. તે હૃદયકમળની જે કર્ણિકા (બીજકોશ)

૧–અહીં પૂર્વ સૂત્રમાંથી (प्रवृत्तिरुत्पन्ना मनसः स्थितिनिबंधनी) એટલા વાક્યનો સંબંધ કરી અર્થ કરવો, તે આશયથી કહે છે. "પ્રવૃત્તિ ઉત્પન્ન થાય તો" વગેરે.

૨–"हृदयपुंडरीके धारयतो या बुद्धिसंविद्" ઇત્યાદિ ભાષ્યનો અર્થ સ્પષ્ટ કરે છે. "નાભિની ઉપર" ઇત્યાદિ ગ્રંથથી.

છે, તેમાં વિદ્યમાન ઉર્ધ્વમુખી એક બ્રહ્મનાડી છે. તેને જ સુષુમ્ણા નાડી કહે છે. તે નાડી સૂર્યાદિ મંડળની વચ્ચે થઈ સીધે સીધી મૂર્દ્ધપર્યંત પહોંચી ગઈ છે. એથી એ નાડી, બહારના સૂર્ય વગેરે મંડળોથી પણ ઓતપ્રોત (નિરંતર સંબદ્ધ) છે.

તે નાડી જ ચિત્તનું નિવાસસ્થાન છે. જ્યારે યોગી પોતાના ચિત્તને પૂર્વોક્ત સુષુમ્ણા નામે નાડીમાં સંયમદ્વારા એકતાન કરી દે છે, ત્યારે તે સાત્વિક જ્યોતિઃસ્વરૂપ આકાશતુલ્ય ભાસ્વર થયેલું ચિત્ત[1] ક્યારેક સૂર્યપ્રભારૂપ, ક્યારેક ચંદ્રપ્રભારૂપ, ક્યારેક નક્ષત્રપ્રભારૂપ અને કોઈવાર મણિપ્રભારૂપ આકાશથી પ્રતીત થાય છે, અને પછી એ ચિત્તનો સાક્ષાત્કાર થઈ જાય છે. આ જે જ્યોતિઃસ્વરૂપ ચિત્તનો સાક્ષાત્કાર, તે જ્યોતિષ્મતી પ્રવૃત્તિ પદનો વાચ્ય છે. તેમાં પૂર્વોક્ત સૂર્યાદિક અનેક વિષય રહે છે, તેથી તે પણ વિષયવતી જ છે.[2]

એ પ્રમાણે અસ્મિતામાં સમાપન્ન[3] થયેલું ચિત્ત જ્યારે નિસ્તરંગ સમુદ્રના જેવું શાંત અને અનંત થઈ સત્ત્વપ્રધાન અહંકાર સ્વરૂપ થઇ જાય છે, ત્યારે એ ચિત્તની દશાને "અસ્મિતા માત્ર જ્યોતિષ્મતી" કહે છે.

એ જ પ્રકારે પંચશિખાચાર્યે અસ્મિતા સમાપત્તિનું સ્વરૂપ કહેલું છે.[4]

એ સઘળામાંથી પ્રથમ બતાવેલી જે ચિત્તસંવિદ્ (ચિત્તસાક્ષાત્કાર-રૂપ પ્રવૃત્તિ) છે, તેનું નામ વિષયવતી જ્યોતિષ્મતી પ્રવૃત્તિ છે, અને બીજી જે અસ્મિતારૂપ ચિત્તની પ્રવૃત્તિ છે, તે અસ્મિતામાત્ર જ્યોતિષ્મતી

૧–" बुद्धिसत्वं हि भास्वरमाकाशकल्पम्" ઇત્યાદિ ભાષ્યનો એ અનુવાદ છે. એ ભાષ્યમાં જે બુદ્ધિસંજ્ઞક ચિત્તને આકાશતુલ્ય કહેલું છે, તે અનેક વિષયોમાં ચિત્ત ગમન કરે છે, તે આશયથી કહેલું છે. આકાશતુલ્ય કહેવાથી તેને વ્યાપક જાણવું નહિ. એથી જ કપિલમુનિએ "हेतुमदनित्यमव्यापि" ઇત્યાદિ અધ્યાય ૧ સૂત્ર ૧૨૪ થી બુદ્ધિ વગેરેને પરિચ્છિન્ન કહેલાં છે. એ પ્રમાણે હોવાથી વિજ્ઞાન ભિક્ષુએ ચિત્તને જે વ્યાપક માનેલું છે, તે તેનો પ્રમાદ છે.

૨–સત્વગુણપ્રધાન હોવાથી તે પ્રવૃત્તિ રજોગુણ રહિત છે, તેથી વિશોકા પણ તેનું જ નામ છે.

૩–અસ્મિતા નામ અહંકારનું છે. ધારણાપૂર્વક સ્થિરતાનું નામ સમાપન્ન છે.

૪–" तमणुमात्रमात्मानमनुविद्याऽस्मीत्येवं तावत्संप्रजानीते " એ પંચશિખાચાર્યનું વચન છે. તે અણુમાત્ર (દુરધિગમ) અહંકારનું ધારણાપૂર્વક ચિંતન કરી પોતાનું રૂપ જાણે, એ તેનો અર્થ છે.

કહેવાય છે અને વિશોકા, એ બંનેનું જ વિશેષણ છે. કેમકે શોકના કારણભૂત રજોગુણનો તે બંનેમાં લેશ નથી.

એ બંને પ્રવૃત્તિઓ ઉત્પન્ન થવાથી પણ યોગીનું ચિત્ત, ઈશ્વર-વિષયક સ્થિતિપદની યોગ્યતાવાળું થાય છે. ॥ ૩૬ ॥

બીજો ઉપાય કહે છે–

सू–वीतरागविषयं वा चित्तम् ॥ ३७ ॥

સૂત્રાર્થ:–અથવા તો વૈરાગ્યશાળી પુરુષોના ચિત્ત ઉપર સંયમ કરાય તો ચિત્ત સ્થિર થાય છે.

(वा) અથવા (वीतरागविषयम्) નિવૃત્તરાગરહિત યોગીઓના ચિત્ત-વિષયક સંયમથી એકતાન લાગી રહેલું (चित्तम्) ચિત્ત પણ સ્થિરતાનો લાભ કરી લે છે.

ભાવ એ છે કે–જે મહાત્માઓનું ચિત્ત સંસારની વાસનાથી રંજિત નથી એવા જે મહાત્મા શુકદેવ, કૃષ્ણદ્વૈપાયન, દત્તાત્રેય, સનકાદિ વગેરે યોગીગણ છે, તેઓના ચિત્તનું જ આલંબન કરી જો સંયમદ્વારા એ ચિત્તનું એકતાન ધ્યાન કરાય, તોપણ ચિત્ત તદાકાર થઈ સ્થિરતાને[1] પામી જાય છે. ॥ ૩૭ ॥

આવો બીજો ઉપાય કહે છે–

सू–स्वप्ननिद्राज्ञानाऽऽलंबनं वा ॥ ३८ ॥

સૂત્રાર્થ:–અથવા તો સ્વપ્ન વા નિદ્રાની અવસ્થાના જ્ઞાનના આલંબનથી ચિત્ત સ્થિર થાય છે.

(वा) અથવા(स्वप्ननिद्राज्ञानाऽऽलंबनं) સ્વપ્ન વા નિદ્રા સમયે જ્ઞાનનો વિષય જે પદાર્થ છે, તે પદાર્થોના આલંબનવાળું ચિત્ત પણ સ્થિર થઈ જાય છે.

અહીં સ્વપ્ન શબ્દથી સાત્ત્વિક સ્વપ્ન સમજવું.

અર્થાત્–કોઈ સમયે જ્યારે કોઈ પુરુષ, સ્વપ્નમાં એકાંતવન નિકટ વર્ત્તિની, જાણે ચંદ્રમાંથી કાઢેલી, અતિ કોમલ, રમણીય અંગ પ્રત્યંગ-વાળી, ચંદ્રકાંતમણિમયી, પવિત્ર જળવાળી ગંગાથી શોભિત જટા-જુટ ધારણ કરેલી, અત્યંત સુગંધીદાર માલતી માલા ધારણ કરનારી,

---

૧–જ્યારે મૈત્રી વગેરે ભાવનાથી ચિત્ત નિર્મળ થઈ જાય છે, ત્યારે ચિત્તમાં એવું સામર્થ્ય આવી જાય છે કે, જેમાં તેને એકતાન લગાડાય છે, તેમાં તે તદાકાર જ થઈ જાય છે. તેમ રાગ રહિત ચિત્તમાં લગાડવાથી તેનું (ધ્યાન કરનારનું) પણ ચિત્ત વીતરાગ થવાથી સ્થિર થઈ જશે, એ તત્ત્વ છે.

મનોહારિણી, ભવાનીપતિ ભગવાન્ મહાદેવની આનંદદાયિની પ્રતિમાનું અથવા વૈજયંતી ધારણ કરનારી ચાર ભુજાથી શોભાયમાન, શ્રીપતિ વિષ્ણુની મૂર્ત્તિનું આરાધન કરતો જ તે સ્વપ્નથી પ્રબુદ્ધ થઈ જાય, તો એ પુરુષનું ચિત્ત, એટલાથી તૃપ્ત ન થવાથી સહેલાઇથી, અન્ય આલંબનમાં લાગી જવું કઠણ છે. એથી એ સ્વપ્નજ્ઞાનની વિષયભૂત પ્રતિમામાંજ તે ચિત્તને એકતાન કરી લગાવી દે છે. કેમકે એવી રીતે ચિત્ત લગાવવાથી પણ તે સ્થિર થઈ જાય છે.

એવી રીતે ગાઢ નિદ્રામાંથી ઉઠેલા પુરુષને એવું સ્મરણ થાય છે કે, "હું સુખેથી સુતો હતો." એ સાત્વિક નિદ્રા જ્ઞાનનું વિષયભૂત જે સુખમય પોતાનું સ્વરૂપ[1] હોય છે, તે આલંબનમાં પણ ચિત્તને એકતાન લગાડવાથી ચિત્ત, સ્થિર થઈ જાય છે. ॥ ૩૮ ॥

પ્રાણીઓની રુચિ વિચિત્રતાથી જે વસ્તુમાં પ્રાણીની અધિક રુચિ હોય, તેનુંજ તેણે ધ્યાન કરવું, એમ કહી સૂત્રકાર હવે એ પ્રવૃત્તિના પ્રકરણને સમાપ્ત કરે છે.

सू—यथाऽभिमतध्यानाद्वा ॥ ३९ ॥

સૂત્રાર્થઃ–(वा) અથવા (यथाऽभिमतध्यानात्) જે રૂપ પોતાને અભિમત=ઇષ્ટ (માનનીય) હોય, તે રૂપનું ધ્યાન કરવાથી પણ ચિત્ત, સ્થિર થઈ જાય છે.

અર્થાત્–જો વેદોક્ત[2] આદિત્ય મંડલાંતર્ગત હિરણ્યશ્મશ્રુ હિરણ્યકેશ ઉપર તમારી વિશેષ પ્રીતિ હોય તો તેનું જ ધ્યાન કરવું.

૧–અહીં નિદ્રાજ્ઞાનથી જ્ઞાનમાત્ર જ આલંબન ન જાણવું; પણ સુષુપ્તિકાલિક પોતાના સુખમય રૂપનું આલંબન જાણવું, તે આશયથી કહે છે, "પોતાનું સ્વરૂપ" ઇત્યાદિથી.

૨–"अथ य एषोऽन्तरादित्ये हिरण्मयः पुरुषो दृश्यते हिरण्यश्मश्रुः हिरण्यकेश आप्रणखात् सर्व एव सुवर्णः तस्य यथा कप्यासं पुंडरीकमेवमक्षिणी तस्योदिति नाम स एष सर्वेभ्यः पाप्मभ्यः उदित उदेति ह वै सर्वेभ्यः पाप्मभ्यो य एव वेद" આ સામવેદીય છાંદોગ્ય ઉપનિષદ્ કથિત વાક્ય છે. એનો અર્થ આ પ્રમાણે છે. જે આ સૂર્યમંડળની માંહે સુવર્ણભૂષણ વિશિષ્ટ, સુવર્ણવત્ ચમત્કૃતિ વિશિષ્ટ, દાઢી મૂછવાળા અને ઉજ્વળ કેશવાળા તથા નખશિખ સૂધી સુવર્ણ સરખા પ્રકાશવાળા, પ્રફૂલ્લકમળતુલ્ય નેત્રવાળા અને જેને યોગીઓ સમાધિમાં જુએ છે, તે પરમાત્માનું નામ "ઉત" છે. કેમકે તે પાપોથી (ઉદિત) રહિત છે. જે માણસ એ મૂર્ત્તિની ઉપાસના કરે છે, તે પણ સર્વ પાપથી રહિત થઈ જાય છે.

એ પ્રમાણે જો નવનીત પ્રિય નંદનંદન મુરલીધારી શ્રીકૃષ્ણની મૂર્ત્તિમાં તમારી વિશેષ રુચિ હોય, તો તેનું જ ધ્યાન ધરવું; અને જો નીતિપ્રિય ધનુર્ધારી કૌશલ્યાનંદન રામચંદ્રની મૂર્ત્તિમાં તમારી ઉત્કટ પ્રીતિ હોય, તો તેનું જ ધ્યાન ધરવું. વળી સ્મશાનપ્રિય ત્રિશૂલધારી મહાદેવજીની પ્રતિમામાં વા વીણાધારિણી સરસ્વતીજીની પ્રતિમામાં વા ખડ્ગપટ્ટિશધારિણી દુર્ગાદેવીની પ્રતિમામાં, અથવા હરકોઈ ઇષ્ટદેવ ગુરુદેવની પ્રતિમામાં તમારી રુચિ હોય, તો પોતપોતાની રુચિ અનુસારે, તે જ પ્રતિમાઓનું ધ્યાન કરવું. સર્વથા એક સ્થાન ઉપર સ્થિર હોવાથી ચિત્ત સ્થિતિપદનો લાભ કરી લે છે, એમાં સંદેહ નથી. ॥ ૩૯ ॥

એવી રીતે ચિત્તસ્થિતિનો પ્રકાર કહી હવે "ચિત્તે પૂર્ણરૂપે સ્થિતિપદનો લાભ કર્યો છે તે કેવા પ્રકારથી જણાય," એ આકાંક્ષાનું નિવારણ કરતાં, જે ચિહ્નદ્વારા ચિત્તની સ્થિરતા પ્રતીત થાય છે, તે ચિહ્નનું નિરૂપણ કરે છે.

सू–परमाणुपरममहत्त्वांऽतोऽस्य वशीकारः ॥ ४० ॥

સૂત્રાર્થઃ–આ ચિત્તને પરમાણુથી માંડી પરમ મહત્પરિમાણ પર્યંતની સર્વ વસ્તુઓ વશ્ય થાય છે.

(**अस्य**) પૂર્વોક્ત ઉપાયોથી સ્થિત થયેલા ચિત્તનો (**परमाणुपरममहत्त्वांऽतः**) સૂક્ષ્મોમાં પરમાણુ પર્યંત, મહાનોમાં પરમ મહાન્ આકાશ પર્યંત પદાર્થમાં (**वशीकारः**) વશીકાર રહે છે, વા વશીકાર થઈ જાય છે.

અર્થાત્–પૂર્વોક્ત સાધનોથી સ્થિર થયેલું ચિત્ત, એવું વશીભૂત થઈ જાય છે કે, જો તેને સૂક્ષ્મ પદાર્થમાં એકતાનથી લગાડાય, તો અતિસૂક્ષ્મ પરમાણુ પર્યંત સ્થિતિપદનો લાભ કરી લે છે; અને વળી અત્યંત મોટા પદાર્થમાં એકતાનથી લગાડાય, તો અતિ મહાન્ પદાર્થ આકાશ પર્યંત સ્થિતિ પદનો લાભ કરી લે છે.

એમ જે બંને તરફ દોડતા ચિત્તનો કોઈપણ સ્થળે પ્રતિઘાત (રોકાણ) ન હોવો, તે જ ચિત્તનો પરવશીકાર છે.[1] એ વશીકારના લાભથી યોગીનું પરિપૂર્ણ થયેલું ચિત્ત, પછી બીજા કોઈ અભ્યાસ સાધ્ય પરિકર્મ (સ્થિતિના

૧–સૂક્ષ્મ વિષયોની અવધિ પરમાણુ છે, અને સ્થૂલ વિષયોની અવધિ આકાશ છે. જ્યારે એ બંનેમાં ચિત્ત સ્થિત થઈ ગયું હોય છે, ત્યારે સ્થિરતા, ચિત્તને વશીભૂત થઈ જાય છે. અર્થાત્ જ્યાં ઇચ્છા હોય, ત્યાં ચિત્તનો નિવેશ કરી સ્થિર કરી શકે છે, એ તત્ત્વ છે.

માટેના ઉપાયો)ની અપેક્ષા કરતું નથી. એવી રીતે સૂક્ષ્મમાં નિવિષ્ટ થતા ચિત્તનું પરમાણુ સુધી નિવિષ્ટ થઈ સ્થિર થઈ જવું અને સ્થૂળમાં નિવિષ્ટ થતા ચિત્તનું જે પરમ મહાન્ આકાશ સુધી નિવિષ્ટ થઈ સ્થિર થઈ જવું, એ જ ચિત્તની સ્થિરતાનું પૂર્ણ ચિહ્ન છે, એમ ફલિત થાય છે. ॥૪૦॥

એવી રીતે પૂર્વ પ્રકરણથી ચિત્તની સ્થિતિના ઉપાયોનું પ્રતિપાદન કરી અને લબ્ધ સ્થિતિવાળા ચિત્તનો વશીકાર કહીને, હવે સ્થિતિપદ પામેલા ચિત્તને જે સંપ્રજ્ઞાત સમાધિનો લાભ થાય છે, તે સંપ્રજ્ઞાત સમાધિ, કેવા સ્વરૂપવાળી અને કેવા વિષયવાળી હોય છે, તેનું પ્રતિપાદન કરે છે.

सू–क्षीणवृत्तेरभिजातस्येव मणेर्ग्रहीतृग्रहणग्राह्येषु तत्स्थतदंजनता समापत्तिः ॥ ४१ ॥

સૂત્રાર્થઃ–(**अभिजातस्य**) ઉત્તમ જાતિના વા અતિ નિર્મળ (**मणेःइव**) મણિની પેઠે[1] (**क्षीणवृत्तेः**) રાજસ તામસ વૃત્તિ રહિત સ્વચ્છ ચિત્તની (**ग्रहीतृ-ग्रहण–ग्राह्येषु**) પુરુષ, મહત્તત્ત્વ, અહંકાર, ઇંદ્રિય, પંચતન્માત્ર સ્થૂલભૂતાદિ પદાર્થોમાં (**तत्स्थतदंजनता**) જે એકાગ્ર સ્થિતિ થઈ તે વિષયોની સમાન આકારતા વા તદ્રૂપતા થઈ જવી, તે (**समापत्तिः**) સંપ્રજ્ઞાત સમાધિ કહેવાય છે.

અર્થાત્–જેમ અતિ સ્વચ્છ સ્ફટિકમણિ, રક્ત, પીત, નીલાદિ વર્ણ-વિશિષ્ટ જપાકુસુમાદિરૂપ ઉપાધિના સન્નિધાનથી, (સમીપતાથી) તે તે ઉપાધિની છાયાથી ઉપરક્ત (પ્રતિબિંબિત) થયેલો, તે તે ઉપાધિના રક્તાદિ આકારથી જ પ્રતીત થઈ જાય છે; તેમ અભ્યાસ વૈરાગ્યથી રાજસ તામસ વૃત્તિ રહિત અને મૈત્રીઆદિ ભાવનાથી નિર્મળ થયેલું ચિત્ત પણ જ્યારે સ્થૂલ, સૂક્ષ્મ ભૂતાખ્ય ગ્રાહ્યરૂપ[2] આલંબન અથવા વિશ્વભેદ (ચેતન અચેતન ગોઘટ વગેરે સ્થૂલ પદાર્થરૂપ) આલંબનથી ઉપરક્ત થઈ ગ્રાહ્યભા-

---

૧–સૂત્રમાં अभिजातस्येव मणेः એ દૃષ્ટાંત છે અને क्षीणवृत्तेः એ ચિત્તની નિર્મળતામાં હેતુગર્ભિત વિશેષણ છે, એમ જાણવું.

૨–અગર જો કે સૂત્રકારે ગ્રહીતૃ, ગ્રહણ, ગ્રાહ્ય એવા પ્રકારનો નિર્દેશ કર્યો છે, તથાપિ અનુષ્ઠાનના ક્રમથી પ્રથમ ગ્રાહ્યસમાપત્તિનું લક્ષણ કહે છે. (સ્થૂલસૂક્ષ્મ) ઇત્યાદિથી. ગ્રાહ્ય નામ સ્થૂલસૂક્ષ્મ ભૂતોનું અને ભૂતકાર્ય ઘટાદિનું છે અને ગ્રહણ નામ ઇંદ્રિયોનું છે. અને ગ્રહીતા નામ અહંકારોપાધિક પુરુષનું છે. એ સઘળું પૂર્વના ૧૭મા સૂત્રના વ્યાખ્યાનમાં સ્પષ્ટ સમજાવવામાં આવ્યું છે.

વને પામી જાય છે, ત્યારે ગ્રાહ્ય આકારથી પ્રતીત થાય છે; અને જ્યારે ગ્રહણ નામક ઇંદ્રિયરૂપ આલંબનથી ઉપરક્ત થઈ ગ્રહણભાવને પ્રાપ્ત થઈ જાય છે ત્યારે ગ્રહણાકારથી પ્રતીત થઈ જાય છે; અને જ્યારે ગ્રહીતૃ નામના અહંકારોપાધિક પુરુષ[1] વા મુક્ત પુરુષ શુક પ્રહ્લાદાદિરૂપ આલંબનથી ઉપરક્ત થયેલા પુરુષાકારને પ્રાપ્ત થઈ જાય છે, ત્યારે પુરુષાકારવડે ભાસે છે.

એવી રીતે (અભિજાતમણિકલ્પ) નિર્મળ મણિની તુલ્ય ચિત્તની જે (ગ્રાહ્ય, ગ્રહણ, ગ્રહીતૃ સંજ્ઞાવાળાં) ભૂત, ઇંદ્રિય, પુરુષોમાં તત્સ્થતદંજનતા (તે વસ્તુઓમાં સ્થિત થયેલી તદાકારતા હોય છે) તે સમાપત્તિ એટલે સંપ્રજ્ઞાત સમાધિ છે. ॥ ૪૧ ॥

એ ત્રણ પ્રકારની સંપ્રજ્ઞાત સંજ્ઞાવાળી સમાપત્તિઓમાંથી જે ગ્રાહ્ય સમાપત્તિ છે, તે સવિતર્ક, નિર્વિતર્ક, સવિચાર અને નિર્વિચાર ભેદથી ચાર પ્રકારની છે. તેમાંના પહેલા બે ભેદ સ્થૂલગ્રાહ્ય સમાપત્તિના છે, અને છેવટના બે ભેદ સૂક્ષ્મગ્રાહ્ય સમાપત્તિના છે. તેમાંથી પ્રથમ સવિતર્ક સંજ્ઞાવાળી સ્થૂલગ્રાહ્ય સમાપત્તિનું લક્ષણ સૂત્રકાર કહે છે.

सू—तत्र शब्दार्थज्ञानविकल्पैः संकीर्णा सवितर्का समापत्तिः ॥ ४२ ॥

સૂત્રાર્થ:-એ સમાપત્તિઓમાં શબ્દ, અર્થ, અને જ્ઞાન એ ત્રણના વિકલ્પોવડે મિશ્રિત થયેલી જે સમાપત્તિ, તે સવિતર્કા કહેવાય છે.

(**तत्र**) એ ત્રણે સમાપત્તિઓમાંથી જે (**शब्दार्थज्ञानविकल्पैः**) શબ્દ, અર્થ અને જ્ઞાન એવા ત્રણ વિકલ્પોથી (**संकीर्णा**) મિશ્રિત થયેલી છે; અર્થાત્ એ ત્રણે પદાર્થોનું અભેદરૂપથી જેમાં ભાન થાય છે તે, (**सवितर्का समापत्तिः**) સવિતર્ક સંજ્ઞાવાળી સંપ્રજ્ઞાત સમાધિ કહેવાય છે.

અર્થાત્-કંઠ તાલુ વગેરેના સંયોગથી ઉચ્ચરિત (મોઢે બોલેલો) તથા કર્ણેન્દ્રિયગ્રાહ્ય (કાને સાંભલેલો) જે "**गौः**" (ગાય) એવો શબ્દ છે, તેનું પણ '**गौः**' એવું જ ઉચ્ચારણ થાય છે, અને ગોષ્ઠસ્થિત (ગોશાળામાં ઉભેલી)

૧-અગર જો કે ગ્રહીતૃપદથી ભાષ્યકારે માત્ર પુરુષનું ગ્રહણ કહેલું છે, તોપણ કેવળ પુરુષ અવિષય હોવાથી અહંકારોપાધિકનું ગ્રહણ કરવું. તેથી જ ફરીથી ભાષ્યકારે "मुक्तपुरुषालंबनोपरक्तम्" ઇત્યાદિ ભાષ્યથી મુક્તિયોગ્ય પુરુષોને જ સમાધિનો વિષય કહેલો છે. કારણ કે શુક વગેરે મુક્ત પુરુષોમાં લેશ માત્ર અહંકારના સદ્ભાવનો સંભવ છે. એ આશયથી જ વ્યાખ્યાન કરે છે. "અહંકારોપાધિક" ઇત્યાદિથી.

જે શૃંગસાસ્નાવાળી વ્યક્તિ 'ગો' શબ્દનો અર્થ છે, તે પણ 'गौः' એ પ્રમાણે કહેવાય છે તથા પૂર્વોક્ત ગો વ્યક્તિના દેખવાથી ચિત્તનો જે તદાકારરૂપ પરિણામવિશેષ (ગાયનું જ્ઞાન) તે પણ 'गौः' એ પ્રમાણે જ પ્રયુક્ત હોય છે. એ ત્રણે સ્થાનમાં 'ગો' શબ્દ, 'ગો' અર્થ અને 'ગો' જ્ઞાન, એ ત્રણે ભિન્ન પદાર્થોનું એક જ રીતનું ભાન થાય છે, તેનું જ નામ **શબ્દાર્થજ્ઞાન** વિકલ્પ છે, કેમકે તે વસ્તુથી શૂન્ય છે, અને શબ્દ-જ્ઞાનાનુપાતી છે.

ભાવ એ છે કે–યદ્યપિ[1] ગો શબ્દ કંઠસ્થિત તથા ઉદાત્ત, અનુદાત્ત, મંદ, ઉચ્ચતાદિ ધર્મવાળો છે અને 'ગો' શબ્દનો અર્થ શૃંગાદિ-વિશિષ્ટવ્યક્તિ ભૂમિસ્થિત તથા જડત્વ મૂર્ત્તત્વાદિરૂપ ધર્મવાળો છે અને 'ગો' શબ્દનું જ્ઞાન, ચિત્તસ્થિત તથા પ્રકાશ અમૂર્તત્વાદિધર્મશીળ છે. તેથી તે ત્રણેનો ભિન્ન જ માર્ગ છે.[2] અર્થાત્ એ ત્રણે ભિન્ન ભિન્ન છે, તથાપિ સર્વત્ર એમનું ભાન પરસ્પર સંકીર્ણરૂપથી (અભિન્ન રૂપથી જ) પ્રતીત થાય છે, તેથી તે વિકલ્પાત્મક છે.

અર્થાત્[3]–જો કોઈ પુરુષ કોઇને એમ કહે કે, તમે "આ ગાય છે" એનું ઉચ્ચારણ કરો. તો તે અવશ્ય કહેશે કે "આ ગાય છે" અને પછી જો ગોશાળામાં સ્થિત 'ગો' શબ્દના અર્થભૂતવ્યક્તિની તરફ આંગળી કરી પૂછે કે, 'આ શું છે?' તોપણ "આ ગાય છે" એમ જ તે કહેશે. વળી તેને એ પૂછાય કે, ગાયને દેખવાથી તમારા ચિત્તમાં કેવું જ્ઞાન ઉત્પન્ન થયું? તોપણ તે એ કહેશે કે "આ ગાય છે." એ સઘળાં સ્થાનોમાં "આ ગાય છે" એવો પ્રયોગ સર્વત્રાનુગત છે. અહીં પ્રથમ, શબ્દસ્થળમાં[4] શબ્દની સાથે અવિદ્યમાન અર્થ અને જ્ઞાનનો અભેદ ભાસમાન થઈ રહેલો છે, એથી એ પણ એક વિકલ્પ જ છે. દ્વિતીય, અર્થ-વિષય સ્થળમાં[5] પણ વિદ્યમાન વિષયનો અવિદ્યમાન શબ્દ તથા જ્ઞાનની સાથે અભેદ ભાસમાન થઈ રહેલો છે, એટલે એ

૧–એ જ્ઞાનને વિકલ્પાત્મક સિદ્ધ કરવા માટે શબ્દ, અર્થ તથા જ્ઞાનના ભેદ કથનપૂર્વક અભેદ પ્રદર્શન કરે છે. "યદ્યપિ" ઇત્યાદિથી.

૨–યદ્યપિથી લઇને અહીં સૂધી "विभज्यमानाश्चाऽन्ये शब्दधर्मा अन्येऽर्थधर्मा अन्ये विज्ञानधर्मा इत्येतेषां विभक्तः पंथाः" એ ભાષ્યનો અનુવાદ છે.

૩–પરસ્પર સંકીર્ણતાને સ્પષ્ટ કરે છે. "અર્થાત્" ઇત્યાદિથી.

૪–જ્યાં (આ ગાય છે) એ શબ્દનું ઉચ્ચારણ કરેલુ છે ત્યાં.

૫–જ્યાં ગોરૂપ અર્થને દેખી "આ ગાય છે" એવું કહેવાયું છે ત્યાં.

પણ એક વિકલ્પ થયો. અને જ્ઞાનસ્થળમાં પણ[1] વિદ્યમાન જ્ઞાનની સંગે ન હોયેલા શબ્દનું અને અર્થનું ભાન થઈ રહેલું છે, તેથી એ પણ એક વિકલ્પ થયો.

એ ત્રણેનો પરસ્પર એવો સંબંધ છે કે-ભિન્ન ભિન્ન હોવા છતાં પણ એકના જ્ઞાનથી બીજાની ઉપસ્થિતિ થઈ જાય છે. એ અવિદ્યમાન અભેદનું ભાન થવું, તે અહીં વિકલ્પ છે, અને એ જ અહીં પરસ્પર સંકીર્ણતા છે.

એ પ્રમાણે એ શબ્દ, અર્થ, જ્ઞાનરૂપ ત્રણે વિકલ્પોથી સંકીર્ણ સમાપત્તિ, તે સવિતર્કસમાપત્તિ જાણવી.

અર્થાત્-જે સમાધિપ્રજ્ઞામાં સ્થૂલભૂતોના વા કોઈ મૂર્તિના વા ગો ઘટ વગેરે અન્ય પદાર્થના શબ્દ, અર્થ, જ્ઞાનરૂપ વિકલ્પથી સંકીર્ણ જ ભાન થાય છે, તે સવિકલ્પસંજ્ઞાવાળી સંપ્રજ્ઞાત સમાધિ છે. એ ભાવનામાં યથાર્થ જ્ઞાનનો અભાવ હોવાથી એ ભાવના અપરપ્રત્યક્ષપદની[2] વાચ્ય છે. ॥ ૪૨ ॥

પછી[3] જ્યારે શબ્દ સંકેતની સ્મૃતિનો અપગમ (નિવૃત્તિ) હોવાથી આગમ, અનુમાન, જ્ઞાન, વિકલ્પથી રહિત સમાધિપ્રજ્ઞામાં સ્વરૂપમાત્રથી અવસ્થિત અર્થના તન્માત્રરૂપથી જે ભાન થાય છે, ત્યારે તે નિર્વિતર્કસમાપત્તિ કહેવાય છે. એ ભાવના યથાર્થ પદાર્થનો વિષય કરવાથી પરપ્રત્યક્ષ કહેવાય છે. કેમકે એ સમાપત્તિમાં યથાર્થ વસ્તુનું જ ભાન થાય છે, પણ અયથાર્થ વસ્તુનું ભાન થતું નથી.

અર્થાત્[4]-જેટલા ગો, ઘટ, પટ વગેરે શબ્દો છે, તે સઘળાનો એક એક અર્થની સાથે નિયમિત સંબંધ છે, તેનું નામ શબ્દસંકેત કહે-

---

૧ જ્યાં ગાયને દેખી ચિત્તમાં "આ ગાય છે" એવું જ્ઞાન થયું છે ત્યાં.

૨–જો શબ્દાર્થ જ્ઞાનરૂપ વિકલ્પથી એ ભાવના સંકીર્ણ ન હોય, તો તે ભાવનાનો વિષય યથાર્થ થાત, પણ તેમ અહીં નથી; તેથી અયથાર્થ વિષયક છે, એવો ભાવ છે. યદ્યપિ ભાષ્યકારે તેને અપરપ્રત્યક્ષ કહેલું નથી, તોપણ નિર્વિતર્ક સમાધિને પરપ્રત્યક્ષ કહેવાથી તેને અપરપ્રત્યક્ષ જાણવું.

૩–ઉત્તરસૂત્રની અવતરણિરૂપ " यदा पुनः शब्दसंकेतस्मृतिपरिशुद्धौ " ઇત્યાદિ ભાષ્યનો અનુવાદ કરતાં નિર્વિતર્ક સમાપત્તિનું લક્ષણ કહે છે. "પછી જ્યારે" ઈત્યાદિથી.

૪–ભાષ્યમાં આવેલા "शब्दसंकेतस्मृतिपरिशुद्धि" પદનો અર્થ, શબ્દસંકેત સ્મરણનો અભાવ છે, તે સ્પષ્ટ કરે છે. "અર્થાત્" ઇત્યાદિથી.

વાય છે. તેટલા માટે જે પુરુષને એ જ્ઞાન નથી હોતું કે "ગાય" પદનો કયા અર્થ સાથે નિયતસંબંધ છે. અને "લાવ" શબ્દનો કયા અર્થ સાથે નિયતસંબંધ છે, તે પુરુષને "ગાય લાવ" એ શબ્દ સાંભળવાથી કાંઈ પણ બોધ થતો નથી; પણ જે પુરુષને એ જ્ઞાન હોય છે કે, 'ગાય' શબ્દનો શૃંગાદિવિશિષ્ટ વ્યક્તિ વિશેષની સાથે નિયતસંબંધ છે; અને 'લાવ' શબ્દનો અસન્નિહિત (દૂર) પદાર્થને સન્નિહિત (પાસે) કરવારૂપ અર્થની સાથે નિયમિત સંબંધ છે, તે પુરુષ. "ગાય લાવ" એ શબ્દ સાંભળ્યા પછી ગાયને લઈ આવે છે. કેમકે તેને શબ્દસંકેતનું જ્ઞાન છે.

એથી શબ્દસંકેતનું સ્મરણ જ આગમ અનુમાનાદિક જ્ઞાનનું કારણ છે, એ વાત નિર્વિવાદ છે. આ શબ્દસંકેત "આ ગાય છે" ઇત્યાદિ ઉપદેશદ્વારા જ જ્ઞાત થાય છે, એમ નહિ, પણ "આ ગાય છે" એ શબ્દ, અર્થ, જ્ઞાનના ઈતર ઈતર આભાસરૂપ હોવાથી વિકલ્પાત્મક છે. તે પ્રમાણે શબ્દસંકેત સ્મૃતિથી જે આગમ અનુમાનાદિ જ્ઞાન થાય છે, તે સઘળું વિકલ્પાત્મક જ હોય છે.

સવિતર્કસમાપત્તિમાં યોગીને પદાર્થોનું જે ભાન થાય છે, તે શબ્દ-સંકેત સ્મરણપૂર્વક હોવાથી વિકલ્પાત્મક કહેવાય છે અને નિર્વિતર્ક સમાપત્તિમાં યોગીને જે અર્થનું ભાન થાય છે, તે શબ્દસંકેત સ્મરણના અભાવપૂર્વક હોવાથી આગમ અનુમાન જ્ઞાન વિકલ્પથી શૂન્ય કેવળ પદાર્થમાત્ર વિષયક હોવાથી નિર્વિકલ્પાત્મક કહેવાય છે. એ ભાવનામાં વિપર્યય જ્ઞાનનો લેશ ન હોવાથી તે યોગીને પરપ્રત્યક્ષ છે. આગમ અને અનુમાનનું યોગીનું પરપ્રત્યક્ષ જ બીજ છે. કારણ કે તેના બળથી જ અર્થને પ્રત્યક્ષ કરી યોગી લોક ઉપદેશ કરે છે. ॥ ૪૨ ॥

એ યોગીનું જે નિર્વિતર્કસમાધિજન્ય જ્ઞાન, તે પોતાના કાર્યભૂત વિકલ્પાત્મક આગમ અનુમાનથી અનુશક્ત (સંબદ્ધ) ન હોવાથી પ્રમા-ણાંતરથી અસંકીર્ણ (અમિશ્રિત) છે. એવી રીતે નિર્વિતર્ક સમાપત્તિનું જ અગ્રિમ સૂત્રદ્વારા સૂત્રકાર લક્ષણ કહે છે:-

सू—स्मृतिपरिशुद्धौ स्वरूपशून्येवाऽर्थमात्रनिर्भासा निर्वितर्का ॥४३॥

સૂત્રાર્થઃ-સ્મૃતિની નિવૃત્તિ થાય ત્યારે જાણે કે સ્વરૂપથી રહિત હોય નહિ એવી, કેવળ અર્થને જ બતાવવાળી (કેવળ અર્થનો જ છે નિર્ભાસ જેમાં એવી) જે સમાપતિ, તે નિર્વિતર્કા કહેવાય છે.

(**स्मृतिपरिशुद्धौ**) આગમ, અનુમાન જ્ઞાનના કારણભૂત શબ્દસંકેત સ્મરણનો અપગમ (નિવૃત્ત) હોવાથી જે (**अर्थमात्रनिर्भासा**) કેવળ ગ્રાહ્ય-રૂપ અર્થને જ પ્રકાશ કરવાવાળી, તેટલા માટે (**स्वरूपशून्या**) પોતાના ગ્રહણાકાર જ્ઞાનાત્મકરૂપથી રહિત ચિત્તવૃત્તિ, તે (**निर्वितर्का**) નિર્વિતર્ક-સંપ્રજ્ઞાત હોય છે.

અર્થાત્[1]–જેમ સવિતર્કસંપ્રજ્ઞાતમાં ગ્રાહ્યપદાર્થ તથા ગ્રાહ્યપદાર્થનો વાચક શબ્દ અને ગ્રાહ્યપદાર્થનું જ્ઞાન, એ ત્રણે વિષય, ચિત્તમાં વર્તમાન રહે છે, તેમ નિર્વિતર્ક સંપ્રજ્ઞાતમાં એ ત્રણે વિષય ચિત્તમાં રહેતા નથી. કેમકે એ દશામાં કેવળ ગ્રાહ્ય (ધ્યેય) વસ્તુ વિષયક જ ચિત્ત સ્થિર રહે છે, કાંઈ શબ્દવિષયક કે જ્ઞાનવિષયક રહેતું નથી. એથી જ તેને "અર્થ-માત્રનિર્ભાસા" કહે છે. કેમકે એ સમાપત્તિમાં શબ્દ અર્થ જ્ઞાનરૂપ વિકલ્પનું ભાન ન હોવાથી કેવળ અર્થાકારથી જ ચિત્ત વિદ્યમાન રહે છે.

યદ્યપિ એ અવસ્થામાં અર્થાકાર ચિત્તવૃત્તિ પણ રહે છે, પરંતુ તે પોતાના રૂપથી પ્રતીત થતી નથી. પણ ધ્યેયસ્વરૂપ જ થઈ જાય છે. એથી જ (**स्वरूपशून्या इव**) એ **इव** પદ આપેલું છે.

શબ્દ અને જ્ઞાનનું ભાન ન થતાં કેવળ અર્થનું જ ભાન કેમ થાય છે ? તેનો હેતુ દર્શાવવા સારુ '**स्मृतिपरिशुद्धौ**' એ પદ આપેલું છે. અર્થાત્–જો વિકલ્પાત્મક આગમ, અનુમાન, જ્ઞાનના કારણભૂત શબ્દસં-કેતનું તેમાં સ્મરણ રહેતું હોત, તો શબ્દ અને જ્ઞાનનું ભાન થાત. પણ તે સ્મરણ એ દશામાં રહેતું નથી. કેમકે તેની તે દશામાં પરિશુદ્ધિ (નિવૃત્તિ) થઈ ગઈ છે. તેથી શબ્દ તથા જ્ઞાનનું ભાન ન થતાં કેવળ સ્થૂલ ઘટાદિ પદાર્થોના સ્વરૂપનું જ એમાં ભાન થાય છે, બીજાનું નહિ.

અહીં પ્રસંગથી એ પણ જાણી લેવું ઉચિત છે કે, એ નિર્વિતર્ક સમાપ-ત્તિનો વિષયભૂત, જે સ્થૂળ ગોઘટાદિ પદાર્થ છે, તે નથી અણુસમુદાયરૂપ અને નથી જ્ઞાનસ્વરૂપ કે નથી અણુઓથી ઉત્પન્ન થયેલું ભિન્ન કાર્યસ્વરૂપ, પણ[2]

૧–સવિતર્કસંપ્રજ્ઞાતથી નિવિતર્કસંપ્રજ્ઞાતમાં ભેદબોધક જે (**अर्थमात्र-निर्भासा**) એ પદ છે, તેનો અર્થ સ્પષ્ટ કરવા માટે "અર્થાત્" ઇત્યાદિ કહે છે.

૨–જેટલા સ્થૂળ ઘટાદિ પદાર્થ દૃષ્ટિગોચર થાય છે, તે અનંત પરમાણુ જ મળેલાં છે, કાંઈ પરમાણુનું કાર્ય વા પરિણામ "ઘટ" નથી. એટલે પર-માણુપુંજ જ ઘટ છે, એવો વૈભાષિક સૌત્રાંતિક સંજ્ઞક બૌદ્ધનો મત છે, અને તેને જ સંઘાતવાદ કહે છે. આ સઘળું ઘટાદિ વિજ્ઞાનસ્વરૂપ છે, તે યોગા-

"આ એક ઘટ છે," એવું એકબુદ્ધિને ઉત્પન્ન કરવાવાળા અણુઓનું સ્થૂળ પરિણામવિશેષ છે.[1]

ભાવ એ છે કે–જો[2] અનેક મિલિત પરમાણુઓને જ ઘટસ્વરૂપ માનશો, તો "આ એક ઘટ છે" એવો વ્યવહાર શી રીતે થશે? કેમકે અનેક પરમાણુમાં એક વ્યવહારનું હોવું અસંભવિત છે. અને "આ મહાન્ સ્થૂળ ઘટ છે" એવી રીતની, પરમાણુઓમાં મહત્વ તથા સ્થૂળત્વની, પ્રતીતિ પણ કેમ થશે? કેમકે પરમાણુઓમાં મહત્વ તથા સ્થૂળત્વનો અભાવ છે.

અને વળી મુદ્ગર પ્રહારદ્વારા ઘટ ફૂટી જવાથી જે ઠીબ તથા નાના નાના કડકા પ્રતીત થાય છે, તે પણ બૌદ્ધમતમાં ન હોવું જોઇએ. કેમકે ઠીબ વગેરેએ તો ઘટનો આરંભ કર્યો જ નથી, કે જેથી ઠીબ વગેરે દેખાય, પણ મળી ગયેલા પરમાણુઓ જ ઘટ છે. તે પ્રમાણે એ મતમાં ઘટનું ફૂટવું, એટલે પરમાણુઓનો વિયોગ થવો તે જ છે, તો વિયુક્ત થયેલાં પરમાણુઓ અતીંદ્રિય હોવાથી ઘટના ફૂટ્યા પછી કાંઈ પણ દેખાવાં ન જોઇએ. પણ કપાલ (ઠીબ) વગેરે બધાંના જોવામાં આવે છે, તેથી આ બૌદ્ધસંઘાતવાદ મત અસંગત છે.

એ પ્રમાણે[3] જો વિજ્ઞાનસ્વરૂપ જ ઘટ માનશો, તો "આ ઘટ છે." એવી રીતે બાહ્ય દેશમાં ઘટાદિ પદાર્થ પ્રતીત ન થવા જોઈએ. કેમકે જો બુદ્ધિમાં ઘટ માનતા હો તો "બુદ્ધિમાં ઘટ છે" એવી પ્રતીતિ થવી ઉચિત છે અને જો બુદ્ધિસ્વરૂપ ઘટ હોય, તો "હું ઘટ છું."

ચાર નામવાળા વિજ્ઞાનવાદી બૌદ્ધનું મત છે. અણુઓથી દ્વ્યણુક, દ્વ્યણુકોથી ત્રસરેણુ ઇત્યાદિ પ્રકારથી પરમાણુ વગેરેનું ઘટકાર્ય છે, એમ નૈયાયિક માને છે, તેનું નામ આરંભવાદ છે. એ ત્રણેથી ભિન્ન પરિણામવાદ સાંખ્ય–યોગનો મત છે, તે કહે છે, "પણ" ઇત્યાદિથી.

૧–"तस्या एकबुद्धयुपक्रमो ह्यर्थात्माऽणुप्रचयविशेषात्मा गवादिर्घटादिर्वा लोकः" એ ભાષ્યનો આ અનુવાદ છે.

૨–પૂર્વોક્ત ભાષ્યનો અર્થ સ્ફુટ કરતાં પહેલાં સંઘાતવાદનું ખંડન કરે છે, "જો" ઇત્યાદિથી.

૩–પૂર્વોક્ત પ્રકારથી "एकबुद्धयुपक्रमः" એ ભાષ્યના અર્થના કથનપૂર્વક સંઘાતવાદનું નિરાકરણ કરી, હવે (अर्थात्मा) એ ભાષ્ય અનુસારે વિજ્ઞાનવાદી ઉપર આક્ષેપ કરે છે. એ "પ્રમાણે" ઇત્યાદિથી. જ્ઞાનસ્વરૂપ ઘટ નથી, પણ બાહ્ય પદાર્થ સ્વરૂપ છે, તે "अर्थात्मा" એ ભાષ્યનો અર્થ છે.

એવી રીતની પ્રતીતિ થવી ઉચિત છે. એટલા માટે બધી રીતે જ ભદંત[1] મતાનુયાયી યોગાચારને મત અસંગત છે.

એ પ્રમાણે જો દ્વયણુકાદિ ક્રમથી ઘટાદિની ઉત્પત્તિ માનશો, તો મૃત્તિકાથી ભિન્ન બીજી વસ્તુઓથી પણ ઘટની ઉત્પત્તિ માનવી પડશે. કેમકે પ્રથમ અવિદ્યમાન પદાર્થનું જ ફરી વિદ્યમાનત્વ થઈ જવું, તે ઉત્પત્તિ પદનો અર્થ છે.

એવી રીતે જેમ મૃત્પિંડમાં પહેલાં ઘટ અવિદ્યમાન હતો, તેમ વાલુ (રેતી) વગેરેમાં પણ અવિદ્યમાનત્વ સમાન છે. એ પ્રમાણે જેમ મૃત્પિંડથી ઘટ ઉત્પન્ન થાય છે, તેમ વાલુ વગેરેથી પણ થવો જોઇએ. પણ તેમ થતો નથી, તેથી પ્રથમ અવિદ્યમાન પદાર્થની ફરીથી ઉત્પત્તિ થાય છે, એ આરંભવાદ પણ અસંગત છે.[2]

વળી[3] જેમ તલમાં વિદ્યમાન જ તેલની અભિવ્યક્તિ પીલવાથી થાય છે, તેમ મૃત્પિંડમાં વિદ્યમાન જ ઘટની કુંભાર વગેરેના વ્યાપારથી અભિવ્યક્તિ થાય છે. કાંઈ એમ નથી કે પહેલાં નહોતું, તે ફરી કુલાલાદિ વ્યાપારથી ઉત્પન્ન થયું છે, માટે એ મત યોગ્ય અને ઠીક છે.

પરંતુ[4] એટલું વિશેષ છે કે–કુંભાર વગેરેના વ્યાપારની પૂર્વે મૃત્તિકામાં અનાગતાવસ્થાથી[5] ઘટ વિદ્યમાન રહે છે અને કુંભાર વગેરેના વ્યાપાર પછી વર્ત્તમાન અવસ્થાવાળો થાય છે, તથા દંડપ્રહાર પછી અતીતાવસ્થાપન્ન થઈ જાય છે (નાશ પામે છે.) સર્વથા ઘટનો કાંઈ અભાવ નથી. એટલા માટે પાર્થિવભૂત સૂક્ષ્મોથી કથંચિત્ ભિન્ન અને કથંચિત્ અભિન્ન જે સ્થૂલ પરિણામવિશેષ, તે જ ઘટ છે, એમ જાણવું.

એ પરિણામવિશેષ જ[6] અવયવી એવા નામથી વ્યવહૃત (ઓળખાય)

૧-ભદંત નામ સત્તાવીશ દાંતવાળાનું છે. બુદ્ધદેવને ૨૭ દાંત હતા, તેથી બુદ્ધને ભદંત કહે છે. વિશેષ હકીકત બૌદ્ધદર્શન સમીક્ષામાં જુઓ.

૨–વિસ્તારથી ખંડન, સાંખ્યદર્શનપ્રકાશના અધ્યા. ૧ સૂ. ૧૧૬માં જોવું.

૩–સ્વસિદ્ધાંત કહે છે, "વળી" ઇત્યાદિથી.

૪–જો સર્વદા જ ઘટ મૃત્તિકામાં વિદ્યમાન છે, તો દૃષ્ટિગોચર કેમ થતો નથી, તેનો ઉત્તર કહે છે. "પરંતુ એટલું" ઇત્યાદિથી.

૫–એ અનાગતાવસ્થાને જ સૂક્ષ્માવસ્થા અથવા અનભિવ્યક્તાવસ્થા કહે છે.

૬–"स एष धर्मोऽवयवीत्युच्यते" ઈત્યાદિ ભાષ્યનો અનુવાદ કરે છે. "એ પરિણામ" ઈત્યાદિથી.

છે, અને તે જ એક મહાન્, સ્પર્શવાન્ અને જલાદિ ધારણરૂપ ક્રિયાવાળો તથા અનિત્ય (ઘટ) કહેવાય છે. તે અવયવીદ્વારા જ સઘળો વ્યવહાર થાય છે.

એ પ્રમાણે જે બૌદ્ધમતમાં આ પ્રચયવિશેષ (સ્થૂલરૂપ પારણામ) અવયવી અવસ્તુક (તુચ્છ) છે, તે મતમાં પરમાણુઓમાં પૂર્વોક્ત સ્થૂલાદિ વ્યવહારનો અસંભવ જાણવો, કારણ કે પરમાણુ અતીંદ્રિય અને સૂક્ષ્મ છે.

તેમ જ બૌદ્ધમતમાં અવયવીના અભાવથી જે આ પૂર્વોકત એક, સ્થૂલ, અવયવી ઈત્યાદિ વ્યવહાર થાય છે, તે સઘળું અતદ્રૂપપ્રતિષ્ઠ હોવાથી મિથ્યા જ જ્ઞાન કહેવાશે. કેમકે જે જે દેખવામાં આવે છે, તે સઘળું અવયવી છે, અને તે અવયવી માનતા નથી, એથી સમ્યગ્ જ્ઞાનશીલ ન હોવાથી બૌદ્ધમત દુષ્ટ છે. તે પ્રમાણે જ્ઞાનના સત્યત્વને લીધે મહાન્ સ્થૂળ ઈત્યાદિ વ્યવહારવાળો એક અવયવી અવશ્ય માનવો જોઇએ.

આ પૂર્વોક્ત રીતથી સાધિત સ્થૂલરૂપ અવયવી જ એ નિર્વિતર્કસમાપત્તિનો વિષય છે. ॥ ૪૩ ॥

એવી રીતે સ્થૂલ પંચભૂત તથા ભૌતિક પદાર્થવિષયક ગ્રાહ્યસમાપત્તિના સવિતર્ક, નિર્વિતર્કરૂપ બે ભેદ નિરૂપણ કરી, હવે સૂક્ષ્મભૂત તથા પંચતન્માત્રવિષયક ગ્રાહ્યસમાપત્તિના બે ભેદનું નિરૂપણ કરે છે.

सू–एतयैव सविचारा निर्विचारा च सूक्ष्मविषया व्याख्याता ॥४४॥

સૂત્રાર્થઃ–આ સમાપત્તિના કથનવડે જ સવિચારા અને નિર્વિચારા એવી સૂક્ષ્મ વિષયક સમાપત્તિનું પણ વ્યાખ્યાન થયું.

(**एतया एव**) એ સવિતર્ક-નિર્વિતર્કસમાપત્તિના નિરૂપણથી જ (**सूक्ष्मविषया**) સૂક્ષ્મભૂતોના વિષયવાળી (**सविचारा निर्विचारा च**) સવિચાર અને નિર્વિચારરૂપ સમાપત્તિનું પણ (**व्याख्याता**) વ્યાખ્યાન કરાયું.

અર્થાત્–જેમ સ્થૂલ પદાર્થોમાં શબ્દ, અર્થ, જ્ઞાન, વિકલ્પથી સંકીર્ણ ભાવનાને સવિતર્કસમાપત્તિ અને અસંકીર્ણભાવનાને નિર્વિતર્કસમાપત્તિ કહે છે; તેમ અભિવ્યક્ત ધર્મવાળા[1] ભૂતસૂક્ષ્મોમાં જે દેશ, કાળ,

---

૧–" भूतसूक्ष्मेष्वाभिव्यक्तधर्मेषु " ઈત્યાદિ ભાષ્યનો અનુવાદ કરતાં સવિચાર સમાપત્તિનું નિરૂપણ કરે છે, "અભિવ્યક્ત ધર્મવાળા" ઈત્યાદિથી. અભિવ્યક્ત= પ્રત્યક્ષ, દૃષ્ટ ઘટાદિરૂપ સ્થૂળ પદાર્થ છે (ધર્મ) પરિણામ જેનો, એવાં જે સૂક્ષ્મભૂત તે.

કારણ જ્ઞાનપૂર્વક[1] ભાવના પ્રવૃત્ત થાય છે, તે સવિચારા જાણવી અને દેશાદિ જ્ઞાનના અભાવપૂર્વક જે કેવળ સૂક્ષ્મભૂતમાત્ર વિષયવાળી ભાવના પ્રવૃત્ત થાય છે, તે નિર્વિચારા જાણવી.

સવિતર્કાની પેઠે, આ સવિચારામાં પણ વર્તમાનાદિ ધર્મવિશિષ્ટ જ સૂક્ષ્મભૂત, સમાધિપ્રજ્ઞામાં આલંબન પામેલાં ભાસમાન થાય છે, એથી કાર્યકારણભાવનો વિચાર રહેવાથી તે સવિચારા કહેવાય છે. અને જે ભાવના સર્વથા દેશકાલાદિ જ્ઞાનથી રહિત, કેવળ સૂક્ષ્મભૂતોનો વિષય કરી, કાર્યકારણ ભાવના વિચારમાં પ્રવૃત્ત ન થઈ, કેવળ અર્થમાત્ર થાય છે, તે નિર્વિચારા કહેવાય છે.

આ નિર્વિચારસમાપત્તિમાં પણ નિર્વિતર્કસમાપત્તિની પેઠે પ્રજ્ઞાસંજ્ઞક ચિત્તની વૃત્તિ, સ્વરૂપથી શૂન્ય થઈ અર્થમાત્ર[2] થઈ જાય છે.

ભાવ એ છે કે-સવિચારસમાપત્તિમાં, (સૂક્ષ્મપૃથ્વી, ગંધતન્માત્ર પ્રધાન પંચ તન્માત્રાઓથી ઉત્પન્ન થઈ છે, અને ગંધ તેનો ધર્મ છે. ઈત્યાદિ પ્રકારથી) કાર્યકારણ ભાવનો વિચાર વિદ્યમાન રહે છે અને નિર્વિચારમાં કેવળ સૂક્ષ્મભૂતોનું જ ભાન હોય છે, કાંઈ પૂર્વે કહેલા વિચાર તેમાં રહેતા નથી, એટલો એ બંનેમાં ફેર છે. એવી રીતે સ્થૂલ પદાર્થવિષયક સવિતર્ક નિર્વિતર્ક અને સૂક્ષ્મભૂત વિષયક સવિચાર નિર્વિચારરૂપ ભેદથી ગ્રાહ્યસમાપત્તિ ચાર પ્રકારની થઈ, એ સિદ્ધ થાય છે. ॥૪૪॥

હવે સવિચાર-નિર્વિચાર સંજ્ઞાવાળી સૂક્ષ્મગ્રાહ્યસમાપત્તિમાં જે સૂક્ષ્મ વિષયોનો સાક્ષાત્કાર થાય છે, તે સૂક્ષ્મપદાર્થોની વિશ્રાંતિ ક્યાં

૧-દેશ=ઉપર, પડખે, નીચે. કાલ=વર્તમાન વગેરે. કારણજ્ઞાન=પાર્થિવ-પરમાણુ (સૂક્ષ્મપૃથ્વી)નું ગંધતન્માત્રપ્રધાન પંચતન્માત્રા કારણ છે. જળ પરમાણુ (સૂક્ષ્મ જળ)નું ગંધતન્માત્રરહિત રસતન્માત્ર પ્રધાન ચાર તન્માત્ર કારણ છે. અગ્નિપરમાણુ (સૂક્ષ્માગ્નિ)નું ગંધ રસતન્માત્ર રહિત રૂપતન્માત્ર પ્રધાન ત્રણ તન્માત્ર કારણ છે. એ પ્રમાણે વાયુપરમાણુ (સૂક્ષ્મવાયુનું)નું ગંધ, રસ, રૂપ તન્માત્રરહિત સ્પર્શતન્માત્ર પ્રધાન બે તન્માત્ર કારણ છે અને આકાશ પરમાણુ (સૂક્ષ્મ આકાશ)નું કેવળ શબ્દતન્માત્ર જ કારણ છે. એવી રીતે કાર્યકારણભાવ વિચારપૂર્વક જે ભાવનામાં સૂક્ષ્મભૂતોનો સાક્ષાત્કાર થાય છે, તે સવિચારસમાપત્તિ છે. એ મૂળ ભાષ્યનું તત્વ છે.

૨-અર્થાત્ એ ભાવનામાં કાર્યકારણભાવ વિચારનો ત્યાગ કરી ચિત્તની વૃત્તિ એતાદૃશ સૂક્ષ્મભૂતાકારથી પરિણત થઈ જાય છે, કે જાણે પોતાનો વૃત્તિભાવ જ એકવાર તેણે વ્યક્ત કરી દીધો છે.

સૂધી હોય છે, એ આકાંક્ષાનું નિવારણ કરતાં સૂક્ષ્મવિષયત્વનો અવધી કહે છે.

सू–सूक्ष्मविषयत्वं चालिंगपर्यवसानम् ॥ ४५ ॥

સૂત્રાર્થઃ–સૂક્ષ્મ વિષયત્વ પ્રકૃતિ લગી છે.

(**सूक्ष्मविषयत्वं च**) સૂક્ષ્મગ્રાહ્યસમાપત્તિના વિષયભૂત સૂક્ષ્મવિષયત્વનું તો (**अलिंगपर्यवसानम्**) અલિંગ સંજ્ઞાવાળી પ્રકૃતિ જ પર્યવસાન એટલે અવધિ છે.

અર્થાત્–સૂક્ષ્મગ્રાહ્યસમાપત્તિની જે સૂક્ષ્મપદાર્થ વિષયતા છે, તે પ્રકૃતિપર્યંત જઈ સમાપ્ત થઈ જાય છે.

ભાવ એ છે કે–પાર્થિવ પરમાણુ[1] જેમ તેના કારણભૂત ગંધતન્માત્ર; એ પ્રમાણે જલપરમાણુ તથા તેના કારણભૂત રસતન્માત્ર; અગ્નિપરમાણુ તથા તેના કારણભૂત રૂપતન્માત્ર; વાયુપરમાણુ તથા તેના કારણભૂત સ્પર્શતન્માત્ર; અને આકાશપરમાણુ તથા તેના કારણભૂત શબ્દતન્માત્ર. એ પ્રમાણે એ પંચતન્માત્રાનું કારણભૂત અહંકાર, અહંકારનું કારણભૂત લિંગ સંજ્ઞક મહત્તત્ત્વ,[2] અને મહત્તત્ત્વના કારણભૂત અલિંગસંજ્ઞક પ્રકૃતિ, એ સઘળાં સૂક્ષ્મવિષય કહેવાય છે.

એ સઘળામાંથી પૂર્વપૂર્વ કાર્યની અપેક્ષાથી ઉત્તરોત્તર કારણભૂત સૂક્ષ્મ છે. પ્રકૃતિથી પર બીજો કોઈ સૂક્ષ્મ પદાર્થ ન હોવાથી પ્રકૃતિમાં જ સૂક્ષ્મતાની વિશ્રાંતિ છે.

૧–પાર્થિવ પરમાણુ, પૃથ્વીસંજ્ઞક સૂક્ષ્મભૂતનું નામ છે. એ પ્રમાણે જળપરમાણુ જળસંજ્ઞક સૂક્ષ્મભૂતનું નામ છે, અગ્નિપરમાણુ અગ્નિનામક સૂક્ષ્મભૂતનું નામ છે, વાયુપરમાણુ વાયુસંજ્ઞાવાળા સૂક્ષ્મભૂતનું છે, અને આકાશપરમાણુ આકાશસંજ્ઞાવાળા સૂક્ષ્મભૂતનું નામ જાણવું. અહીં એટલું વિશેષ એ પણ જાણવું કે, યોગભાષ્યકારના મતમાં શબ્દ, સ્પર્શ, રૂપ, રસ, ગંધ એ પાંચ તન્માત્રાથી પહેલાં આકાશ, વાયુ, અગ્નિ, જળ, પૃથ્વીસંજ્ઞક સૂક્ષ્મભૂત ઉત્પન્ન થાય છે. પછી એ સૂક્ષ્મભૂતોથી આકાશ વગેરે સ્થૂળભૂત ઉત્પન્ન થાય છે. કાંઈ સાંખ્યમતની પેઠે તન્માત્રાઓથી જ સ્થૂલભૂતોની ઉત્પત્તિ યોગમતમાં નથી.

૨–જે તત્ત્વ કારણમાં લીન થઈ જાય છે, તે લિંગ કહેવાય છે. મહત્તત્ત્વાદિ નિખિલ કાર્ય, પોતપોતાના કારણમાં લીન થવાથી લિંગ છે, અને પ્રકૃતિ કોઇમાં લીન ન થતી હોવાથી અલિંગ છે. મહત્તત્વ પોતાના કારણ પ્રધાનનું બોધન કરે છે, તેથી તે પણ લિંગ છે.

યદ્યપિ "अव्यक्तात्पुरुषः परः" એ શ્રુતિમાં પ્રકૃતિ કરતાં પણ પુરુષને સૂક્ષ્મ કહેલો છે. તેથી પ્રકૃતિમાં સૂક્ષ્મતાની વિશ્રાંતિ કહેવી અયોગ્ય છે; તથાપિ પુરુષ, અગ્રાહ્ય અને ચેતન હોવાથી, ગ્રાહ્ય જડ પદાર્થોની સૂક્ષ્મતાની વિશ્રાંતિનો પ્રકૃતિમાં જ સંભવ હોવાથી પ્રકૃતિમાં જ વિશ્રાંતિ કહી છે, તે યુક્ત છે.[1]

અર્થાત્, જેમ મહત્તત્ત્વની અપેક્ષાથી પ્રકૃતિમાં સૂક્ષ્મતા છે, તેમ પુરુષમાં નથી-કેમકે જેમ મહત્તત્ત્વનું પ્રકૃતિ ઉપાદાન કારણ છે, તેમ પુરુષ, ઉપાદાન કારણ નથી, પણ નિમિત્ત કારણ છે. એ પ્રમાણે જો કે વસ્તુતાએ પુરુષ પણ સૂક્ષ્મ છે, તથાપિ જડ, ગ્રાહ્ય, પરિણામી, ઉપાદાન કારણતા સહિત સૂક્ષ્મતાની વિશ્રાંતિ પ્રકૃતિમાં જ છે, પુરુષમાં નથી. એથી પ્રધાનમાં જ નિરતિશય સૂક્ષ્મપણું કહેવાય છે.

સૂક્ષ્મભૂતોથી તે પ્રકૃતિ સુધી જેટલા સૂક્ષ્મપદાર્થ છે, તે સઘળા જ સવિચારસમાપત્તિના વિષય છે, એ તાત્પર્ય છે. ॥ ૪૫ ॥

ગ્રાહ્યવિષયક એ ચારે સમાપત્તિઓનાં નામાંતર કહે છે.

सू–ता एव सबीजः समाधिः ॥ ४६ ॥

સૂત્રાર્થઃ–(**ता एव**) એ પૂર્વોક્ત ચારે સમાપત્તિઓ જ (**सबीजः समाधिः**) સબીજ સમાધિ કહેવાય છે.

અર્થાત્–એ ચારે સમાપત્તિઓ સબીજ સમાધિને નામે વ્યવહૃત (ઓળખાય) છે. કેમકે એ ચારેય બહિર્વસ્તુ બીજવાળી છે, એટલે એ ચારે સમાપત્તિઓમાં સ્થૂલ વા સૂક્ષ્મ, એક નહિ તો બીજું, આલંબન બની રહે છે, તેથી તે સાલંબન હોવાથી સબીજ છે.[2]

વાચસ્પતિમિશ્રે તો કહેલું છે કે–આ ઠેકાણે "**ता एव सबीजः**" એવી રીતના પાઠથી એવો અર્થ ન જાણવો કે, એ ચારે જ સબીજ છે અને બીજી સબીજ નથી. કેમકે એમ માનવાથી ગ્રહણ અને ગ્રહીતૃ સમાપત્તિને સબીજત્વનો લાભ થતો નથી. પણ "**ताः सबीज एव**" એવી રીતે

૧–ભાવ એ છે કે–સૂક્ષ્મગ્રાહ્ય પદાર્થની સમાપ્તિ ક્યાં સુધી હોય છે, તેના ઉત્તરમાં પ્રકૃતિ સુધી સમાપ્તિ કહેવાયલી છે. એ પ્રમાણે પુરુષ પણ સૂક્ષ્મ હોય, પરંતુ જડ પદાર્થનિષ્ઠ સૂક્ષ્મતાની વિશ્રાંતિ તો પ્રકૃતિ પર્યંત જ કહેવાય.

૨–બહિર્વસ્તુ નામ પ્રકૃતિ આદિ બાહ્ય અનાત્મ વસ્તુનું છે. બીજ નામ આલંબનનું છે. અથવા એ સઘળી સમાધિઓમાં બીજભૂત અજ્ઞાન કાયમ રહે છે, તેથી તે સબીજ કહેવાય છે.

ભિન્નક્રમથી एव શબ્દનો સબીજ શબ્દની સાથે અન્વય કરી, એવો અર્થ કરવો કે, એ ચારે સબીજ જ છે, નિર્બીજ નહિ.

એ પ્રમાણે એ ચારેના નિર્બીજત્વનો નિષેધ થયો, પણ કાંઈ ગ્રહણ-ગ્રહીતૃ સમાપત્તિઓના સબીજત્વનો નિષેધ ન થયો. એથી એ બંનેમાં પણ સબીજત્વની વિદ્યમાનતાથી ગ્રહણ-ગ્રહીતૃ સમાપત્તિઓને પણ સબીજ જાણવી.

એ પ્રમાણે જેમ ગ્રાહ્ય સમાપત્તિમાં વિકલ્પ અને વિકલ્પના અભાવદ્વારા બે ભેદ નિરૂપણ કરેલા છે, તેમ ગ્રહણ-ગ્રહીતૃ સમાપત્તિમાં પણ બબ્બે ભેદ જાણી લેવા.[1]

એવી રીતે ચાર પ્રકારની ગ્રાહ્યસમાપત્તિ, બે પ્રકારની ગ્રહણસમાપત્તિ અને બે પ્રકારની ગ્રહીતૃસમાપત્તિની સિદ્ધિ થવાથી સઘળી મળી એકંદર સંપ્રજ્ઞાતસંજ્ઞક સબીજ સમાધિના આઠ ભેદ છે.[2]

વાસ્તવિક રીતે તો ગ્રહણસંજ્ઞક ઇંદ્રિય અને ગ્રહીતૃસંજ્ઞક અહંકાર પણ સૂક્ષ્મગ્રાહ્યના અંતર્ગત જ છે. એથી જ સૂત્રકારે પ્રકૃતિપર્યંત સૂક્ષ્મ વિષય કહ્યો છે. અગર જો કે ભાષ્યકારે સૂક્ષ્મ પદાર્થોમાં ઇંદ્રિયોની ગણના નથી કરી, તથાપિ તન્માત્રાથી ઇંદ્રિયોનું પણ ગ્રહણ જાણી લેવું. કેમકે જેમ પંચતન્માત્ર અહંકારનું કાર્ય અને સૂક્ષ્મ છે, તેમ ઇંદ્રિયો પણ અહંકારનું કાર્ય અને સૂક્ષ્મ છે. એવી રીતે ગ્રાહ્યસમાપત્તિમાં ગ્રહણ-ગ્રહીતૃસમાપત્તિનો અંતર્ભાવ જાણીને જ સૂત્રકારે ચાર સમાપત્તિઓને સબીજ કહેવાથી યથાશ્રુત પાઠમાં (ભાષ્યપાઠમાં) પણ કાંઈ ન્યૂનતા દોષ નથી એમ જાણવું.

જે સંપ્રજ્ઞાત સમાધિના, ૧૭મા સૂત્રથી ચાર ભેદ કહેલા છે, તેના જ ૪૧ મા સૂત્રથી ત્રણ ભેદ કહેલા છે; અને પાછી તેની જ અહીં ચાર

૧–ગ્રહણ નામ શ્રોત્ર વગેરે ઇંદ્રિયોનું છે. શબ્દ, શ્રોત્રનો વિષય છે, અને અહંકાર તેનું કારણ છે. એ પ્રમાણે વિચારપૂર્વક ભાવના કરવાથી સવિચાર ગ્રહણ સમાપત્તિ, કેવળ ઇંદ્રિય માત્રની ભાવના કરવાથી નિર્વિચાર ગ્રહણ સમાપત્તિ અને મહત્તત્ત્વનું કાર્ય અહંકાર ત્રિગુણાત્મક છે, એવી રીતની ભાવના કરવાથી સવિચાર ગ્રહીતૃસમાપત્તિ; તથા કેવળ અહંકારની ભાવનાથી નિર્વિચાર ગ્રહીતૃસમાપત્તિ જાણવી.

૨–એ પ્રમાણે ૭ પ્રકારનો સંપ્રજ્ઞાતયોગ છે, એવું વિજ્ઞાનભિક્ષુનું કથન પ્રમાદરૂપ જ જાણવું.

વિભાગમાં સમાપ્તિ કરી છે, તથા અવાંતર ભેદથી તે જ આઠ પ્રકારની છે, તે વાસ્તવિક છે. ॥ ४६ ॥

એ સવિતર્કાદિ–સંપ્રજ્ઞાત સમાધિઓમાંથી અન્ય સમાધિઓ કરતાં નિર્વિચાર સંપ્રજ્ઞાતને સૂત્રકાર ફળકથનપૂર્વક શ્રેષ્ઠ કહે છે.

सू–निर्विचारवैशारद्येऽध्यात्मप्रसादः ॥ ४७ ॥

સૂત્રાર્થઃ–નિર્વિચાર સમાધિમાં પ્રવીણતા હોવાથી યોગીને અધ્યાત્મ પ્રસાદ થાય છે.

(निर्विचारवैशारद्ये) નિર્વિચાર સમાધિની વિશારદતા હોવાથી યોગીને (अध्यात्मप्रसादः) એક કાળમાં સઘળા પદાર્થવિષયક યથાર્થ જ્ઞાન ઉદય થાય છે.

રજતમ[1] ગુણના આધિક્ય યુક્ત જે અશુદ્ધિ તથા આવરણરૂપમળ, તેનાથી રહિત પ્રકાશસ્વરૂપ બુદ્ધિનો જે સત્ત્વગુણ પ્રાધાન્યથી, રજતમથી નહિ દબાયલો સ્વચ્છ સ્થિરતારૂપ એકાગ્ર પ્રવાહ, તેનું નામ वैशारद्य છે. જ્યારે નિર્વિચાર સમાધિની, ઉપર કહેલી વિશારદતા (પ્રવીણતા) યોગીને પ્રાપ્ત થાય છે, ત્યારે યોગીને સૂક્ષ્મભૂતથી માંડીને પ્રકૃતિપર્યંતના સઘળા પદાર્થોનો એક જ કાળમાં સાક્ષાત્કાર થઈ જાય છે. તે સાક્ષાત્કારનું નામ જ અધ્યાત્મપ્રસાદ છે.

તેને જ લોક સ્ફુટપ્રજ્ઞા કહે છે અને પ્રજ્ઞાપ્રસાદ પણ તેનું જ બીજું નામ છે. એ પ્રજ્ઞાપ્રસાદનો લાભ થવાથી યોગી અશોચ્ય (શોક રહિત) થઈ જાય છે. એથી જ ભગવાન્ વેદ વ્યાસે "प्रज्ञाप्रसादमारुह्याऽशोच्यः शोचतो जनान्। भूमिष्ठानिव शैलस्थः सर्वान् प्राज्ञोऽनुपश्यति" ॥ એ વાક્યથી પ્રજ્ઞાપ્રસાદવાળાને અશોચ્ય કહેલો છે.

જેમ પર્વતની ટોચ ઉપર ચઢેલો માણસ, પૃથ્વી ઉપર રહેલાં માણસોને નાનાં નાનાં દેખે છે, તેમ તે યોગી પ્રજ્ઞાપ્રસાદરૂપ પર્વત ઉપર ચઢેલો, જ્ઞાનના પ્રકર્ષથી (ઉત્કૃષ્ટતાથી) પોતાને સર્વોપરિ જાણતો અશોચ્ય (શોકરહિત) હોઈને બીજા સઘળા પુરુષોને શોકયુક્ત અને અલ્પ દેખે છે, આ એનો અર્થ છે. ॥ ४७ ॥

१–अशुद्ध्यावरणमलाऽपेतस्य प्रकाशात्मनो बुद्धिसत्वस्य रजस्तमोभ्यामनभिभूतः स्वच्छः स्थितिप्रवाहो वैशारद्यम्" ઈત્યાદિ–ભાષ્યનો અનુવાદ કરતાં નિર્વિચાર વૈશારદ્યનો અર્થ કહે છે. "રજતમ" ઇત્યાદિથી.

આ અધ્યાત્મપ્રસાદનો લાભ થવાથી જે પ્રજ્ઞાનો યોગીને લાભ થાય છે, તે પ્રજ્ઞાનું સાર્થક નામ કહે છે.

सू–ऋतंभरा तत्र प्रज्ञा ॥ ४८॥

સૂત્રાર્થઃ–(तत्र) તે અધ્યાત્મપ્રસાદનો લાભ થવાથી, યોગીને (प्रज्ञा) જે બુદ્ધિનો લાભ થાય છે, તેનું નામ (ऋतंभरा) ઋતંભરા પ્રજ્ઞા છે.

અર્થાત્–નિર્વિચાર સમાધિના વૈશારદ્યજન્ય અધ્યાત્મપ્રસાદથી સમાહિત થયું છે ચિત્ત જેનું, તેવા યોગીને જે એક પ્રકારની ચિત્તની વૃત્તિ ઉત્પન્ન થાય છે, તેનું નામ ઋતંભરાપ્રજ્ઞા છે.[1] અર્થાત્, તે પ્રજ્ઞા સત્ય અર્થનેજ ધારણ કરે છે, કાંઈ મિથ્યા અર્થને ધારણ કરતી નથી. કેમકે તેમાં વિપર્યય જ્ઞાનનો લેશ પણ હોતો નથી.

આ ચિત્તવૃત્તિનું જે ઋતંભરા નામ છે, તે રૂઢ નથી, પણ અર્થ-અનુસાર જ છે. કારણ કે "ઋત" નામ સત્યનું છે અને "ભર"નો અર્થ ધારણ કરનાર છે. તો તે સત્યાર્થ ધારણ કરનારી હોવાથી તેનું 'ઋતંભરા' નામ સાર્થક છે.

આ પ્રજ્ઞા હોવાથી જ ઉત્તમ યોગનો લાભ થાય છે, એવું પરમર્ષિએ કહેલું છે.

"आगमेनाऽनुमानेन ध्यानाभ्यासरसेन च ।
त्रिधा प्रकल्पयन् प्रज्ञां लभते योगमुत्तमम् इति.[2] ॥ ४८ ॥

હવે આ ઋતંભરા પ્રજ્ઞાજન્ય પ્રત્યક્ષ જ્ઞાનને આગમ તથા અનુમાનથી પેદા થતા જ્ઞાનથી શ્રેષ્ઠ કહે છે.

सू–श्रुताऽनुमानप्रज्ञाभ्यामन्यविषया विशेषार्थत्वात् ॥४९॥

સૂત્રાર્થઃ–આ ઋતંભરા પ્રજ્ઞા શાસ્ત્ર પજ્ઞા અને અનુમાન પ્રજ્ઞાથી ભિન્ન છે, કારણ તે વિશેષ અર્થને પ્રકાશ કરે છે.

(श्रुताऽनुमानप्रज्ञाभ्याम्) શ્રુત=શાસ્ત્રજન્ય પ્રજ્ઞા અને અનુમાનજન્ય પ્રજ્ઞાથી આ ઋતંભરા પ્રજ્ઞા (अन्या) ભિન્ન છે, કેમકે (विशेषार्थत्वात्) આ પ્રજ્ઞા, વિશેષરૂપથી અર્થનો સાક્ષાત્કાર કરવાથી વિશેષાર્થ વિષયક છે.

૧–આ પ્રજ્ઞાથી જે પદાર્થોનું ભાન થાય છે, તે સત્ય જ હોય છે, કાંઈ મિથ્યા હોતું નથી, એવો ભાવ છે.

૨–આગમ નામ શ્રવણનું, અનુમાન નામ મનનનું અને ધ્યાનાભ્યાસરસ નામ નિદિધ્યાસનનું છે. એ ત્રણે દ્વારા પ્રજ્ઞાની પ્રકલ્પનાથી અર્થાત્ માર્જનપૂર્વક સૂક્ષ્મતાની સંપત્તિથી યોગી ઉત્તમ યોગને પામે છે, એ એનો અર્થ છે.

શ્રુત નામ આગમ જ્ઞાનનું છે. અર્થાત્ આગમજન્યજ્ઞાન, સામાન્યનો જ વિષય કરે છે, વિશેષનો નહિ. કેમકે વિશેષ કથન કરવાનું આગમમાં સામર્થ્ય નથી. કારણ એ છે કે, વિશેષની સાથે શબ્દનો વાચ્ય વાચક ભાવ સંબંધ જ નથી.[1]

અર્થાત્, જે શબ્દ છે, તે સામાન્યરૂપથી જ લક્ષણદ્વારા વસ્તુનું નિરૂપણ કરી શકે છે. જેમકે "આને સ્વર્ગ કહે છે." "આ આત્માનું લક્ષણ છે." "આ પ્રકૃતિનું લક્ષણ છે." પણ કાંઈ "આ આત્મા છે." "આ પ્રકૃતિ છે," "આ સૂક્ષ્મભૂત છે," એવી રીતે વિશેષ વ્યક્તિને પ્રત્યક્ષ કરાવી શકતું નથી. એ પ્રમાણે અનુમાન પણ (જ્યાં ધૂમ છે, ત્યાં અગ્નિ છે. જેમાં પ્રાપ્તિ છે, ત્યાં ગતિ છે, અને જ્યાં ગતિનો અભાવ છે, ત્યાં પ્રાપ્તિનો અભાવ છે, એવી રીતે) સામાન્યરૂપથી જ વસ્તુનું જ્ઞાન ઉત્પન્ન કરાવે છે, કાંઈ વિશેષ પ્રત્યક્ષરૂપથી નહિ.[2]

એથી આગમ અને અનુમાન, વિશેષ વિષયક નથી, પણ સામાન્ય વિષયક જ છે.

અને ઋતંભરા પ્રજ્ઞા તો વિશેષ રૂપથી પ્રકૃતિ વગેરે અનાત્મ સૂક્ષ્મપદાર્થોને અને પુરુષગત વિશેષને પણ પ્રત્યક્ષ કરી લે છે-જાણી લે છે. એથી જ એ બંનેથી અન્ય વિષયક હોવાથી તે વિશેષ છે.

અગર જો કે ઇંદ્રિયજન્ય પ્રત્યક્ષજ્ઞાન પણ વિશેષનો વિષય કરી શકે છે, તથાપિ તે સૂક્ષ્મ, વ્યવહિત (દૂરવર્તી પદાર્થગત વિશેષ)ને ગ્રહણ કરવા અસમર્થ હોવાથી પુરુષ-પ્રકૃતિઆદિગત વિશેષને પ્રત્યક્ષ કરી શકતું નથી.

અને એમ તો કોઈ નહિ કહી શકે, કે-"લૌકિક પ્રત્યક્ષ, અનુમાન અને આગમ-પ્રમાણનો વિષય ન હોવાથી પુરુષગત વિશેષ અપ્રામાણિક છે." કેમકે યોગી લોકો પુરુષાદિગત વિશેષને સમાધિકાળમાં પ્રત્યક્ષ દેખે છે.

એ પ્રમાણે સમાધિમાં હોવાવાળી ઋતંભરા પ્રજ્ઞાથી જ પુરુષ પ્રકૃતિમાં

૧—જે વસ્તુ સાથે શબ્દના શાસ્ત્રે સંકેત કરેલા છે, તે વસ્તુને તે શબ્દ સામાન્યરૂપથી જ બોધન કરે છે, વિશેષરૂપથી નહિ. તેટલા માટે "ગો" શબ્દના શ્રવણથી મનુષ્યને ગાયનું સામાન્ય જ્ઞાન થાય છે, કાંઈ વ્યક્તિવિશેષનું નહિ, એ તત્ત્વ છે.

૨—કાંઈ ધૂમ જ્ઞાનદ્વારા અગ્નિ ત્રિકોણ વા ચતુષ્કોણ છે, એવી રીતનું વિશેષ જ્ઞાન થતું નથી, પણ સામાન્યરૂપથી જ અગ્નિનું જ્ઞાન થાય છે.

રહેલા વિશેષનો સાક્ષાત્કાર થાય છે, બીજાથી નહિ.[1] તેટલા માટે એ પ્રજ્ઞા, વિશેષ વિષયક હોવાથી શ્રુત-અનુમાન પ્રજ્ઞાથી અન્ય તથા ઉત્કૃષ્ટ છે, એ સિદ્ધ થાય છે. ॥ ૪૯ ॥

આ સમાધિપ્રજ્ઞાના લાભથી યોગીના ચિત્તમાં એ પ્રજ્ઞાથી જે નૂતન નૂતન સંસ્કારો ઉત્પન્ન થાય છે, તે બીજા સઘળા વિક્ષેપ સંસ્કારોના પ્રતિબંધક થાય છે, તે વાત સૂત્રકાર કહે છે.

सू–तज्जः संस्कारोऽन्यसंस्कारप्रतिबंधी ॥ ५० ॥

સૂત્રાર્થઃ-(**तज्ज**) તે ઋતંભરા પ્રજ્ઞાથી પેદા થનાર જે (**संस्कारः**) સંસ્કાર છે, તે (**अन्यसंस्कारप्रतिबंधी**) બીજા વિક્ષેપથી પેદા થયેલા સંસ્કારનો પ્રતિબંધક છે.

અર્થાત્-નિર્વિચાર સમાધિથી પેદા થનાર ઋતંભરા પ્રજ્ઞાથી જે સંસ્કાર ઉત્પન્ન થયેલો હોય છે, તે સઘળા બીજા વ્યુત્થાન સંસ્કારનો બાધક થાય છે.

અગર જો કે[2] અનાદિકાળથી પ્રવૃત્ત, વિષય ભોગવાસનાજનિત દૃઢ સંસ્કારો પ્રબળ હોવાથી આ આધુનિક ઋતંભરા પ્રજ્ઞાજન્ય સંસ્કારોથી તેઓનો બાધ થવો અસંભવ છે, તોપણ બુદ્ધિનો તત્ત્વવિષયક પક્ષપાત હોવાથી તે આધુનિક સંસ્કાર પણ અનાદિ વ્યુત્થાનની બાધા કરી શકે છે.[3]

૧-યદ્યપિ બુદ્ધિતત્ત્વ સત્વગુણપ્રધાન હોવાથી સઘળા પદાર્થોને પ્રત્યક્ષ કરવામાં સ્વભાવથી જ સામર્થ્યશીલ હોય છે, તથાપિ જ્યારે તમોગુણવડે આવૃત થાય છે ત્યારે સઘળા પદાર્થો ગ્રહણ કરી શકતું નથી. ફરી જ્યારે અભ્યાસ વૈરાગ્યજન્ય સમાધિથી રજતમગુણના નાશપૂર્વક બુદ્ધિમાં વૈશારદ્ય ઉદય થાય છે, ત્યારે એવો કોઈ પદાર્થ જ નથી કે, જેને બુદ્ધિતત્ત્વ ગ્રહણ ન કરી શકે; પણ સૂક્ષ્મ, દૂરસ્થ, વ્યવધાનસહિત, ભૂતભવિષ્ય સઘળા પદાર્થોને તે વિષય કરી લે છે. તેથી પ્રકૃતિ અને પુરુષાદિગત વિશેષને પ્રત્યક્ષ કરવામાં ઋતંભરા પ્રજ્ઞા સમર્થ હોવાથી આગમ-અનુમાન વગેરે જ્ઞાનથી ઉત્કૃષ્ટ છે, એ તત્ત્વ છે.

૨-જેવી રીતે ઉદ્દંડ પ્રવાહમાન વાયુના વેગમાં દીવાની શિખાનું સ્થિર હોવું દુઃસાધ્ય છે, તેમ પ્રચંડ વિષયવાસનાથી વિક્ષિપ્ત થયેલા ચિત્તમાં સ્થિરતાનો સંસ્કાર પણ હોવો દુઃસાધ્ય છે. એ આશંકાના અનુમોદનપૂર્વક ઉત્તર કહે છે, "અગર જો કે" ઇત્યાદિથી.

૩-સ્વભાવથી બુદ્ધિનો પક્ષપાત સત્ય વસ્તુની જ તરફ રહે છે, મિથ્યા

અર્થાત્ જ્યાં સૂધી આ બુદ્ધિએ એ તત્ત્વનો લાભ કર્યો નથી, ત્યાં સૂધી જ તે વિક્ષિપ્ત થઈ અહીં તહીં ભ્રમણ કરી રહી છે અને જ્યારે તત્ત્વનો લાભ થઈ જાય છે, ત્યારે પોતે જ અન્યવિષયોનો ત્યાગ કરી તત્ત્વમાં સ્થિર થઈ જાય છે, અને પ્રતિદિન પોતાના સંસ્કારદ્વારા મિથ્યા સંસ્કારોનો પરાભવ કરતી રહે છે.

એવી રીતે વ્યુત્થાન સંસ્કારોનો અભિભવ થવાથી ફરી વિક્ષેપ-જન્ય પ્રમાણ-વિપર્યય વગેરે વૃત્તિઓ પણ ઉત્પન્ન થતી નથી અને એ વૃત્તિઓના ઉત્પન્ન ન થવાથી વૃત્તિનિરોધ લાભદ્વારા નિર્વિચાર સમાધિ પણ આવી ઉભી રહે છે. ત્યાર પછી નિર્વિચાર સમાધિથી ઋતંભરા-પ્રજ્ઞાનો લાભ થાય છે. પછી તે પ્રજ્ઞાવડે નિરોધસંસ્કાર થાય છે અને પછી તેના સંસ્કારથી ઋતંભરા પ્રજ્ઞાનો પ્રકર્ષ થાય છે, અને એ પ્રજ્ઞાથી ફરી સંસ્કારનો પ્રકર્ષ થાય છે. એવી રીતે પ્રતિદિન નવા નવા જ સંસ્કાર ઉદય થયા કરે છે.

आशंका-જ્યારે[1] સમાધિપ્રજ્ઞાજન્ય સંસ્કાર વિદ્યમાન જ રહે છે, તો સંસ્કાર, ચિત્તને અધિકારવિશિષ્ટ કેમ કરતા નથી? કેમકે જે ચિત્ત, વાસનાજનિત સંસ્કારયુક્ત હોય છે, તે ચિત્ત, જન્માદિ દુઃખ દેવામાં યોગ્યતાવાળું હોવાથી અધિકારવિશિષ્ટ કહેવાય છે.

समाधान-યદ્યપિ સંસ્કાર વિદ્યમાન રહે છે, તથાપિ તે સંસ્કાર, ક્લેશક્ષયના હેતુ હોવાથી ચિત્તને અધિકારવિશિષ્ટ કરી શકતા નથી, પણ ચિત્તને અધિકારરહિત કરે છે. કેમકે જે સંસ્કાર, ક્લેશાદિ વાસના-જન્ય હોય છે, તે જ સંસ્કાર ચિત્તને અધિકારવિશિષ્ટ કરે છે, કાંઈ ઋતંભરા પ્રજ્ઞાજન્ય સંસ્કારો નહિ.

ભાવ એ છે કે-ચિત્તનો બે કાર્યમાં અધિકાર છે. એક શબ્દાદિનો પુરુષોને ભોગ આપવો, અને એક વિવેકખ્યાતિ ઉત્પન્ન કરવી. તેમાં ભોગના હેતુ ક્લેશાદિ વાસનાજનિત-સંસ્કારવિશિષ્ટ ચિત્ત, ભોગાદિ

તરફ રહેતો નથી. જો કે મનુષ્યના ચિત્તમાં અનેક પ્રકારના સાંસારિક વિષય વિદ્યમાન છે, તોપણ તે મિથ્યા હોવાથી તેઓના તરફ બુદ્ધિ ઉન્મુખ થતી નથી, પણ યથાર્થ તત્ત્વગ્રાહિણી થઈ તત્ત્વનો પક્ષપાત કરી, તે મિથ્યા સંસ્કારોનો પરાભવ કરી દે છે.

૧-"कथमसौ संस्कारातिशयश्चित्तं साऽधिकारं न करिष्यति" એ શંકાનું બોધન કરનાર ભાષ્યને અનુસારે આશંકાનું ઉત્થાપન કરે છે. "જ્યારે" ઇત્યાદિથી.

અધિકારવાળું કહેવાય છે, અને સમાધિજન્ય સંસ્કારથી ક્લેશસંસ્કાર રહિત થયેલું ચિત્ત, વિવેકખ્યાતિ અધિકારવાળું કહેવાય છે. એ બંનેમાંથી પ્રથમ જ અધિકાર ભોગનો હેતુ હોવાથી દુષ્ટ છે, બીજો નહિ.[1]

વિવેકખ્યાતિના ઉદયથી ભોગાધિકારની સમાપ્તિ થઈ જાય છે. કેમકે વિવેકખ્યાતિના ઉત્પાદન સૂધી જ ચિત્તની ચેષ્ટા છે, તેની પછી નથી.[2] ॥ ૫૦ ॥

એવી રીતે ઋતંભરાપ્રજ્ઞારૂપ ફલસહિત સંપ્રજ્ઞાત સમાધિનું નિરૂપણ કરી, હવે "એ યોગીને પ્રજ્ઞાજન્ય સંસ્કારોના નિરોધને અર્થે બીજું કાંઈ કર્ત્તવ્ય અપેક્ષિત છે કે નહિ?" એ આશંકાનું નિવારણ કરતાં જે અસંપ્રજ્ઞાત સમાધિથી એ પ્રજ્ઞાકૃત સંસ્કારોના નિરોધદ્વારા ચિત્ત એકવાર નિરધિકાર થઈ જાય છે, એ અસંપ્રજ્ઞાતનું લક્ષણ કહે છે.

सू—तस्याऽपि निरोधे सर्वनिरोधान्निर्बीजः समाधिः ॥ ५१ ॥

સૂત્રાર્થઃ-(**तस्याऽपि निरोधे**) પરવૈરાગ્યદ્વારા તે પ્રજ્ઞાજન્ય સંસ્કારોનો પણ નિરોધ થવાથી અને (**सर्वनिरोधात्**) સઘળા પુરાતન નૂતન સંસ્કારોનો નિરોધ થવાથી (**निर्बीजः समाधिः**) નિર્બીજ સમાધિ થાય છે.

અર્થાત્-પૂર્વોક્ત ગુણવૈતૃષ્ણ્યરૂપ પરવૈરાગ્યજન્ય જે સઘળો વૃત્તિપ્રવાહ અને સંસ્કારપ્રવાહનો નિરોધ થાય છે, તેનું નામ નિર્બીજ સમાધિ છે.[3] તેને જ નિર્વિકલ્પ વા અસંપ્રજ્ઞાત સમાધિ કહે છે.

તે આ નિરોધ કેવળ સમાધિજન્ય ઋતંભરાપ્રજ્ઞાનો જ વિરોધી નથી, પરંતુ પ્રજ્ઞાજન્ય સંસ્કારનો પણ તે વિરોધી છે. એના બોધ અર્થે જ સૂત્રમાં "**तस्याऽपि**"માં **अपि** શબ્દ યોજેલો છે.

અર્થાત્-એ નિરોધથી જે સંસ્કાર ઉત્પન્ન થાય છે, તે સંપ્રજ્ઞાત સમાધિજન્ય સઘળા સંસ્કારનો બાધ કરીને જ ઉદય પામે છે, અન્યથા નહિ.

૧–ત્યાં સૂધી જ ચિત્ત, ભોગને સારુ ચેષ્ટા કરે છે, કે જ્યાં સૂધી તે વિવેકખ્યાતિની ઉત્પત્તિ કરતું નથી. અને જ્યારે વિવેકખ્યાતિ ઉદય થાય છે ત્યારે ક્લેશ નિવૃત્ત થવાથી પોતાના ભોગાધિકાર સમાપ્ત થઈ જાય છે. એ પ્રમાણે ભોગાધિકારની શાંતિ જ પ્રજ્ઞાકૃત સંસ્કારોનું પ્રયોજન છે.

૨–"ख्यातिपर्यवसानं हि चित्तचेष्टितं" એ ભાષ્યનો એ અનુવાદ છે.

૩–જેમ સંપ્રજ્ઞાત સમાધિમાં ધ્યેયાકારવૃત્તિના વિષયભૂત પ્રકૃતિઆદિ આલંબનરૂપ બીજ વિદ્યમાન રહે છે, તેમ આ સમાધિમાં ધ્યેયરૂપ બીજ રહેતું નથી, તેથી તે નિર્બીજ છે.

યદ્યપિ એ સઘળી વૃત્તિના નિરોધમાં તથા પરવૈરાગ્યજન્ય સંસ્કારમાં પ્રત્યક્ષ પ્રમાણની યોગ્યતા નથી. કેમકે સઘળી વૃત્તિના નિરોધનું યોગીને પ્રત્યક્ષ થવું અસંભવિત છે, અને સ્મૃતિરૂપ કાર્યથી પણ નિરોધ સંસ્કાર સત્તાનું અનુમાન થઈ શકતું નથી. કેમકે વૃત્તિમાત્રનો નિરોધ થવાથી એ સંસ્કારોની સ્મૃતિ ઉત્પન્ન કરવામાં શક્તિ નથી, તથાપિ ચિત્તની નિરુદ્ધાવસ્થાનો જે મુહૂર્ત, અર્ધપ્રહર, પ્રહર, દિન, રાત્રિરૂપાદિ કાલક્રમ છે, તેથી નિરોધ સંસ્કારનું અનુમાન જાણવું.[1]

અર્થાત્–જેમ જેમ પરવૈરાગ્યના અભ્યાસથી વ્યુત્થાન તથા સમાધિના સંસ્કારોની ન્યૂનતા થાય, તેમ તેમ નિરોધ સંસ્કારની સત્તાનું અનુમાન કરી લેવું. કેમકે નિરોધસંસ્કારની સત્તા વિના સમાધિ પ્રજ્ઞાજન્ય સંસ્કારોની ન્યૂનતા થવી અસંભવિત છે.

એ નિરોધાવસ્થામાં ક્લેશજનક વ્યુત્થાન સંસ્કાર તથા કૈવલ્યોપયોગી સંપ્રજ્ઞાત સમાધિજન્ય સંસ્કારોની સાથે જ ચિત્ત, પોતાની પ્રકૃતિમાં પ્રવિલય થઈને અવસ્થિત થઈ જાય છે.

યદ્યપિ નિરોધ સંસ્કારોના સદ્ભાવથી એ ચિત્ત, યત્કિંચિત્ અધિકારવિશિષ્ટ જ પ્રતીત થાય છે, તથાપિ તે સંસ્કારો અધિકારના વિરોધી જ છે, કાંઈ ભોગના હેતુ નથી. કેમકે એ દશામાં શબ્દાદિ ઉપભોગ વા વિવેકખ્યાતિ, બંને જ અધિકાર નિવૃત્ત થઈ જાય છે.

તેટલા માટે એ ચિત્ત, નિરોધાવસ્થામાં સમાપ્ત અધિકારવાળું થઈ, સંસ્કારો સાથે નિવૃત્ત થઈ જાય છે. એ સમાપ્ત અધિકારવાળું ચિત્ત નિવૃત્ત થવાથી પુરુષ નિજ શુદ્ધરૂપમાં પ્રતિષ્ઠિત થયેલો શુદ્ધ તથા મુક્ત કહેવાય છે. આ અસંપ્રજ્ઞાત યોગના લાભથી જ યોગી જીવન્મુક્તિ પદમાં અભિષિક્ત થઈ જાય છે (અર્થાત્ જીવન્મુક્ત દશાને પામે છે). એ અસંપ્રજ્ઞાત યોગ જ સઘળા કર્તવ્યોની સીમા છે.[2] ॥ ૫૧ ॥

૧–યોગીને જે ચિત્તવૃત્તિઓનો નિરોધ થશે, તે એક કાળમાં નહિ થાય, કિંતુ પ્રથમ બે ઘડી પછી અર્ધપ્રહર ઇત્યાદિ ક્રમથી થશે. તેથી નિરોધ વૃદ્ધિનો સદ્ભાવ જાણવો.

૨–આ સ્થળે ભાષ્યકારે "इति पातंजले सांख्यप्रवचने योगशास्त्रे समाधिपादः प्रथमः" એ વાક્યથી આ શાસ્ત્રને સાંખ્ય પ્રવચન કહેલું છે. તેનો અર્થ એ છે કે–આ યોગશાસ્ત્ર, સાંખ્યશાસ્ત્રનું જ પ્રકૃષ્ટથી વચન=પ્રતિપાદન કરે છે. અર્થાત્ આ શાસ્ત્રમાં સઘળી પ્રક્રિયા સાંખ્ય શાસ્ત્રની જ છે. કેવળ ઈશ્વરનો સ્વીકાર અને યોગનું પ્રતિપાદન આમાં પ્રકૃષ્ટ (અધિક) છે, તેથી જ તેનું નામ સેશ્વર સાંખ્ય છે.

દોહરો

ઉપક્રમ[1] લક્ષણ યોગ વર્ણી, લક્ષણ વૃત્તિ વખાણ;
યોગ ઉપાય વિભેદ કહીં, કર્યો પાદ અવસાન. ॥ ૧ ॥

इति श्रीमद्उदासीनप्रवरस्वामि बालराम परमहंस समुद्भासिते पातंजलदर्शनप्रकाशे समाधिपादः[2] प्रथमः ॥ १ ॥

૧–હવે આ પાદોક્ત અર્થના સંગ્રહકથન ઉપર દોહાનો ઉપન્યાસ કરી પાદની સમાપ્તિ કરે છે, "उपक्रम" ઇત્યાદિથી. ઉપક્રમ નામ આરંભનું છે. તેમાં પહેલા સૂત્રથી યોગારંભની પ્રતિજ્ઞા કરી બીજા સૂત્રથી યોગનું લક્ષણ, કહ્યું. ત્રીજા અને ચોથા સૂત્રથી યોગ અને વ્યુત્થાનનો પરસ્પર ભેદ નિરૂપણ કરી પાંચમાથી ૧૧ મા સુધી ચિત્તવૃત્તિઓનું નિરૂપણ કર્યું. પછી ૧૨ મા સૂત્રથી વૃત્તિ નિરોધનો ઉપાય કહ્યો. તે પછી અભ્યાસ–વૈરાગ્યના લક્ષણ કથન-પૂર્વક ૪૦મા સૂત્ર સુધી સ્થિતિનો ઉપાય કહ્યો. ત્યારપછી સમાપ્તિ પર્યંત અવાંતર ભેદ સાથે સંપ્રજ્ઞાત અને અસંપ્રજ્ઞાત સમાધિના ભેદ નિરૂપણ કર્યા.

૨–આ પદમાં સાંગોપાંગ સમાધિનું નિરૂપણ પ્રધાન હોવાથી તેનું નામ સમાધિપાદ છે.

इति श्रीयतिवर उदासीन आत्मस्वरूपहंस* समुद्दीपितं पातंजलदर्शनप्रकाश टिप्पणम् ॥

*–હંસ નામ વેદમાં શિખારહિત યજ્ઞોપવીત ધારી ઉદાસીનનું નામ છે, એ ભૂમિકાના પ્રથમ પૃષ્ઠના ટિપ્પણમાં સ્પષ્ટ છે.

॥ पातंजलदर्शनप्रकाश ॥

साधनपादः ॥ २ ॥

ॐ नमोऽन्तर्यामिणे ।

દોહરો

તરવા જન જિજ્ઞાસુને, સાધન પાદ અનૂપ;
કરે પ્રકાશ મહેશ નમિ, બાલરામ યતિ ભૂપ. ॥ ૧ ॥

પૂર્વપાદમાં[૧] સમાહિતચિત્તવાળા યોગીપ્રતિ યોગનો ઉપદેશ કર્યો. હવે વ્યુત્થિતચિત્તવાળા પુરુષ પણ કેવી રીતે સમાહિતચિત્તવાળા બની યોગયુક્ત થઈ શકે, તેને માટે આ દ્વિતીય સાધનપાદનો આરંભ થાય છે.[૨]

સોરઠા

ઉદાસીન કવિ-ભૂપ, શિક્ષા વિદ્યાપ્રદ ગુરુ।
વન્દે આત્મસ્વરૂપ, સાધનપાદ વિવરણ હિત ॥ ૧ ॥

૧-"જ્યારે અવાંતર ભેદ સાથે અને ફળસહિત યોગનું નિરૂપણ થઈ ચૂકયું, તો પછી શું બાકી રહ્યું, કે જેને માટે ઉત્તરપાદનો આરંભ થાય છે?" એ આશંકાનું નિવારણ કરતાં ઉત્તરપાદની સાથે પૂર્વપાદની સંગતિ નિરૂપણ સહિત પૂર્વવૃત્તના અનુવાદપૂર્વક ઉત્તરપાદના આરંભનો હેતુ કહેતાં સાધન-પાદના પ્રકાશનો સ્વામીજી આરંભ કરે છે. "પૂર્વપાદમાં" ઇત્યાદિથી.

૨-ભાવ એ છે કે-પૂર્વના સમાધિપાદમાં મૂઢ તથા ક્ષિપ્ત ચિત્તવાળા પુરુષોને માટે યોગના અભાવકથન પૂર્વક, સમાહિત ચિત્તવાળા યોગારૂઢ ઉત્તમ અધિકારી પ્રતિ અભ્યાસ વૈરાગ્યથી સાધ્ય અસંપ્રજ્ઞાતયોગ અને એકાગ્ર ચિત્તવાળા મધ્યમાધિકારી સારુ સંપ્રજ્ઞાત યોગ કહ્યો. પણ વિક્ષિપ્તચિત્તવાળા મંદાધિકારી સારુ કોઈપણ ઉપાય નિરૂપણ ન કર્યો: કેમકે તે પુરુષોનું ચિત્ત, સાંસારિક વાસના તથા રાગદ્વેષથી કલુષિત હોવાથી તેવા પુરુષોને જલદી અભ્યાસ-વૈરાગ્યાદિ પ્રાપ્ત થવો અસંભવિત છે. હવે એ વિક્ષિપ્ત ચિત્તવાળા પુરુષો પણ જે સાધનોના અનુષ્ઠાનથી શુદ્ધાંતઃકરણવાળા થઈ, અભ્યાસ-વૈરાગ્યની યોગ્યતા સંપાદન કરી એકાગ્રચિત્ત થઈ જાય, તે સાધનોના પ્રતિપાદનસારુ કૃપાળુ આચાર્ય દ્વિતીય સાધનપાદનો આરંભ કરે છે.

હવે કહેવાના યમ નિયમ વગેરે યોગસાધનોમાંથી પૃથક્ કરી પહેલાં સહેલા અને અત્યંત ઉપકારક ક્રિયાયોગનું નિરૂપણ કરે છે-

सू.-तपःस्वाध्यायेश्वरप्रणिधानानि क्रियायोगः ॥ १ ॥

સૂત્રાર્થઃ-તપ, સ્વાધ્યાય, ઈશ્વરપ્રણિધાન, એ ત્રણ (क्रियायोग:) ક્રિયા-યોગ કહેવાય છે.

અર્થાત્-તપ વગેરે ત્રણે, ક્રિયા (કર્મ) યોગનાં સાધન હોવાથી ક્રિયા યોગપદનાં વાચ્ય છે.

તપસ્વી વિના યોગ સિદ્ધ થઈ શકતો નથી, તેટલા માટે પહેલાં તપનું ગ્રહણ કર્યું છે.

ભાવ એવો છે કે-અનાદિ કર્મ-ક્લેશ વાસનાથી ચિત્રિત થયેલો જે વિષયોમાં પ્રવૃત્તિ કરાવવાવાળો અશુદ્ધિસંજ્ઞક રજતમનો પ્રચાર, તે તપના અનુષ્ઠાન વિના સંભેદ (વિરલપ્રચાર વા નાશ) ને પામવો અસંભવ છે, તેથી સૌથી પહેલાં તપરૂપ સાધનનો ઉપદેશ કર્યો છે.

તપ=હિત-મિત મેધ્ય ભોજનપૂર્વક,[1] દ્વંદ્વસંજ્ઞક શીત ઉષ્ણાદિ સહ-નશીલતા સહિત ઇંદ્રિયોનો જે નિરોધ, તે તપ શબ્દનો અર્થ છે. જે તપ[2] ચિત્તની પ્રસન્નતાનો હેતુ હોય તથા શરીર ઇંદ્રિયાદિને બાધાકારક (પીડા કરનાર) ન હોય, તે જ તપ યોગની ઇચ્છાવાળા મંદ અધિકારીને સેવવા લાયક છે, બીજું નહિ. એ જ સૂત્રકાર વગેરે મહર્ષિઓનું અભિમત છે.

૧-અહીં हितभोजनथी યોગવિરોધી અતિઅમ્લ, અતિલવણ, અતિ-ઉષ્ણ, અતિરુક્ષ, તલ, સરસવ, દહીં, માંસ વગેરેનો ત્યાગ, અને ઘઉં, ચોખા, ગાયનું દૂધ, ખાંડ, ઘી, મધ, મગ વગેરેનું સેવન જાણવું. એવી રીતે જ દત્તાત્રયજીએ કહેલું છે કે-"लवणं सर्षपं चाम्लमुग्रं तीक्ष्णं च रुक्षकम्, अतीव भोजनं त्याज्यमतिनिद्राति भाषणम्" इति । સ્કંદપુરાણમાં તો "त्यजेत् कट्वम्ललवणं क्षीरभोजी सदा भवेत्" એ વાક્યથી કટુ આદિના ત્યાગપૂર્વક દૂધપાન જ યોગીને પથ્ય કહ્યું છે. ઉદરના બે ભાગ અન્નથી, એક ભાગ જળથી અને ચોથો ભાગ વાયુના સંચારણ માટે ખાલી રાખી ભરવા, તેનું નામ मितभोजन છે. મદ્ય, મત્સ્ય, માંસ, લસણ વગેરેના ત્યાગપૂર્વક પરવલ, સૂરણ, બાથુ (ડાંભાની ભાજી) વગેરેના શાકનું સેવન કરવાને मेध्यभोजन કહે છે.

૨-"तच्च चित्तप्रसादनमबाधमानमनेनाऽऽसेव्यमिति मन्यते" એ ભાષ્યનો અનુવાદ કરતાં પ્રકૃત વિષયને ઉપયુક્ત તપનું લક્ષણ કહે છે. "જે તપ" ઇત્યાદિથી.

અર્થાત્-આ સ્થળે તપ શબ્દથી સ્મૃતિકારોક્ત[1] શરીરપીડાકર તપનું ગ્રહણ ન કરવું. કેમકે ઉપવાસાદિના અભ્યાસથી મરણનો ભય, અને ચાંદ્રાયણાદિકના અભ્યાસથી ધાતુવૈષમ્ય થવું, તે સઘળાં યોગનાં વિરોધી છે. માટે હિત, મિત, મેધ્ય ભોજનદ્વારા ઇંદ્રિયોનો નિરોધ કરવો, એ જ અહીં તપ શબ્દનો અર્થ છે.

એથી જ "तपसाऽनाशकेन" એ શ્રુતિમાં "જે દેહનું નાશક નહિ હોય, એવા તપથી આત્મજ્ઞાનની યોગ્યતા થાય છે." એવી રીતે પીડાકર તપનો નિષેધ કર્યો છે. એથી યુક્ત આહાર વિહારને[2] અહીં તપ જાણવું.

સ્વાધ્યાય=ઓંકાર, રુદ્રસૂક્ત, પુરુષસૂક્ત, મંડલ, બ્રાહ્મણ વગેરે વૈદિક મંત્ર તથા બ્રહ્મપાર વગેરે પૌરાણિક પવિત્રમંત્રોનો જપ અને મોક્ષશાસ્ત્ર (ઉપનિષદાદિ)નું અધ્યયન, તેનું નામ સ્વાધ્યાય છે.

ईश्वरप्रणिधान-સઘળાં કર્મોને પરમ ગુરુ ભગવાનને અર્પણ કરવાં તે. જેમકે મુનિઓએ કહેલું છે-"**कामतोऽकामतो वाऽपि यत्करोमि शुभाऽशुभं तत्सर्वं त्वयि संन्यस्तं त्वत्प्रयुक्तः करोम्यहम्**" અર્થાત્-ફલેચ્છાથી વા નિષ્કામતાથી જે શુભાશુભ કર્મનું હું અનુષ્ઠાન કરું છું, તે સઘળાં, હે ઈશ્વર! હું આપને સમર્પણ કરું છું. કેમકે આપ જ અંતર્યામી હોઇને જે પ્રેરણા કરો છો, તે પ્રમાણે હું કરું છું, અન્યથા નહિ.[3]

અથવા ફલેચ્છા પરિત્યાગપૂર્વક કર્મનું અનુષ્ઠાન કરવું, તે જ અહીં ઈશ્વરપ્રણિધાન સમજવું. જેમકે ગીતામાં કહેલું છે કે-"**कर्मण्येवाऽधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन, मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा ते संगोस्त्वकर्मणि**" હે અર્જુન! કર્મોના અનુષ્ઠાનમાં જ તને અધિકાર છે, પણ કર્મોના ફળમાં તને કદાપિ અધિ-

---

૧-"उपवासपराकादिकृच्छ्रचान्द्रायणादिभिः शरीरशोषणं प्राहुस्तपसा तप उत्तमम्"- એ સ્મૃતિમાં કહેલાં ઉપવાસ વગેરે.

૨-યુક્ત આહાર, આગળ કહી ચૂકયા છીએ, અને યુક્ત વિહાર એ છે કે-રાત્રિના પ્રથમ અને અંતિમ પ્રહરમાં જાગવું તથા મધ્યના બે પ્રહરમાં સુવું, ઇત્યાદિ.

૩-ભગવાને પણ ગીતામાં "**यत्करोषि यदश्नासि यज्जुहोसि ददासि यत्। यत्तपस्यसि कौन्तेय तत्कुरुष्व मदर्पणम्**" એ વાકયથી "હે કૌન્તેય! જે તું કરે છે, જે તું ખાય છે, જે તું યજ્ઞ કરે છે, વા જે તું દાન દે છે, અને જે તું તપ કરે છે, તે સઘળું મને જ અર્પણ કર." એવી રીતના અર્પણને જ ઈશ્વર-પ્રણિધાન કહેલું છે.

કાર નથી. એથી ફળને માટે કર્મનું અનુષ્ઠાન ન કર, પણ "નિરર્થક કર્મ કરવાથી શું ફળ થશે?" એવા કુતર્કથી કર્મના અનુષ્ઠાનમાં આસક્તિનો અભાવ પણ ન કર. કિંતુ નિરંતર કર્મ કરતો જ રહે." એવો શ્રીકૃષ્ણવાક્યનો અર્થ છે. અર્થાત્–ઈશ્વરની પ્રસન્નતાને અર્થે સેવકની પેઠે નિષ્કામ કર્માનુષ્ઠાનનું નામ ઈશ્વરપ્રણિધાન છે.

એ સઘળી ક્રિયા યોગનાં સાધન છે, તેથી તેને ક્રિયાયોગ કહે છે.

વિષ્ણુપુરાણાંતર્ગત ખાંડિક્યકેશિધ્વજ સંવાદમાં પણ પહેલાં એ ક્રિયાયોગનો જ ઉપદેશ આપ્યો છે. વળી ભગવાને ગીતામાં પણ "**आरुरुक्षोर्मुनेर्योगं कर्म कारणमुच्यते**" એ વાક્યથી આરુરુક્ષુ[1] યોગીને સારુ પ્રથમ ક્રિયાયોગ જ કરવાનું કહેલું છે. ॥ १ ॥

હવે "એ ક્રિયાયોગથી શું ફળ મળે છે?" તે આકાંક્ષાના નિવારણાર્થે ક્રિયાયોગનું ફળ કહે છે.

स हि क्रियायोगः[2]

सू–समाधिभावनार्थः क्लेशतनूकरणार्थश्च ॥ २ ॥

સૂત્રાર્થ:=(**स हि क्रियायोगः**) તે પૂર્વોક્ત ક્રિયાયોગ, (**समाधिभावनार्थः**) સમાધિની ભાવના=સિદ્ધિરૂપ પ્રયોજનવાળો છે. (**च**) અને (**क्लेशतनूकरणार्थः**) ક્લેશોને સૂક્ષ્મ કરી દેવારૂપ પ્રયોજનવાળો છે.

અથવા "**अनुष्ठेयः**" એ પદનો અધ્યાહાર કરી, એવો અર્થ કરવો કે, તે ક્રિયાયોગ સમાધિની સિદ્ધિ સારુ તથા ક્લેશોની સૂક્ષ્મતા કરવા સારુ કરવો ઉચિત છે.

અર્થાત્–એ ક્રિયાયોગ આસેવ્યમાન (સારી રીતે સેવન કરતાં) સમાધિની ભાવના (ઉત્પત્તિ વા સિદ્ધિ) કરી દે છે, અને ક્લેશોને સૂક્ષ્મ કરી દે છે.

એ[3] ક્રિયા યોગદ્વારા સૂક્ષ્મ કરેલા ક્લેશોને જ ફરી યોગી, પ્રસં-

---

૧–યોગેચ્છુનું નામ આરુરુક્ષુ છે.

૨–એટલા પાઠનો ભાષ્યકારે સૂત્રના આરંભે અધ્યાહાર કરેલો છે.

૩ જો ક્રિયાયોગના અનુષ્ઠાનથી જ ક્લેશ સૂક્ષ્મ થઈ શકે છે, તો પછી પ્રસંખ્યાનસંજ્ઞક વિવેકખ્યાતિ શા માટે છે? એ આશંકાનું વારણ કરતાં "**प्रतनूकृतान् क्लेशान् प्रसंख्यानाऽग्निना दग्धबीजकल्पानप्रसवधर्मिणः करिष्यति**" એ ભાષ્યનો અનુવાદ કરે છે, "એ ક્રિયાયોગ" ઇત્યાદિથી.

ખ્યાન (વિવેકજ્ઞાન)રૂપ અગ્નિથી દગ્ધબીજ તુલ્ય સંપાદન કરી, અપ્રસવધર્મી[1] કરી દે છે.

ભાવ એ છે કે-જેમ અંગારમાં પડેલું બીજ, અંકુરોત્પાદન કરવામાં અસમર્થ છે, તેમ બલિષ્ઠ વિરોધી કલેશોથી સંવલિત અંતઃકરણમાં પ્રધાન પુરુષનો વિવેક થવો દુર્ઘટ છે, તેથી પ્રથમ ક્રિયાયોગના અનુષ્ઠાનદ્વારા કલેશોને સૂક્ષ્મ કરવા; પછી સૂક્ષ્મ થયેલા કલેશોને પ્રસંખ્યાન અગ્નિથી દગ્ધતુલ્ય કરી દેવા, કે જેથી તે કલેશ પોતાના સંસ્કારરૂપ અંકુરને ઉત્પન્ન ન કરી શકે.

કલેશોને સૂક્ષ્મ કર્યા પછી કલેશોવડે પરાભવ ન પામેલો એવો સત્ત્વપુરુષાન્યતાખ્યાતિ સંજ્ઞક વિવેક સહજ ઉદય પામી જાય છે. ત્યાર પછી ઋતંભરાપ્રજ્ઞા પણ યોગીને અનાયાસે જ પ્રાપ્ત થાય છે.

પરંતુ એ વિવેકખ્યાતિ પણ ત્યાં સૂધી વિદ્યમાન રહે છે, કે જ્યાં સૂધી નિરોધસંજ્ઞાવાળી અસંપ્રજ્ઞાત સમાધિનો લાભ થયો નથી હોતો. કેમકે નિરોધ કાળમાં એ પ્રજ્ઞા પણ સમાપ્ત અધિકાર હોવાથી[2] પ્રતિપ્રસવ (વિલયભાવ)ને માટે સમર્થ થઈ જાય છે.[3] અર્થાત્-એ પ્રજ્ઞા પણ નિરોધ સમયે લય થઈ જાય છે ॥ ૨ ॥

"જે કલેશોને ક્રિયાયોગ સૂક્ષ્મ કરે છે, તે કલેશો કયા અને કેટલા છે?" એ આશંકાના શમનઅર્થે સંખ્યા સહિત કલેશોનું સ્વરૂપ કહે છે.

सू-अविद्याऽस्मितारागद्वेषाभिनिवेशाः पञ्चक्लेशाः ॥ ३ ॥

સૂત્રાર્થઃ-અવિદ્યા, અસ્મિતા, રાગ, દ્વેષ, અભિનિવેશ, એ પાંચ કલેશો છે.

૧-જે પોતાના અંકુરને ઉત્પાદન કરવામાં સમર્થ ન હોય, તે વંધ્ય અથવા અપ્રસવધર્મી કહેવાય છે. અર્થાત્ કલેશોને સૂક્ષ્મ કરી દેવા, એ ક્રિયાયોગનું કર્ત્તવ્ય છે, કાંઈ કલેશોને દગ્ધ (વંધ્ય) કરી દેવા તેનું કર્ત્તવ્ય નથી, અને પ્રસંખ્યાન તો વંધ્ય કરી દેવા પણ સમર્થ છે. પણ સૂક્ષ્મ થયા વિના કલેશોનું વંધ્ય હોવું અસંભવ છે, તેથી ક્રિયાયોગ અને પ્રસંખ્યાન એ બંને ઉપાદેય (ગ્રાહ્ય) છે.

૨-સમાપ્ત અધિકાર-નાશ કરેલું છે સત્ત્વ વગેરે ગુણોનું અને કલેશોનું કાર્યજનન સામર્થ્ય જેણે, તે સમાપ્ત અધિકારવાળી કહેવાય છે.

૩-અર્થાત્-સત્ત્વ પુરુષાન્યતાખ્યાતિ પણ ગુણોનું કાર્ય હોવાથી હેય જ છે. તેથી વિવેકખ્યાતિની પ્રાપ્તિમાત્રથી જ પોતાને કૃતકૃત્ય ન સમજે, પણ નિરોધ સમાધિદ્વારા તેનો પણ લય કરવો. તે સઘળું તૃતીયપાદમાં ૧૮ મા સૂત્રના વ્યાખ્યાનમાં સ્પષ્ટ થશે.

અર્થાત્-અવિદ્યાદિ પાંચ, ક્લેશના હેતુ હોવાથી ક્લેશ કહેવાય છે અને એ જ પાંચ, વિપર્યય પણ કહેવાય છે.[1]

અગર જો કે મિથ્યાજ્ઞાન, વિપર્યયજ્ઞાન, અવિદ્યા એ ત્રણે એકાર્થ હોવાથી અવિદ્યાસંજ્ઞક ક્લેશ પણ વિપર્યયસ્વરૂપ છે, તથાપિ અસ્મિતાદિ ચારે ક્લેશો પણ [અવિદ્યાસદ્ભાવ તથા અધીનસદ્ભાવ (અવિદ્યાની સત્તાથી જેની સત્તા છે તે) અને અવિદ્યાસમુચ્છેદ તથા અધીનસમુચ્છેદ (અવિદ્યાના નાશથી જેનો નાશ છે તે) અવિદ્યામૂલક હોવાથી] વિપર્યય જ છે.

તે[2] ક્લેશ જ સ્યંદમાન (ઉદારાવસ્થાવાળા) હોઈને સત્ત્વાદિ ગુણોના કાર્યોત્પાદનરૂપ અધિકારને દૃઢ કરે છે, અને ફરી એ ક્લેશ જ કાર્ય-કારણ પ્રવાહને ઉત્પન્ન કરે છે, તથા એ ક્લેશ જ પરસ્પર અનુગ્રહને અધીન થઈ[3] કર્મોનાં ફલ નિષ્પાદન કરે છે.[4]

ભાવ એ છે કે-જે હેતુથી એ ક્લેશ જ ઉદાર અવસ્થાને પ્રાપ્ત થઈ સત્ત્વાદિગુણોને કાર્યોત્પાદનમાં ઔન્મુખ્ય કરી, ગુણ વૈષમ્યરૂપ પરિણામ-દ્વારા પ્રધાન મહત્તત્ત્વ આદિ પરંપરાથી કાર્યકારણરૂપ પરંપરાને ઉત્પાદન કરી, કર્મફલ જન્મ વગેરેના હેતુ થાય છે. એ હેતુથી અનર્થ પરંપરાના હેતુભૂત એ ક્લેશ અવશ્ય જ હેય છે. ॥ ૩ ॥

અવિદ્યામૂલક હોવાથી એ ક્લેશ અવશ્ય જ હેય છે, એ આશયથી ક્લેશોને અવિદ્યામૂલક કહે છે.-

सू-अविद्या क्षेत्रमुत्तरेषां प्रसुप्ततनुविच्छिन्नोदाराणाम् ॥ ४ ॥

સૂત્રાર્થ:-અવિદ્યા છે તે પાછલા ચાર ક્લેશોનું મૂળ કારણ છે, અને એ ક્લેશો સુતેલા, સૂક્ષ્મ, કાપી નાંખેલા, અને વિપુલ એવા ચાર ભેદોથી વિભક્ત છે.

૧-આ સ્થળે ભાષ્યકારે "क्लेशा इति पंच विपर्यया:" એ ભાષ્યથી ક્લેશોને વિપર્યય કહેલા છે, તેથી વિપર્યય પણ તેનું નામ જાણવું.

૨-સંસારનું કારણ હોવાથી ક્લેશ હેય છે, એ આશયથી "ते स्यन्दमाना: गुणाधिकारं द्रढयन्ति" ઇત્યાદિ ભાષ્યનો અનુવાદ કરતાં ક્લેશોને સંસારનું કારણ કહે છે. "તે ક્લેશ જ" ઇત્યાદિથી.

૩-અવિદ્યાથી રાગ, રાગથી કર્મ, કર્મથી જન્મ, જન્મથી ક્લેશ, ક્લેશથી ફરી કર્મ, કર્મથી ફરી જન્મ, જન્મથી ફરી રાગ, ઇત્યાદિ પ્રકારથી પરસ્પર અનુગ્રહઅધીન જ ક્લેશાદિ, સંસારના હેતુ છે. એ તત્ત્વ છે.

૪-પ્રથમ ગુણનો અધિકાર, પછી ગુણવૈષમ્ય, પછી સૃષ્ટિ, એવો જ સૃષ્ટિનો ક્રમ છે.

(**प्रसुप्ततनुविच्छिन्नोदाराणाम्**) પ્રસુપ્ત, તનુ, વિચ્છિન્ન અને ઉદારસંજ્ઞક ચાર ભેદોથી વિભક્ત (**उत्तरेषाम्**) પૂર્વ સૂત્રોક્ત અવિદ્યાથી પરવર્તી અસ્મિતા વગેરે ચારે કલેશોની (**अविद्या**) પ્રથમ કહેલી અવિદ્યા જ (**क्षेत्रम्**) મૂલ કારણ છે.

અર્થાત્-પ્રસુપ્ત વગેરે ભેદથી ચાર પ્રકારના જે અસ્મિતાદિ ચાર કલેશ છે, એ સઘળાનું અવિદ્યા જ મૂળ કારણ છે.

પ્રસુપ્ત=જે રાગ વગેરે કલેશ, વિદેહ પ્રકૃતિલયોના[1] ચિત્તમાં વિદ્યમાન છતાં બાહ્ય પ્રકાશમાન નથી થતા, અને પોતાનું કાર્ય કરવામાં સમર્થ હોતા નથી, પણ દૂધમાં દહીંની પેઠે બીજભાવથી અવસ્થિત રહેલા, સ્વકાર્યજનનની શક્તિવાળા છે, તે પ્રસુપ્ત (સુતેલાં) કહેવાય છે.

અર્થાત્-પૂર્વ પાદોક્ત વિદેહ તથા પ્રકૃતિલય જ્યાં સૂધી પોતાના ધ્યેય તત્ત્વમાં લીન રહે છે, ત્યાં સૂધી તેમના ચિત્તમાં અસ્મિતા, રાગ વગેરે કલેશોનો પ્રકાશ થતો નથી અને તે કલેશો કાંઈ કાર્ય કરી શકતા નથી, પણ સૂક્ષ્મરૂપે શક્તિમાત્ર (અનાગતાવસ્થા)થી એવી રીતે વિદ્યમાન રહે છે કે, જાણે સુતા પડ્યા હોય. એથી એ કલેશ પ્રસુપ્ત કહેવાય છે.

પરંતુ તે સુપ્ત (સૂતેલા) પણ ત્યાં સૂધી રહે છે કે, જ્યાં સૂધી તે બંનેની અવધિ પૂર્ણ ન થઈ હોય અને અવધિ પછી વિદેહ પ્રકૃતિલય ઉઠી જાય છે, ત્યારે તેઓની સન્મુખ ઉત્તેજક વિષય ઉપસ્થિત થવાથી તે કલેશ પણ અંકુરિત થઈ પોતાના કાર્યમાં પ્રવૃત્ત થઈ જાય છે. અર્થાત્ જેમ પ્રસુપ્ત પુરુષ, કોઈ ઉત્તેજકથી જાગીને પોતાના કાર્યમાં પ્રવૃત્ત થઈ જાય છે, તેમ આ તત્ત્વલીનોનો કલેશ પણ પ્રબુદ્ધ થઇને પોતાના કાર્યમાં પ્રવૃત્ત થઈ જાય છે.

અને જે માણસ વિવેકખ્યાતિયુક્ત હોય છે, તેના કલેશ, પ્રસંખ્યાનરૂપ અગ્નિથી બળી જાય છે. એથી તેના કલેશ પ્રસુપ્ત ન જાણવા.[2]

દગ્ધ કલેશથી પ્રસુપ્ત કલેશમાં એ જ વૈલક્ષણ્ય છે કે-પ્રસુપ્ત કલેશો, વિષય સન્નિધિ (પાસે) હોવાથી પ્રબુદ્ધ થઈ જાય છે, અને દગ્ધ કલેશો યોગસંપત્તિના જોરથી વિષયસન્નિધિ હોવા છતાં પણ પ્રબુદ્ધ થતા નથી

૧-વિદેહ પ્રકૃતિલયોનું નિરૂપણ પૂર્વપાદના ૧૯મા સૂત્રની વ્યાખ્યામાં જુઓ.

૨-વિવેકખ્યાતિના ઉદય વિના કલેશોનો નાશ થવો અસંભવિત છે, અને વિદેહ પ્રકૃતિલયોની વિવેકખ્યાતિ ઉદય પામી નથી, તેથી વિદેહ અને પ્રકૃતિલય પ્રસુપ્ત કલેશવાળા છે, પણ દગ્ધ કલેશવાળા નથી, એ પણ જાણવું.

(જાગતા નથી.) કેમકે "दग्धबीजस्य कुतः प्ररोहः" અર્થાત્ દગ્ધ બીજનું ઉગવું ક્યાંથી થાય?

જેમ દગ્ધ બીજ અંકુરોત્પાદનમાં અસમર્થ છે, તેમ દગ્ધ ક્લેશ પણ પોતાનાં કાર્ય કરવામાં અસમર્થ છે.

વિવેકખ્યાતિદ્વારા ક્લેશોનો દાહ થવાથી જ તે યોગી ક્ષીણ ક્લેશ તથા કુશળ અને ચરમ દેહવાળો કહેવાય છે.[૧] તે પ્રમાણે આ દગ્ધ બીજભાવ સંજ્ઞાવાળી પંચમી ક્લેશાવસ્થા યોગીના જ ચિત્તમાં રહે છે, વિદેહીઓમાં નહિ, એવું સિદ્ધ થાય છે.

યદ્યપિ સિદ્ધાંતમાં સત્કાર્યવાદના અંગીકારથી વિદ્યમાન પદાર્થનો અત્યંત અભાવ સ્વીકારેલો નહિ હોવાથી ક્લેશોની વિદ્યમાનતા યોગીના ચિત્તમાં પણ અવશ્ય માનવી ઉચિત છે. એ પ્રમાણે યોગબળથી વિષયોની સન્નિધિ હોવાથી પ્રસુપ્ત ક્લેશોની પેઠે દગ્ધ ક્લેશોનો પણ પ્રબોધ થવો ઉચિત છે. તથાપિ વિવેકકાળમાં વિદ્યમાન ક્લેશોનું બીજરૂપ સામર્થ્ય નાશ થયેલું હોવાથી વિષય પાસે હોવા છતાં પણ તેનો પ્રબોધ થતો નથી, એમ જાણવું.[૨]

ભાવ એ છે કે-યદ્યપિ ક્લેશોનો અત્યંતાભાવ ન હોવાથી યોગીના ચિત્તમાં ક્લેશો વિદ્યમાન જ છે, તોપણ તેમાં કાર્યકરણરૂપ જે સામર્થ્ય હતું, તે વિવેકખ્યાતિથી નષ્ટ થઈ ગયું, એથી તે, વિષયસન્નિધિ હોય, તોપણ આવિર્ભૂત થતા નથી.[૩]

તનુ=જે[૪] ક્લેશ પોતાના પ્રતિપક્ષીભૂત (વિરોધી) તપ સ્વાધ્યાય

૧–જે દેહની પછી બીજા દેહનો યોગ થતો નથી, તે ચરમ દેહ કહેવાય છે. યોગી, મુક્ત હોવાથી બીજા દેહનો યોગ તેને થતો નથી. તેથી યોગી ચરમ દેહવાળો (અંતિમ દેહવાળો) કહેવાય છે.

૨–सतां क्लेशानां तदा बीज सामर्थ्यं दग्धमिति विषयस्य संमुखीभावेऽपि सति न भवत्येषां प्रबोधः" એ ભાષ્યનો એ અનુવાદ છે.

૩–જેમ સ્વસ્વરૂપ સ્થિતિમાં છતાં શેકેલો ચણો યોગ્ય ભૂમિમાં વવાય, તોપણ અંકુરોત્પાદનમાં અસમર્થ છે, તેમ યોગીના ચિત્તગત ક્લેશ પણ દગ્ધ થયેલાં, સ્વકાર્ય કરવામાં અસમર્થ (નપુંસક) હોવાથી અવિદ્યમાન જેવાં જ છે.

૪–એ પ્રમાણે ક્લેશોની સુપ્ત અને દગ્ધ અવસ્થા પ્રતિપાદન કરી. હવે "प्रतिपक्षभावनोपहताः क्लेशास्तनव उच्यंते" ઇત્યાદિ ભાષ્યનો અનુવાદ કરતાં તનુક્લેશોનું લક્ષણ કહે છે, "જે" ઇત્યાદિથી.

વગેરે ક્રિયાયોગના અનુષ્ઠાનથી ઉપહત થઈ સૂક્ષ્મ થઈ જાય છે, તે તનુ કહેવાય છે.

અથવા અવિદ્યાદિ પાંચેનું યથાક્રમ વિરોધીભૂત સમ્યગ્જ્ઞાન, વિવેકજ્ઞાન, માધ્યસ્થ્ય,[1] અહંતા મમતાના ત્યાગથી જે કલેશ કૃશિત (ક્ષીણ, દુબળા) થઈ જાય છે, તે તનુ કહેવાય છે.

विच्छिन्न=જે કલેશ વચમાં વચમાં **વિચ્છિન્ન** **વિચ્છિન્ન** (કપાઈ ગયેલો) હોઈ આંતરો પામીને ફરી તે જ રૂપમાં આવિર્ભૂત થઈ જાય છે, તે **વિચ્છિન્ન** કહેવાય છે.

અર્થાત્-રાગના આવિર્ભાવ સમયે ક્રોધનો આવિર્ભાવ ન હોવાથી અદૃશ્યમાન ક્રોધ હોય છે. તે **વિચ્છિન્ન** કહેવાય છે. એ પ્રમાણે એક વસ્તુવિષયક ઉત્કટ રાગ હોવાથી જે અન્ય વસ્તુવિષયક અનુત્કટ અદૃશ્યમાન રાગ હોય છે, તે પણ **વિચ્છિન્ન** જાણવો.

ભાવ એ છે કે-કોઈ પણ એક વસ્તુમાં પુરુષનો રાગ દેખવાથી અન્ય પદાર્થમાં તે પુરુષ વિરક્ત છે, એમ ન જાણવું. કેમકે એ કોઈ પણ દિવસ સંભવ હોઈ શકતું નથી કે, ચૈત્ર નામનો પુરુષ એક સ્ત્રી વિષયક પ્રીતિયુક્ત છે અને બીજી ઉપર વિરક્ત છે. પણ એક સ્ત્રી વિષયક ઉત્કટ હોવાથી રાગ લબ્ધવૃત્તિ અર્થાત્ ઉદાર છે અને અન્ય સ્ત્રીઓમાં રાગ ભવિષ્યદ્વૃત્તિ અર્થાત્ **વિચ્છિન્ન** છે. પરંતુ ...લું વશેષ છે કે, રાગના આવિર્ભાવ કાળમાં જે અનુત્કટ ક્રોધ હોય છે, તે વિજાતીય રાગની ઉદારતા પ્રયુક્ત **વિચ્છિન્ન** છે અને એક વિષયક રાગના આવિર્ભાવ કાળમાં જે બીજે સ્થળે અનુત્કટ રાગ હોય છે, તે સજાતીય રાગની ઉદારતા પ્રયુક્ત **વિચ્છિન્ન** છે.

એ પણ નિયમ નથી કે, જે કાળમાં એક કલેશ ઉદાર હોય છે, તે કાળમાં અન્ય કલેશ **વિચ્છિન્ન** જ હોય છે, પણ કોઈ સ્થળે અન્ય કલેશ પ્રસુપ્ત હોય છે, કોઈ સ્થળે તનુ હોય છે, અને કોઈ સ્થળે **વિચ્છિન્ન** હોય છે.[2]

૧-આ ગ્રહણ કરવા યોગ્ય છે અને આ ત્યાગ કરવા યોગ્ય છે, એવી રીતના અનુકૂળ પ્રતિકૂળ જ્ઞાનનો જે અભાવ તે માધ્યસ્થ્ય છે. તે રાગદ્વેષનો પ્રતિપક્ષી છે.

૨-સાંખ્યયોગ મતમાં સત્કાર્યવાદ હોવાથી અવિદ્યમાન પદાર્થનો પ્રાદુર્ભાવ મનાતો નથી. એથી બાળકોના ચિત્તમાં અવિદ્યાને ઉદાર માની રાગ વગેરેને પ્રસુપ્ત વા તનુ જાણવા; નહિ તો પ્રૌઢાવસ્થામાં તેનો પ્રાદુર્ભાવ નહિ

ઉદાર=પોતાના વિષયમાં લબ્ધવૃત્તિ હોવાથી જે ઉત્કટ રૂપથી બહાર પ્રકાશમાન હોતાં પોતાના કાર્યમાં તત્પર છે, તે કલેશ, ઉદાર કહેવાય છે. અગર જો કે ઉદારાવસ્થાપન્ન જ રાગદ્વેષાદિ કલેશના જનક હોવાથી કલેશ પદ વાચ્ય છે, અને હેય થઈ શકે છે, બીજા નહિ. તથાપિ પ્રસુપ્ત વગેરે ત્રણે પણ ભવિષ્યત્કાળમાં ઉદારાવસ્થાપન્ન થયેલા કલેશના જનક હોવાથી કલેશ પદ વાચ્ય અને હેય જાણવા.

એથી જ ભાષ્યકારે "सर्व एवैते क्लेशविषयत्वंनाऽतिक्रामन्ति"[1] એ વાક્યથી ચારે અવસ્થાવાળા રાગાદિને કલેશ કહેલા છે.

અગર જો કે[2] કલેશત્વવડે કલેશ એક જ છે, તો પણ તે તે ઉદારાદિ અવસ્થાવાળાને ભિન્ન ભિન્ન માની ચાર પ્રકારના જાણવા.

આ ચાર ભેદોમાં જે કલેશ વિભક્ત (જૂદા) છે, તે જેમ પ્રતિપક્ષીભૂત (વિરોધી) ક્રિયાયોગનાં અનુષ્ઠાનથી સૂક્ષ્મ થઈ જાય છે, તેમ વિષયાસક્તિ વિષયચિંતન વગેરે ઉત્તેજકથી ઉદાર પણ થઈ જાય છે અને વળી જેમ ક્રિયાયોગ, કલેશોની સૂક્ષ્મતાનું કારણ છે, તેમ વિષયાસક્તિનો અભાવ પણ કલેશોની તનુતા (સૂક્ષ્મતા) એટલે કૃશતાનો હેતુ છે, એમ જાણવું.

એ સઘળા પૂર્વોક્ત કલેશ અવિદ્યાના જ ભેદ છે, કેમકે તે સઘળામાં અવિદ્યા અનુગત છે. અર્થાત્ જે વસ્તુ અવિદ્યાથી ઉપસ્થિત થાય છે, તેમાં રાગાદિ કલેશ પણ લબ્ધવૃત્તિવાળા બની ઉદાર થઈ જાય છે. તેથી અવિદ્યાના અન્વય વ્યતિરેકાનુસારી હોવાથી તે સઘળા અવિદ્યા[3] સ્વરૂપ જ છે.

થશે, અને એ પ્રમાણે તત્ત્વલીન વિદેહાદિના ચિત્તમાં અવિદ્યાને ઉદાર માની રાગાદિ કલેશોને પ્રસુપ્ત જાણવા; નહિ તો અવધિ પછી તેઓનો ઉદ્ભવ નહિ થશે અને વિચ્છિન્નનું ઉદાહરણ તો મૂળમાં સ્પષ્ટ જ છે. એવી રીતે એક કલેશની ઉદારાવસ્થામાં અન્ય કલેશ કોઈ સ્થળે પ્રસુપ્ત, કોઈ સ્થળે તનુ અને કોઈ સ્થળે વિચ્છિન્ન જાણવા.

૧–એ સઘળા જ અર્થાત્ ચારે અવસ્થાવાળા જ રાગ આદિ કલેશ પદ વાચ્યતાનું ઉલ્લંઘન નથી કરી શકતા. અર્થાત્ સઘળા જ ઉદાર હોઈ કલેશજનક છે, એમ ભાષ્યનો અર્થ છે.

૨–જો સઘળા ઉદારાવસ્થાપન્ન થઈ શકે છે, તો ચાર ભેદ કેમ? એ એ આશંકાનું વારણ કરે છે. "અગર જોકે" ઇત્યાદિથી.

૩–અવિદ્યા હોવાથી કલેશોનું હોવું એ અન્વય છે, અને અવિદ્યાના અભાવથી કલેશોનો અભાવ થવો, એ વ્યતિરેક છે, તેને સ્પષ્ટ કરે છે. "અવિદ્યા સ્વરૂપ" ઇત્યાદિથી.

અવિદ્યા સ્વરૂપ હોવાથીજ એ ક્લેશ વિપર્યયજ્ઞાનકાળમાં ઉપ-લબ્ધ થાય છે, અને સમ્યગ્જ્ઞાનદ્વારા વિપર્યયજ્ઞાનના નાશ કાળે તે નાશ પામી જાય છે.

યદ્યપિ દગ્ધ સંજ્ઞાવાળી પંચમી ક્લેશાવસ્થા પણ યોગીજનને અનુ-ભવસિદ્ધ હોવાથી સૂત્રકારે તેનું નિરૂપણ કરવું ઉચિત હતું. તથાપિ દગ્ધા-વસ્થામાં અવિદ્યા મૂલકત્વનો અભાવ હોવાથી પ્રસુપ્ત વગેરે ચારજ અવસ્થાનું નિરૂપણ કર્યું છે.

ભાવ એ છે કે-આ સૂત્રમાં હેય ક્લેશોનીજ અવસ્થાનું નિરૂપણ કર્યું છે, કાંઈ ઉપાદેય અવસ્થાનું નિરૂપણ કર્યું નથી. તેટલા માટે (**अविद्याक्षेत्रम**) એ પદથી બધાને અવિદ્યામૂલક કહ્યા છે, અને પંચમી દગ્ધાવસ્થા અવિદ્યાની વિરોધી હોવાથી ઉપાદેય છે, તેટલા માટે તત્ક-થન અભાવ પ્રયુક્ત (તે સંબંધી કશું કહ્યું નહિ હોય તો) ન્યૂનત્વ દોષ નહિ જાણવો.

જો કે[1] તનુ અવસ્થા સંપાદન કરવા માટે ક્રિયાયોગનું નિરૂપણ કરવાથી તનુ અવસ્થા પણ ઉપાદેયજ છે, કાંઈ હેય નથી. એ પ્રમાણે તનુ અવસ્થાને અવિદ્યામૂલક કહેવી ઉચિત નથી, તથાપિ અસંપ્રજ્ઞાત યોગીને માટે એ પણ હેય હોવાથી તે અવિદ્યામૂલકજ છે, એમ જાણવું.

અર્થાત્-ક્રિયાયોગદ્વારા ક્લેશોની તનુ અવસ્થા સંપાદન કરવાનું એજ પ્રયોજન છે કે, તે તનુ થયેલા ક્લેશો પ્રસંખ્યાન અગ્નિથી દગ્ધબીજ થઈ જાય, કાંઈ ઉપાદેયતાને લીધે તનુ અવસ્થાનું સંપાદન નથી.

દોહા

તત્ત્વલીનના સુપ્ત છે, યોગીના તનું જાણ;
કદી વિચ્છિન્ન[2] ઉદાર કદી, સંસારિના પ્રમાણ. ॥ ૪ ॥

૧-યદિ હેય ક્લેશોનુંજ નિરૂપણ કર્યું છે, તો તનુ અવસ્થાનું નિરૂ-પણ કેમ કર્યું? કેમકે તે ઉપાદેય છે. એ આશંકાનું નિવારણ કરે છે, "જોકે" ઇત્યાદિથી.

૨-એ સૂત્રસ્થ ભાષ્યની વ્યાખ્યાની સમાપ્તિમાં વાચસ્પતિમિશ્રે "प्रसुप्ता-स्तत्त्वलीनानां तन्ववस्थाश्च योगिनां। विच्छिन्नोदाररूपाश्च क्लेशा विषयसंगिनाम्" એ શ્લોક લખ્યો છે, તેનો દોહાથી અનુવાદ કરે છે. "तत्त्वलीन" ઇત્યાદિથી. વિદેહાદિ તત્ત્વલીનોના ક્લેશ પ્રસુપ્ત છે. યોગીઓના ક્લેશ તનુ છે અને વિષયી પુરુ-ષોના ક્લેશ વિચ્છિન્ન અને ઉદાર છે. એવો દોહાનો અને શ્લોકનો અર્થ છે. એ પ્રમાણે યોગારૂઢ તથા જ્ઞાનીઓના ક્લેશ દગ્ધ છે, એ પણ જાણી લેવું.

એ પાંચે ક્લેશોમાંથી પ્રથમ અવિદ્યાનું સ્વરૂપ કહે છે.–

सू–अनित्याऽशुचिदुःखाऽनात्मसु नित्य-
शुचिसुखाऽऽत्मख्यातिरविद्या ॥ ५ ॥

સૂત્રાર્થઃ–(अनित्याऽशुचिदुःखाऽनात्मसु) અનિત્ય, અશુચિ, દુઃખ અનાત્મ એ ચારેમાં યથાક્રમે જે (नित्यशुचिसुखाऽऽत्मख्यातिः) નિત્ય, શુચિ, સુખ, આત્મબુદ્ધિ, તે (अविद्या) અવિદ્યા પદવાચ્ય છે.[1]

અર્થાત્–સ્વર્ગાદિ અનિત્ય પ્રપંચમાં નિત્યજ્ઞાન, અશુચિ શરીર વગેરેમાં શુચિજ્ઞાન, દુઃખરૂપ વિષયભોગમાં સુખજ્ઞાન અને અનાત્મભૂત બુદ્ધિ તથા ઇંદ્રિયશરીર વગેરેમાં આત્મજ્ઞાન, એ ચાર પ્રકારનું વિપર્યયજ્ઞાન, તે અવિદ્યા કહેવાય છે.

ભાવ એવો છે કે–જન્ય (કાર્ય) હોવાથી અનિત્ય જે પૃથ્વી વગેરે પ્રપંચ, તેમાં "પૃથ્વી તથા નક્ષત્ર ચંદ્ર વગેરે સહિત સ્વર્ગ નિત્ય છે. એ પ્રમાણે દેવતા પણ અમૃત (મરણરહિત) હોવાથી નિત્ય છે." એવી રીતનું અનિત્યમાં નિત્યજ્ઞાનસ્વરૂપ જે વિપર્યયજ્ઞાન, તે પ્રથમ અવિદ્યા છે.[2]

એવી રીતે પરમબીભત્સ [અત્યંતવિકૃત (બેડોલ), પૂયશોણિતપૂરિત, (પરુ અને લોહીથી ભરેલી), અસ્થિચિત (હાડકાંની બનેલી), માંસલિપ્ત (માંસથી વિટલાયલી), ચર્મવેષ્ટિત (ચામડાથી મઢેલી), મૂત્રદ્વારા વિનિષ્ક્રાન્ત (યોનિ વગેરે માર્ગે નિત્ય ગંદા પ્રવાહવાળી)] સ્ત્રીના અશુચિ શરીરમાં [જે, "આ કન્યા એવી કમનીય છે કે, જાણે એક નૂતન ચંદ્રની રેખા હોય નહિ કે જાણે મધુ તથા અમૃતના અવયવોથી બ્રહ્માએ તેની રચના

૧–યદ્યપિ લક્ષણનું પ્રકરણ હોવાથી પ્રથમ લક્ષણનું કથન કરી, પછી જ અવિદ્યાના ભેદનું નિરૂપણ કરવું ઉચિત હતું, તથાપિ પ્રથમ પાદના સપ્તસૂત્રોક્ત પ્રકારે અવિદ્યા પદની આવૃત્તિ કરવી (न विद्या अविद्या) અર્થાત્ વિપર્યય જ્ઞાન અવિદ્યા પદનું વાચ્ય છે, એ રીતે દોષાભાવ જાણી લેવો.

૨–એ પ્રમાણે જે પુરુષ પંચભૂતોને નિત્ય માની વાયુ વા જલસ્વરૂપ થવાને માટે અથવા આકાશાદિમાં લય થવાને માટે પંચભૂતોની ઉપાસના કરે છે; અને જે પુરુષ ચંદ્રાદિ સ્વર્ગલોકની પ્રાપ્તિને અર્થે ધૂમાદિ માર્ગહેતુ ઉપાસનાનું અનુષ્ઠાન કરે છે; અને જે પુરુષ દેવતાને અમર જાણી પોતાને અમર થવા अपामसोमममृता अभूम ઇત્યાદિ શ્રુતિઓને વશ થઈ, યજ્ઞાદિમાં સોમરસનું પાન કરે છે, તે સઘળા વિપર્યયજ્ઞાની જ છે. કેમકે એ સઘળાને અનિત્યમાં નિત્ય જ્ઞાન છે, એ ફલિત થાય છે.

કરી છે, કે જાણે હમણાં જ ચંદ્રમંડળને ભેદન કરી બહાર નીકળી આવી છે, અને નીલકમલદલતુલ્ય વિસ્તૃત નેત્રોથી યુક્ત થયેલી હાવભાવ-કટાક્ષ વગેરેથી ગર્ભિત લોચનવડે જાણે જીવોને ધૈર્ય દેતી હોય કે તમે મૃત્યુથી ભય ન પામો, હું તમારી રક્ષા કરીશ." એવી રીતનું] પવિત્રતાનું અને કમનીયતાનું જ્ઞાન, તે અશુચિમાં શુચિજ્ઞાનરૂપ દ્વિતીય અવિદ્યા છે.

એ પૂર્વોક્ત પ્રત્યક્ષસિદ્ધ શરીરની અપવિત્રતા જ યોગભાષ્યકારોએ

"स्थानाद् बीजादुपष्टंभान्निष्पन्दान्निधनादपि ।
कायमाधेयशौचत्वात्पंडिता ह्यशुचिं विदुः" ॥

ઉપરના શ્લોકથી યુક્તિપૂર્વક નિરૂપણ કરી છે. **स्थान** એટલે સ્થિતિનો આધાર અર્થાત મળમૂત્ર વગેરે દુર્ગંધ વસ્તુથી લિપ્ત જે અત્યંત અપવિત્ર માતાનું ઉદર, તે તો આ શરીરનું ઉત્પત્તિસ્થાન અર્થાત્ ક્ષેત્ર છે અને અત્યંત મલિન જે માતાપિતાનું રજવીર્ય, તે એનું **बीज** (ઉપાદાન કારણ) છે. એ પ્રમાણે ખાધેલા પીધેલા અન્ન જળ વગેરેના પરિપાકથી પેદા થયેલ જે રુધિરાદિરૂપથી પરિણત રસ, તે આ શરીરનો **उपष्टंभ** છે, અર્થાત્ આશ્રય છે. કેમકે એ રસે જ શરીરને ધારણ કરેલું છે. વળી મળમૂત્ર પ્રસ્વેદ વગેરે અપવિત્ર પદાર્થોનું આ શરીરમાંથી **निष्पंद**[1] થાય છે. એ પ્રમાણે **निधन** અર્થાત્ પ્રાણવિયોગ પછી શરીર અસ્પૃશ્ય થઈ જાય છે. કેમકે ચાહે તો વેદપાઠી હોય વા જ્ઞાની હોય, તેનું પણ મૃતક શરીર અપવિત્ર મનાય છે અને એ શરીર **आधेयशौच** છે, અર્થાત્ જેમ કામિની સ્વતઃનિર્ગંધ પોતાના શરીરમાં અંગરાગ (શરીર મર્દનલેપ)-દ્વારા ગંધની આધેયતાની કલ્પના (ભાવના) કરી લે છે, તેમ જલમૃત્તિકા વગેરે દ્વારા શરીરમાં શુદ્ધિનું આધાન કરાય છે. વાસ્તવિક રીતે તે શરીર મૃત્તિકાદિથી પવિત્ર થતું નથી.

એવી રીતે સ્થાન, બીજ, ઉપષ્ટંભ, નિષ્પંદ, નિધન, આધેયશૌચ-તારૂપ હેતુઓથી પંડિતો આ શરીરને અશુચિ જ માને છે, શુચિ નહિ, એવો આ શ્લોકનો અર્થ છે.

એવી રીતના[2] અશુચિ શરીરનો ચંદ્રરેખાની સાથે ભલા શો સંબંધ છે? અર્થાત્ દુર્ગંધપૂરિત શરીરનો મધુઅમૃતાદિ ઉપમાની સાથે

૧–નિષ્પંદ એટલે ઝરવું, ટપકવું.

૨–"कस्य केनाऽभिसंबंधः" ઇત્યાદિ ભાષ્યનો અનુવાદ કરે છે, "એવી રીતના" ઇત્યાદિથી.

સંબંધ જ કેવો? પરંતુ પૂર્વોક્ત પ્રકારથી અશુચિમાં શુચિરૂપ વિપર્યય જ્ઞાન થાય છે, એથી તે પણ અવિદ્યા જ છે.

અશુચિમાં શુચિબુદ્ધિના પ્રદર્શનથી, અપુણ્ય હિંસાદિમાં જે મીમાંસકોનું પુણ્યજ્ઞાન, તથા અર્જન–પાલન વગેરે દુઃખબાહુલ્યથી અનર્થજનક ધનમાં જે અર્થજ્ઞાન, તે પણ અવિદ્યાસંજ્ઞક વિપર્યય જ્ઞાન જ જાણવું.[1]

એવી રીતે વિષયભોગરૂપ દુઃખમાં જે સુખજ્ઞાન, તે પણ એક અવિદ્યા જ છે. જે પ્રકારે વિષયસુખ દુઃખરૂપ છે, તે પ્રકાર સૂત્રકાર (परिणामतापसंस्कारदुःखैर्गुणवृत्तिविरोधाच्च दुःखमेव सर्वं विवेकिनः પાદ ૨ સૂત્ર ૧૫ માં) પોતે કહેશે. એથી અહીં કહેવાની કાંઈ આવશ્યકતા નથી.

એ પ્રમાણે દેહના ઉપકરણભૂત આત્મા સિવાય પશુ ભૃત્ય વગેરે ચેતન પદાર્થ; શય્યા, આસન, ગૃહ, સ્થાન વગેરે અચેતન પદાર્થ અને ભોગાધિષ્ઠાન[2] શરીર તથા પુરુષના ઉપકરણભૂત મન, એ સઘળા અનાત્મ પદાર્થમાં જે આત્મજ્ઞાન, તે ચતુર્થી અવિદ્યા કહેવાય છે.

પંચશિખાચાર્યે પણ “व्यक्तमव्यक्तं वा सत्त्वमात्मत्वेनाऽभिप्रतीत्य तस्य संपदमनु नंदति आत्मसंपदं मन्वानस्तस्य व्यापदमनु शोचत्यात्मव्यापदं मन्वानः स सर्वोऽप्रतिबुद्धः” એ વાક્યથી અગાઉ કહેલા પ્રકારથી જ અનાત્મવિષયક આત્મખ્યાતિનું નિરૂપણ કર્યું છે.

અર્થાત્, વ્યક્ત[3] અવ્યક્ત જે સત્ત્વ અર્થાત્–પુત્ર, કલત્ર, ગૃહ, ક્ષેત્ર વગેરે ચેતન જડ પદાર્થ એ સઘળાને આત્મા અને આત્મીય જાણી, જે માણસ તેઓની સંપત્તિને પોતાની સંપત્તિ માની આનંદ પામે છે, અને તેમની હાનિને પોતાની હાનિ માની શોક પામે છે, તે માણસ અપ્રતિબુદ્ધ (અજ્ઞાની) જાણવો.[4] એ પંચશિખાચાર્યના વચનનો અર્થ છે.

૧–જેમ અશુચિમાં શુચિબુદ્ધિ ભ્રમ છે, તેમ અપુણ્ય અને અનર્થમાં પુણ્ય તથા અર્થબુદ્ધિ પણ ભ્રમ છે, એ તેનું તત્ત્વ છે.

૨–શરીરમાં સ્થિત થઈ પુરુષ ભોગ ભોગવે છે, તેથી કરીને શરીર ભોગાધિષ્ઠાન કહેવાય છે. એ પ્રમાણે સુખાદિ ભોગમાં મન જ સાધન હોવાથી મન ઉપકરણ છે.

૩–વ્યક્ત એટલે ચેતન પુત્ર વગેરે. અવ્યક્ત એટલે જડ ઘર વગેરે.

૪–અર્થાત્–આત્માથી ભિન્ન અસત્ય જડરૂપ અંતઃકરણ દેહ તથા દેહના અંગભૂત પુત્ર, કલત્ર, ક્ષેત્ર વગેરે અનાત્મ પદાર્થોને આત્મા વા આત્મીય માની, જે માણસ તેમની વૃદ્ધિ અને હાનિથી પોતાની વૃદ્ધિ અને હાનિ માને છે, તે વિપર્યયજ્ઞાનવાળો છે.

આ[1] ચાર પ્રકારની[2] અવિદ્યા જ રાગદ્વેષાદિ ક્લેશપ્રવાહનું તથા રાગદ્વેષજન્ય ધર્મ અધર્મનું અને ધર્માધર્મજન્ય સુખદુઃખ વગેરેનું મૂળ કારણ છે.

આ સ્થળે અવિદ્યા શબ્દમાં (નઞ)[3] પ્રથમ જે "અ" અક્ષર વપરાયલો છે, તેનો "વિરુદ્ધ" એવો અર્થ જાણવો, કાંઈ અભાવ જાણવો નહિ.

અર્થાત્[4]–જેમ અમિત્ર શબ્દમાં 'નઞ'નો અર્થ વિરુદ્ધ હોવાથી મિત્ર વિરુદ્ધ શત્રુરૂપ અર્થ પ્રતીત થાય છે, અને 'અગોષ્પદ' શબ્દથી ગોખુરવિરુદ્ધ વિપુલ પ્રદેશનો બોધ થાય છે, તેમ અવિદ્યા શબ્દમાં પણ 'નઞ'નો અર્થ વિરુદ્ધ માની, વિદ્યાવિરુદ્ધ વિપર્યય જ્ઞાનનું ગ્રહણ કરવું.

ભાવ એ છે કે–જેમ અમિત્ર શબ્દ, મિત્રના અભાવનો વાચક નથી, તેમ "ન મિત્રમાત્ર"નો વાચક નથી, પણ મિત્રવિરુદ્ધ શત્રુરૂપ અર્થનો વાચક છે; અને 'અગોષ્પદ' શબ્દ પણ ગોખુરના અભાવનો બોધક નથી, તેમ ગોખુર માત્રનો બોધક નથી, પણ ગોખુરવિરુદ્ધ વિસ્તૃત દેશનો વાચક છે, તેમ અહીં પણ અવિદ્યા શબ્દ પણ તત્ત્વજ્ઞાનનો વાચક નથી તેમ જ તત્ત્વજ્ઞાનના અભાવનો વાચક નથી, પણ તત્ત્વજ્ઞાનથી વિરુદ્ધ જે મિથ્યાજ્ઞાન તેનો વાચક છે. ॥ ૫ ॥

હવે એ અવિદ્યાના કાર્યભૂત બુદ્ધિ પુરુષના અવિવેકરૂપ જે દ્વિતીય અસ્મિતાસંજ્ઞક ક્લેશ, તેનું લક્ષણ કહે છેઃ–

सू–दृग्दर्शनशक्त्योरेकात्मतेवाऽस्मिता ॥ ६ ॥

સૂત્રાર્થઃ–(दृग्दर्शनशक्त्योः) દૃગ્શક્તિ અને દર્શનશક્તિ સંજ્ઞક, પુરુષની અને બુદ્ધિની જે (एकात्मता इव) અભિન્નતા જેવી પ્રતીતિ થઈ જવી, તે (अस्मिता) અસ્મિતા નામનો ક્લેશ છે.

૧–"एषा चतुष्पदा भवत्यविद्या मूलमस्य क्लेशसंतानस्य कर्माशयस्य च स विपाकस्य" એ ભાષ્યનો અનુવાદ કરે છે. "આ" ઇત્યાદિથી.

૨–યદ્યપિ દિગ્ભ્રમ, શુક્તિરજતાદિ ભ્રમભેદથી અવિદ્યા અનંત છે, તથાપિ ક્લેશોની મૂળભૂત અવિદ્યા ચાર પ્રકારની હોવાથી ચાર પ્રકારની કહી છે.

૩–અમિત્ર, અગોષ્પદ વગેરે શબ્દોમાં આદિનો વર્ણ જે (અ) છે, તે "નઞ" કહેવાય છે.

૪–तस्याश्चाऽमित्राऽगोष्पदवद् वस्तुसतत्त्वं विज्ञेयम्" એ ભાષ્યનો અર્થ સ્પષ્ટ કરતાં કહે છે, "અર્થાત્" ઇત્યાદિથી. ગોષ્પદ–ગાયનું પગલું.

દૃક્શક્તિ[1] એટલે પુરુષ, કેમકે તે સઘળાનો દ્રષ્ટા છે અને દર્શનશક્તિ એટલે બુદ્ધિ, કેમકે તે જ વિષયાકાર પરિણામ પામી દૃશ્ય (વિષયરૂપ)ને પામે છે. એ બંને પરસ્પર અત્યંત વિભક્ત છે, તોપણ પૂર્વોક્ત અવિદ્યાના બળથી આ બંનેમાં એકરૂપત્વ અથવા તાદાત્મ્ય ભાવ જેવું પ્રતીત થઈ જવું, તેનું જ નામ અસ્મિતા છે.

એ અસ્મિતા હોવાથી જ **अहं अस्मि** અર્થાત્ હું છું, વા હું સુખી છું, ઇત્યાદિ વ્યવહાર થાય છે. વાસ્તવિક રીતે બુદ્ધિતત્ત્વ એ પરિણામી, મલિન તથા જડ છે, અને પુરુષ એ કૂટસ્થ, શુદ્ધ તથા ચેતન છે, એથી એ બંનેની એકતા બનવી અસંભવિત છે. પરંતુ વિવેકના અભાવથી એકતા જેવી પ્રતીતિ થાય છે, તેના બોધન માટે સૂત્રકારે (**एकात्मता इव**) એમ 'इव' પદ લીધું છે.

અત્યંત[2] અસંકીર્ણ (વિલક્ષણ) હોવાથી એ ભોકતૃશકિત-ભોગ્યશક્તિ સંજ્ઞક પુરુષ અને બુદ્ધિ પરસ્પર અત્યંત ભિન્ન છે. આ બંનેની જે અવિભાગ પ્રાપ્તિરૂપ અસ્મિતા, તે જ પુરુષના ભોગનો હેતુ છે. કેમકે એ અસ્મિતાના હોવાથીજ પુરુષ પોતાને કર્ત્તા ભોક્તા માને છે.

જ્યારે વિવેકખ્યાતિદ્વારા અસ્મિતાનો નાશ થવાથી પુરુષને પોતાના રૂપનો સાક્ષાત્કાર થઈ જાય છે, ત્યારે ભોગનો અભાવ હોવાથી કેવળ થયેલો કૈવલ્યસંજ્ઞક પુરુષ મુક્તિપદના લાભથી પોતાને અભોક્તા માને છે.

એ પ્રમાણે અન્વયવ્યતિરેકથી તે અસ્મિતાસંજ્ઞક અવિવેક જ સુખ-દુઃખ વગેરે ભોગનો હેતુ છે: એ ફલિત થાય છે.

પંચશિખાચાર્યે પણ " **बुद्धितः परंपुरुषमाकारशीलविद्यादिभिर्विभक्तमपश्यन् कुर्यात् तत्राऽऽत्मबुद्धिं मोहेन**" એ વાકયથી એ અવિવેક સંજ્ઞાવાળી અસ્મિતાને જ મોહદ્વારા ભોગનો હેતુ કહેલો છે.

આકાર, શીલ, વિદ્યા[3] વગેરે વિલક્ષણ ધર્મોવડે પુરુષ બુદ્ધિથી

૧–" पुरुषो दृक्शक्तिर्बुद्धिर्दर्शनशक्तिः " ઇત્યાદિ ભાષ્યનો અનુવાદ કરે છે. "દૃક્શક્તિ" ઇત્યાદિથી.

૨–"भोक्तृभोग्यशक्त्योरत्यंतविभक्तयोरत्यंताऽसंकीर्णयोरविभागप्राप्ताविव सत्यां भोगः कल्पते"ઇત્યાદિ ભાષ્યનો અનુવાદ કરતાં બુદ્ધિ પુરુષના અવિવેકને ભોગહેતુ અને વિવેકને મોક્ષહેતુ કહે છે. "અત્યંત" ઇત્યાદિથી. ભોક્તૃશક્તિ એ ભોક્તા ચેતન પુરુષનું નામ છે, અને ભોગ્ય શક્તિ એ જડબુદ્ધિનું નામ છે.

૩–આકાર નામ સ્વરૂપનું, શીલ નામ સ્વભાવનું અને વિદ્યા નામ ચૈતન્યનું છે. અર્થાત્ પુરુષનું સ્વરૂપ શુદ્ધ, સ્વભાવ ઔદાસીન્ય તથા વિદ્યા

ભિન્ન હોવા છતાં પણ, અનાત્મવિષયક આત્મજ્ઞાનરૂપ મોહથી, ભિન્ન ન જાણી અવિવેકી પુરુષ બુદ્ધિમાં આત્મબુદ્ધિ કરી લે છે. એવો પંચશિખાચાર્યના વાક્યનો અર્થ છે.

નિત્ય, શુદ્ધ, બુદ્ધ, કૂટસ્થ આત્માને અને મલિન, જડ, વિકારી બુદ્ધિને ભિન્ન ન જાણી 'હું કર્ત્તા ભોક્તા છું.' એવી રીતે પુરુષ પોતાને માની લે છે, એ જ અસ્મિતા છે, એવો કહેવાનો ભાવ છે.

આ અસ્મિતાસંજ્ઞક ચિત્જડ અવિવેક જ વેદાંત મતમાં "ચિત્ જડ ગ્રંથિ" એવા નામથી વ્યવહૃત થાય છે. એ ચિત્જડ ગ્રંથિને જ "भिद्यते हृदयग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्वसंशयाः । क्षीयन्ते चाऽस्य कर्माणि तस्मिन् दृष्टे पराऽवरे"[1] એ શ્રુતિમાં હૃદયગ્રંથિ કહેલી છે.

તે આનંદ અમૃતરૂપ પરાવર[2] પરમાત્માનો સાક્ષાત્કાર થવાથી હૃદગ્રંથિનું ભેદન થઈ જાય છે અને એ જિજ્ઞાસુના જેટલા અવિવેક પ્રયુક્ત સંશયો હોય છે, તે પણ સાક્ષાત્કાર થવાથી છિન્ન થઈ જાય છે અને એ જ્ઞાનીનાં દેહારંભક પ્રારબ્ધ કર્મ સિવાય જેટલાં સંચિત અને આગામી કર્મ છે, તે સઘળાં પણ ક્ષય પામી જાય છે, એવો એ શ્રુતિનો અર્થ છે. ॥૬॥

હવે ક્રમપ્રાપ્ત અવિવેકના કાર્યભૂત[3] રાગદ્વેષનું લક્ષણ કહે છે.

सू—सुखाऽनुशयी रागः ॥ ७ ॥

સૂત્રાર્થઃ-(सुख) સુખભોગના (अनु) પછી (शयी) અંતઃકરણમાં રહેવાવાળો જે અભિલાષાવિશેષ, તે (रागः) રાગ કહેવાય છે.

અર્થાત્-સુખાભિજ્ઞ[4] પુરુષનું સુખસ્મરણપૂર્વક જે તત્સજાતીય સુખ તથા તત્સાધનોમાં ગર્ધ,[5] તૃષ્ણા, લોભ, ચાહના, તે રાગ કહેવાય છે. ॥ ૭॥

ચેતનતા છે; અને બુદ્ધિનું સ્વરૂપ મલિન, સ્વભાવ પરિણામી અને ધર્મ જડતા છે. એવી રીતે એ બંને આકાર શીલ, વિદ્યા વગેરે ધર્મોથી વિલક્ષણ છે,

૧-આ મુંડક ઉપનિષદ્ગત દ્વિતીયમુંડકના દ્વિતીયખંડનો ૮ મો મંત્ર છે.

૨-परावर-કારણરૂપે સર્વથી પર, અને કાર્યરૂપથી અવર=નિકૃષ્ટ, અર્થાત્ કારણ કાર્યસ્વરૂપ, અથવા સઘળા કરતાં પર એવો હિરણ્યગર્ભ વગેરે પણ અવર=નિકૃષ્ટ છે જેનાથી તે પરાવર. સર્વથા પરાવર નામ પરમાત્માનું છે.

૩-અવિવેકથી રાગદ્વેષ થતો હોવાથી અને વિવેકથી રાગદ્વેષનો અભાવ થતો હોવાથી અવિવેક જ રાગદ્વેષનું કારણ છે.

૪-જે પુરુષે સુખનો અનુભવ નથી કર્યો, તેને સુખસ્મરણનો અભાવ હોવાથી "સુખાભિજ્ઞ" પદ આપ્યું છે.

૫-ગર્ધ, તૃષ્ણા, લોભ તથા ઇચ્છા, એ બધા એકાર્થ છે.

सू–दुःखानुशयी द्वेषः ॥ ८ ॥

સૂત્રાર્થઃ-(दुःख) દુઃખભોગની (अनु) પછી (शयी) ચિત્તમાં થવાવાળો જે દુઃખવિષયક ક્રોધ, તે દ્વેષ કહેવાય છે.

અર્થાત્-દુઃખાભિજ્ઞ પુરુષને દુઃખભોગ સ્મરણપૂર્વક જે દુઃખ તથા દુઃખસાધન વિષયક મન્યુ, જિઘાંસા[1], ક્રોધ, તે દ્વેષ કહેવાય છે.

આ બંને સૂત્રોનો ભાવ એ છે કે-જે કાળમાં પુરુષને પહેલાં કોઈ પ્રકારના સુખ કે દુઃખનો અનુભવ થયો હોય છે, તે કાળમાં એ બંનેએ એક પ્રકારનો સંસ્કાર પણ ચિત્તમાં ઉત્પન્ન કર્યો હોય છે. તે સંસ્કારદ્વારા જ તે પુરુષને સમયે સમયે તે સુખનું અને તે દુઃખનું સ્મરણ થતું રહે છે. પછી તે સ્મરણથી જ અનુભવેલું સુખસજાતીય સુખવિષયક ઇચ્છા થતી રહે છે અને અનુભવેલું દુઃખસદૃશ દુઃખવિષયક દ્વેષ થતો રહે છે. એ પ્રમાણે પુરુષને જે વખતે સુખ વા સુખસાધન સામગ્રીવિષયક રાગ હોય છે, અને દુઃખ તથા દુઃખસાધન સામગ્રીવિષયક દ્વેષ ઉત્પન્ન હોય છે, તે અવશ્ય સુખાનુશયી (સુખસ્મરણ પૂર્વક) અને દુઃખાનુશયી (દુઃખસ્મરણ પૂર્વક) થાય છે, એમ સિદ્ધ થાય છે.

અહીં એટલું વિશેષ છે કે-અનુભવ કરેલા સુખવિષયક જે રાગ, તે સ્મરણપૂર્વક રાગ છે અને વર્ત્તમાનકાળમાં ભોગારૂઢ સુખવિષયક જે રાગ, તે સ્વાભાવિક રાગ છે. એ પ્રમાણે દુઃખવિષયક પણ જાણી લેવું.[2] ॥ ૮ ॥

હવે પ્રસંગ પ્રાપ્ત પંચમ અભિનિવેશ કલેશનું લક્ષણ કહે છેઃ-

सू–स्वरसवाही विदुषोऽपि तथाऽऽरूढोऽभिनिवेशः ॥९॥

સૂત્રાર્થઃ-(स्वरसवाही) વાસનાના બળથી સ્વભાવસિદ્ધ જ (विदुषोऽपि) અને વિદ્વાનના ચિત્તમાં પણ (तथाऽऽरूढः) મૂર્ખોની પેઠે આરૂઢ થયેલો (વિદ્યમાન) જે મરણભય, તે અભિનિવેશ નામનો કલેશ છે.

અર્થાત્[3]-પ્રાણીમાત્રની આત્મવિષયક જે નિરંતર પ્રાર્થના છે કે,

---

૧-જિઘાંસા હનન કરવાની ઇચ્છાનું નામ છે. મન્યુ, જિઘાંસા, ક્રોધ તથા દ્વેષ એ પર્યાય શબ્દો છે.

૨-એ પ્રમાણે સુખસાધન માલાચંદન વગેરેમાં દશ્યમાન જે પ્રીતિ છે, તે પ્રીતિ પણ પહેલાં તે સઘળાનો સુખહેતુતા તરીકેનો અનુભવ કરી ચૂકાયલી છે. માટે તે સ્મરણપૂર્વક જ જાણવી.

૩-"सर्वस्य प्राणिन इयमात्माशीर्नित्या भवति मा न भूवं भूयासमिति" એ ભાષ્યનો અનુવાદ કરતાં (स्वरसवाही) એ પદનો અર્થ સ્પષ્ટ કરે છે. "અર્થાત્" ઇત્યાદિથી.

"મારો અભાવ કોઈ દિવસ ન થાય પણ હું સર્વદા વિદ્યમાન જ રહું." આ રીતના મરણભયનું નામ અભિનિવેશ છે.

આ મરણભય જેણે પૂર્વે મરણરૂપ ધર્મનો અનુભવ ન કર્યો હોય તેને થવો અસંભવિત છે, એટલે આ મરણભયદ્વારા એવું પ્રતીત થાય છે કે, પૂર્વજન્મમાં તેણે મરણભયનો અનુભવ કર્યો હોવો જ જોઇએ. તેટલા માટે એ અભિનિવેશ સ્વરસવાહી અર્થાત્ પૂર્વ મરણના અનુભવની વાસનાથી વહનશીલ છે.

અર્થાત્ એ અભિનિવેશ સઘળા પ્રાણીઓમાં સાધારણ તથા સ્વભાવસિદ્ધ છે. કેમકે જેણે પ્રત્યક્ષ, અનુમાન, આગમ પ્રમાણદ્વારા કોઈ પણ સમયે મરણના દુઃખનો અનુભવ નથી કર્યો, એવી રીતના તત્કાળ ઉત્પન્ન થયેલા કીડા વગેરેમાં પણ આ મરણત્રાસ જોવામાં આવે છે.

આ તત્કાલ ઉત્પન્ન થયેલા કીડા વગેરેમાં દેખાતો જે ઉચ્છેદજ્ઞાનસ્વરૂપ મરણત્રાસ, તે જ પૂર્વજન્મમાં અનુભવેલા મરણદુઃખનું અનુમાન કરાવે છે.

સારાંશ એ કે[1]–પ્રૌઢ મનુષ્યોનું તો શું કહેવું, પણ તત્કાળ ઉત્પન્ન થયેલું બાળક પણ જે સમયે કોઈ ભયંકર સિંહ સર્પ વગેરે મારકને દેખે છે, તે સમયે કંપારો પામતું જણાય છે. એ પ્રમાણે હલકામાં હલકા ચેતનને (કીટને) પણ કોઈ છેડછાડ કરે છે, તો તે પણ પ્રાણપરિપાલનને અર્થે અહીં તહીં ચેષ્ટા કરતું કાંપતું જણાય છે. તે બાળક અને કીટ વગેરેના કંપનથી એમ જણાય છે કે, મરણરૂપ દુઃખને પાસે આવેલું જાણી તેઓ ભયયુક્ત થઈ કંપી રહેલાં છે, કેમકે દુઃખ વા દુઃખકારણ વસ્તુઓથી જ ભય દેખાય છે, બીજાથી નહિ. વળી તે બાળક અથવા કીટ તરતનાં ઉત્પન્ન થયેલાં હોવાથી, એમ પણ કહી શકાતું નથી કે, શાસ્ત્રથી વા અન્ય લોકોથી સાંભળેલું મરણદુઃખ એ બાલક કે કીટને ત્રાસના હેતુરૂપ છે, તેમ એ પણ સંભાવના થઈ શકતી નથી કે અનુભવ કરેલા મરણ દુઃખનું સ્મરણ થવાથી તે બાલકના કે કીટના ત્રાસનો હેતુ છે; કેમકે હમણાં જ તેમની ઉત્પત્તિ થયેલી હોવાથી તેને પહેલાંના મરણભયના અનુભવનો સંભવ હોતો નથી. એથી છેવટે એ સિદ્ધ થાય છે કે, પૂર્વજન્મમાં અનુભવેલું મરણદુઃખ સ્મરણ કરીને બાળક અથવા કીટ, ભયયુક્ત થઈ કંપે છે.

૧–હવે પ્રસંગથી પૂર્વજન્મના અભાવને માનવાવાળા નાસ્તિકનો તિરસ્કાર કરતાં પૂર્વોક્ત અર્થને સ્ફુટ કરે છે. "ભાવ એ છે કે" ઇત્યાદિથી.

એ પ્રમાણે સિદ્ધ થાય છે કે, મરણત્રાસ એ પૂર્વજન્મમાં અનુભવમાં આવેલા મરણદુઃખનો અને પૂર્વજન્મના સદ્ભાવનો બોધક છે.

તે પ્રમાણે પૂર્વજન્મમાં અનેકવાર અનુભવમાં આવેલું જે મરણ-દુઃખ અને મરણદુઃખના અનુભવથી ઉત્પન્ન થયેલો જે વાસનાસમૂહ, તે જ મરણત્રાસનું કારણ છે, એમ ફલિત થાય છે.

એથી જ મરણત્રાસ સ્વરસવાહી[1] છે.

આ મરણભયરૂપ[2] અભિનિવેશ નામનો ક્લેશ જેમ અત્યંત મૂઢ કીટ વગેરેમાં દેખાઈ આવે છે, તેમ "विदुषोऽपि रूढः" અર્થાત્ વિજ્ઞાતપૂર્વાપરાન્ત[3] વિદ્વાનોના હૃદયમાં પણ એવો જ દૃઢ અભિનિવેશ આરૂઢ છે. કેમકે પૂર્વ જન્માનુભૂત મરણદુઃખના અનુભવથી "હું ન મરું." એવી વાસના વિદ્વાન્ અવિદ્વાન્ બંનેને સમાન છે.

અહીં વિદ્વાન્ શબ્દથી સંપ્રજ્ઞાત યોગી, વિવેકી વા જ્ઞાનીનું ગ્રહણ નથી, પણ આગમ અનુમાનદ્વારા જે પ્રકૃતિ પુરુષના વિવેક જાણનાર શાસ્ત્રજ્ઞાતા છે, તેનું જ ગ્રહણ છે. નહિ તો 'विद्वान् न बिभेति कदाचन'[4] એ શ્રુતિથી જ્ઞાનીને ભયના અભાવનું કથન અસંગત થઈ જશે.

એટલા માટે જ વાચસ્પતિમિશ્રે "न संप्रज्ञातवान् विद्वानपि तु श्रुताऽनुमानविवेकी" એ વાક્યથી શાસ્ત્રજ્ઞનું ગ્રહણ કર્યું છે, જ્ઞાનીનું નહિ.

એ પ્રમાણે જે વિજ્ઞાનભિક્ષુએ સંપ્રજ્ઞાતયોગીને મરણભય કહેલો છે, તે અજ્ઞાનમૂલક[5] છે, એમ જાણવું. ॥ ૯ ॥

૧–સ્વરસ એટલે વાસનાદ્વારા વાહી એટલે પ્રવૃત્ત તે.

૨–એવી રીતે પ્રસંગાગત પૂર્વજન્મ અભાવવાદીના નાસ્તિક મત નિરાકરણપૂર્વક 'સ્વરસવાહી' એ પદનું વ્યાખ્યાન કરી, હવે (विदुषोऽपि तथारूढः) એ પદનું વ્યાખ્યાન કરે છે. "તે મરણભય" ઇત્યાદિથી.

૩–અંત એટલે કોટિ અથવા દશા છે. વિજ્ઞાત એટલે શાસ્ત્રદ્વારા જાણી લીધેલી છે, પૂર્વ દશા (સંસાર) અને ઉત્તર દશા (કૈવલ્ય) જેણે, એવા શાસ્ત્રજ્ઞનું નામ વિજ્ઞાતપૂર્વાપરાન્ત છે.

૪–બ્રહ્મજ્ઞાની કદાપિ ભય પામતો નથી, એ તૈત્તિરીય શ્રુતિનો અર્થ છે. (कुतश्चित्) એવો પણ શાખાંતરનો પાઠ છે. જ્ઞાની કોઇથી પણ ભયભીત થતો નથી, એવો એ પાઠનો અર્થ છે. જો જ્ઞાનીને ભય મનાશે, તો આ શ્રુતિ અસંગત થશે, એ આમાં સાર છે.

૫–જો કે "સંસ્કારો બળવાન્ હોવાથી તત્ત્વજ્ઞને પણ અભિનિવેશ થઈ શકે છે" એમ વિજ્ઞાનભિક્ષુએ કહેલું છે, તે પણ પ્રમાદ જ છે. કેમકે "तज्ज:

પૂર્વ પ્રકરણથી ક્લેશોનું લક્ષણ તથા પ્રસુપ્ત વગેરે ચાર અવસ્થાનું નિરૂપણ કર્યું, અને સ્થૂલ ક્લેશોની ક્રિયાયોગથી સૂક્ષ્મતા પણ કહી. હવે ક્રિયાયોગથી સૂક્ષ્મ કરી નાંખેલા ક્લેશોની તથા પ્રસંખ્યાન અગ્નિથી દગ્ધબીજ થયેલા ક્લેશોની નિવૃત્તિનો ઉપાય બે સૂત્રથી સૂત્રકાર કહે છે

सू–ते प्रतिप्रसवहेयाः सूक्ष्माः ॥ १० ॥

સૂત્રાર્થઃ-(ते) તે પૂર્વોક્ત પંચ ક્લેશ (सूक्ष्माः) ક્રિયાયોગથી સૂક્ષ્મ અને પ્રસંખ્યાન અગ્નિથી દગ્ધ થયેલા (प्रतिप्रसवहेयाः) અસંપ્રજ્ઞાત સમાધિદ્વારા[1] તજવા (નિવૃત્ત કરવા) લાયક છે.

અર્થાત્–ક્રિયાયોગથી સૂક્ષ્મ થયેલા ક્લેશો જ્યારે પ્રસંખ્યાન અગ્નિથી દગ્ધબીજતુલ્ય થઈ જાય છે, ત્યારે સમાપ્ત અધિકારવાળું ચિત્ત પોતાની પ્રકૃતિમાં લીન થવાથી, ક્લેશ પણ સાથે સાથે જ અસ્તંગત અર્થાત્ લીન થઈ નિવૃત્ત થઈ જાય છે.

અર્થાત્–પ્રતિપ્રસવ વિના ક્લેશોના નિરોધ માટે બીજા યત્નની અપેક્ષા નથી. ॥ ૧૦ ॥

स्थितानां तु बीजभावोपगतानाम्[2]

सू–ध्यानहेयास्तद्वृत्तयः ॥ ११ ॥

સૂત્રાર્થઃ-(स्थितानाम) જે ક્લેશો ચિત્તમાં સ્થૂલરૂપથી સ્થિત છે, અને તેથી જ (बीजभावोपगतानाम) બીજભાવથી યુક્ત છે અર્થાત્ દગ્ધબીજભાવ નથી, એવા ક્લેશોની જે વૃત્તિઓ છે, (तद्वृत्तयः) તે વૃત્તિઓ (ध्यानहेयाः) ક્રિયાયોગથી સૂક્ષ્મ કરી પ્રસંખ્યાન સંજ્ઞક ધ્યાનથી હેય અર્થાત્ દગ્ધ-બીજતુલ્ય ત્યાગ કરવી ઉચિત છે.

संस्कारोऽन्यसंस्कारप्रतिबंधी" એ પૂર્વપાદના ૫૦ મા સૂત્રથી સમાધિસંસ્કારો, અન્ય સસ્કારના નાશક હોવાથી, મિથ્યા સંસ્કારોનો તત્ત્વજ્ઞના ચિત્તમાં સંભવ નથી. જો જ્ઞાનીને પણ મરણભયરૂપ અભિનિવેશનો નાશ ન થયો, તો જ્ઞાનનું ફળ શું? એ પણ વિચારવા જેવું છે.

૧–પ્રસવ નામ ઉત્પત્તિનું છે. પ્રતિ નામ વિરોધીનું છે–તે પ્રમાણે ઉત્પત્તિના વિરોધી પ્રલયનું નામ પ્રતિપ્રસવ થાય છે. પણ અહીં તો ચિત્તપ્રલયરૂપ અસંપ્રજ્ઞાત યોગનું ગ્રહણ કરવું, એ આશયથી કહે છે કે "અસંપ્રજ્ઞાત-સમાધિદ્વારા" એ પ્રમાણે.

૨–એટલા પાઠનો ભાષ્યકારે સૂત્રના આદિમાં અધ્યાહાર કરેલો છે.

અર્થાત્-જે ક્લેશવૃત્તિઓ સ્થૂલ એટલે ઉદાર છે, તે પ્રથમ ક્રિયા-યોગથી સૂક્ષ્મ કરીને પછી પ્રસંખ્યાન નામના ધ્યાનથી દગ્ધબીજતુલ્ય કરવા લાયક છે.

ભાવ એ છે કે-જેમ વસ્ત્રોનો સ્થૂલ મેલ, પ્રક્ષાલન વિના જ વસ્ત્રોને ખંખેરવાથી જતો રહે છે અને સૂક્ષ્મમેલ, પ્રક્ષાલન વગેરે યત્નથી તથા ક્ષાર સંયોગાદિ ઉપાયથી નિવૃત્ત થઈ જાય છે, તેમ ક્લેશોની સ્થૂલ-વૃત્તિઓ સ્વલ્પ પ્રતિપક્ષવાળી અર્થાત્ સમાધિની અપેક્ષાએ સુકર અને સ્વલ્પ જે પ્રસંખ્યાન, તેનાથી નિવૃત્ત થઈ જાય છે, અને જે સૂક્ષ્મ ક્લેશવૃત્તિઓ છે, તે મહાપ્રતિપક્ષવાળી અર્થાત્ સઘળા કરતાં ઉત્કૃષ્ટ અને દુઃસાધ્ય જે અસંપ્રજ્ઞાતસમાધિ, તેનાથી નિવૃત્ત થઈ જાય છે.[1]

સ્થૂલ ક્લેશોને ક્રિયાયોગથી સૂક્ષ્મ કરવા અને સૂક્ષ્મ થયેલા ક્લે-શોને ધ્યાનથી બાળી નાંખવા તથા બાળી નાંખેલા ક્લેશોને અસંપ્રજ્ઞાત યોગથી સમૂલ નાશ કરવા, એ પરમાર્થ છે. ॥ ११ ॥

आशंका-"જે પદાર્થ જન્માદિ દુઃખદ્વારા પુરુષોને દુઃખિત કરે છે, તે જ ક્લેશ પદના વાચ્ય થઈ શકે છે, બીજા નહિ. તે ધર્મ અને અધર્મ છે. કેમકે તે બંને જ જન્મદ્વારા લોકાંતરમાં ગમન આગમન, સુખ વા દુઃખના હેતુ છે. એ પ્રમાણે અવિદ્યા, રાગ, દ્વેષ વગેરેને ક્લેશ ન કહી ધર્માધર્મને જ ક્લેશ કહેવા ઉચિત છે." એ આશંકાનું વારણ કરે છે:—

सू-क्लेशमूलः कर्माशयो दृष्टाऽदृष्टजन्मवेदनीयः ॥ १२ ॥

સૂત્રાર્થ:-આ જન્મમાં ફલ દેવાવાળો અને મરણ પછી બીજા જન્મમાં ફળ દેવાવાળો ધર્માધર્મરૂપ જે કર્માશય છે, તે ક્લેશમૂલક છે.

(कर्माऽऽशयः) શુભ અશુભ કર્મોના આશયભૂત જે ધર્મ અને અધર્મ[2] છે તે, (क्लेशमूलः) અવિદ્યાદિ ક્લેશમૂલક જ હોય છે. તે કર્માશય કેવો

૧-ભાવ એ છે કે-જેમ વસ્ત્રનો સ્થૂલ મળ, તેને હલાવવાથી અને સૂક્ષ્મ મળ તેને ધોવાથી તથા અત્યંત સૂક્ષ્મ મળ ક્ષાર વગેરેના સંયોગથી નિવૃત્ત થઈ જાય છે, તેમ સ્થૂલ=ઉદાર ક્લેશ, ક્રિયાયોગથી સૂક્ષ્મ કરવા, સૂક્ષ્મ ક્લેશો પ્રસંખ્યાન અગ્નિથી દગ્ધ કરવા અને દગ્ધતુલ્ય અતિ સૂક્ષ્મ થયેલા ક્લેશો અસંપ્રજ્ઞાત યોગથી નિવૃત્ત કરવા.

૨-શુભાશુભ કર્મોના અનુષ્ઠાનથી પેદા થનાર ચિત્તમાં રહેવાવાળું જે એક જાતનું અદૃષ્ટ, તે કર્માશય કહેવાય છે, તેનું નામ ધર્માધર્મ છે. એ જ અભિપ્રાયથી કહે છે. "ધર્માધર્મ" ઇતિ.

છે? તો કે (दृष्टादृष्टजन्मवेदनीयः) કોઈ ધર્માધર્મ દૃષ્ટજન્મ વેદનીય છે, અર્થાત્ કોઈ આ જન્મમાં ફલ દેવાવાળો છે અને કોઈ અદૃષ્ટજન્મવેદનીય એટલે મરણ પછી બીજા જન્મમાં ફલ દેવાવાળો છે.

અર્થાત્ પુણ્ય અપુણ્યસંજ્ઞક જે કર્માશય છે, તે કામ, લોભ, મોહ, ક્રોધદ્વારા[1] જન્ય હોવાથી અવિદ્યાદિ કલેશમૂલક છે. એ પ્રમાણે અવિદ્યાદિ મૂલક જે ધર્માધર્મ છે, તે જ જન્માદિના હેતુ હોવાથી અવિદ્યાદિ કલેશના હેતુ હોવાથી કલેશરૂપ જ છે. પણ કાંઈ ધર્માધર્મ કલેશરૂપ નથી,[2] એમ તાત્પર્ય છે.

અહીં એટલું વિશેષ છે કે, અવિદ્યા તથા અવિવેકરૂપ બે કલેશ તો ધર્મ અને અધર્મ, એ બંનેના કારણરૂપ છે, અને રાગ, કેવલ ધર્મનું જ કારણ છે. એ પ્રમાણે લોભ છે તે પરદ્રવ્ય અપહરણદ્વારા અને મોહ છે તે હિંસાદિદ્વારા કેવળ અધર્મનું જ કારણ છે. એ પ્રમાણે ક્રોધ પણ બ્રહ્મવધાદિદ્વારા અધર્મનું કારણ છે. પરંતુ કોઈ સ્થળે ક્રોધ ધર્મનું પણ કારણ થઈ જાય છે. જેમકે ધ્રુવજીનો ક્રોધ. કેમકે, ધ્રુવજીએ વિમાતા અને પોતાના તાત ઉત્તાનપાદથી અનાદરજન્ય ક્રોધથી કરેલા તપવડે એટલો ધર્મનો લાભ મેળવ્યો કે, હજી લગણ ધ્રુવજી સર્વોપરિ સ્થાનમાં વિરાજમાન થઈ રહેલા છે.

તેમાં જે ધર્મ, અતિ ઉગ્ર પ્રયત્નપૂર્વક અનુષ્ઠિત મંત્ર, તપ, સમાધિ અથવા ઈશ્વર, દેવતા, મહર્ષિ, અથવા મહાનુભાવોના અત્યંત ઉગ્ર આરાધનદ્વારા ઉત્પન્ન થાય છે અને જલદીથી પોતાનું ફળ આપવા ઉદ્યત થઈ આ જન્મમાં ફળ દે છે, તે ધર્મ, દૃષ્ટ જન્મવેદનીય કહેવાય છે. જેમકે[3]

૧–"कामलोभमोहक्रोधप्रसवः" એ ભાષ્યનો અનુવાદ છે. અહીં કામ પદથી રાગ, ક્રોધથી દ્વેષ, લોભ પદથી અભિનિવેશ અને મોહપદથી અવિદ્યા તથા અસ્મિતાનું ગ્રહણ કરવું.

૨–રાગદ્વેષપૂર્વક કર્માનુષ્ઠાનથી પેદા થનાર ધર્માધર્મ જ જન્માદિનું કારણ છે. કાંઈ જ્ઞાનપૂર્વક નિષ્કામ કર્માનુષ્ઠાનથી તે પેદા થનાર નથી. એ પ્રમાણે મુખ્યત્વે કરી સંસારનું કારણ હોવાથી રાગદ્વેષ વગેરે જ કલેશ છે, કાંઈ ધર્માધર્મ નથી, એ તત્ત્વ છે. તે હવે પછીના સૂત્રથી સ્પષ્ટ થશે.

૩–"यथा नंदीश्वरः कुमारो मनुष्यपरिणामं हित्वा देवत्वेन परिणतः" એ ભાષ્યનો અનુવાદ કરતાં દષ્ટજન્મવેદનીય ધર્મનું ઉદાહરણ કહે છે. જેમકે "શિલાદમુનિ" ઇત્યાદિથી.

શિલાદમુનિનાં નંદી નામના કુમારે મહાદેવજીનું અત્યુગ્ર પૂજન કરી મનુષ્યદેહને ત્યાગ કરી તે જ જન્મમાં દેવદેહના લાભથી અમર થયો હતો.[1]

વળી જે અધર્મ, ભીત, વ્યાધિત કૃપણજનોને ક્લેશ દેવાથી વા વિશ્વાસ પ્રાપ્ત[2] પુરુષોને દુઃખ દેવાથી, મહાનુભાવ તપસ્વીઓને અત્યંત ઉગ્ર પીડા દેવાથી ઉત્પન્ન થાય, તે પોતાનાં અનિષ્ટ ફલ તુરત જ દેવામાં ઉન્મુખ થાય છે, માટે તે અધર્મ પણ દૃષ્ટજન્મવેદનીય છે. જેમકે[3] દેવેંદ્રભાવને પામેલો છતાં નહુષ રાજા, પાલખીમાં જોડેલા મહાનુભાવ ઋષિઓને લાત મારવાનો અપકાર કરવાથી અગસ્ત્ય મુનિના શાપદ્વારા જલદી જ દેવદેહનો ત્યાગ કરી અજગર ભાવને પામ્યો હતો.[4]

અદૃષ્ટ જન્મવેદનીય ધર્માધર્મ તો પ્રસિદ્ધ જ છે.[5] એ પ્રમાણે સઘળા ધર્મ અને અધર્મ ક્લેશમૂલક જ છે.

આ સ્થળે એટલું વિશેષ છે કે-જે પુરુષ નારક[6] અર્થાત્ રૌરવાદિ નરકપ્રાપ્ત કરાવનારા પાપનું અનુષ્ઠાન કરે છે, તે પુરુષોને જે અધર્મ ઉત્પન્ન થાય છે, તે દૃષ્ટ જન્મવેદનીય હોતો નથી. કેમકે એમ કદિ પણ સંભવિત હોઈ શકતું નથી કે, આ મનુષ્ય લોકમાં જ હજારો વર્ષ સૂધી ભોગવવા યોગ્ય રૌરવાદિ નરકની પ્રાપ્તિ થાય.

એ રીતે જે ક્ષીણ ક્લેશ યોગી વા જ્ઞાની છે, તેનો ધર્મ પણ અદૃષ્ટ જન્મવેદનીય હોતો નથી. કેમકે તેમના સઘળા ધર્માધર્મ પ્રસંખ્યાનરૂપ અગ્નિથી દગ્ધ થઈ ગયલા હોય છે.

૧–એ કથા શિવપુરાણીય સનત્કુમાર સંહિતાના ૪૫ આદિ અધ્યાયમાં છે.

૨–જે પુરુષે એવો વિશ્વાસ કરી લીધો કે એનાથી મારું કદાપિ અનિષ્ટ નહિ થાય. એવા વિશ્વાસપ્રાપ્ત પુરુષનું અનિષ્ટ કરવું, એ પણ મહા પાપ છે.

૩–"तथा नहुषोऽपि देवानामिन्द्रः स्वकं परिणामं हित्वा तिर्यक्त्वेन परिणतः" એ ભાષ્યનો અનુવાદ કરતાં દૃષ્ટજન્મવેદનીય અધર્મનું ઉદાહરણ કહે છે. "જેમકે દેવેન્દ્રભાવ" ઇત્યાદિથી.

૪–એ મહાભારતના આનુશાસનિક ૧૩ મા પર્વના ૧૦૦ મા અધ્યાયમા પ્રસિદ્ધ છે.

૫–યજ્ઞદાન વગેરેથી પેદા થનાર મૃત્યુ પછી પરલોકમાં સ્વર્ગાદિ ફળ દેનાર ધર્મ અને બ્રાહ્મણવધ વગેરેથી પેદા થનાર મૃત્યુ પછી નરકાદિ ફળ દેનાર અધર્મ; એ બંને અદૃષ્ટજન્મવેદનીય છે. એ આમાં સાર છે.

૬–"तत्र नारकाणां नास्ति दृष्टजन्मवेदनीयः कर्माशयः क्षीणक्लेशानामपि नास्ति अदृष्टजन्मवेदनीयः कर्माऽऽशयः" એ ભાષ્યનો અનુવાદ કરે છે. "જે પુરુષ ઇત્યાદિથી."

કોઈ[1] તો એમ કહે છે કે–"નારકી પુરુષોનો દૃષ્ટ જન્મવેદનીય કર્માશય નથી." એ ભાષ્યનો અર્થ એ છે કે–"જે પુરુષ નરકપતિત છે, તેને સામગ્રીના અભાવથી ત્યાં ધર્માધર્મની ઉત્પત્તિ ન હોવાથી દૃષ્ટ જન્મવેદનીય કર્માશય હોઈ શકતું નથી. પણ જે સ્વર્ગમાં સ્થિત છે, તે તો લીલા માનુષ વિગ્રહ ધારણ કરી પ્રયાગાદિ તીર્થોમાં કર્માનુષ્ઠાનદ્વારા દૃષ્ટ જન્મવેદનીય ધર્મશીલ પણ થઈ શકે છે. તેથી ભાષ્યકારોએ માત્ર નારકીનો નિષેધ કર્યો છે, સ્વર્ગસ્થોનો નહિ ॥ ૧૨ ॥

એવી રીતે ધર્માધર્મને અવિદ્યાદિ કલેશમૂલક પ્રતિપાદન કરી, હવે "ધર્માધર્મ અવિદ્યામૂલક હોવાથી, વિદ્યોત્પત્તિદ્વારા અવિદ્યાનો નાશ થતાં કારણના અભાવથી આગામિ ધર્માધર્મનો સંચય પુરુષને હોઈ શકે નહિ. પરંતુ પૂર્વના અનેક જન્મસંચિત ધર્માધર્મ વિદ્યમાન હોવાથી તત્પ્રયુક્ત આગામિ જન્માદિ અનર્થની નિવૃત્તિ ન હોવાથી, વિદ્યા હોવા છતાં પણ, આગામિ જન્મનો અભાવ કેમ હોઈ શકે ?" એ આશંકાના વારણ અર્થે તેરમા સૂત્રનો આરંભ કરે છેઃ—

सू–सति मूले तद्विपाको जात्यायुर्भोगाः ॥ १३ ॥

સૂત્રાર્થઃ–કલેશ મૂળ અવિદ્યા હોવાથી કર્મોનાં ફળ જાતિ, આયુ તથા ભોગ થાય છે.

(**मूले**) ધર્માધર્માદિનું મૂલભૂત (કારણ) અવિદ્યાદિ કલેશો (**सति**) વિદ્યમાન હોવાથી જ (**तद्विपाकः**) તે ધર્માધર્મનું ફળ થાય છે, અન્યથા નહિ. તે વિપાક અર્થાત્ કર્મોનું ફળ ત્રણ પ્રકારનું છે. (**जात्यायुर्भोगाः**) જાતિ= જન્મ વા દેવ મનુષ્યત્વાદિ ઉત્તમ મધ્યમ જાતિ; આયુ=જીવનકાળ અર્થાત્ કેટલોક વખત દેહની સાથે પ્રાણોનો સંબંધ; ભોગ=ઇંદ્રિયાદિદ્વારા સુખ દુઃખ ભોગાત્મક ચિત્તની વૃત્તિ.[2]

૧–વાચસ્પતિમિશ્રની વ્યાખ્યાનુસાર પૂર્વોક્ત ભાષ્યના અર્થનું નિરૂપણ કરી, હવે વિજ્ઞાનભિક્ષુકૃત અર્થનું પ્રતિપાદન કરે છે, "કોઈ તો" ઇત્યાદિથી.

૨–આ ત્રણમાંથી સુખાદિ ભોગ છે તે મુખ્ય ફળ છે અને જાતિ તથા આયુ એ બંને તેને માટે થતાં હોવાથી ગૌણ ફળ છે; કેમકે જો ભોગ ઉત્તમ થવાનો હોય તો દેવત્વાદિ ઉત્તમ જાતિ તથા અધિક આયુનો લાભ અવસ્ય થાય અને જો મંદ ભોગ થવાનો હોય તો હીન જાતિ વા હીન આયુનો લાભ પણ અવસ્ય થાય.

અર્થાત્–અવિદ્યાદિ ક્લેશો હોવાથી જ આ ધર્માધર્મ, પોતાના ફળના જનક થાય છે, કાંઈ ઉચ્છિન્ન ક્લેશ મૂળથી નહિ.[૧]

જેમ તુષરૂપ[૨] સહકારી કારણથી સંબદ્ધ અને અદગ્ધ બીજભાવ[૩]-વાળા જ શાલિતંડુલ (ડાંગર) પોતાના અંકુર ઉત્પાદનમાં સમર્થ હોય છે, અને તુષરહિત તથા દગ્ધ બીજભાવવાળા સમર્થ હોતા નથી; તેમ અવિદ્યાદિ ક્લેશરૂપ સહકારી કારણથી સંબદ્ધ થયેલા જ ધર્માધર્મ પોતાનું ફળ આપવામાં સમર્થ હોય છે, પણ અપનીત ક્લેશ[૪] વા પ્રસંખ્યાન અગ્નિથી દગ્ધ બીજવાળા સમર્થ હોતા નથી.

ભાવ એ છે કે–જેમ જળથી સીંચાયેલી ભૂમિમાં વાવેલાં બીજ ઉગી નીકળી પોતાનાં ફળ આપે છે, તેમ અવિદ્યાદિ ક્લેશરૂપી જળથી સીંચાયેલી ચિત્તભૂમિમાં જ પુણ્ય પાપરૂપી બીજ વવાયેલાં અંકુરિત થઈ પોતાનાં સુખદુઃખ વગેરેનાં ફળ આપે છે, અન્યથા કદિ નહિ.

એવી રીતે જેમ જલસિંચનરૂપ સહકારી કારણના અભાવથી ક્ષેત્રમાં વાવેલાં બીજ પોતાનાં ફળ દેતાં નથી; તેમ સહકારી ભૂત અવિદ્યાદિના અભાવથી અનંત સંચિત ધર્માધર્મ પણ પોતાનાં ફળ દેતાં નથી. તે પ્રમાણે સંચિત ધર્માધર્મનો જ્ઞાનથી નાશ થવાથી તત્પ્રયુક્ત આગામિ જન્માદિકનો નાશ સહજ સંભવે છે.

એથી જ ભગવાને "**ज्ञानाग्निः सर्वकर्माणि भस्मसात्कुरुते तथा**" એ વાક્યથી પ્રસંખ્યાન અગ્નિને સઘળા ધર્માધર્મનો દાહક કહેલો છે.

અનંત સંચિત કર્મોનો ક્ષણવારમાં નાશ કરવાથી જ "**नास्ति योगसमं फलम्**" એ વચનથી યોગને સઘળાથી બળવાન્ કહેલો છે.[૫]

૧–જ્ઞાનથી રાગાદિ ક્લેશરૂપ મૂળ (કારણ) જેનુ ઉચ્છિન્ન (નષ્ટ) થઈ ગયું છે, તે ધર્માધર્મ ઉચ્છિન્ન ક્લેશ મૂળ છે.

૨–તુષ એટલે ડાંગરનાં ફોતરાં.

૩–ફોતરું કાયમ હોવા ઉપરાંત પ્રસ્વેદાદિદ્વારા જેનો બીજભાવ દગ્ધ થઈ ગયાં ન હોય, એવો એનો અર્થ છે.

૪–યોગાભ્યાસથી જેનાં રાગાદિ ક્લેશરૂપ સહકારીકારણ અપનીત=દૂર થઈ ગયા છે તે ધર્માધર્મ "અપનીત ક્લેશ" કહેવાય છે.

૫–જ્યારે પ્રારબ્ધ કર્મનો પણ નાશ કરવામાં યોગ સમર્થ છે ત્યારે બીજાના નાશમાં હોય તેમાં શું કહેવું? જે પ્રકારે પ્રારબ્ધ કર્મનો નાશ યોગથી થાય છે તે જ પ્રકાર જીવન્મુક્તિ વિવેકમાં જિજ્ઞાસુએ જોવો.

હવે[1] અહીં પ્રસંગથી એ વિચાર કરવામાં આવે છે કે–"શું, એક કર્મ એક જન્મનું કારણ હોય છે? વા એક કર્મ અનેક જન્મનું કારણ હોય છે?" બીજો વિચાર એ છે કે–"શું અનેક કર્મ અનેક જન્મને નિષ્પાદન કરે છે, વા અનેક કર્મ એક જન્મને જ ઉત્પન્ન કરે છે?"

જો એક જ કર્મ આગામી એક જન્મનો આરંભ કરે છે, એ પ્રથમ પક્ષ માનવામાં આવે, તો અનાદિકાળથી અનેક જન્મોવડે સંચિત ભોગાવશિષ્ટ અસંખ્ય કર્મ અને વર્ત્તમાન કાળમાં અનુષ્ઠિત કર્મના ફલનો ક્રમ નિયત ન હોવાથી લોકોના, વિશ્વાસના અભાવથી કર્મમાં પ્રવૃત્તિ થશે નહિ, પરંતુ તે પ્રવૃત્તિનો અભાવ કોઇને અભિમત નથી. કેમકે જ્યાં સૂધી જીવન રહે ત્યાં સૂધી શુભ કર્માનુષ્ઠાન કરવું, એમ શાસ્ત્ર ઉપદેશ કરે છે. અર્થાત્ કર્મ ત્રણ પ્રકારનાં છે. એક સંચિત[2]–જે પૂર્વે અનેક જન્મોમાં નિષ્પાદિત કરેલાં સ્થિતિરૂપે હોય છે. બીજું પ્રારબ્ધ[3] કર્મ–જે એ જ કર્મોમાંથી કાઢી લીધેલાં તથા વર્ત્તમાન શરીર અને ભોગાદિના હેતુરૂપ છે. અને ત્રીજું આગામી કર્મ–જે આ વર્ત્તમાન દેહદ્વારા આગામી ફલ માટે અનુષ્ઠિત કરાય છે. એ પ્રમાણે જો એમ જ મનાય કે એક જ કોઈ કર્મ ઉત્તર કાલિક એક જન્મનો આરંભ કરે છે, તો કોઈ પુરુષની આગામી પુણ્યના અનુષ્ઠાનમાં પ્રવૃત્તિ થશે નહિ. કેમકે એવો તેને નિશ્ચય નથી કે પ્રથમ અમુક કર્મ ફળ દેશે. પણ સંચિત કર્મોમાંથી જ કોઈ એક કર્મ, ઉત્તર જન્મ દેશે, એ જ તેની સંભાવના છે. એ પ્રમાણે એ પણ સંભવિત હોઈ શકે છે કે–પૂર્વ જન્મમાં કોઈ પાપનું અનુષ્ઠાન થયું હોય તો વર્ત્તમાનકાલિક પુણ્યાનુષ્ઠાન પણ નષ્ટ થઈ જશે, તેથી પુણ્યાનુષ્ઠાનને નિષ્ફળ જાણી લોકોની પ્રવૃત્તિ શુભ કર્મમાં થશે નહિ.[4]

૧–અહી ભાષ્યકારોએ "तत्रेदं विचार्यते किमेक कर्मैकस्य जन्मनः कारणम्" ઇત્યાદિ ગ્રંથથી વિચારપૂર્વક એક ભવિકવાદનું નિરૂપણ કર્યું છે, તેના અનુવાદનો આરંભ કરે છે, "હવે" ઇત્યાદિથી.

૨–અર્થાત્–જે કર્મોએ હજી ફળ આપ્યું નથી અને અવશિષ્ટ પડી રહેલાં છે, તે સંચિત કહેવાય છે.

૩–અર્થાત્–જે કર્મોએ પોતાનું ફળ દેવાનો આરંભ કર્યો છે, તે પ્રારબ્ધ કહેવાય છે.

૪–વર્ત્તમાન કાળમાં કરેલાં પુણ્ય આગામી જન્મનો આરંભ કરશે વા સંચિતમાંથી જ કોઇએક કર્મ આગામી જન્મનું આરંભક થશે, એ સંદેહથી પુરુષને શુભકર્મ કરવામાં પ્રવૃત્તિ થશે નહિ, એ તત્ત્વ છે.

એ પ્રમાણે "એક જ કર્મ આગામી અનેક જન્મોનું કારણ છે." એવો બીજો પક્ષ પણ ઠીક નથી. કેમકે અનેક સંચિત વા આગામી કર્મોમાંથી કોઈ એક જ કર્મ, અનેક જન્મ હેવાથી અવશિષ્ટ કર્મ નિષ્ફળ થઈ જશે, અને એ કર્મોને ફલ આપવાનો અવસર પણ મળશે નહિ. એ પ્રમાણે વિફલ જાણી આગામી કર્મોમાં પ્રવૃત્તિના અભાવથી[1] એ બીજો પક્ષ પણ અનિષ્ટ છે.[2]

વળી "અનેક કર્મ અનેક જન્મનાં કારણ છે" એ ત્રીજો પક્ષ પણ ઠીક નથી. કેમકે એ અનેક કર્મ એકજ કાળમાં અનેક જન્મ આપે, એમ તો સંભવતું નથી, પણ ક્રમેક્રમે આપે એ સંભવે છે. એ પ્રમાણે એક કર્મથી એક જ જન્મ થાય, એ પ્રથમ પક્ષજ ફલિત થાય છે, પરંતુ તે પ્રથમ પક્ષ પણ કથિત દોષવડે ગ્રસ્ત હોવાથી અસંગત જ છે.

એથી[3] જન્મથી માંડી મરણપર્યંત જે અસંખ્ય, વિચિત્ર અને ગુણપ્રધાનભાવથી રહેલા જેટલા ધર્માધર્મસમૂહ, તે સઘળા જ મરણ-કાળમાં અભિવ્યક્ત થઈ એક જ કાળમાં એક સાથે મળી આગામી એક જ જન્મનો આરંભ કરે છે, અનેક જન્મનો આરંભ કરતા નથી, એ છેવટનો પક્ષ જ સમીચીન છે.

અર્થાત્-મરણકાળની પૂર્વે બળવાન્ પ્રારબ્ધકર્મરૂપ પ્રતિબંધકના બળથી સંચિત કર્મોની, પોતાના ફળને આપવા સારુ અભિવ્યક્તિ (ઉપસ્થિત) થતી નથી, અને મરણકાળ સમયે પ્રતિબંધકના અભાવથી જેટલાં સંચિતકર્મ હોય છે, તે સઘળાં જ ઉપસ્થિત થઈ જાય છે.[4]

તે મરણ, વિશેષાભાવથી[5] સઘળાંજ અપ્રદત્ત ફળવાળાં કર્મોનું[6]

૧–આગામી પાપોવડે સંચિત પુણ્યનો નાશ હોવાની સંભાવનાથી પણ પુણ્યાનુષ્ઠાનમાં પ્રવૃત્તિ નહિ થશે, એ પણ જાણવું.

૨–જ્યારે પ્રથમ પક્ષમાં "એક કર્મ એક જન્મનું કારણ" હોવાથી જ કર્માનુષ્ઠાનમાં પુરુષોનો વિશ્વાસાભાવ કહેલો છે, તો એક કર્મને અનેક જન્મનું કારણ માનવામાં પુરુષોને અવિશ્વાસ થાય, તે પ્રત્યક્ષસિદ્ધ છે.

૩–હવે "तस्माज्जन्मप्रायेणान्तरे कृतः" ઈત્યાદિ ભાષ્યનો અનુવાદ કરતાં અંતિમપક્ષનો સિદ્ધાંત કહે છે, "એથી" ઇત્યાદિથી.

૪–આ ઉપરથી મરણકાળ જ સંચિતકર્મોને ફલોન્મુખ કરે છે.

૫–આ કર્મ ઉપસ્થિત હો, અને આ ન હો, એવી રીતના વિશેષ કારણના અભાવથી.

૬–જે કર્મોએ પોતાનાં ફળ હજી સુધી દીધાં નથી, તેનું નામ "અપ્ર-દત્ત ફળ" કહેવાય છે.

અભિવ્યંજક થાય છે; કાંઈ એક બે કર્મોનું અભિવ્યંજક થતું નથી. કેમકે નિમિત્તકારણની સમાનતાથી એકની અભિવ્યક્તિ થવી અને એકની ન થવી, એ કહેવું યુક્તિવિરુદ્ધ છે. શું,[1] એ કોઈ દિવસ સંભવિત હોઈ શકે, કે પ્રદીપની સન્નિધિની સમાનતા હોય, તો પાસેના ઘટનો પ્રકાશ થાય અને પાસેના પટનો પ્રકાશ ન થાય? એવી રીતે મરણ સમયે પ્રતિબંધકના અભાવથી સઘળાં જ કર્મો પરસ્પર એકઠાં થઈ પ્રધાન-ગૌણ[2] ભાવને પામેલાં તે કર્મ, ઉત્તરકાલમાં એક જ જન્મનો આરંભ કરે છે, પણ અનેક જન્મનો આરંભ કરતાં નથી, એ વાત સિદ્ધ થાય છે.

મિશ્રિત થયેલાં અનેક કર્મ જેમ આગામી જન્મનો આરંભ કરે છે, તેમ આ શરીરના આયુષ્યનો અને આયુષ્યમાં હોવાવાળા સુખદુઃખના ભોગનો પણ આરંભ કરે છે.

તેટલા માટે આ કર્માશય, જન્મ, આયુષ્ય અને ભોગ એ ત્રણ ફળનું કારણ હોવાથી "ત્રિવિપાક" કહેવાય છે; અને એક જન્મ આપવાથી તે કર્માશય "એકભવિક"[3] કહેવાય છે.

આ[4] એકભવિક મત યોગ્ય નથી. કેમકે એ કદી પણ સંભવિત હોઈ શકતું નથી કે, સ્વર્ગસાધન જ્યોતિષ્ટોમાદિક શુભ કર્મ અને નરકસાધન બ્રાહ્મણવધાદિ અશુભ કર્મ, એ બંને મળીને એક જ ઉત્તમ વા મધ્યમ જન્મનો આરંભ કરે છે. કેમકે બે વિરુદ્ધ ફળનું એક કાળે હોવું યુક્તિથી અસંબદ્ધ છે.

વળી એમ માનવાથી વેદ સાથે પણ વિરોધ આવશે. કેમકે સામવેદીય

૧–મરણકાલ જ સઘળાં કર્મોની ઉપસ્થિતિમાં નિમિત્ત કારણ છે, તો પછી 'આ કર્મની ઉપસ્થિતિ હોય' અને 'આ કર્મની ન હોય' એ કહેવું અયુક્ત છે, તે જ દૃષ્ટાંતથી સ્ફુટ કરે છે, "શું" ઇત્યાદિથી.

૨–જે કર્મ અધિક હોવાથી અંકુરિત થઈ પોતાનાં ફળ દેવામાં સદ્યઃ-ઉન્મુખ હોય છે તે પ્રધાન છે, અને જે કર્મ કાંઈક વિલંબથી ફળ દેવાવાળાં છે, તે ગૌણ છે. એ બંનેમાંથી પ્રધાનના અનુસારે જન્મનો લાભ થાય છે. એ સાર છે.

૩–"ભવ" નામ જન્મનું છે. જે કર્માશયથી એક જ ભવ કહેતાં જન્મ થાય છે, તે કર્માશય "એકભવિક" કહેવાય છે.

૪–હવે તે એકભવિક મત ઉપર ભાષ્યનો શ્રુતિ વગેરેની સંગે જે વિરોધ છે, તેના પરિહારાર્થે શ્રી સ્વામીજી સંક્ષિપ્ત સમાલોચના કરે છે, "અગર જો કે" ઇત્યાદિથી.

છાંદોગ્ય ઉપનિષદ્‌માં એવું લખેલું છે કે, જે પુરુષ ઇષ્ટાપૂર્ત યજ્ઞનું અનુષ્ઠાન કરે છે, તે ધૂમાદિ માર્ગદ્વારા ચંદ્રલોકમાં જઈ કર્મફલનો ભોગ કર્યા પછી સંચિત કર્મને લીધે મનુષ્યલોકમાં ફરીથી જન્મ ધારણ કરે છે.[૧] તેમાં જે પુરુષોનું સંચિત પુણ્યકર્મ અવશિષ્ટ છે, તે રમણીય બ્રાહ્મણાદિ જન્મને પામે છે; અને જેનું સંચિત પાપકર્મ અવશિષ્ટ છે, તે ખરાબ શૂદ્ર વગેરેની યોનિમાં ઉત્પન્ન થાય છે.[૨]

એ પ્રમાણે જો મરણ સમયમાં સઘળાં કર્મો ઉપસ્થિત થઈ એક જ જન્મ દેશે, તો ચન્દ્રલોકમાં ભોગ ભોગવવાને ઉપયોગી જન્મ પછી મનુષ્ય લોકમાં ફરી જન્મ લેવાનું બોધન કરવાવાળી શ્રુતિ અસંગત થશે. કેમકે "સઘળાં કર્મ મળી એક જન્મ દે છે." એ મત માનીએ તો કોઈ કર્મ શેષ રહેલું જ નથી કે, જેનાથી મનુષ્યલોકમાં ફરી જન્મ થાય.[૩]

અને આપસ્તંબ મુનિએ તો "वर्णा आश्रमाश्च स्वकर्मनिष्ठाः प्रेत्य कर्मफलमनुभूय ततः शेषेण विशिष्टदेशजातिकुलरूपायुः श्रुतवृत्तवित्तसुखमेधसो जन्म प्रतिपद्यंते" એ વચનથી સ્પષ્ટ રીતે જ શેષ કર્મનો સદ્‌ભાવ કહેલો છે.

"સ્વકર્મનિષ્ઠ જે વર્ણી (વર્ણવાળાં) વા આશ્રમી છે, તે પરલોકમાં પોતાનાં કર્મફળનો ઉપભોગ કરીને પછી અવશિષ્ટ સંચિત કર્મને લીધે વિશિષ્ટ દેશમાં ઉત્તમ જાતિ, કુળ, રૂપ, આયુષ્ય, અધ્યયન, આચાર, ધન, સુખ, બુદ્ધિવાળા થઈ જન્મ ધારણ કરે છે."એ આપસ્તંબમુનિના વચનનો અર્થ છે.

એવી રીતે શ્રુતિ સ્મૃતિની સાથે વિરોધ હોવાથી એ મત અસંગત છે, તોપણ "એકભવિક" વાદને (क्वाचित्कत्व) કોઈ ઠેકાણે માન્ય કરવામાં આવ્યો છે, તેથી તેને નિર્દોષ જાણવો. અર્થાત્–શાંતિ પૌષ્ટિક કર્મનું ફળ વૃષ્ટિ માટે કારીરેષ્ટિ વગેરેનું ફળ આ જ જન્મમાં મળે છે એવા સ્થળમાં (દ્રષ્ટ જન્મવેદનીય નિયત વિપાક સ્થળમાં)જ એકભવિક વાદનો સ્વીકાર છે, સર્વ ઠેકાણે નહિ.[૪]

જો કે વિજ્ઞાન ભિક્ષુએ "જો એક ભવિકવાદ મનાશે, તો સ્વર્ગ વા નરકમાં બીજા ધર્માધર્મની ઉત્પત્તિના અભાવથી અને પ્રાચીન સંચિત

૧–"यावत् संपातमुषित्वा अथैतमेवाध्वानं पुनर्निवर्तन्ते એ છાંદોગ્ય શ્રુતિ છે.

૨–"तद् य इह रमणीयचरणा" ઇત્યાદિ શ્રુતિનો એ અનુવાદ છે.

૩–એ પ્રમાણે સઘળાં કર્મ મળી એક જન્મ દેતાં નથી, પરંતુ કેટલાંક દે છે અને કેટલાંક અવશિષ્ટ રહે છે, એ માનવું યોગ્ય છે; નહિ તો પાછો ફરીથી જન્મ થશે નહિ.

૪–એ સઘળું આ સૂત્રના અગ્રિમ ભાષ્યના અનુવાદમાં સ્ફુટ થશે.

કર્મોના ભોગની સમાપ્તિ હોવાથી, સ્વર્ગી વા નારકીનો ફરી જન્મ થશે નહિ." એવી રીતની આશંકા કરીને પછી "સ્વર્ગ દેવાવાળાં કર્મ, સ્વર્ગભોગ પછી બ્રાહ્મણાદિ જન્મ દેવામાં સમર્થ છે અને નરક દેવાવાળાં કર્મ, નરકભોગ પછી સ્થાવરાદિ જન્મ દેવામાં સમર્થ છે, એ પ્રમાણે તેનું જ બ્રાહ્મણ–સ્થાવરાદિયોનિ પર્યંત ફળ હોવાથી એ દોષ નથી." એ પ્રકારે સમાધાન કરેલું છે, તે શારીરક ભાષ્યના તૃતીયાધ્યાયસ્થ રંહતિ-પાદના શાંકરભાષ્યનું અધ્યયન નહિ કરવાથી કહેલું છે. કેમકે તે સ્થળે "જો સ્વર્ગના હેતુભૂત કર્મશેષથી જ બ્રાહ્મણાદિ જન્મનો લાભ મનાશે, તો પછી ચંદ્રલોકથી પ્રત્યાગત પુણ્યાચરણી પુરુષોને માટે બ્રાહ્મણાદિ જન્મ અને પાપાચરણી પુરુષોને માટે ચાંડાલાદિ જન્મ પ્રતિપાદક વેદવાક્ય કદર્થિત (નકામા) થઈ જશે. કેમકે સ્વર્ગહેતુરૂપ પુણ્યના શેષથી જ જો ફરી મનુષ્યલોકમાં જન્મે છે, તો સ્વર્ગથી આવેલા પુરુષોની બ્રાહ્મણાદિ જાતિ હોવી જોઇએ, પણ ચાંડાલાદિ નહિ.[1]" એવી રીતે વિજ્ઞાન ભિક્ષુના સમાધાનનો સમૂલ નાશ કર્યો છે, તેથી પૂર્વોક્ત સમાધાન ઉત્તમ છે, એમ જાણવું.

અહીં એટલું વિશેષ એ પણ જાણી લેવું કે, દૃષ્ટ જન્મ વેદનીય (વર્તમાન જન્મ)ના જે ધર્માધર્મ છે, તે કોઈ સ્થળે એકલા ભોગજનક હોવાથી એકવિપાક હોય છે; અને કોઈ સ્થળે આયુષ્ય અને ભોગરૂપ બે ફળ દેવાથી દ્વિવિપાક હોય છે. જેમ નંદી નામના બ્રાહ્મણે મહાદેવની આરાધનાથી જે ધર્મ સંપાદન કર્યો હતો, તે ધર્મ આયુષ્ય તથા દિવ્ય ભોગ આપવાવાળો હોવાથી દ્વિવિપાક છે;[2] અને નહુષ રાજાએ ઋષિઓનો અપકાર કરવાથી જે અધર્મ સંપાદન કર્યો હતો, તે સર્પરૂપ જન્મ આપવાવાળો હોવાથી એકવિપાક છે.[3]

એમ હોવાથી, એમ સિદ્ધ થયું કે અદૃષ્ટ જન્મ વેદનીય (બીજા જન્મ)

૧–વેદાંતદર્શનના ત્રીજા અધ્યાયના પહેલા પાદના આઠમાં સૂત્રનું ભાષ્ય જુઓ.

૨–નંદી નામના બ્રાહ્મણનો માત્ર આઠ વર્ષનો જીવનકાળ લખેલો હતો. પણ તેને તપ એવું કર્યું કે તે અમર થયો. તેથી અમરપણાના લાભથી આયુષ્યનો લાભ તથા દિવ્યભોગનો લાભ તેને થવાથી, એ ધર્મ, બે ફળ દેવાવાળો થયો, એ ભાવ છે.

૩–નહુષ રાજાનાં જન્મ તથા આયુષ્ય તો જે કર્મદ્વારા તે ઇંદ્ર બન્યો હતો, તે કર્મોએ જ દીધાં હતાં, પણ અત્યુગ્ર પાપથી કેવળ દુઃખભોગ જ થયેલો હતો, તેથી એ ધર્મ, એક ફળવાળો છે, એ સાર છે.

-ના ધર્માધર્મ ત્રિવિપાક છે,[1] અને વર્તમાન જન્મના ધર્માધર્મ કોઈ સ્થળે દ્વિવિપાક અને કોઈ સ્થળે એકવિપાક હોય છે. અહીં એટલું વિશેષ, બીજું એ પણ જાણી લેવું કે, જેમ ધર્માધર્મને એકભવિક કહેલો છે, તેમ વાસનાને એકભવિક જાણવી નહિ. કેમકે વાસના જો એકભવિક માનવામાં આવશે, તો જે પુરુષ જન્મ પછી પશુજન્મને પામશે, તે પશુજાતિના ભોગને ભોગવી નહિ શકે. કેમકે પૂર્વે મનુષ્યજન્મમાં પશુભોગના અનુભવનો અભાવ હોવાથી તેને પશુભોગની વાસનાનો અભાવ છે, અને વાસના વિના ભોગનું હોવું અસંભવિત છે.[2] એ પ્રમાણે પૂર્વજન્મમાં જેનો અનુભવ કર્યો છે, તેજ અનુભવજન્યવાસનાથી જ ઉત્તર જન્મમાં ભોગ થશે, એવો નિયમ નથી. પરંતુ અનંત વાસનાથી ચિત્ત ચિત્રિત હોવાથી જેવો આગળ જન્મ થશે, તેવીજ પૂર્વની કોઈ જન્મની વાસનાથી ઉત્તર જન્મમાં ભોગ થાય છે, એમ જાણવું.[3] એ અભિપ્રાયથી જ ભાષ્યકારે-

"क्लेशकर्मविपाकानुभवनिमित्ताभिस्तु वासनाभिरनादिकालसंमूर्च्छितमिदं चित्तं चित्रीकृतमिव सर्वतो मत्स्यजालं ग्रंथिभिरिवाततमित्येता अनेकभवपूर्विका वासनाः"[4]

એ વાક્યથી વાસનાઓને અનેક જન્મપૂર્વક કહેલી છે.

જો એમ કહો કે-વાસનાથીજ ભોગ થાય છે, તો આદિ જન્મમાં કોઈ પણ વાસનાના અભાવથી ભોગ ન થવા જોઇએ. તેનો ઉત્તર એજ કહેવાશે કે-વાસના અનાદિ છે. ભાષ્યકારોએ પણ એજ આશયથી વાસનાને અનાદિ કહેલી છે. જેમ-

---

૧-જન્મ, આયુ, ભોગ એ ત્રણે ફળને આપનાર છે.

૨-વાસના નામ સંસ્કારનું છે. પ્રથમ અનુભવ, પછી સંસ્કાર, પછી સ્મરણ અને પછી પ્રવૃત્તિ એ ક્રમ છે.

૩-અર્થાત્ જ્યારે પુરુષનો પશુજન્મ થશે, તો તે પહેલાં કોઈ પશુજન્મની વાસનાથીજ તેને પશુના ભોગમાં પ્રવૃત્તિ થશે. એ પ્રમાણે અનેક પૂર્વજન્મના અનુભવજન્ય વાસનાજ ભોગનો હેતુ છે; પણ અવ્યવહિત પૂર્વજન્મના અનુભવજન્ય વાસના માત્ર નહિ, એ સિદ્ધ થયું.

૪-ક્લેશ, કર્મ તથા ફળના અનુભવરૂપ નિમિત્તથી પેદા થયેલી વાસનાથી આ ચિત્ત એવું સંમૂર્ચ્છિત તથા ગ્રંથિત અને ચિત્રિત છે કે, જેમ માછલાં પકડવાની જાળ ચારે તરફથી અનેક ગાંઠોથી ગ્રથિત હોય છે, તેમ. એથી કરી અનેક જન્મની એ વાસના ચિત્તમાં સ્થિત છે, કાંઈ એક જન્મની નહિ, એવો ભાષ્યનો અર્થ છે.

"ये संस्काराः स्मृतिहेतवस्ता वासनास्ताश्चानादिकालीनाः"[1]

એવી રીતે[2] સઘળા ધર્માધર્મ એકભવિક છે, એમ પણ નથી, કિંતુ જે નિયતવિપાક ધર્માધર્મ છે, તે જ એકભવિક છે. અર્થાત્–ધર્માધર્મ બે પ્રકારના છે. એક તો નિયતવિપાક એટલે અવશ્ય જ ફલ દેવાવાળો અને એક અનિયતવિપાક એટલે નિયમસર ફલ ન દેવાવાળો. તેમાં જે ધર્માધર્મ નિયતવિપાક છે, તેમાં એવો નિયમ છે કે, સઘળા મળી ઉત્તરકાલિક એક જન્મ દે છે, પણ કાંઈ અદૃષ્ટજન્મવેદનીય અનિયત વિપાક સ્થળમાં નહિ. કેમકે જે ધર્માધર્મ અદૃષ્ટજન્મવેદનીય અનિયતવિપાક છે, તેની ત્રણ ગતિ થાય છે. એક તો એ છે કે–"कृतस्याऽविपक्कस्य नाशः" અર્થાત્ કરેલાં કર્મોનો ફળ દીધા વિના નાશ થઈ જવો. બીજો એ છે કે–"प्रधानकर्मण्यावापगमनम्" કોઈ પ્રધાન કર્મની સાથે મળીને જ ફળ દેવું, સ્વતંત્ર નહિ. ત્રીજો એ કે–"नियतविपाकप्रधानकर्मणाऽभिभूतस्य चिरमवस्थानम्" એટલે અવશ્ય ફળ દેવાવાળા પ્રધાન કર્મથી અભિભૂત થઈ લાંબા કાળ સૂધી પડી રહેવું તે.

એ ત્રણે ગતિઓમાંથી કરેલા "કર્મનો ફળ દીધા વિના નાશ થઈ જવો" તે એ છે કે, શુકલ કર્મના[3] ઉદયથી ફળ આપ્યા વિના કૃષ્ણ કર્મનો નાશ થઈ જવો. અર્થાત્ જે પુરુષે તપ, વેદાધ્યયન વગેરે શુકલ કર્મનું અનુષ્ઠાન કરેલું છે,તેના પાપનો નાશ ફળ દીધા વિના જ થઈ જાય છે. એ પ્રમાણે આ પાપકર્મ ફળ આપ્યા વિના નાશ થઈ જતું હોવાથી તે અનિયતવિપાકરૂપ છે.

શુકલકર્મથી કૃષ્ણકર્મનો નાશ થઈ જાય છે, એવા પોતાના કથનની પુષ્ટિ માટે ભાષ્યકારોએ;–"द्वे द्वे ह वै कर्मणी वेदितव्ये पापकस्यैको राशिः पुण्यकृतोऽपहन्ति तदिच्छस्व कर्माणि सुकृतानि कर्तुमिहैव ते कर्म कवयो वेदयन्ति" એ શ્રુતિપ્રમાણ આપેલું છે.

તેનો અર્થ એ છે કે–(पापकस्य) પાપી પુરુષને (वेदितव्ये) ભોગવવા લાયક જે (द्वे द्वे) બે પ્રકારનાં[4] કર્મ છે, તે બંનેનો (पुण्यकृत

૧–જે સ્મૃતિના હેતુ ભૂત સંસ્કાર છે, તે વાસનાપદ વાચ્ય છે,અને અનાદિ છે, એમ ભાષ્યકારનું કહેવું છે.

૨–પાછળ કહેલું હતું કે, એકભવિકવાદ "કવાચિત્ક" છે, તે આગળ કહેવાશે. તે કહેવાનો હવે પ્રારંભ કરે છે. "એવી રીતે" ઇત્યાદિથી.

૩–ક્રિયાયોગથી અથવા મૈત્રી આદિ ભાવનાથી પેદા થનાર જે ધર્મ તે શુકલ કહેવાય છે. બ્રહ્મહત્યાદિથી પેદા થનાર જે પાપ તે કૃષ્ણ છે.

૪–એક કૃષ્ણ, બીજું શુકલકૃષ્ણ.

एको राशिः) તપ વેદાધ્યયનાદિ પુણ્યકર્મજન્ય જે એક શુક્લધર્મસમૂહ છે, તે (अपहंति) નાશ કરી દે છે. (तत्) તે હેતુથી (सुकृतानि कर्माणि कर्तुमिच्छस्व) ધર્મમાત્રનાં જનક જે વેદાધ્યયનાદિ શુક્લકર્મ, તે કરવાની ઇચ્છા કર. કેમકે (इहैव ते कर्म कवयो वेदयन्ति) આ મનુષ્યલોકમાં જ તમારે માટે કર્માનુષ્ઠાન પ્રતિપાદન કરેલું છે, અન્ય લોકમાં નહિ. એવો વિદ્વાન્ લોકો ઉપદેશ કરે છે.

એ શ્રુતિથી એ જણાઈ આવ્યું કે, શુક્લકર્મના ઉદયનો એવો અપૂર્વ પ્રભાવ છે કે, તે ઉત્પન્ન થતાં જ કૃષ્ણ તથા શુક્લકૃષ્ણનો નાશ કરી દે છે.

બીજી ગતિ એમ છે કે,[1] "પ્રધાન કર્મમાં ગૌણ કર્મ મળી જાય છે." અર્થાત્ યજ્ઞગત પશુહિંસાદિનું સ્વતંત્ર દુઃખરૂપ ફળ ન થતાં યજ્ઞજન્ય સ્વર્ગફળની સાથે જ ફળ થાય છે.[2]

જ્યોતિષ્ટોમાદિ કર્મજન્ય સ્વર્ગમાં હિંસાપાપજન્ય દુઃખનો સંસર્ગ રહે છે, તે ભાષ્યકારે, પંચશિખાચાર્યના વચનથી સ્પષ્ટ કરેલું છે. જેમ—

"स्यात् स्वल्पः संकरः सपरिहारः सप्रत्यवमर्षः कुशलस्य नाऽपकर्षायाऽलं कस्मात्? कुशलं हि मे बह्वन्यदस्ति, यत्राऽयमावापं गतः स्वर्गेऽपि अपकर्षमल्पं करिष्यति"[3] इति।

૧–દ્વિતીય ગતિ સ્પષ્ટ કરે છે.

૨–ભાવ એ છે કે—સ્વર્ગસાધન જ્યોતિષ્ટોમાદિ યજ્ઞમાં જે હિંસા કરાય છે, તે પ્રથમ તો યજ્ઞનો ઉપકાર કરે છે; કેમકે હિંસારૂપ અંગવગર અંગીભૂત યજ્ઞની સાંગતા થતી નથી. અને બીજું ફળ, હિંસાનું દુઃખ દેવું, એ છે. પણ આ હિંસા સ્વતંત્ર પાપરૂપ ફળ દેઈ શકતી નથી, પણ જે યજ્ઞનું તે અંગ છે, તે પ્રધાનરૂપ યજ્ઞના ફળ સમયે જ સાથે સાથે દુઃખ દે છે. તેથી કરીને જ સ્વર્ગવાસીઓને સર્વદા કોઈ ને કોઈ દુઃખ થતું જ રહે છે, તેનું નામ પ્રધાન કર્મમાં આવાપગમન (મળી જવું) છે.

૩–જ્યોતિષ્ટોમાદિ યજ્ઞથી પેદા થનાર જે ધર્મ છે, તે હિંસાજન્ય પાપથી મિશ્રિત હોવાથી "સ્વલ્પસંકર" છે, અને જો કંઈ પ્રાયશ્ચિત્ત કરાય, તો તે સંકર (પાપનો મેળ) નિવૃત્ત પણ થઈ જાય છે, એથી તે "સપરિહાર" છે. અને જો પ્રમાદથી પ્રાયશ્ચિત્ત ન કરાય તો સ્વર્ગમાં એ પાપનું ફળ, દુઃખ પણ સહેવું પડે છે, એથી તે "સપ્રત્યવમર્ષ" છે. આ હિંસાજન્ય પાપ અલ્પ હોવાથી મહાનભૂત જે યજ્ઞફળ સ્વર્ગ છે, તેનો પ્રક્ષય કરી શકતું નથી. કેમકે યજ્ઞનું ફળ અધિક છે અને હિંસાનું ફળ અલ્પ છે, તેથી પ્રધાનભૂત સ્વર્ગભોગરૂપ ફળમાં એ હિંસાજન્ય પાપ મળી જઇને સ્વર્ગમાં કાંઇક કાંઇક દુઃખ દેશે, અધિક નહિ. એ પંચશિખાચાર્યના વાક્યનો ભાવાર્થ છે.

ત્રીજી ગતિ "પ્રધાનકર્મથી અભિભૂત થઈ લાંબા કાળ સૂધી રહેવું" એ છે કે, બળવાન્ પુણ્યકર્મનો નિરંતર ભોગ હોવાથી પાપકર્મ પડ્યું રહે છે; અથવા બળવાન્ પાપકર્મનો નિરંતર ભોગ હોવાથી પુણ્યકર્મ પડ્યું રહે છે.

અર્થાત્–પૂર્વે જે મરણકાળને સઘળાં કર્મોની ઉપસ્થિતિનો હેતુ કહેલો છે, તે, જે કર્મ અવશ્ય ફળ દેવાવાળાં છે, તે સઘળા માટે જ કહેલા છે, કાંઈ અનિયતવિપાકવાળાં કર્મ માટે કહેલા નથી. કેમકે જે અનિયતવિપાકવાળાં કર્મ હોય છે, તે તો કોઈ બળવાળા કર્મથી નષ્ટ થઈ જાય છે અને કોઈ કર્મ પ્રધાનકર્મમાં સમાઈ જાય છે, તથા કોઈ નિયત ફળવાળા બળવાન્ કર્મથી દબાઈ જઈ લાંબા કાળ સૂધી સ્થિત રહે છે અને જ્યાં સૂધી વિરોધી બળવાન્ કર્મોનાં ફળ નહિ ભોગવ્યાં હોય અથવા એ કર્મના સમાનફળવાળાં બીજાં કોઈ બળવાન્ કર્મ તેનાં સહાયક નહીં થયાં હોય ત્યાં સૂધી (લાંબા કાળ સૂધી) આ અનિયતવિપાકવાળાં કર્મ દબાઈ રહેશે. પણ કયા કાળમાં એ કર્મ, વિરોધીના અભાવથી વા કોઈ સહાયકથી ફલોન્મુખ થશે, એ જાણવું કઠણ છે. કોણ કહી શકે, કે આ કર્મનું ફળ આ સમયમાં થશે?

એ પ્રકારે કર્મના ફળનો નિશ્ચય ન હોવાથી જ શાસ્ત્રમાં કર્મની ગતિ વિચિત્ર અને દુર્વિજ્ઞેય કહેલી છે.[1] પરંતુ એ સંશય ન કરવો કે, "જ્યારે સઘળાં કર્મ મળી એક જન્મ દેતાં નથી, ત્યારે એકભવિકવાદનો કેમ સ્વીકાર કર્યો?" કેમકે યથાસંભવ જ એકભવિકવાદનો સ્વીકાર છે, કાંઈ સર્વત્ર સ્વીકાર નથી. અર્થાત્–નિયતવિપાકસ્થળમાં એકભવિકનો સંભવ હોવાથી ત્યાં જ એકભવિક મનાય છે, અને અનિયતવિપાકમાં સંભવ ન હોવાથી ત્યાં મનાતો નથી. એ પ્રમાણે એકભવિક મતનું "ક્વાચિત્ક" હોવાથી કાંઈ પણ દોષ નથી,[2] એમ ફલિત થાય છે. ॥ ૧૩ ॥

એ પ્રમાણે કર્મોને ક્લેશમૂલક કહ્યાં અને વિપાકોને કર્મમૂલક કહ્યાં. હવે "એ વિપાક કોનું મૂળ છે?" એ આશંકાનું વારણ કરતાં વિપાકોનું ફળ કહે છે:—

૧–"गहना कर्मणो गतिः" ઇત્યાદિ શાસ્ત્રથી.

૨–એ પ્રમાણે સિદ્ધ થયું કે, એકભવિક વાદ ઉત્સર્ગ (સામાન્ય નિયમ જેવો) છે. અર્થાત્ જ્યાં કોઈ બાધક હોય, ત્યાં એકભવિક ન માનવો અને બીજે સઘળે ઠેકાણે માનવો. પરંતુ સર્વથા એકભવિક વાદ નથી, એમ ન જાણવું. એ આશયથી ભાષ્યકારે કહેલું છે કે–"न चोत्सर्गस्याऽपवादान्निवृत्तिः" અર્થાત્–કોઈ સ્થળે અસંભવ હોવાથી ઉત્સર્ગની એકદમ નિવૃત્તિ જ થઈ જતી નથી.

सू०—ते ह्लादपरितापफलाः पुण्यापुण्यहेतुत्वात् ॥ १४ ॥

સૂત્રાર્થઃ-(ते) એ પૂર્વોક્ત જન્મ, આયુ, ભોગ નામના ત્રણે વિપાક (पुण्यापुण्यहेतुत्वात्) પુણ્ય અને અપુણ્યરૂપ કારણમૂલક હોવાથી (ह्लादपरितापफलाः) આલ્હાદ અને પરિતાપના ફળવાળા છે.

અર્થાત્-શુભ કર્મથી જે જન્માદિ પમાય છે તે, આનંદરૂપ ફળને આપવાવાળું છે, અને અશુભ કર્મથી જે જન્માદિ પમાય છે, તે દુઃખરૂપ ફળ આપવાવાળું છે.

અગર જો કે પાપહેતુક જન્માદિ દુઃખદાયક હોવાથી પાપકાર્ય જન્માદિ, યોગીએ ત્યાગ કરવા લાયક છે, પુણ્યહેતુક નહિ. તથાપિ જેવી રીતે દુઃખ, પ્રતિકૂલરૂપ સર્વાનુભવસિદ્ધ છે, તેવી રીતે યોગીને વિષયસુખ પણ પ્રતિકૂલ હોવાથી દુઃખરૂપ છે.[1] કેમકે વિષયસુખના ભોગકાળમાં પણ યોગીને સૂક્ષ્મદુઃખનું અનુસંધાન બન્યું જ રહે છે, તેથી સુખફલક જન્માદિ પણ હેય જ છે, એમ જાણવું. ॥ ૧૪ ॥

"વિષયસુખના ભોગકાળમાં પણ યોગી લોક દુઃખનું અનુસંધાન કરે છે, તે કઈ યુક્તિદ્વારા જણાય?" એ આશંકાનું શમન કરતાં યુક્તિપૂર્વક વિષયસુખને દુઃખરૂપ કહે છે.

सू—परिणामतापसंस्कारदुःखैर्गुणवृत्तिविरोधाच्च दुःखमेव सर्वं विवेकिनः ॥ १५ ॥

સૂત્રાર્થઃ-(विवेकिनः) વિવેકશીલ યોગીની દૃષ્ટિમાં (सर्वं दुःखमेव) સઘળાં વિષયસુખ, દુઃખરૂપ જ છે. કેમકે (परिणामतापसंस्कारदुःखैः) પરિણામદુઃખ, તાપદુઃખ, સંસ્કારદુઃખ એ ત્રણે દુઃખોથી વિષયસુખ મિશ્રિત હોવાથી (च) અને (गुणवृत्तिविरोधात्) ગુણનિષ્ઠ સ્વાભાવિક ચાંચલ્યથી નિરંતર સત્ત્વગુણની સુખાકાર વૃત્તિનું, બીજી વિરોધી વૃત્તિઓવડે, સંવલિત થવાથી.

અર્થાત્-પરિણામદુઃખતાદિ ધર્મોથી મિશ્રિત હોવાથી વિવેકીઓને સઘળું જ સુખ, દુઃખરૂપ માલુમ પડે છે.

પરિણામદુઃખતા=સઘળા[2] પ્રાણીઓને જે પુત્ર, કલત્ર, મિત્ર, ધન, ગૃહ, ક્ષેત્રરૂપ ચેતન અચેતન પદાર્થોદ્વારા વિષયસુખનો અનુભવ થાય છે, તે સઘળા રાગરૂપ ક્લેશથી અનુવિદ્ધ જ હોય છે. કેમકે

૧-"यथा चेदं दुःखप्रतिकूलात्मकमेवं विषयसुखकालेऽपि दुःखमस्त्येव प्रतिकूलात्मकं योगिनः" એ ભાષ્યનો એ અનુવાદ છે.

૨-પ્રથમ પરિણામદુઃખતાનું વિવરણ કરે છે, "સઘળા" ઇત્યાદિથી.

જે વિષય માણસને સુખપ્રદ હોય તેમાં માણસનો રાગ નહિ હોય, એમ કદી સંભવે નહિ. પરંતુ એવો નિયમ છે કે, જ્યાં સુખ ત્યાં અવશ્ય જ રાગ હોય છે. એટલે સુખાનુભવ રાગાનુવિદ્ધ છે, એ સારી રીતે સિદ્ધ થાય છે, અને એ રાગ, રજોગુણનું કાર્ય હોવાથી સુખ-સાધન પુણ્યઅપુણ્યમાં પ્રવૃત્તિ અવશ્ય જ કરાવશે. એ પ્રમાણે સુખા-નુભવસમયમાં જે રાગ, તે પ્રવૃત્તિદ્વારા પુણ્યાપુણ્યનો હેતુ થાય છે. એ પ્રમાણે[1] સુખાનુભવસમયમાં દુઃખસાધનોમાં દ્વેષ થવો, એ પણ સ્વભાવ-સિદ્ધ છે. એટલે દ્વેષ પણ અનર્થમાં પ્રવૃત્તિદ્વારા પાપજનક થયો અને જો દુઃખસાધનોનો પરિહાર કરવામાં તે પુરુષ અસમર્થ હશે, તો મોહવશથી કર્ત્તવ્યાકર્ત્તવ્ય વિવેકને પણ તે ભૂલી જશે, તેથી મોહ પણ અનર્થપ્રવૃત્તિદ્વારા પાપનો હેતુ થયો. વળી ભૂતહિંસા સિવાય પણ ભોગનો અસંભવ હોવાથી કાયિક હિંસાજનિત પણ એક પાપ થાય છે.[2]

આ જે સુખાનુભવકાળમાં રાગ, દ્વેષ, મોહ, હિંસાદિ વિદ્યમાન હોવાથી આગામી અવશ્યભાવી પાપજન્ય જે દુઃખ, તે જ પરિણામે દુઃખ-રૂપ છે. એ પરિણામદુઃખનું જનક હોવાથી જ વિવેકી લોકો વિષયસુખને દુઃખ જાણે છે. તેથી જ પૂર્વે[3] વિષયસુખમાં સુખજ્ઞાનને અવિદ્યા કહેલી છે.

યદ્યપિ સર્વાનુભવ સિદ્ધ વિષયસુખને દુઃખ જાણી અપલાપ (તિરસ્કાર) કરવો યોગીને ઉચિત નથી, તથાપિ વિવેકીને તાત્કાલિક અને અવિચારિત રમણીય વિષયસુખમાં આદર ન હોવાથી તે તેને દુઃખ જ જાણે છે.

અર્થાત્–જેમ મધુ–વિષમિશ્રિત ભોજનમાં તાત્કાલિક સુખજનક-તાનો સઘળાને અનુભવ હોવા છતાં પણ વિવેકી લોક પરિણામમાં દુઃખ-પ્રદ જાણી તેનો ત્યાગ કરે છે; તેમ યોગી પણ વિષયસુખ ભોગને તાત્કાલિક રમણીય છતાં પણ આગામી ધર્માધર્મોત્પત્તિદ્વારા દુઃખપ્રદ હોવાથી તેને હેય સમજે છે.

૧–વિષયસુખમાં રાગથી પેદા થનાર ધર્માધર્મનું નિરૂપણ કરી દ્વેષથી પેદા થનાર અધર્મને કહે છે, "એ પ્રમાણે" ઇત્યાદિથી.

૨–વિષયભોગમાં હિંસા હોવાથી જ ભગવાન્ મનુએ **"पंच सूना गृहस्थस्य"** ઇત્યાદિ વચનથી ગૃહસ્થને પ્રતિદિન પાંચ હિંસાવાળો કહેલો છે. **અર્થાત્** ચુલ્લી (ચુલો), પેષણી (ઘંટી), ઉપસ્કર (સાવરણી), કંડની (ખાંડણીયો), ઉદકુંભ (પાણીનાં ઠામ) એ પાંચ દ્વારા ગૃહસ્થના ઘરમાં અનેક પ્રાણીની હિંસા થાય છે, એ તત્ત્વ છે.

૩–સાધનપાદનું પાંચમું સૂત્ર જુઓ.

તેથી જ શ્રીકૃષ્ણ ભગવાને "विषयेन्द्रियसंयोगाद् यत्तदग्रेऽमृतोपमम्। परिणामे विषमिव तत्सुखं राजसं स्मृतम्"[1] એ વચનથી વિષયસુખને પરિણામે વિષતુલ્યકથનદ્વારા હેય કહેલું છે.

आशंका–જો કોઈ એમ કહે કે,[2] અમે કાંઈ વિષયભોગને સુખ માનતા નથી, કે જેથી પૂર્વોક્ત દોષ આવે. પણ ભોગવિષયક ઇંદ્રિયોની તૃપ્તિ થવાથી જે ભોગતૃષ્ણાની શાંતિ થાય છે, તે સુખ છે અને જે તૃપ્તિના અભાવથી શાંતિનો અભાવ હોય છે, તે દુઃખ છે. એ પ્રમાણે ભોગવિષયક તૃષ્ણા જ મોટું દુઃખ છે, કાંઈ વિષયભોગ નહિ. અને વિષયતૃષ્ણા, વિષયભોગ વગર શાંત થતી નથી, તેથી તૃષ્ણાની શાંતિ કરવી, એ જ વિષયભોગનું ફળ થયું. એ શાંતિ, પરિણામે દુઃખજનક જ્યારે નથી ત્યારે વિષયભોગમાં પરિણામે દુઃખ કયાંથી?

समाधान–તમારું એ વક્તવ્ય ત્યારે સમંજસ થઈ શકે કે, જ્યારે વિષયભોગથી તૃષ્ણાની શાંતિની સંભાવના હોય. પરંતુ એવી સંભાવના થઈ શકતી નથી. કેમકે "भोगाऽभ्यासमनु विवर्द्धन्ते रागाः कौशलानि चेन्द्रियाणाम्" અર્થાત્–ભોગોના અભ્યાસથી તૃષ્ણાનો અભાવ થવો તો દૂર રહ્યો, પણ ઉલટું ભોગાભ્યાસથી તૃષ્ણાની વૃદ્ધિ અને ઇંદ્રિયોની ભોગમાં કુશળતા થાય છે. એથી જ "न जातु कामः कामानामुपभोगेन शाम्यति, हविषा कृष्णवर्त्मेव भूय एवाऽभिवर्द्धते"[3] એ વાક્યથી મનુભગવાને વિષયભોગને તૃષ્ણાની વૃદ્ધિના હેતુ કહેલા છે.

એ પ્રમાણે ભોગાભ્યાસ એ સુખનો ઉપાય નથી એમ સિદ્ધ થાય છે.

એ પ્રમાણે જે માણસ વિષયવાસનાથી યુક્ત થઈ ભોગાભ્યાસથી તૃષ્ણાની નિવૃત્તિનું સંપાદન ચાહે છે, તે માણસ, જેવી રીતે વીંછીથી

૧–લોકમાં પ્રસિદ્ધ સ્રક્, ચંદન, વનિતાદિ વિષયોની સાથે ઇંદ્રિયસંયોગદ્વારા પેદા થતું, જે આરંભમાં અમૃતતુલ્ય અને પરિણામે વિષતુલ્ય સુખ, તે રાજસ છે. ગીતા અધ્યા–૧૮ શ્લોક ૩૮ ॥

૨–"या भोगेष्विन्द्रीयाणां तृप्तेरुपशान्तिस्तत्सुखम्" એ ભાષ્યનો અનુવાદ કરતાં આ શંકા ઉત્થાપન કરે છે; "જો કોઈ એમ" ઇત્યાદિથી

૩–(काम) વિષય ભોગની અભિલાષા (कामानापमुभोगेन) વિષયોને ભોગવવાથી શાંત થતી નથી, પણ જેવી રીતે ઘી વગેરે નાંખવાથી અગ્નિ અધિક સમૃદ્ધ થાય છે, તેમ ભોગથી અધિક અધિક કામના વધે છે. (મનુ. અધ્યા–૨. શ્લો. ૯૪)નો અર્થ છે.

ભય પામેલો માણસ સાપના મુખમાં પડી દુઃખમાં નિમગ્ન થાય છે, તેવી રીતે દુઃખપંકમાં નિમગ્ન થશે.

આ પરિણામદુઃખતા જ યોગીને વિષયસુખના અનુભવકાળમાં પ્રતિકૂળ હોઈ દુઃખપ્રદ સમજાય છે. કેમકે ભોગકાળમાં પણ યોગી, મનમાં એ વિચાર કરતો જ રહે છે કે, આ વિષયસુખની પછી તરત જ અવશ્ય દુઃખ થશે.

તાપદુઃખતા=વિષયાનુભવકાળમાં[1] સુખસાધનની પૂર્ણતાના અભાવને લીધે ચિત્તમાં પરિતાપ હોવાનું નામ તાપદુઃખતા છે. અર્થાત્–સુખાનુભવકાળમાં સુખના વિરોધી પદાર્થોમાં દ્વેષ થવાથી ચિત્તમાં જે ખેદવિશેષ થાય છે, તે તાપદુઃખતા છે. એવી રીતે દ્વેષથી અશુભ-પ્રવૃત્તિદ્વારા અધર્મ પણ અવશ્ય ઉદય પામશે. વળી સુખસાધનોની પ્રાર્થના કરતો પુરુષ કાયિક, વાચિક, માનસિક ચેષ્ટાદ્વારા કોઈ ઉપર અનુગ્રહ અને કોઈ ઉપર પીડા પણ અવશ્ય કરશે, તેથી અનુગ્રહ નિગ્રહદ્વારા પણ ધર્માધર્મ ઉત્પન્ન થશે. તે પ્રમાણે સુખભોગકાળમાં દ્વેષજનિત ચિત્તમાં જે ખેદ અને દ્વેષ, મોહ, લોભાદિથી[2] પેદા થનાર ધર્માધર્મદ્વારા આગામી દુઃખની જે સંભાવના, તે તાપદુઃખતા જાણવી.[3]

સંસ્કારદુઃખતા=સુખાનુભવથી[4] સુખસંસ્કાર, સંસ્કારથી સુખસ્મરણ, સ્મરણથી સુખમાં રાગ, અને રાગથી સુખને માટે કાયિકાદિ ચેષ્ટાદ્વારા શુભાશુભ કર્મોમાં પ્રવૃત્તિ; પ્રવૃત્તિથી પુણ્યાપુણ્ય, પુણ્યાપુણ્યથી ફરીથી જન્મદ્વારા સુખાદિકનો અનુભવ, અનુભવથી પાછી વાસના, વાસનાથી પાછું સ્મરણ, સ્મરણથી ફરી રાગ, અને રાગથી પાછી પ્રવૃત્તિ થાય

૧–પરિણામદુઃખતાનું નિરૂપણ કરી હવે તાપદુઃખતાનું નિરૂપણ કરે છે; "વિષયાનુભવકાળમાં" ઇત્યાદિથી.

૨–અનુકૂળ જનો ઉપર સુખલોભથી અનુગ્રહ કરવાથી અને વિરોધી જનો ઉપર મોહવશથી દુઃખ દેવાથી પણ ધર્માધર્મ અવશ્ય ઉત્પન્ન થશે. તેથી દ્વેષની પેઠે લોભ મોહ પણ પરિણામદુઃખના હેતુરૂપ છે.

૩–પરિણામદુઃખતાથી તાપદુઃખતામાં એટલી વિશેષતા છે કે–પરિણામ-દુઃખતા કેવળ વિવેકીને જ જણાય છે, અને તાપદુઃખતા ભોગીને પણ ભોગ-કાળમાં જણાય છે. તાપદ્વારા શુભાશુભ કર્મોમાં પ્રવૃત્તિ થાય છે અને તે દ્વારા આગામી ધર્માધર્મથી પેદા થનાર સુખદુઃખ હોવાથી પરિણામ દુઃખતા પણ તાપદુઃખતામાં અનુગત જાણવી.

૪–સંસ્કાર દુઃખતાનું નિરૂપણ કરે છે, "સુખાનુભવ" વગેરેથી.

છે. એ પ્રકારે સુખાનુભવજન્ય જે સંસ્કાર તથા કર્માંશયસમૂહ, તે સંસ્કારદુઃખતા છે.[1]

ઉપર કહેલી રીતે અનાદિકાળથી પ્રસરેલો જે આ દુઃખપ્રવાહ છે, તે, યોગીને જ પ્રતિકૂલરૂપ થઈ ક્લેશપ્રદ છે, ભોગીને નહિ. કેમકે "अक्षिपात्रकल्पोहि विद्वान्" નેત્રના ગોલક તુલ્ય યોગી અતિ સૂક્ષ્મ છે. અર્થાત્–જેમ અતિસ્નિગ્ધ (કોમળ) પટ્ટતંતુ (રેશમી સૂક્ષ્મતાર) વા ઉર્ણાતંતુ નેત્રમાં જ પડે છે ત્યારે સ્પર્શદ્વારા તે નેત્રને દુઃખપ્રદ છે, બીજા અંગમાં નહિ. તેમ નેત્ર ગોલક તુલ્ય સૂક્ષ્મ યોગીને જ આ ત્રણ પ્રકારનાં દુઃખ સ્મરણ થઈને વિષયભોગકાળમાં ક્લેશ આપે છે, બીજા ભોગીઓને નહિ. કેમકે બીજા ભોગી પુરુષને તો પ્રાપ્ત થયેલાં જ આધ્યાત્મિકાદિ સ્થૂલદુઃખ દુઃખરૂપે ભાસે છે, કાંઈ વિષયભોગકાળમાં વિદ્યમાન સૂક્ષ્મ-દુઃખ, દુઃખરૂપે ભાસતાં નથી. અર્થાત્–જે ભોગી પુરુષ છે, તે અનાદિ-વાસનાથી વિચિત્રરૂપ ચિત્તવૃત્તિ[2] અવિદ્યાથી અનુવિદ્ધ થઈ અને અનાત્મ પદાર્થોમાં અહંકાર મમકાર કરતો અને સ્વકર્મોપાર્જિત ફરી ફરી આવતાં દુઃખને ભોગદ્વારા તજતો અને વળી એ છોડી દીધેલાં દુઃખને પાછો ગ્રહણ કરતો કરતો વિષયસુખમાં સૂક્ષ્મ દુઃખને ન જાણી સ્થૂલ દુઃખનું જ અનુસંધાન કરે છે, કાંઈ સૂક્ષ્મ દુઃખનું નહિ.

એ પ્રકારે અનાદિ દુઃખ પ્રવાહદ્વારા પોતાને અને બીજાને અહીં તહીં ભ્રમણશીલ જાણી, અને સમ્યગ્ જ્ઞાન વિના દુઃખનિવૃત્તિનો બીજો કોઈ ઉપાય નથી, એમ જાણી યોગી, સમ્યગ્ જ્ઞાનના શરણને જ પામે છે, કાંઈ વિષયસુખના ભોગમાં તે પ્રવૃત્ત થતો નથી.

જેવી રીતે[3] પરિણામ દુઃખતાદિથી મિશ્રિત હોવાથી વિષયસુખ, દુઃખરૂપ છે, તેવી રીતે ગુણવૃત્તિઓ પરસ્પર વિરુદ્ધ હોવાથી પણ વિષય-

---

૧–સંસ્કારથી પેદા થનાર સ્મરણદ્વારા પ્રવૃત્તિથી ધર્માધર્મજન્ય આગામી દુઃખની સંભાવના હોવાથી સંસ્કારદ્વારા પણ વિષયસુખ દુઃખરૂપ છે.

૨–ચિત્તમાં રહેવાવાળી અને સઘળાનું કારણ જે અવિદ્યા છે, તે અવિદ્યાથી સમંતતઃ (સઘળાં કાર્યોમાં) અર્થાત્–શરીરાદિમાં અહંકાર (હું છું) તથા પુત્રાદિમાં મમકાર અર્થાત્ તે મારાં છે, એ પ્રકારે હેય પદાર્થોમાં આત્મ-બુદ્ધિવાળા પુરુષોને તો સ્વકર્મોપાર્જિત નવીન નવીન આધ્યાત્મિકાદિ સ્થૂલ દુઃખ જ પ્રતીત થાય છે, કાંઈ પરિણામાદિ દુઃખ નહિ, એ ભાવ છે.

૩–હવે "गुणवृत्तिविरोधाच्च" એ પદનું વ્યાખ્યાન કરતાં વિષય સુખમાં સ્વાભાવિક દુઃખના સંસર્ગનું નિરૂપણ કરે છે, "જેવી રીતે" ઇત્યાદિથી.

સુખ, દુઃખરૂપ જ છે. અર્થાત્-પ્રખ્યા, પ્રવૃત્તિ, સ્થિતિસ્વરૂપ સત્ત્વ રજ તમ એ ત્રણ ગુણ જે (શાંત વા ઘોર વા મૂઢ કાર્યનો) આરંભ કરે છે, તે કાર્ય ત્રિગુણાત્મક જ હોય છે, કેમકે એ ત્રણે પરસ્પર અનુગ્રહી થયેલા કાર્યનો આરંભ કરે છે, કાંઈ એક એક નહિ. એ પ્રમાણે સુખોપભોગરૂપ શાંત ચિત્તવૃત્તિ પણ ત્રિગુણાત્મક હોવાથી એ વૃત્તિમાં પણ દુઃખ અને વિષાદની વિદ્યમાનતા અવશ્ય માનવી પડશે. તેમ સત્ત્વગુણ પ્રધાન ત્રણ ગુણની કાર્યભૂત શાંતસ્વરૂપ સુખવૃત્તિ પણ રાજસદુઃખ અને તામસવિષાદવડે અનુવિદ્ધ હોવાથી વિષયસુખ સ્વભાવથી જ દુઃખરૂપ છે, એમ સિદ્ધ થાય છે.

વળી[1] એ સુખોપભોગરૂપ શાંતવૃત્તિ જો થોડા કાળ સૂધી સ્થિત રહેતી હોય, તો વિષયસુખને સુખ કહી શકાય, પણ તે તો નથી. કેમકે ગુણોની ચંચળતા હોવાથી ક્ષણે ક્ષણે ચિત્ત, વિલક્ષણ વિલક્ષણ પરિણામોને ધારણ કરતું રહે છે. તેથી સુખ ક્ષણિક હોવાથી પણ વિષયસુખ, દુઃખરૂપ જ છે.

જો કોઈ એમ શંકા કરે કે-"એક જ ચિત્તની વૃત્તિનો એક કાળમાં પરસ્પરવિરુદ્ધ શાંત, ઘોર, મૂઢરૂપ ધર્મો સાથે સંબંધ શી રીતે થાય?" તો તેનો ઉત્તર ભાષ્યકારે એ આપ્યો છે કે-"**रूपाऽतिशया वृत्त्यतिशयाश्च परस्परेण विरुध्यन्ते सामान्यानि त्वतिशयैः सह प्रवर्तन्ते**" અર્થાત્ ધર્માધર્માદિરૂપનું[2] અતિશયપણું વા વૃત્તિઓનું અતિશયપણું પરસ્પરવિરુદ્ધ છે. સામાન્ય તો અતિશયની સાથે પણ રહી શકે છે. અર્થાત્-અતિશય અને સામાન્ય, પરસ્પરવિરુદ્ધ નથી.

ભાવ એ છે કે-જે ઉદાર અવસ્થાને પામેલો વિશેષ ધર્મ છે, તે સજાતીય ઉદારાવસ્થાપન્ન વિશેષનો વિરોધી હોય છે, કાંઈ સૂક્ષ્માવસ્થાપન્ન, સામાન્યનો વિરોધી નથી. કેમકે તુલ્યબલશીલોનો જ વિરોધ હોય છે, પણ અતુલ્યબલશીલોનો વિરોધ હોતો નથી. એ પ્રમાણે જે ધર્મ, ફલોન્મુખ હોવાથી અતિશય છે, તે જે અધર્મ પોતાના ફળ દેવાને ઉન્મુખ થવા ચાહે છે, તેનો વિરોધી થશે અને જે સામાન્યરૂપથી

૧-"**चलं च गुणवृत्तमिति क्षिप्रपरिणामि चित्तमुक्तम्**" ઇત્યાદિ ભાષ્યનો અનુવાદ કરતાં સુખાત્મક વૃત્તિને ક્ષણિક કહે છે, "અને વળી" ઇત્યાદિથી,

૨-ભાષ્યમાં રૂપ નામ બુદ્ધિના ધર્મોનું છે. ધર્મ, અધર્મ, અજ્ઞાન, વૈરાગ્ય, અવૈરાગ્ય ઐશ્વર્ય અને અનૈશ્વર્ય, એ આઠ, બુદ્ધિના ધર્મ છે, તે જ કહે છે, "ધર્માધર્માદિરૂપ" ઇતિ.

અધર્મ વિદ્યમાન છે, તેનો વિરોધી નહિ થશે. એવી રીતે સુખોપભોગ-સમયમાં સાત્ત્વિક શાંતવૃત્તિ પણ ઉદારાવસ્થાપન્ન દુઃખવૃત્તિની વિરોધી છે: કાંઈ સૂક્ષ્મ વા વિચ્છિન્નાવસ્થાપન્ન દુઃખવૃત્તિની નહિ. તેથી એ સિદ્ધ થયું કે, ગૌણ મુખ્ય ભાવને પ્રાપ્ત થયેલા સત્ત્વાદિ ગુણ, જે કાર્યના આરંભ કરે છે, તે સઘળાં ત્રિગુણાત્મક હોવાથી સુખદુઃખ મોહસ્વરૂપ અવશ્ય જ થશે. પરંતુ તેમાં એટલું વિશેષ છે કે–સુખભોગ સમયમાં દુઃખ વિષાદ ગૌણ હોય છે અને સુખ પ્રધાન હોય છે; એ પ્રમાણે દુઃખના પ્રાધાન્ય સમયમાં સુખ વિષાદને ગૌણ જાણવાં.[1] એથી વિવેકીને વિષયસુખ પણ દુઃખરૂપ છે, એ બરાબર રીતે સિદ્ધ થાય છે. તે પ્રમાણે વિષયસુખ ઔપાધિક[2] તથા સ્વાભાવિક દુઃખાનુવિદ્ધ હોવાથી વિષયસુખનો યોગીએ ત્યાગ જ કરવો ઉચિત છે. પરંતુ એ દુઃખ પરંપરામિશ્રિત વિષય-સુખનો ત્યાગ, અવિદ્યાની નિવૃત્તિ વિના થવો અસંભવિત છે. કેમકે અવિદ્યા એ મહાન્ દુઃખસમુદાયનું મૂળ કારણ છે અને તત્ત્વજ્ઞાન વિના અવિદ્યાની નિવૃત્તિ થવી અસંભવિત છે, કેમકે તત્ત્વજ્ઞાનજ મિથ્યાજ્ઞાનના સમૂલ ઉન્મૂલનનો હેતુ છે; અને તત્ત્વજ્ઞાન થવું, એ યોગના અંગોના અનુષ્ઠાનને અધીન છે; અને યોગાંગોનું પરિજ્ઞાન તે યોગશાસ્ત્રના પરિશીલન વિના પ્રાપ્ય નથી. તેટલામાટે કૈવલ્યોપાયભૂત આ યોગ-શાસ્ત્ર પરમોપકારી હોવાથી મુમુક્ષુને ઉપાદેય છે, એ સિદ્ધ થાય છે. એવી રીતે પરમોપકારી હોવાથી જ આ શાસ્ત્ર સર્વોપકારક વૈદ્યકશાસ્ત્રની સમાન ચતુર્વ્યૂહવાળું છે.

અર્થાત્[3]–જેમ વૈદ્યકશાસ્ત્રમાં રોગ, રોગના હેતુ, રોગની નિવૃત્તિ અને રોગનિવૃત્તિનું કારણ ભૈષજ્ય એ ચાર વ્યૂહ[4] છે. તેમ આ યોગ-શાસ્ત્રમાં સંસાર, સંસારનું કારણ, મોક્ષ અને મોક્ષનું કારણ, એ ચાર

૧–સુખકાળમાં સત્ત્વગુણ પ્રધાન રહે છે અને બીજા બે ગુણ સામાન્યરૂપે રહે છે. વિગેરે વિશેષ પણ જાણી લો;

૨–અહીં એટલું વિશેષ એ પણ જાણી લેવું કે, પરિણામ, તાપ, સંસ્કાર, દુઃખોવડે મિશ્રિત હોવાથી વિષયસુખમાં ઔપાધિક દુઃખ કહેલું છે, અને ગુણવૃત્તિવિરોધથી સ્વાભાવિક દુઃખ કહ્યું, તે જ કહે છે, "ઔપાધિક" ઇતિ.

૩–"यथा चिकित्साशास्त्रं चतुर्व्यूहम्" ઇત્યાદિ ભાષ્યના અર્થને સ્પષ્ટ કરે છે," અર્થાત્ "ઇત્યાદિથી.

૪–વ્યૂહ એટલે સંક્ષિપ્ત અવયવરચના વા વિભાગ.

વ્યૂહ[1] છે, એ ચારેમાંથી જે દુઃખબહુલ સંસાર છે, તે હેય છે; પ્રકૃતિ-પુરુષનો સંયોગ, એ હેયનું કારણ છે; પ્રકૃતિપુરુષના સંયોગની અત્યંત નિવૃત્તિ એ હાન છે; અને સમ્યગ્દર્શનએ હાનનો ઉપાય છે.[2]

અહીં એટલું વિશેષ એ પણ જાણવા લાયક છે કે–સંયોગની આત્યંતિક નિવૃત્તિરુપ જે કૈવલ્યપદવાચ્ય હાન છે, તે હાન યોગ કરવાવાળા પુરુષનું સ્વરૂપજ છે, કાંઈ પુરુષથી ભિન્ન નથી.[3] એથી એ કૈવલ્ય ઉપાદેય નથી, તેમ હેય પણ નથી. કેમકે જે વસ્તુ પોતાનાથી ભિન્ન હોય છે, તે ઉપાદેય વા હેય હોય છે, કાંઈ નિજરૂપ નહિ.

એ પ્રમાણે જે બૌદ્ધલોક, વિજ્ઞાન–સંતાનરૂપ આત્માના અભાવને મોક્ષ માને છે, તેમના મતમાં આત્માના હાનથી ઉચ્છેદવાદ[4] પ્રસક્ત હોવાથી, અને જે વિશુદ્ધ વિજ્ઞાનપ્રવાહના ઉદયને મોક્ષ માને છે, તેમના મતમાં નૂતન કૈવલ્યના ઉદયથી હેતુવાદ[5] પ્રસક્ત હોવાથી, એ બંને અપુરુષાર્થ[6] હોવાથી અગ્રાહ્ય છે અને એ બંનેથી ભિન્ન જે આત્મસ્વરૂપાવસ્થાન

૧–તેઓનાં યથાક્રમ હેય, હેયહેતુ, હાન અને હાનોપાય એ નામ છે.

૨–અહીં રોગસ્થાનાપન્ન હેય સંસાર, રોગકારણ ધાતુ વૈષમ્યસ્થાનાપન્ન પ્રકૃતિપુરુષનો સંયોગ, આરોગ્યસ્થાનાપન્ન હાનપદવાચ્ય મોક્ષ અને ઔષધ-સ્થાનાપન્ન સમ્યગ્જ્ઞાન છે, એમ જાણવું.

૩–એ મતમાં અભાવનું અધિકરણ સ્વરૂપ હોવાથી ઔપાધિક સંયોગ-જન્ય દુઃખની નિવૃત્તિ પુરુષસ્વરૂપ છે, એ સાર છે.

૪–યોગાચારના મતવાળા નીલપીતાદિરૂપથી વિલક્ષણ ક્ષણિક જ્ઞાનપ્રવાહને બંધ માને છે, અને દીપનિર્વાણતુલ્ય, એ પ્રવાહના નાશને મોક્ષ માને છે. તથા ક્ષણિક વિજ્ઞાનજ તેમના મતમાં આત્મા છે. એ પ્રમાણે આત્મોચ્છેદજ તેમના મતમાં મોક્ષ હોવાથી તેમનો મત ઉચ્છેદવાદ કહેવાય છે.

૫–માધ્યમિક મતવાળા નીલાદિ જ્ઞાનપ્રવાહના અભ્યાસથી નિવૃત્તિપૂર્વક વિશુદ્ધ વિજ્ઞાનપ્રવાહના ઉદયને મોક્ષ માને છે. એ પ્રમાણે તેમના મતમાં નૂતન પ્રવાહનું ઉપાદાન હોવાથી હેતુવાદ થયો. અર્થાત્ ઉત્પન્ન થયેલો હોવાથી મોક્ષ અનિત્ય થયો.

૬–પ્રથમ પક્ષમાં આત્માનો ઉચ્છેદ થવાથી પુરુષાર્થનો અભાવ સ્પષ્ટ જ છે, અને દ્વિતીય પક્ષમાં કૈવલ્ય, ઉત્પત્તિવાળું હોવાથી અને કાર્યત્વપ્રયુક્ત અનિત્યત્વ હોવાથી પુરુષાર્થનો અભાવ જાણવો; તેથી એ બંને મત અગ્રાહ્ય છે. જો કે તીવ્રરોગાક્રાંત માણસોની પોતાના મરણને લીધે વિષભક્ષણ વગેરેમાં પ્રવૃત્તિ હોવાથી આત્મોચ્છેદ પણ પુરુષાર્થ થઈ શકે છે, તોપણ વિચારશીલ પુરુષ આત્મોચ્છેદને પુરુષાર્થ માનતા નથી. કેમકે વિષાદિથી આત્મોચ્છેદ કરવો, એ સાહસિક અને અવિચારશીલોનુંજ કર્તવ્ય છે, પણ વિવેકીઓનું નહિ.

કૈવલ્ય છે, તે હેયોપાદેય શૂન્ય હોવાથી ગ્રાહ્ય છે, અને એ જ શાશ્વતવાદ છે, તથા એ જ સમ્યગ્દર્શન છે. ॥ ૧૫ ॥

હવે જે પ્રકારે આ શાસ્ત્ર ચતુર્વ્યૂહ ગણાય છે, તે ક્રમપૂર્વક પ્રતિપાદન કરતાં સૂત્રકાર પ્રથમ હેયનું નિરૂપણ કરે છેઃ—

સૂ૦—हेयं दुःखमनागतम् ॥ १६ ॥

સૂત્રાર્થઃ–(अनागतम्) આગામી અર્થાત્ હવે પછી આવવાવાળું જે (दुःखम्) દુઃખ, તે (हेयम्) હેય અર્થાત્ તજવા લાયક છે.

અર્થાત્–જે દુઃખ અતીત થઈ ચૂક્યું છે, તે તો ભોગદ્વારા જ નષ્ટ થઈ ચૂકેલું હોવાથી તે હેયપક્ષમાં આવી શકતું નથી અને જે દુઃખ વર્ત્તમાનક્ષણમાં ભોગારૂઢ છે, તે પણ દ્વિતીય ક્ષણમાં નષ્ટ થાવાથી હેયપણાને પામી શકતું નથી. પરંતુ જે ભાવી દુઃખ છે, તે જ નેત્રગોલકતુલ્ય યોગીને ક્લેશયુક્ત કરે છે, તેથી તે જ હેય હોઈ શકે છે.[1] ॥ ૧૬ ॥

એવી રીતે હેયનું નિરૂપણ કરી હવે એ હેયનું કારણ નિર્દિષ્ટ કરે છે.—

सू–द्रष्टृदृश्ययोः संयोगो हेयहेतुः ॥ १७ ॥

સૂત્રાર્થઃ–(द्रष्टृदृश्ययोः) દ્રષ્ટા અને દૃશ્યનો જે (संयोगः) પરસ્પર અવિવેકકૃત સંબંધ, તે (हेयहेतु) હેયસંજ્ઞક સંસારનું અને દુઃખનું કારણ છે.

અર્થાત્–પ્રધાન અને પુરુષોનો જે અનાદિ અવિવેકકૃત પરસ્પર સંયોગ, તે સંસારનું કારણ છે.

દ્રષ્ટા નામ બુદ્ધિપ્રતિસંવેદી[2] પુરુષનું છે. દૃશ્ય નામ બુદ્ધિસત્ત્વોપારૂઢ[3] સઘળા ધર્મોનું છે. એ બુદ્ધિ વગેરે દૃશ્ય જ અયસ્કાંતમણિ

૧–આ સ્થળે એવી શંકા ન કરવી કે, "ભવિષ્યત્ દુઃખની સત્તામાં પ્રમાણના અભાવથી તેની નિવૃત્તિ માટે પુરુષાર્થ કેવો?" કેમકે તૃતીયપાદના ૧૪ મા સૂત્રમાં સઘળી વસ્તુઓમાં અનાગતાવસ્થાથી કાર્ય રહે છે, એ અનુમાનપ્રમાણ કહેવાનું છે. અર્થાત્ જ્યાંસુધી વસ્તુની સ્થિતિ રહે છે, ત્યાંસુધી તેની શક્તિ પણ અવશ્ય જ રહે છે, અને શક્તિ કહો કે કાર્યની અનાગતાવસ્થા કહો, એ બંને સમાન છે. એ પ્રમાણે જ્યાંસુધી ચિત્તરૂપ દ્રવ્ય રહેશે, ત્યાંસુધી અનાગતાવસ્થાથી દુઃખ પણ અવશ્ય તેમાં રહેશે, એ રહસ્ય છે.

૨–બુદ્ધિમાં પ્રતિબિંબિત થઈ તદાકારને ધારણ કરવાથી પુરુષ, બુદ્ધિપ્રતિસંવેદી કહેવાય છે. અથવા પોતાના પ્રતિબિંબદ્વારા બુદ્ધિને ચેતન તુલ્ય કરવાથી બુદ્ધિપ્રતિસંવેદી જાણવો.

૩–ઇંદ્રિયોદ્વારા જે પદાર્થો બુદ્ધિ ગ્રહણ કરે છે, વા અહંકારાદિદ્વારા

(લોહચુંબક)ની તુલ્ય સંનિધિમાત્રથી દૃશિરૂપ (ચક્ષુરૂપ) સ્વામીનો ઉપકાર કરતું હોવાથી દૃશ્યરૂપે પોતે થઈ જાય છે, અને તે ભોક્તાભૂત પુરુષનું ભોગ્ય થઈ જાય છે. યદ્યપિ એ દશ્ય પોતાના જડરૂપથી લબ્ધ સત્તાવાળું હોવાથી સ્વતંત્ર છે, તો પણ પુરુષને અર્થે હોવાથી તે પરતંત્ર જ જાણવું. એ પ્રમાણે પુરુષાર્થપ્રયુક્ત જો[1] સ્વસ્વામીભાવ વા દૃગ્દૃશ્યભાવ વા ભોક્તૃભોગ્યભાવરૂપ અનાદિ[2] પ્રકૃતિપુરુષનો[3] પરસ્પર સંયોગ, તે દુઃખનું કારણ છે, એમ સિદ્ધ થાય છે.

જેટલાં તત્ત્વ બુદ્ધિથી ઉત્પન્ન થાય છે, તે સઘળા પદાર્થ બુદ્ધિસત્ત્વોપારૂઢ કહેવાય છે. એ પ્રમાણે દશ્યપદથી સઘળાં પ્રકૃતિનાં કાર્યનું ગ્રહણ થાય છે. કેમકે એવો પદાર્થ જ નથી કે, જે બુદ્ધિનો વિષય ન થાય અને જે બુદ્ધિનું કાર્ય ન હોય. એથી હવે પછીના સૂત્રમાં સઘળા જ વર્ગને દશ્ય કહેલો છે.

૧–પુરુષાર્થપ્રયુક્ત કહેવાથી પુરુષના ભોગ અપવર્ગરૂપ અર્થ જ સંયોગનું કારણ છે, એમ બોધ કર્યો. ભોગાદિરૂપ પુરુષાર્થ પ્રકૃતિપુરુષના સંયોગની સ્થિતિનું કારણ છે, કેમકે તેને લીધે સંયોગ રહેલ છે અને વિપર્યય જ્ઞાનરૂપ વાસનાસંયોગનું ઉપાદાન કારણ છે. એ સાર છે.

૨–અનાદિ કહેવાથી આ આશંકા ઉદય થાય છે કે–" આ પ્રકૃતિપુરુષનો સંયોગ સ્વાભાવિક છે, કે નૈમિત્તિક છે? જો સ્વાભાવિક હોય તો પ્રકૃતિપુરુષ નિત્ય હોવાથી સંબંધ પણ નિત્ય માનવો પડશે. એ પ્રમાણે નિત્ય સંબંધની નિવૃત્તિના અભાવથી કૈવલ્ય કેમ બને? અને જો એમ કહો કે, વિપર્યયજ્ઞાનની વાસનારૂપ નિમિત્તથી ઉત્પન્ન થનારો હોવાથી નૈમિત્તિક છે, તો અંતઃકરણરૂપ આશ્રયના અભાવથી વાસનાની સ્થિતિ કેમ બને? કેમકે અંતઃકરણ પણ વાસનારૂપ કાર્યના સંયોગથી ઉત્પન્ન થનારું છે અને વિપર્યયજ્ઞાન વાસનારૂપે હોય, તો સંયોગદ્વારા અંતઃકરણની ઉત્પત્તિ થાય. અને અંતઃકરણ હોય તો વાસનાને આશ્રય મળે. એ પ્રકારે અન્યોન્યાશ્રય દોષ થાય." આ શંકાનું પણ નિવારણ થાય છે. કેમકે વિપર્યયજ્ઞાનની વાસના અનાદિ હોવાથી સંયોગ પણ અનાદિ જ છે. એ પ્રમાણે વિપર્યયજ્ઞાનની વાસનાનો અને પ્રકૃતિપુરુષના સંયોગનો નિમિત્તનૈમિત્તિકભાવ સંબંધ પણ અનાદિ જાણવો. એ પ્રમાણે સંયોગ, નૈમિત્તિક અને અનાદિ છે, એમ સિદ્ધ થાય છે.

૩–અગર જો કે દશ્યની સાથે પુરુષના સંયોગને જ સંસારનું કારણ કહ્યું છે, તથાપિ પ્રકૃતિદ્વારા જ અન્ય દશ્યનો સંયોગ હોવાથી અહીં દશ્યપદથી મુખ્યભૂત દશ્ય પ્રકૃતિ જ જાણવી. એથી જ ભાષ્યકારે " प्रधानपुरुषयोः संयोगो हेयहेतुः" એ વાક્યથી પ્રકૃતિપુરુષના સંયોગને સંસારનું કારણ કહેલું છે.

પંચશિખાચાર્યે પણ "तत्संयोगविवर्जनात्स्यादयमात्यन्तिको दुःखप्रतीकारः"[1] એ વાક્યથી પ્રકૃતિપુરુષના સંયોગને દુઃખનો હેતુ કહેલો છે.

લોકમાં જેમ ત્યાગ કરવા લાયક દુઃખના હેતુરૂપ પદાર્થને પ્રતીકાર (નિવૃત્તિનો ઉપાય) દૃષ્ટ છે, તેમ અહીં પણ દુઃખહેતુ સંયોગનો પ્રતીકાર જાણી લેવો. અર્થાત્ લોકમાં જેમ પગનું તળિયું ભેદ્ય છે અને કંટક તેનો ભેદક છે, તથા કંટક ઉપર પગ ન રાખવો અથવા પગરખાં પહેરી ચાલવું, એ દુઃખનો પ્રતીકાર છે. તેમ અહીં કોમળ પગના તળિયાની તુલ્ય મૃદુલ સત્ત્વગુણ તપ્ય[2] છે અને રજોગુણ તેનો તાપક છે તથા પ્રધાન-પુરુષના સંયોગની હાનિ વા વિવેકખ્યાતિ તે તાપનો પ્રતીકાર છે. એવી રીતે લોકમાં જેમ ભેદ્ય, ભેદક તથા પરિહાર એ ત્રણને જાણવાવાળો ભેદક કંટક વગેરેની નિવૃત્તિના ઉપાયનું અનુષ્ઠાન કરી ભેદજન્ય દુઃખને પામતો નથી, કેમકે તે ભેદ્ય, ભેદક તથા પરિહાર એ ત્રણેને જાણે છે. તેમ અહીં પણ તપ્ય, તાપક, પરિહાર એ ત્રણ પદાર્થને જાણવાવાળો પણ વિવેકખ્યાતિરૂપ પરિહારનું અનુષ્ઠાન કરી સંયોગજન્ય દુઃખને પામતો નથી.

યદ્યપિ તાપરૂપ જે ક્રિયા છે, તે કર્મભૂત[3] સત્ત્વમાં જ છે, કાંઈ પુરુષમાં નથી. કેમકે પુરુષ અપરિણામી તથા નિષ્ક્રિય છે. તથાપિ દર્શિતવિષયત્વરૂપ[4] ઉપાધિથી વા અવિવેકથી બુદ્ધિનો તદાકાર થાવાથી પુરુષ પણ તદાકારધારી અનુતાપને પામી જાય છે. એવી રીતે પુરુષમાં ઔપાધિક તાપસંયોગ[5] છે, એમ જાણવું. ॥૧૭॥

દૃશ્યની સંગે સંયોગ થવો, તે સઘળા દુઃખનું કારણ કહેલું છે. આ દૃશ્યનું સ્વરૂપ નીચલા સૂત્રવડે કથન કરે છે—

सू—प्रकाशक्रियास्थितिशीलं भूतेंद्रियात्मकं भोगाऽपवर्गार्थं दृश्यम् ॥ १८ ॥

૧–દુઃખકારણ બુદ્ધિસંયોગના ત્યાગથી દુઃખનો અત્યંત પ્રતીકાર (નાશ) થાય છે, એવો તેનો અર્થ છે.

૨–અહીં સત્ત્વપદથી સત્ત્વગુણ પ્રધાન બુદ્ધિનું ગ્રહણ કરવું. જેને દુઃખ થાય તે તપ્ય છે, અને જે દુઃખ આપે, તે તાપક છે.

૩–જે તાપને પામે છે, તે તાપક્રિયાનું કર્મ છે, અર્થાત્ બુદ્ધિ જ તપ્ય છે પણ પુરુષ તપ્ય નથી.

૪–દર્શિત વિષયત્વનો અર્થ ૧લા પાદના ૪થા સૂત્રના વ્યાખ્યાનમાં જુઓ.

૫–બુદ્ધિરૂપ ઉપાધિના સંબંધથી પુરુષ તપ્ય છે, અને પ્રકૃતિપુરુષનો સંયોગ તાપક છે, તથા વિવેકખ્યાતિ તેનો પરિહાર છે, એ સાર છે.

સૂત્રાર્થઃ-(**प्रकाशक्रियास्थितिशीलं**) પ્રકાશશીલ, ક્રિયાશીલ અને સ્થિતિ શીલ જે યથાક્રમ સત્ત્વ, રજ અને તમ એવા ત્રણ ગુણ છે, તે દૃશ્ય કહેવાય છે. તે ત્રણ ગુણ કેવા છે? (**भूतेंद्रियात्मकम्**) મહત્તત્ત્વ, અહંકાર, તન્માત્ર, ઇંદ્રિય તથા ભૂતરૂપથી પરિણામ પામેલા હોવાથી ભૂતેન્દ્રિય સ્વરૂપ છે. શાને માટે ત્રણ ગુણો ભૂતાદિરૂપેથી પરિણામ પામે છે. તેનો ઉત્તર એ છે કે, (**भोगाऽपवर्गार्थम्**) પુરુષના ભોગ તથા અપવર્ગરૂપ પ્રયોજનને માટે પરિણામ પામે છે.[1]

અર્થાત્-પુરુષના ભોગ અને અપવર્ગને અર્થે ભૂતેંદ્રિયાદિરૂપવડે પરિણામ પામેલા જે પ્રકાશાદ ધર્મશીલ ત્રણ ગુણ છે, તે દૃશ્ય છે.

આ પ્રકાશાદિ સ્વભાવવાળા સંયોગ વિભાગધર્મશીલ[2] ત્રણ ગુણ જ સામ્યાવસ્થાને પામી, પ્રધાન વા પ્રકૃતિશબ્દના વાચ્ય થાય છે.

અગર જો કે[3] એ ત્રણે ગુણ ભિન્ન ભિન્ન ધર્મવાળા છે, તોપણ તેમના ભાગ[4] પરસ્પર ઉપરક્ત (એકઠા) થઈ રહે છે, તેથી એ ત્રણે ગુણ પરસ્પર અંગાંગી ભાવથી[5] મળીને જ અમુક કાર્ય ઉત્પન્ન કરે છે, કાંઈ જૂદાં જૂદાં નહિ. પરસ્પર[6] અંગાંગી ભાવ થાવા છતાં પણ તે ગુણોની શક્તિ ભિન્ન ભિન્ન જ રહે છે. એથી તેમનાં સઘળાં કાર્ય વિલક્ષણ છે. એકત્ર થઈને કાર્ય

૧-"प्रकाशक्रियास्थितिशीलं" એ પદથી ગુણોનું સ્વરૂપ કહ્યું અને "भूतेन्द्रियात्मकम्" એ પદથી ગુણોનું કાર્ય કહ્યું, તથા "भोगापवर्गार्थम्" એ પદથી ગુણોની પ્રવૃત્તિનું પ્રયોજન કહ્યું.

૨-જેને વિવેકખ્યાતિ ઉદય થઈ નથી તેની સંગે ગુણ સંયુક્ત રહે છે, અને જેને વિવેકખ્યાતિ ઉત્પન્ન થઈ છે, તેનાથી ગુણ વિભક્ત થઈ જાય છે. તેથી તે સંયોગ વિભાગધર્મશીલ છે.

૩-અહીં ભાષ્યકારે "परस्परोपरक्तप्रविभागाः" ઇત્યાદિ ગ્રંથથી ત્રણે ગુણોનો વિશેષણદ્વારા સ્વભાવ વર્ણવ્યો છે, તે જ "અગર જો કે" ઇત્યાદિથી કહે છે.

૪-સત્ત્વ ગુણનો પ્રકાશરૂપ જે ભાગ છે, તે રાજસપ્રવૃત્તિ તથા તામસ દુઃખથી ઉપરક્ત (યુક્ત) છે; એ પ્રમાણે રજોગુણનો જે દુઃખરૂપ ભાગ છે, તે સાત્ત્વિક પ્રકાશ તથા તામસ વિપાદથી અનુગત છે; અને તામસ વિષાદ પણ બીજા ભાગોવડે ઉપરક્ત છે.

૫-જ્યારે પ્રકાશરૂપ કાર્ય ઉત્પન્ન થશે, ત્યારે સત્ત્વગુણ અંગી કહેવાશે અને બીજા ગુણ અંગ કહેવાશે. એવી રીતે બીજે પણ જાણી લેવું.

૬-જો સઘળા મળીને જ કાર્યનો આરંભ કરે છે, તો સઘળું, ગુણ-ત્રયનું કાર્ય હોવાથી તેમાં વિલક્ષણતા કેમ? તેનો ઉત્તર 'પરસ્પર' ઇત્યાદિથી આપે છે.

કરવાથી જ એ ત્રણે ગુણ તુલ્યજાતીય[1] અને અતુલ્યજાતીય કાર્યોના આરંભકરૂપ થાય છે. પરંતુ એટલું વિશેષ છે કે–પોતપોતાના પ્રાધાન્યકાળમાં તે ગુણ ઉદ્ભૂતવૃત્તિવાળા હોય છે અને ગૌણકાળમાં સહકારીરૂપથી પ્રધાનના અંતર્ગત થઈ અનુદ્ભૂતવૃત્તિવાળા થાવાથી અનુમિત હોય છે.[2] એ ત્રણે ગુણ કોઈ અન્ય નિમિત્ત વિના કેવળ પુરુષાર્થની કર્તવ્યતાથી જોડાયેલ સમર્થશીલ થયેલા એક પ્રધાન ગુણનું અનુસરણ કરી અયસ્કાંત મણિની પેઠે સન્નિધિ માત્રથી પુરુષના ઉપકારી થાય છે. એવા ધર્મશીલ ગુણોનું જ નામ પ્રધાન છે, અને તેજ દૃશ્ય કહેવાય છે.

આ દૃશ્ય[3] ભૂતેન્દ્રિયાત્મક છે. અર્થાત્–સૂક્ષ્મ સ્થૂલ ભૂતરૂપથી તથા સૂક્ષ્મ સ્થૂલ ઈંદ્રિરૂપથી[4] પરિણત હોવાથી ભૂતેંદ્રિયસ્વરૂપ છે. આ ભૂતાદિરૂપથી પ્રકૃતિનું જે પરિણામ છે, તે નિષ્પ્રયોજન નથી પણ સપ્રયોજન છે. એથી જ "भोगाऽपवर्गार्थम्" એમ કહેલું છે અર્થાત્ પુરુષના ભોગાપવર્ગને અર્થે જ આ પ્રકૃતિ ભૂતાદિરૂપથી પરિણત થાય છે, કાંઈ નિષ્પ્રયોજન નહિ.

૧–પ્રકાશરૂપ સાત્ત્વિક કાર્યના આરંભકાળમાં સત્ત્વગુણ તુલ્યજાતીય છે, અને બાકીના બે ગુણ અતુલ્યજાતીય છે. એ પ્રમાણે સત્ત્વગુણની અપેક્ષાથી પ્રકાશ તુલ્યજાતીય છે, અને અન્ય ગુણોની અપેક્ષાથી અતુલ્યજાતીય છે. તેમાં જે તુલ્યજાતીય છે, તે ઉપાદાન કારણ છે અને જે અતુલ્યજાતીય છે, તે સહકારી કારણ છે.

૨–જ્યારે દિવ્ય શરીર ઉત્પન્ન કરવાનું હોય, ત્યારે સત્ત્વગુણનું પ્રાધાન્ય રહે છે અને રજ તમગુણ ગૌણ રહે છે; અને મનુષ્ય શરીર ઉત્પન્ન કરવાના સમયમાં રજોગુણનું પ્રાધાન્ય અને સત્ત્વતમની ગૌણતા હોય છે. એ પ્રમાણે તિર્યક્ કીટાદિ શરીરની ઉત્પત્તિ કરવામાં તમોગુણનું પ્રાધાન્ય અને સત્ત્વરજની ગૌણતા જાણવી. જેનું કાર્ય આરબ્ધ હોય છે, તે પ્રધાન થયેલો ગુણ ઉદાર હોય છે અને જે બીજા ગુણ છે, તે સહકારી કારણ હોવાથી અનુમિત થયેલા સૂક્ષ્મરૂપથી રહે છે. કેમકે કાર્ય માત્ર ત્રિગુણાત્મક હોવાથી સહકારી કારણોની સત્તા માનવી પણ ઉચિત છે.

૩–એવી રીતે ગુણોના ધર્મને કહી હવે ગુણોના કાર્યને "આ દૃશ્ય" ઇત્યાદિથી કહે છે.

૪–સૂક્ષ્મ ભૂતથી પંચતન્માત્ર અને સ્થૂલ ભૂતથી પૃથ્વી વગેરે પંચ સ્થૂલ ભૂતનું ગ્રહણ કરવું. એ પ્રમાણે સૂક્ષ્મ ઈંદ્રિયથી મહત્તત્ત્વ, અહંકાર અને સ્થૂલ ઈંદ્રિયથી બીજી એકાદશ ઈંદ્રિય ગ્રહણ કરવી.

તેમાં અવિભાગવાળા ગુણોના ઇષ્ટાનિષ્ટ સ્વરૂપનું અવધારણ (નિશ્ચય) કરવું,[1] તે ભોગ છે, અને ગુણોથી વિભક્ત ભોક્તાપુરુષના સ્વરૂપનું અવધારણ કરવું, તે અપવર્ગ છે. એ બંને પ્રયોજન વિના ત્રીજું કોઈ પ્રધાન પ્રવૃત્તિનું પ્રયોજન નથી.

પંચ શિખાચાર્યે પણ "अयन्तु खलु त्रिषु गुणेषु कर्तृषु अकर्तरि च पुरुषे तुल्याऽतुल्यजातीये[2]. चतुर्थे तत्क्रियासाक्षिण्युपनीयमानान् सर्वभावानुपपन्नाननुपश्यन्न-दर्शनमन्यच्छंकते" એ વાક્યથી અવિભાગવાળા ગુણોના સ્વરૂપના નિશ્ચયને જ ભોગ કહેલો છે.

યદ્યપિ એ ભોગરૂપ અને અપવર્ગરૂપ બંને પુરુષાર્થો બુદ્ધિકૃત હોવાથી અને બુદ્ધિમાં વર્ત્તવાથી બુદ્ધિના જ ધર્મ છે, તોપણ જેમ જય વા પરાજય, યોધામાં રહેલ હોવા છતાં પણ સ્વામીભૂત રાજામાં કહેવાય છે, કેમકે તે તેના ફળનો ભોક્તા છે. એવી રીતે બંધ વા મોક્ષ બુદ્ધિમાં રહેલ હોવા છતાં પુરુષમાં વ્યવહૃત થાય છે. કેમકે પુરુષ, બુદ્ધિનો સ્વામી છે, અને તેના ફળનો ભોક્તા છે.

તેમાં ભોગ-અપવર્ગરૂપ પુરુષાર્થનું સમાપ્ત ન થવું, એ જ બુદ્ધિ-નિષ્ઠ બંધ છે, અને વિવેકખ્યાતિની ઉત્પત્તિથી એ પુરુષાર્થની પરિ-સમાપ્તિ થઈ જવી, એ મોક્ષ છે.

જેવી રીતે બંધ મોક્ષરૂપ બુદ્ધિધર્મનો પુરુષમાં આરોપ કરાય છે, તેવી રીતે ગ્રહણ,[3] ધારણ, ઊહ, અપોહ, તત્ત્વજ્ઞાન, અભિનિવેશ

૧–અવિભાગાપન્ન=ગુણોથી પોતાને ભિન્ન ન જાણી ગુણાત્મક બુદ્ધિનિષ્ઠ સુખ દુઃખાદિ ઇષ્ટાનિષ્ટ ધર્મોનું પોતામાં અવધારણ=નિશ્ચય કરવાનું નામ ભોગ છે.

૨–"तुल्याऽतुल्यजातीये"=જેમ પ્રકૃતિ અજન્ય છે, તેમ પુરુષ પણ અજન્ય છે, તેથી પુરુષ, પ્રકૃતિની તુલ્યજાતિવાળો કહેવાય છે. એ પ્રમાણે ગુણ, પરિણામી અને પુરુષ અપરિણામી નિષ્ક્રિય છે, તેથી પ્રકૃતિની અપેક્ષાથી પુરુષ વિજાતીય છે.

અવિવેકી પુરુષ, ત્રિગુણાત્મક બુદ્ધિનો કર્ત્તા હોવા છતાં પણ ત્રિગુણા-તીત, તુલ્યાતુલ્યજાતીય, બુદ્ધિસાક્ષી તુરીય અકર્ત્તા પુરુષમાં બુદ્ધિનિષ્ઠ સુખાદિ ધર્મોનો આરોપ કરતો છતો ગુણોથી ભિન્ન અન્ય શુદ્ધ ચેતનને જ જાણતો નથી; એવો પંચશિખાચાર્યના વાક્યનો અર્થ છે.

૩–ग्रहण=સ્વરૂપમાત્રથી પદાર્થનું જ્ઞાન. धारण=જાણેલા પદાર્થનું સ્મરણ. ऊह=પદાર્થગત વિશેષ ધર્મને વિતર્કથી જાણવા. अपोह=યુક્તિથી આરોપિત

આદિ ધર્મ પણ બુદ્ધિમાં રહેલ હોવા છતાં પુરુષમાં આરોપિત કરાય છે, કેમકે તે તેના ફળનો ભોક્તા છે. ॥ ૧૮ ॥

હવે પૂર્વોક્ત દૃશ્ય ગુણોના સ્વરૂપ તથા અવાંતર ભેદના નિરૂપણ અર્થે નીચેના સૂત્રનો આરંભ કરે છેઃ—

सू–विशेषाऽविशेषलिङ्गमात्राऽलिङ्गानि गुणपर्वाणि ॥ १९ ॥

સૂત્રાર્થઃ–વિશેષ, અવિશેષ, લિંગમાત્ર, અલિંગ, એ ચાર, ત્રણ ગુણોના પર્વ[1] છે.

વિશેષ=અવિશેષસંજ્ઞક શબ્દ, સ્પર્શ, રૂપ, રસ, ગંધ નામની પંચતન્માત્રાનું કાર્ય, જે આકાશ, વાયુ, અગ્નિ, જળ, પૃથ્વી એ પંચ ભૂતો તથા અહંકારનાં કાર્યભૂત જે શ્રોત્ર, ત્વક્, ચક્ષુ, જિવ્હા, ઘ્રાણ નામની પાંચ જ્ઞાનેંદ્રિય; અને વાક્, હસ્ત, પાદ, ગુદ, ઉપસ્થ નામની પાંચ કર્મેન્દ્રિય; અને એકાદશ સર્વાર્થ (જ્ઞાન કર્મેન્દ્રિય સ્વરૂપ) મન, એ ષોડશ ગુણ પરિણામવિશેષ કહેવાય છે. કેમકે એ સઘળાં શાંત, ઘોર, મૂઢરૂપ વિશેષ ધર્મોથી યુક્ત છે.

અવિશેષ=એક લક્ષણ[2] શબ્દ તન્માત્ર, દ્વિલક્ષણ સ્પર્શ તન્માત્ર,

ધર્મોનું દૂર કરવું. तत्त्वज्ञान=ઊહ અને અપોહથી પદાર્થનું અવધારણ. अभिनिवेश=તત્ત્વ અવધારણપૂર્વક ગ્રહણ અથવા ત્યાગ કરવું તે.

૧–વાસના દંડની વચ્ચે જે ગ્રંથિ (ગાંઠ) હોય છે, તે પર્વ કહેવાય છે, અર્થાત્ એ ચારે વિભાગમાં ગુણ વિભક્ત છે, એટલે કે ગુણોની એ ચાર, અવસ્થા છે. અહીં એટલું વિશેષ આ જાણવાનું છે કે–સાંખ્યયોગ મતમાં સઘળાં તત્ત્વ, ચાર વિભાગમાં વિભક્ત છે. જેમકે પ્રકૃતિ, પ્રકૃતિ વિકૃતિ, વિકૃતિ અને અપ્રકૃતિ વિકૃતિ. પ્રકૃતિ નામ તત્ત્વના કારણનું અને વિકૃતિ નામ કાર્યનું છે. તેમાં ત્રણ ગુણની સામ્યાવસ્થારૂપ જે પ્રધાન તે પ્રકૃતિ છે. અને મહત્, અહંકાર, પંચતન્માત્ર, એ સાત પ્રકૃતિ વિકૃતિ છે. કેમકે એ સાત કાર્ય કારણ સ્વરૂપ છે, અર્થાત્ મહત્તત્ત્વ, પ્રકૃતિનું કાર્ય અને અહંકારનું કારણ છે. એ પ્રમાણે અહંકાર, મહત્તત્ત્વનું કાર્ય અને પંચતન્માત્રનું કારણ છે. એ પ્રમાણે પંચતન્માત્ર, અહંકારનું કાર્ય અને સ્થૂલ ભૂતોનું કારણ છે. પંચભૂત અને એકાદશ ઇંદ્રિયો, એ સોળ પદાર્થ વિકૃતિ છે. અને ચેતન પુરુષ અપ્રકૃતિ વિકૃતિ છે. તેમાં જે વિકૃતિરૂપ સોળ પદાર્થ છે, તેની વિશેષ સંજ્ઞા છે. અને જે પ્રકૃતિ વિકૃતિરૂપ છે, તેની અવિશેષ સંજ્ઞા છે. અને પ્રથમ વિકૃતિ જે મહત્તત્ત્વ તેની લિંગ માત્ર સંજ્ઞા છે. તથા પ્રકૃતિની અલિંગ સંજ્ઞા છે.

૨–એ પંચ તન્માત્રાઓમાંથી પૂર્વ પૂર્વ તન્માત્ર, ઉત્તરઉત્તર તન્માત્રમાં અનુગત છે. તેથી યથાક્રમ એક લક્ષણ, દ્વિલક્ષણાદિ જાણવું.

ત્રિલક્ષણ રૂપતન્માત્ર, ચતુર્લક્ષણ રસતન્માત્ર, પંચ લક્ષણ ગંધતન્માત્ર, એ પાંચ અને તેઓનો કારણભૂત અહંકાર એ છ અવિશેષ છે.[1]

એ અવિશેષ સંજ્ઞાવાળાં છ, સત્તામાત્ર મહાન્ આત્મા (મહત્તત્ત્વ)નાં પરિણામ છે. કેમકે એ છથી પર અને એ છના કારણભૂત જે સત્તામાત્ર મહત્તત્ત્વ છે, તે સત્તામાત્ર[2] મહત્તત્ત્વમાં સૂક્ષ્મરૂપથી રહેલા આ છ, પંચભૂતાદિ કાર્યોત્પાદનદ્વારા સ્થૂલરૂપથી વૃદ્ધિની કાષ્ઠાને પામે છે અને પાછાં લયોન્મુખ થયેલાં પણ તે છ, તે સત્તામાત્ર મહત્તત્ત્વમાં સૂક્ષ્મરૂપથી રહેલું જે નિસત્તાઅસત્ત[3], નિસદસદ્, નિરસદ્, અવ્યક્ત, અલિંગ પ્રધાન છે, તેમાં લીન થઈ જાય છે.[4] એથી એ છ, મહત્તત્ત્વનું પરિણામ છે.

લિંગમાત્ર=એ છનું કારણભૂત જે પ્રધાન, તેનું પ્રથમ પરિણામ મહત્તત્ત્વ, તે લિંગમાત્ર કહેવાય છે.

૧–એ સઘળામાં શાંત, ઘોર, મૂઢરૂપ વિશેષ ધર્મ રહેતા નથી, તેથી તે અવિશેષ છે.

૨–પુરુષોના ભોગાપવર્ગરૂપ અર્થક્રિયા કરવાની ક્ષમતાવાળું હોવાથી મહત્તત્ત્વ “સત્તામાત્ર” કહેવાય છે.

૩–(निसत्ताऽसत्तम्) પુરુષાર્થ સંપાદનનું નામ સત્તા છે, અને તુચ્છતાનું નામ અસત્તા છે. એ બંનેથી રહિતનું નામ નિસત્તાસત્ત છે. અર્થાત્, ગુણત્રયની સામ્યાવસ્થારૂપ જે પ્રધાન છે, તે પુરુષના ભોગાપવર્ગના સંપાદનમાં અસમર્થ છે. કેમકે જ્યારે સત્ત્વગુણ રજોગુણના પ્રાધાન્યથી મહત્તત્ત્વાદિની ઉત્પત્તિ થાય છે, ત્યારે મહત્તત્ત્વાદિ પુરુષાર્થના સંપાદક થાય છે, કાંઈ સામ્યાવસ્થા નહિ. તેથી તે પ્રધાન, સત્તાથી રહિત છે, અને શશશૃંગની પેઠે મિથ્યા પણ નથી, તેથી અસત્તાથી રહિત છે.

(निसदसद्) અસત્ નામ સૂક્ષ્મ કારણનું છે અને સત્ નામ સ્થૂલ કાર્યનું છે. અર્થાત્–કાર્ય કારણભાવથી રહિત ગુણોની વૈષમ્યાવસ્થા જ કારણ હોવાથી સામ્યાવસ્થા કારણ નથી. તેથી તે કોઈનું કારણ નથી, અને ગુણત્રયસ્વરૂપ હોવાથી કોઈનું કાર્ય પણ નથી. (निरसद्) આકાશપુષ્પની પેઠે તુચ્છ ન હોવાથી અસતથી ભિન્ન છે. સ્થૂલ ન હોવાથી એ પ્રધાન અવ્યક્ત છે.

૪–અવિશેષ મહત્તત્ત્વથી એ સઘળા છ ઉત્પન્ન થાય છે, અને તેમાં જ લીન થાય છે, તેથી એ છ, મહત્તત્ત્વનું પરિણામ છે. પ્રથમ પોતાના કારણમાં લીન થઈ, પછી કારણ સહિત પ્રકૃતિમાં લીન થાય છે, એવો ક્રમ છે.

અલિંગ=મહત્તત્ત્વના કારણભૂત જે નિસત્તાસત્તપદ વાચ્યગુણોની સામ્યાવસ્થારૂપ પ્રધાન નામવાળું પરિણામ, તે અલિંગ છે.[1]

એ ગુણોની ચારે અવસ્થામાંથી વિશેષ, અવિશેષ, લિંગમાત્ર એ ત્રણ અવસ્થા પુરુષાર્થકૃત હોવાથી અનિત્ય છે અને અલિંગાવસ્થા નિત્ય છે. કેમકે અલિંગાવસ્થામાં પુરુષાર્થતારૂપ કારણના અભાવથી તે પુરુષાર્થકૃત ન હોવાથી અજન્ય છે.

અર્થાત્–જ્યારે શબ્દાદિ સ્થૂલ વિષય ઉત્પન્ન થાય, ત્યારે જ પુરુષ ભોગ લઈ શકે છે, એમને એમ નહિ; અને સ્થૂલ વિષય મહત્તત્ત્વાદિદ્વારા ઉત્પન્ન થાય છે, એટલે વિશેષ, અવિશેષ, લિંગમાત્ર, એ ત્રણે ગુણ પરિણામ, પુરુષાર્થયુક્ત હોવાથી અનિત્ય છે અને અલિંગ સંજ્ઞાવાળી પ્રધાનાવસ્થા કોઈ પુરુષાર્થ પ્રયુક્ત ન હોવાથી નિત્ય છે.

અહીં એટલું વિશેષ એ પણ જાણી લેવું કે–આ સઘળાં પરિણામોમાં અનુગત જે ત્રણ ગુણ છે, તે વાસ્તવિક રીતે ઉત્પન્ન થતા નથી અને લય પણ પામતા નથી, કિંતુ અતીત, અનાગત, વર્ત્તમાનકાળમાં રહેલ પદાર્થ, ઉત્પત્તિ તથા વિનાશ ધર્મશીલ મહત્તત્ત્વાદિદ્વારા પ્રતીત થાય છે. જેમકે લોકમાં દેવદત્ત દરિદ્ર થઈ ગયો, કેમકે તેના ધનનું હરણ થયું અને તેનાં ગાય વગેરે પશુ મરી ગયાં. એ દરિદ્ર વ્યવહાર ગાય વગેરેના મરવાથી જ દેવદત્તમાં આરોપ કરાય છે; તેમ મહત્તત્ત્વાદિની ઉત્પત્તિ તથા નાશથી ગુણોની ઉત્પત્તિ વા નાશ વ્યવહૃત થાય છે. વાસ્તવિક રીતે ગુણ, જન્ય વા નાશશીલ નથી.

અહીં સત્કાર્યવાદ હોવાથી પ્રથમ કાર્ય જે લિંગમાત્ર મહત્તત્ત્વ છે, તે ઉત્પત્તિની પૂર્વે પ્રધાનમાં સૂક્ષ્મરૂપે રહેલ હોય છે તે પાછું સૃષ્ટિકાળમાં પ્રધાનથી વિભક્ત થઈ જાય છે. કાંઈ પ્રથમ અસત્ નહોતું, એમ જાણવું. એ પ્રમાણે ષટ્ જે અવિશેષ છે, તે પણ લિંગમાત્રમાં પ્રથમ સૂક્ષ્મરૂપથી રહેલ પાછું અભિવ્યક્ત થાય છે. એ પ્રમાણે વિશેષ પણ અવિશેષોમાં પ્રથમ સ્થિત થયેલ પાછું વિભક્ત થાય છે.

૧–ગુણોની સામ્યાવસ્થા, ગુણોથી કાંઈક ભિન્ન હોવાથી પ્રધાનને ગુણોનું પરિણામ કહેલું છે, કાંઈ તેને ગુણોનું કાર્ય ન જાણવું. એથી જ ભાષ્યકારે એ અવસ્થાને નિત્ય કહેલી છે. કપિલમુનિએ પણ "मूले मूलाभावादमूलं मूलम्" અધ્યાય–૧ સૂત્ર ૬૭માં પ્રકૃતિને અજન્ય કહેલી છે. નિખિલ કાર્યના મૂલભૂત પ્રધાનમાં, બીજા મૂલ કારણનો અભાવ હોવાથી આ મૂલપ્રકૃતિ અમૂલ (અજન્ય) છે, એ એનો અર્થ છે.

એ ષોડશ વિશેષસંજ્ઞક પદાર્થથી આગળ કોઈ તત્ત્વ નથી તેથી વિશેષોનું કોઈ અન્ય તત્ત્વ કાર્ય નથી, એટલે તેમાં કોઈ સૂક્ષ્મરૂપે સ્થિત નથી, તેમ કોઈ તત્ત્વાન્તર ઉત્પન્ન થઈ વિભક્ત થતું નથી. તેટલા માટે જ એ સોળે પદાર્થનું નામ વિકૃતિ કહેવાય છે.[1]

યદ્યપિ એ સ્થૂળ પદાર્થોનું તત્ત્વાંતરરૂપ પરિણામ નથી, તથાપિ તેઓ ધર્મ, લક્ષણ તથા અવસ્થાસંજ્ઞક એ ત્રણ પરિણામોવાળા હોવાથી પરિણામી જાણવા. એ તૃતીય પાદમાં સ્પષ્ટ રીતે[2] કહેવાશે એમ જાણવું. ॥૧૯॥

એવી રીતે દૃશ્યનું નિરૂપણ કરી હવે દ્રષ્ટાના સ્વરૂપના નિશ્ચય માટે નીચેના સૂત્રનો આરંભ કરે છેઃ-

सू-द्रष्टा दृशिमात्रः शुद्धोऽपि प्रत्ययाऽनुपश्यः ॥ २० ॥

સૂત્રાર્થ:-(दृशिमात्रः) નિખિલ ધર્મોથી રહિત જે ચેતનમાત્ર અર્થાત્ જ્ઞાનસ્વરૂપ પુરુષ તે (द्रष्टा) કહેવાય છે. જો જ્ઞાનસ્વરૂપ છે, તો જ્ઞાનનો આશ્રય કેમ?[3] તેનો ઉત્તર કહે છે. (शुद्धोऽपि प्रत्ययाऽनुपश्यः) જો કે તે સ્વભાવથી જ્ઞાનનો આધાર ન હોવાથી શુદ્ધ જ છે તથાપિ પ્રત્યયસંજ્ઞક બુદ્ધિધર્મ જ્ઞાનનું અનુસરણ કરવાથી જ્ઞાનનો આધાર કહેવાય છે.

અગર જો કે પુરુષ, જ્ઞાનસ્વરૂપ જ છે, તથાપિ બુદ્ધિદર્પણમાં પ્રતિબિંબિત થયેલ, બુદ્ધિના ધર્મભૂત જ્ઞાનના આધારરૂપે પ્રતીત થાય છે. એથી બુદ્ધિવૃત્તિનો અનુકારી હોવાથી[4] તે પુરુષ પ્રત્યયાનુપશ્ય કહેવાય છે.

૧-અગર જો કે આકાશાદિ પણ શબ્દાદિના કારણરૂપ છે, તથાપિ શબ્દાદિ કાંઈ તત્ત્વાન્તર નથી. તેથી આકાશાદિ પ્રકૃતિરૂપ નથી. કેમકે જે પૂર્વ તત્ત્વની અપેક્ષાથી કાંઈ વિલક્ષણ અન્ય તત્ત્વની ઉત્પત્તિ કરે છે, તે જ પ્રકૃતિ કહેવાય છે, કાંઈ સામાન્ય રીતે કારણનું નામ પ્રકૃતિ નથી, એ ભાવ છે.

૨-ત્રીજા પાદના ૧૩ મા સૂત્રમાં જુઓ.

૩-જ્ઞાનના આધારનું નામ દ્રષ્ટા છે, જેને લોકમાં જાણવાવાળો કહે છે. એ પ્રમાણે જ્ઞાનરૂપ ધર્મનો આધાર હોવાથી દૃશિમાત્ર કેમ? એ આશંકાનો આશય છે.

૪-અનુકારી=તદાકારધારી. ચૈતન્યનું પ્રતિબિંબ ગ્રહણ કરનારી બુદ્ધિવૃત્તિ, વિષયાકાર અને જ્ઞાનાધારરૂપ હોવાથી તદ્ વિભાગાપન્ન (જોડાયલો) પુરુષ પણ જ્ઞાનના આધારરૂપ પ્રતીત થાય છે. પણ વાસ્તવિક જોતાં તે પુરુષ કોઈ ધર્મના આશ્રયરૂપ નથી; કેમકે તે સાક્ષીરૂપે છે, એ તત્ત્વ છે.

તે દૃશિમાત્ર[1] ચેતનભૂત પુરુષ, બુદ્ધિના જેવા રૂપવાળો નથી, તેમ અત્યંત વિભિન્ન રૂપવાળો પણ નથી. અર્થાત્-તે પુરુષ, બુદ્ધિથી વિલક્ષણ છે, કેમકે બુદ્ધિ, જ્ઞાત-અજ્ઞાત-વિષયરૂપ હોવાથી પરિણામિની છે, અને પુરુષ સદા જ્ઞાતવિષય હોવાથી અપરિણામી છે. અર્થાત્-બુદ્ધિના વિષયભૂત જે ગો, ઘટપટાદિ પદાર્થ છે, તે કોઈવાર જ્ઞાત હોય છે અને કોઈવાર અજ્ઞાત હોય છે અને પુરુષનું વિષયભૂત જે બુદ્ધિતત્ત્વ છે, તે સદા પુરુષને જ્ઞાત જ રહે છે. આથી બુદ્ધિ સદા એકરસ ન રહેવાથી[2] પરિણામિની છે, અને પુરુષ સદા એકરસ હોવાથી અપરિણામી છે. કેમકે પુરુષને, વિષયભૂત બુદ્ધિતત્ત્વ સદા જ્ઞાત જ રહે છે. તેથી એ બંને પરસ્પર વિલક્ષણ છે. એ પ્રમાણે સંહત્યકારકત્વ[3] હોવાથી બુદ્ધિ પરાર્થરૂપે છે અને પુરુષ સ્વાર્થરૂપે છે. આથી બંને વિલક્ષણ છે. એ પ્રમાણે શાન્ત, ઘોર, મૂઢાકારવડે પરિણામ પામેલી બુદ્ધિ, શાંત, ઘોર, મૂઢપદાર્થ વિષયક અધ્યવસાયશીલ હોવાથી ત્રિગુણ તથા અચેતનરૂપ છે, અને પુરુષ, ગુણોનો ઉપદ્રષ્ટા[4] માત્ર હોવાથી ગુણાતીત અને ચેતનરૂપ છે, તેથી એ બંને વિલક્ષણ હોવાથી અસમાન સ્વરૂપવાળા છે.

એટલા ઉપરથી એ બંને અત્યંત વિરૂપ છે, એમ પણ ન જાણવું. કેમકે બુદ્ધિથી તે પુરુષ પ્રત્યયાનુપશ્ય છે, અર્થાત્-બુદ્ધિવૃત્તિરૂપ જ્ઞાનને પ્રકાશ કરતો છતો બુદ્ધિવૃત્તિ સ્વરૂપ ન હોવા છતાં પણ બુદ્ધિવૃત્તિ સ્વરૂપથી પ્રતીત થાય છે.

૧-"स बुद्धेर्न सरूपो नात्यन्तं विरूपः" ઇત્યાદિ ભાષ્યનો અનુવાદ "તે" ઇત્યાદિથી કરે છે.

૨-જે કાળે વિષયસન્નિધિથી બુદ્ધિ વિષયાકાર થાય છે, તે કાળમાં બુદ્ધિ જ્ઞાતવિષય હોય છે, અને બીજે સમયે અજ્ઞાતવિષય હોય છે, એથી કોઈ વાર વિષયાકાર અને કોઈક વાર અવિષયાકાર હોવાથી સદા એકરસ નથી.

૩-કલેશ, કર્મ, વાસના તથા વિષયેંદ્રિયાદિથી સંહત (મળીને) પુરુષના ભોગાપવર્ગરૂપ અર્થનું સંપાદન કરવાથી બુદ્ધિ સંહત્યકારી છે. અર્થાત્-જે જડ પદાર્થ એકઠા મળી કોઈ એક કાર્યને સંપાદન કરે છે, તે બીજાને માટે હોય છે. જેમકે શયન, આસન, ગ્રહાદિ જડ પદાર્થ એકઠા મળી પુરુષના ભોગનું સાધન હોવાથી પુરુષાર્થ કહેવાય છે; તેમ બુદ્ધિ પણ મિલિત થયેલી કાર્ય કરતી હોવાથી પરાર્થ (પારકાને માટે) છે, અને પુરુષ, અસંહત (કેવલ) હોવાથી બીજા કોઇને અર્થે નથી, તેથી સ્વાર્થ (પોતાને માટે) છે.

૪-બુદ્ધિમાં પ્રતિબિંબ માત્ર થયેલો તે પ્રકાશે છે, કાંઈ તદાકારથી પરિણત થતો નથી તેથી ઉપદ્રષ્ટારૂપ છે.

પંચશિખાચાર્યે પણ "अपरिणामिनी हि भोक्तृशक्तिरप्रतिसंक्रमा च परिणामिन्यर्थे प्रतिसंक्रान्तेव तद्वृत्तिमनुपतति तस्याश्च प्राप्तचैतन्योपग्रहरूपाया बुद्धिवृत्तेरनुकारिमात्रतया बुद्धिवृत्त्यविशिष्टा हि ज्ञानवृत्तिरित्याख्यायते"[1] એ વાકયથી બુદ્ધિવૃત્તિના અનુકારથી પુરુષને દ્રષ્ટા કહ્યો છે. ॥ ૨૦ ॥

એ પ્રકારે દૃશ્ય અને દ્રષ્ટાના સ્વરૂપનું વર્ણન કરી હવે સ્વસ્વામીભાવરૂપ સંબંધને ઉપયોગી જે દૃશ્યનિષ્ઠ પુરુષાર્થત્વ, તેનું નિરૂપણ કરે છે.—

सू–तदर्थ एव दृश्यस्याऽऽत्मा ॥ २१ ॥

સૂત્રાર્થઃ-(दृश्यस्य) પૂર્વોક્ત દૃશ્યનું જે (आत्मा) સ્વરૂપ છે, તે (तदर्थ एव) તે દ્રષ્ટાભૂત પુરુષને જ અર્થે છે.

અર્થાત્-જ્ઞાનસ્વરૂપ પુરુષની વિષયતાને પામેલાં જે બુદ્ધિ વગેરે દૃશ્ય છે, તેનું સ્વરૂપ સ્વાર્થરૂપ નથી, પણ પુરુષના ભોગાપવર્ગરૂપ પુરુષાર્થના સંપાદક હોવાથી પરાર્થરૂપ છે.

જે હેતુથી આ દૃશ્યનું જડરૂપ પુરુષના ભોગાપવર્ગાર્થ છે, તે હેતુથી જ પુરુષના ભોગાપવર્ગરૂપ અર્થના સંપાદન પછી આ દૃશ્ય વિવેકી પુરુષની પ્રતિ અદૃશ્ય થઈ જાય છે.

ભાવ એ છે કે-સુખાદિ અનુભવરૂપ ભોગ તથા વિવેક ખ્યાતિરૂપ અપવર્ગ જ દૃશ્યનું પ્રયોજન છે, અને જ્યારે પુરુષને નિજરૂપનું જ્ઞાન થઈ જાય છે, ત્યારે પ્રયોજનના અભાવથી દૃશ્યનો વિલય થઈ જાય છે. કેમકે વિવેકખ્યાતિરૂપ અંતિમ પ્રયોજનના સંપાદન પછી બીજા પ્રયોજનનો અભાવ હોવાથી દૃશ્યની પ્રવૃત્તિનો સંભવ નથી.

આ સ્થળે એ શંકા ન કરવી કે, "જો[2] વિવેકખ્યાતિના ઉદયથી દૃશ્યનું સ્વરૂપ હાન હોવાથી નાશ થઈ જાય છે, તો અન્ય પુરુષોના ભોગાપવર્ગનું સંપાદન કેમ થશે?" કેમકે વિવેકીની દૃષ્ટિથી જ દૃશ્ય

૧–અપરિણામી જે ભોકતૃશક્તિ સંજ્ઞાવાળો પુરુષ છે, તે જો કે અપ્રતિસંક્રમ છે, અર્થાત્ કોઈ પણ વિષયથી સંબદ્ધ ન હોવાથી નિર્લેપ છે, તથાપિ પરિણામી બુદ્ધિમાં પ્રતિબિંબિત થયેલો તદાકાર હોવાથી તે બુદ્ધિની વૃત્તિનો અનુપાતી (અનુસારી) બની જાય છે અને તે, ચૈતન્યપ્રતિબિંબ ગ્રાહિણી બુદ્ધિવૃત્તિના અનુકાર માત્ર હોવાથી બુદ્ધિવૃત્તિથી અભિન્ન થયેલું તે ચેતન જ જ્ઞાનવૃત્તિ કહેવાય છે. એવો પંચશિખાચાર્યના વાકયનો અર્થ છે.

૨–" स्वरूपहानादस्य नाशः प्राप्तः " એ શંકાબોધક ભાષ્યનો અનુવાદ 'જો' ઇત્યાદિથી કરે છે.

નષ્ટ થયેલું છે, કાંઈ સઘળાની દૃષ્ટિથી નહિ. તેથી જેને વિવેકજ્ઞાન થયું નથી, તેની દૃષ્ટિમાં દૃશ્ય વિદ્યમાન હોવાથી બીજાના ભોગાપવર્ગનું હોવું સંભવિત છે. ॥૨૧॥

તે વિષય જ સૂત્રકાર હવે કહે છે—

सू—कृतार्थं प्रति नष्टमप्यनष्टं तदन्यसाधारणत्वात् ॥२२॥

સૂત્રાર્થઃ-(**कृतार्थंप्रति**) વિવેકખ્યાતિની ઉત્પત્તિદ્વારા જે પુરુષે અર્થ સંપાદન કરી દીધેલો છે, એ પુરુષના પ્રતિ (**तद् नष्टमपि**) તે દૃશ્ય નાશ પામેલું છે, છતાં પણ (**अनष्टम्**) બીજા અવિવેકીની અપેક્ષાએ અનષ્ટ છે, અર્થાત્ વિદ્યમાન જ છે. કેમકે (**अन्यसाधारणत्वात्**) તે દૃશ્ય બીજા સઘળા પુરુષોને સાધારણ છે.

અર્થાત્-દૃશ્યનું જે ભોગાપવર્ગ સંપાદનરૂપ પ્રયોજન છે, તે કાંઈ એક પુરુષને માટે નથી, કે જેથી એક પુરુષને વિવેકનો ઉદય થવાથી દૃશ્યના અભાવથી બીજા પુરુષોને ભોગાપવર્ગનું સંપાદન ન થાય. પણ સઘળા પુરુષોને અર્થે દૃશ્યની પ્રવૃત્તિ છે, તેથી સઘળા પુરુષો માટે દૃશ્યની સાધારણ પ્રવૃત્તિ હોવાથી વિવેકી પુરુષની દૃષ્ટિમાં કૃતકાર્ય દૃશ્ય નષ્ટ પણ છે, પરંતુ અવિવેકીની દૃષ્ટિમાં કૃતકાર્ય ન હોવાથી તે અનષ્ટ (વિદ્યમાન જ) છે.[1] એથી તે પુરુષોની વિષયતાને પામેલું આ દૃશ્ય, ચેતનરૂપ આત્માદ્વારાએ નિજરૂપથી લબ્ધ સત્તાવાળું થઈ જાય છે, પણ કાંઈ અભાવવડે પ્રાપ્ત થઈ જતું નથી. એથી જ પ્રકૃતિ અને પુરુષ નિત્ય વિદ્યમાન હોવાથી તે બંનેનો સંયોગ અનાદિ કહેવાય છે. એમ જ પંચશિખાચાર્યે કહેલું છે કે—જેમ "**धर्मिणामनादिसंयोगाद् धर्ममात्राणामप्यनादिः संयोगः**[2]" **इति** ॥ ૨૨ ॥

૧-અર્થાત્-જેમ અંધ પુરુષને રૂપ દશ્ય થતું નથી, એટલાપરથી કાંઈ રૂપનો અભાવ મનાતો નથી. કેમકે નેત્રવાળા પુરુષોની દષ્ટિથી રૂપની ઉપલબ્ધિ પ્રત્યક્ષ સિદ્ધ છે. એ પ્રમાણે વિવેકીની દષ્ટિથી દશ્યની અનુપલબ્ધિ હોવા છતાં પણ અન્યની દષ્ટિથી પ્રત્યક્ષ સિદ્ધ હોવાથી દશ્ય વિદ્યમાન જ છે. એ પ્રકારે શ્રુતિમાં પણ કહેલું છે કે-" अजो ह्येको जुषमाणोऽनुशेते जहात्येनां भुक्तभोगामजोऽन्यः " એક જે બદ્ધ પુરુષ છે, તે " जुषमाण " અર્થાત્-પ્રકૃતિ વા વિષયોનું સેવન કરતો, "હું સુખી છું, વા દુઃખી છું." એ પ્રકારે અનુતાપયુક્ત હોય છે, અને બીજો જે વિવેકી પુરુષ છે, તે ભુક્તભોગ પ્રકૃતિને તજી દે છે, એવો શ્રુતિનો અર્થ છે.

૨-ગુણોનો સંયોગ અનાદિ હોવાથી ધર્મભૂત મહત્તત્ત્વાદિનો સંયોગ પણ અનાદિ છે, એવો પંચશિખાચાર્યજીના વચનનો અર્થ છે.

એવી રીતે અનાદિ સ્વસ્વામીભાવ સંબંધનું નિરૂપણ કરી હવે તત્ પ્રયુક્ત સંયોગના સ્વરૂપને કહેવા સારુ નીચેના સૂત્રની પ્રવૃત્તિ કરાય છે.

सू०—स्वस्वामिशक्त्योः स्वरूपोपलब्धिर्हेतुः संयोगः ॥ २३ ॥

સૂત્રાર્થઃ–(स्वस्वामिशक्त्योः) સ્વશક્તિ–સ્વામીશક્તિ અને સંજ્ઞક બુદ્ધિ–પુરુષના (स्वरूपोपलब्धिहेतुः) સ્વરૂપની ઉપલબ્ધિને હેતુભૂત જે સંબંધ, તે (संयोगः) સંયોગ કહેવાય છે.

અર્થાત્[1]–દૃશ્ય, પુરુષને અર્થે હોવાથી તે સ્વશક્તિ છે અને દૃશ્યકૃત ભોગાદિરૂપ ઉપકારનો ભાજન હોવાથી પુરુષ, સ્વામીશક્તિ છે. એ બંનેના સ્વસ્વામીભાવ પ્રયુક્ત અનાદિ સંયોગથી જે અવિવેકદ્વારા દૃશ્યની ઉપલબ્ધિ અર્થાત્–સુખાદિ વિષયોનો અનુભવ, તે ભોગ છે; અને વિવેકદ્વારા દૃશ્યથી ભિન્ન જે પોતાના સ્વરૂપનું યથાર્થ જ્ઞાન, તે અપવર્ગ છે. તેનું જ નામ સ્વરૂપોપલબ્ધિ છે. એ પ્રમાણે ભોગાપવર્ગનો હેતુ જે પ્રકૃતિ પુરુષનો સ્વસ્વામીભાવસંબંધ, તે સંયોગ કહેવાય છે, એ નિષ્પન્ન થયું.

આ પ્રકૃતિ પુરુષનો સંયોગ જેમ અનાદિ છે, તેમ અનન્ત ન જાણવો. કેમકે વિવેકખ્યાતિ પર્યંત જ સંયોગ રહે છે, ત્યાર પછી રહેતો નથી, તેથી દર્શનને વિયોગના કારણરૂપ કહે છે. દર્શન[2], અદર્શનનો પ્રતિદ્વંદ્વી (વિરોધી) છે. એથી જેમ દર્શન, વિયોગનું કારણ છે, તેમ અદર્શન, સંયોગનું કારણ છે.

આ સ્થળે એટલું વિશેષ એ જાણી લેવું કે–જ્ઞાન[3], અજ્ઞાનનું વિરોધી હોવાથી તે જ્ઞાન, અજ્ઞાનનું જ નાશક છે, પણ સુખાદિ ભોગ-

---

૧–અહીં "સ્વરૂપોપલબ્ધિ" એ પદમાં "સ્વ" શબ્દ, દૃશ્ય અને દ્રષ્ટા એ બંનેનો વાચક છે, તેથી દૃશ્યની સ્વરૂપોપલબ્ધિથી ભોગનું ગ્રહણ થયું અને દ્રષ્ટાની સ્વરૂપોપલબ્ધિ કહેવાથી અપવર્ગનો લાભ થયો. આ પ્રમાણે ભોગાપવર્ગરૂપ પુરુષાર્થનો સંપાદક જે પ્રકૃતિ પુરુષનો સ્વસ્વામીભાવ સંબંધ છે, તે સંયોગ છે. તે "અર્થાત્" ઈત્યાદિથી સ્પષ્ટ કરે છે.

૨–દર્શન નામ વિવેકખ્યાતિ વા જ્ઞાનનું છે અને અદર્શન નામ અજ્ઞાન વા અવિવેકનું છે.

૩–જ્ઞાન, પોતાના વિરોધીભૂત અજ્ઞાનની નિવૃત્તિ કરે, પરંતુ બંધની નિવૃત્તિ શી રીતે થશે ? એ આશંકાના અનુમોદનપૂર્વક "જ્ઞાન" ઈત્યાદિથી ઉત્તર દે છે.

રૂપ બંધનું તે નાશક નથી. એથી જ્ઞાન, સાક્ષાત્ મોક્ષનું કારણ નથી, પણ અજ્ઞાન નિવૃત્તિપ્રયુક્ત બંધનિવૃત્તિદ્વારા પરંપરાથી મોક્ષનું કારણ છે. અર્થાત્–અજ્ઞાનના અભાવથી બંધનો જે અભાવ થઈ જવો, તે અહીં મોક્ષ છે અને જ્ઞાન હોવાથી જ બંધ કારણ અજ્ઞાનનો અભાવ થાય છે. આ અભિપ્રાયથી જ દર્શનને કૈવલ્યનું કારણ કહેલું છે, કાંઈ સાક્ષાત્ કૈવલ્ય એ જ્ઞાનજન્ય[1] નથી.

હવે આ ઠેકાણે પ્રસંગથી એ વિચાર કરવામાં આવે છે કે–જે અજ્ઞાનનો, જ્ઞાનથી અભાવ થઈ જાય છે, તે અજ્ઞાન કેવા સ્વરૂપવાળું છે? અર્થાત્, અવિદ્યા કોનું નામ છે? (૧) શું ગુણોના કાર્યોનું જે આરંભણ સામર્થ્ય છે, તેનું નામ અવિદ્યા છે?[2] (૨) વા દૃશિરૂપ સ્વામીના ભોગાપવર્ગરૂપ અર્થના સંપાદક ચિત્તનો અનુત્પાદ,[3] અર્થાત્, પુરુષાર્થની સમાપ્તિ ન થવાથી જ્ઞાનનો

૧–બુદ્ધિ આદિથી ભિન્ન પોતાના શુદ્ધ સ્વરૂપમાં જે અવસ્થાન, તેનું નામ મોક્ષ છે. એ સ્વરૂપાવસ્થાનરૂપ મોક્ષનું, જ્ઞાન કાંઈ કારણ નથી, પણ અજ્ઞાનરૂપ પ્રતિબંધકની નિવૃત્તિ જ કારણ છે. એથી અજ્ઞાન નિવૃત્તિદ્વારા જ્ઞાનને મોક્ષનું કારણ કહેવામાં આવે છે, કાંઈ વસ્તુતાએ મોક્ષ, જ્ઞાનજન્ય નથી. બંધનિવૃત્તિ એ પુરુષસ્વરૂપ હોવાથી અને પુરુષ એ નિત્ય સિદ્ધ હોવાથી, મોક્ષ એ જ્ઞાનજન્ય નથી, પણ નિત્ય છે, એ ભાષ્યનું તત્ત્વ છે.

૨–બંધના હેતુભૂત જે પ્રકૃતિપુરુષનો સંયોગ છે, તે સંયોગનો હેતુ કોણ છે, તેનો ઉત્તર આગ્રમ સૂત્રમાં એ આપેલો છે કે, "અવિદ્યા, સંયોગનો હેતુ છે." તેમાં અવિદ્યા કોને કહે છે, તેના નિર્ણય માટે ભાષ્યકારોએ "किं चेदमदर्शनं नाम" ઇત્યાદિ ગ્રંથથી ૭ વિકલ્પ કર્યા છે. તેમાં વિપર્યયજ્ઞાનવાસનાનું નામ અવિદ્યા છે, એ સિદ્ધાંતપક્ષ છે. જો કે ચતુર્થ વિકલ્પ છે, પણ તે અગ્રિમ સૂત્રના વ્યાખ્યાનમાં કહેવાશે. હવે સૃષ્ટિનું જે જે કારણ હશે, તે જ સંયોગનું કારણ હશે, એ સંભાવના માત્રથી કહે છે કે, "શું ગુણોના" ઇત્યાદિથી. ગુણોનું જ્યારે કાર્યના આરંભમાં સામર્થ્ય થાય છે, ત્યારે સૃષ્ટિ થાય છે, એથી સૃષ્ટિહેતુ એ સંયોગનું કારણ હોવાથી, શું ગુણોના અધિકારનું જ નામ અવિદ્યા છે? એવો ભાવ છે.

૩–ત્યાં સૂધી જ પ્રધાન વા ચિત્ત ચેષ્ટા કરે છે કે, જ્યાં સૂધી ભોગ અને વિવેકખ્યાતિરૂપ બંને વિષયો પુરુષને દર્શિત (સમર્પણ) કરાતા નથી અને જ્યારે એ બંને વિષયોનું નિષ્પાદન કરી દે છે, ત્યારે તે ચિત્ત નિવૃત્તાધિકાર થઈ જાય છે. એવા રૂપવાળા સમાપ્તકર્ત્તવ્ય ચિત્તનો જે અનુત્પાદ (ઉત્પત્તિનો અભાવ) તેને શું, અવિદ્યા કહે છે? અર્થાત્ ચિત્તના અધિકારની સમાપ્તિ ન હોવી, એ જ અવિદ્યાનું ફળ છે. અધિકાર સમાપ્ત નથી થયો, એવા ચિત્તનું ન હોવું એજ અવિદ્યા છે, એમ આનો ભાવ છે.

જે અભાવ,તે અવિદ્યા છે? (૩) વા ગુણોની અર્થવત્તા[1] એ અવિદ્યાછે? (૪) અથવા ચિત્તની ઉત્પત્તિના બીજભૂત અને પ્રલયકાળમાં ચિત્તની સાથે જ પ્રકૃતિમાં લીન જે વિપર્યય જ્ઞાનવાસના, તે અવિદ્યા છે? (૫) અથવા પ્રધાન સંબંધી સ્થિતિ સંસ્કારનો ક્ષય થવાથી ગતિસંસ્કારની અભિવ્યક્તિ અવિદ્યા છે? અર્થાત્ પ્રધાનમાં બે પ્રકારના સંસ્કાર રહે છે; એક સ્થિતિસંસ્કાર કે જે પ્રલયકાલીન સામ્યાવસ્થાનું કારણ છે; અને એક ગતિસંસ્કાર, કે જે મહત્તત્ત્વાદિ વિકારોનો આરંભક છે. એ જ પ્રમાણે શ્રી પંચશિખાચાર્યે કહેલું છે કે;-"प्रधानं[2] स्थित्यैव वर्तमानं विकाराऽकरणादप्रधानं स्यात् तथा गत्यैव वर्तमानं विकारनित्यत्वादप्रधानं स्यात् उभयथा चाऽस्य प्रवृत्तिः प्रधानव्यवहारं लभते नाऽन्यथा कारणान्तरेष्वपि कल्पितेष्वेव समानश्चर्चः" એ પ્રમાણે ગતિ સંસ્કાર હોવાથી જે મહદાદિ કાર્યનો આરંભ, તેનું નામ શું અવિદ્યા છે? (૬) અને કોઈ એમ કહે છે કે "प्रधानस्यात्मख्यापनार्था प्रवृत्तिः"[3] એ શ્રુતિથી દર્શનશક્તિ જ

૧–ચિત્તમાં ભોગાપવર્ગરૂપ અર્થની સૂક્ષ્માવસ્થાથી વિદ્યમાનતા રહેવી તે.

૨–પ્રલયકાળમાં હોવાવાળી કાર્યારંભથી રહિત ગુણોની જે સામ્યાવસ્થા, તેનું નામ સ્થિતિ છે, અને સૃષ્ટિકાળમાં હોવાવાળી ગુણોની જે કાર્યારંભરૂપ અવસ્થા, તેનું નામ ગતિ છે. અહીં "જો પ્રકૃતિ, સ્થિતિ અવસ્થાવાળી હોય, તો કોઈ દિવસ પણ તેનાથી ઉત્પત્તિ ન થવી જોઇએ, અને જો ગતિ અવસ્થાવાળી હોય, તો સર્વદા જ ઉત્પત્તિ થવાથી પ્રલયનો અભાવ થવો જોઇએ." એવી રીતની વાદીની શંકાના વારણ અર્થે પંચશિખાચાર્યજીએ ઉત્તર આપેલો છે કે–"प्रधानं" ઇત્યાદિ. જો પ્રધાનને **સ્થિતિ**થી વર્તમાન માનશે તો કાંઈ પણ કાર્ય ન કરવાથી અપ્રધાન થઈ જશે. કેમકે જેમાં સૂક્ષ્મરૂપે સ્થિત થયેલું ફરીથી ઉત્પન્ન થાય છે, તેનું નામ પ્રધાન છે. અને જો **ગતિ**થી વર્તમાન માનશે તોપણ વિકાર નિત્ય હોવાથી અપ્રધાન થઈ જશે. કેમકે કોઈ પદાર્થના લયાધારને જ પ્રધાન કહે છે. એથી ઉત્પત્તિ કાળમાં ગતિવાળું અને પ્રલયકાળમાં સ્થિતિવાળું માની બંને પ્રકારે પ્રધાનની પ્રવૃત્તિદ્વારા પ્રધાનનો વ્યવહાર માનવો જોઇએ. કેમકે એમ માનવાથી પ્રધાનત્વના લાભથી કોઈ દોષની પ્રાપ્તિ થતી નથી. કાંઈ પ્રકૃતિમાં જ એ વિચાર નથી, પણ અન્ય વાદીઓવડે કલ્પિત જે બ્રહ્મ પરમાણુ વગેરે છે, તેઓમાં પણ એ વિચાર સમાન છે. કેમકે બ્રહ્મ વગેરે પણ સ્થિતિશીલ મનાશે તો કાંઈ કાર્ય ન કરવાથી તે અકારણ કહેવાશે અને જો ગતિશીલ મનાશે, તો કાર્ય, નિત્ય હોવાથી તે જ અકારણ કહેવાશે. એ પંચશિખાચાર્યજીના વચનનો અર્થ છે.

૩–પ્રધાનની પ્રવૃત્તિ પોતાના સ્વરૂપખ્યાપન (બોધન)ને અર્થે છે. કેમકે જ્યાંસુધી પ્રધાનની પ્રવૃત્તિ નહિ થશે, ત્યાંસુધી પ્રધાનના સ્વરૂપનો પરિચય

અવિદ્યા કહેવાય છે. અર્થાત્-પુરુષ સર્વ પદાર્થોના જ્ઞાનમાં દ્રષ્ટા સમર્થ છે, તથાપિ પ્રધાનની પ્રવૃત્તિની પૂર્વે પુરુષ તેને દેખી શકતો નથી, અને સર્વ કાર્ય કરવામાં સમર્થ દૃશ્ય પણ તેને દેખાતું નથી. માટે પ્રધાનની પ્રવૃત્તિથી પુરુષનું જે દર્શનસામર્થ્ય, તેનું નામ શું અવિદ્યા છે?

(૭) કોઈ આમ કહે છે કે-પ્રકૃતિ તથા પુરુષ એ બંનેમાં જે પરસ્પર દર્શનશક્તિ છે તે અવિદ્યા છે. યદ્યપિ દૃશ્ય જડ છે, અને પુરુષ અસંગ તથા નિર્ધર્મક છે, તેથી બંનેનો ધર્મ દર્શન થઈ શકે નહિ, તથાપિ ચેતનના પ્રતિબિંબથી દૃશ્ય ચેતનતુલ્ય હોવાથી અને તે ચેતનની છાયાની અપેક્ષાથી, દૃશ્યનો ધર્મ દર્શન અને બુદ્ધિરૂપ દૃશ્યની અપેક્ષાથી પુરુષનો પણ ધર્મ દર્શન જાણવો. અર્થાત્-બુદ્ધિ અને ચેતનનો પરસ્પર અવિવેક હોવાથી બંનેનો દર્શન ધર્મ છે. (૮) કોઈ એમ કહે છે કે, શબ્દાદિ વિષયોનું જે જ્ઞાન તે જ અવિદ્યા છે.

આવી રીતે અવિદ્યાના સ્વરૂપ માટે શાસ્ત્રમાં અનેક વિકલ્પ કરેલા છે. પણ એ સઘળા વિકલ્પ, સઘળા પુરુષોની સંગે પ્રકૃતિસંયોગમાં કારણ હોવાથી 'સાધારણ' છે. અર્થાત્-આ સઘળાં પૂર્વોક્ત અવિદ્યાનાં લક્ષણ તે જ અવિદ્યામાં રહી શકે છે, કે જે પ્રકૃતિપુરુષના સંયોગદ્વારા સઘળા પ્રપંચનો હેતુ છે પરંતુ જે અવિદ્યા પ્રત્યેક પુરુષની સાથે બુદ્ધિ-સંયોગદ્વારા સુખદુઃખ ભોગના વૈચિત્ર્યમાં હેતુ છે, તેનું આ લક્ષણ નથી.[1] તેથી આ લક્ષણ સાધારણ છે. ॥ ૨૩ ॥

"જો પ્રત્યેક પુરુષની સંગે બુદ્ધિસંયોગનો હેતુ એ પૂર્વોક્ત અવિદ્યા નહિ હોઈ શકે તો પછી સુખદુઃખ ભોગના હેતુભૂત સંયોગનું કારણ કઈ અવિદ્યા છે?" તેનો ઉત્તર આપે છે—

નહિ થશે, એ જ સ્પષ્ટ કરે છે. "અર્થાત્" ઇત્યાદિથી. આ સ્થળે સર્વત્ર જ જ્ઞાન હોવાથી જેનો નાશ થાય છે, અને જે સૃષ્ટિની કારણભૂત પ્રકૃતિની અવસ્થા વિશેષ છે, તે બંને અવિદ્યાને જાણવી.

૧-અર્થાત્-સંયોગ બે પ્રકારનો છે. એક સઘળા સંસારનું કારણ અને બીજો પ્રત્યેક પુરુષના સુખદુઃખ બંધ મોક્ષનું કારણ. તેમાં પ્રથમ સંયોગનો હેતુ જે અવિદ્યા છે, તેનાં જ પૂર્વોક્ત લક્ષણ છે, દ્વિતીય સંયોગના હેતુભૂત અવિદ્યાનાં નથી.

सू–तस्य हेतुरविद्या ॥ २४ ॥

સૂત્રાર્થઃ-(तस्य) તે પૂર્વોક્ત દુઃખહેતુ પ્રકૃતિપુરુષના સંયોગનું (हेतुः) કારણ (अविद्या) વિપર્યયજ્ઞાનવાસના છે.

અર્થાત્-જે વિપર્યયજ્ઞાનજન્ય અનાદિ[1] વાસના છે, તેનું નામ અવિદ્યા છે અને તે જ અસાધારણ સંયોગમાં હેતુ છે.

ભાવ એ છે કે-જે કાળમાં વિપર્યયજ્ઞાનવાસનાથી બુદ્ધિ, વાસિત ઓતપ્રોત થાય છે, તે કાળમાં વિવેકખ્યાતિરૂપ અંતિમ કર્ત્તવ્યની નિષ્ઠાને ન પામી અને સાધિકાર હોવાથી પ્રકૃતિમાં લીન થયેલી તે છતાં, બુદ્ધિ ફરીથી ઉત્થિત થઈ પુનરાવૃત્તિશીલ થઈ જાય છે. અને જ્યારે વિવેકના ઉદયથી વિપર્યયજ્ઞાનવાસનાના અભાવથી પુરુષખ્યાતિમાં પર્યવસાન પામેલી બુદ્ધિ, પોતાની અંતિમ કર્ત્તવ્ય નિષ્ઠાને પ્રાપ્ત થવાથી અધિકાર વિનાની થઈ જાય છે, ત્યારે અજ્ઞાનથી રહિત થયેલી સંસાર કારણ અજ્ઞાનના અભાવથી પુનરાવૃત્તિ રહિત થઇ જાય છે. એ પ્રમાણે અન્વયવ્યતિરેકદ્વારા વિપર્યયજ્ઞાનવાસના જ સંસારહેતુ સંયોગનું કારણ છે, અન્ય નથી.

આ વિપર્યયજ્ઞાનની વાસનાના નિવર્ત્તક વિવેકજ્ઞાનને ઉદય થયા પછી જ્યારે જ્ઞાનપ્રસાદ માત્ર પરવૈરાગ્ય ઉદય પામે છે, ત્યારે વિવેકખ્યાતિના નિરોધદ્વારા ચિત્તનિવૃત્તિરૂપ મોક્ષ પણ પુરુષને હસ્તગત થઈ જાય છે. એથી જ વિપર્યયજ્ઞાનના નાશ પછી બુદ્ધિ અપુનરાવૃત્તિશીલ થઈ જાય છે.

અહીં કોઈ એક નાસ્તિક, ષંડકના[2] ઉપાખ્યાનથી એ પૂર્વોક્ત કૈવલ્ય વિષયક આક્ષેપ કરે છે કે-કોઇ મુગ્ધા[3] ભાર્યાએ પોતાના નપું-

---

૧–અનાદિ કહેવાથી "બુદ્ધિપુરુષને સંયોગ હોય તો વિપર્યયજ્ઞાનદ્વારા વિપર્યયવાસના થાય અને વિપર્યયજ્ઞાનવાસના હોય તો બુદ્ધિસંયોગ થાય" એ પરસ્પરાશ્રય દોષ પણ ઉચ્છિન્ન થાય છે. એટલે પૂર્વસર્ગમાં જો કે વિપર્યયજ્ઞાનવાસના પોતાના કારણ બુદ્ધિસહિત જ પ્રકૃતિમાં લીન થઈ જાય છે, તોપણ તેની વાસનાથી પ્રધાનયુક્ત રહે છે. તેથી ફરીથી એ વાસના જ પૂર્વસદૃશ બુદ્ધિસંયોગને ઉત્પન્ન કરી દે છે, એવી રીતે પ્રવાહ અનાદિ છે.

૨–ષંડક નામ નપુંસકનું છે. અર્થાત્ નપુંસકના દૃષ્ટાંતદ્વારા કૈવલ્યનું, ખંડન કરે છે.

૩–મુગ્ધા નામ સૂધી સાધી ભોળી ભાળી સ્ત્રીનું છે.

સક પતિને કહ્યું કે, હે આર્યપુત્ર! જેમ મારી બેન પુત્રવતી છે, તેમ હું પુત્રવતી કેમ નથી. ત્યારે તે નપુંસક પતિ બોલ્યો કે, હું પણ મરીને સંતાન ઉત્પન્ન કરી તને પુત્રવતી કરી દઇશ. જેમ અહીં નપુંસકનું વચન અસંગત છે, તેમ તમારું મોક્ષ પ્રતિપાદન પણ અસંગત છે. અર્થાત્-જેણે જીવતાં છતાં પુત્ર ઉત્પન્ન ન કર્યો, તે મરીને પુત્ર ઉત્પન્ન કરશે, એ પ્રત્યાશા જેમ અસંભવ છે; તેમ વિદ્યમાન વિવેકખ્યાતિએ જ્યારે ચિત્તનિવૃત્તિરૂપ મોક્ષ ન કર્યો, તો પછી પરવૈરાગ્યથી નાશ પામેલી વિવેકખ્યાતિ મોક્ષ ઉત્પન્ન કરશે, એ પણ અસંભવ છે.

એ આક્ષેપનું વારણ કોઈ એક આચાર્યદેશીય[1] આ પ્રમાણે કરે છે કે-બુદ્ધિના ભોગ વિવેકખ્યાતિરૂપ પરિણામની નિવૃત્તિ, એ જ મોક્ષ છે, કાંઈ બુદ્ધિની નિવૃત્તિનું નામ મોક્ષ નથી. અર્થાત્, બંધકારણ અજ્ઞાનના અભાવથી બુદ્ધિના પરિણામની જે નિવૃત્તિ, તેનું નામ મોક્ષ છે. અને બંધકારણ અજ્ઞાનની નિવૃત્તિ, જ્ઞાનથી થાય છે. એ પ્રમાણે જ્ઞાન કાંઈ ચિત્તની નિવૃત્તિનું સાક્ષાત્ કારણ નથી, કે જેથી નિરુદ્ધ થયેલા જ્ઞાનને ચિત્તની નિવૃત્તિનું કારણ માનવામાં કાંઈ દોષ હોય.[2] તેમ જ નાસ્તિકનો આ વ્યર્થ મતિવિભ્રમ છે. ॥ ૨૪ ॥

ચાર વ્યૂહોમાંથી હેયદુઃખ તથા હેયકારણ સંયોગનું નિમિત્તપૂર્વક નિરૂપણ કરીને હવે હાનસંજ્ઞાવાળા તૃતીયવ્યૂહનું નિરૂપણ કરે છેઃ-

---

૧-"आचिनोति च शास्त्रार्थमाचारे स्थापयत्यपि, स्वयमाचरति यस्मादाचार्यस्तेन चोच्यते" એ વાયુપુરાણના વચનથી, જે પુરુષ શાસ્ત્રમાં કહેલા અર્થનું સારી રીતે આચરણ કરીને પોતે સદાચારનું સેવન કરે અને બીજાઓને પણ સદાચારમાં દૃઢ નિષ્ઠાવાળા કરે છે, તે આચાર્ય કહેવાય છે. એ આચાર્યથી કાંઈક ન્યૂન ધર્મવાળો જે હોય તે આચાર્યદેશીય એટલે આચાર્ય જેવો કહેવાય છે. અર્થાત્-કાંઈ અમે જ્ઞાનથી ચિત્તની નિવૃત્તિ નથી માનતા, પણ જ્ઞાનથી અજ્ઞાન નિવૃત્તિદ્વારા ચિત્ત પોતાનાં પરિણામથી રહિત થઈ જાય છે, એમ માનીએ છીએ. તેથી એ મતમાં કોઈ પણ આક્ષેપ ન હોવાથી વ્યર્થ શંકાનો ઉત્તર દેવો નિરર્થક છે. એ અભિપ્રાયથી ઉપેક્ષા પ્રદર્શનાર્થે આચાર્યદેથીય કહેલા છે. અર્થાત્-ન્યૂન આચાર્ય પણ એ શંકાનો પરિહાર કરી શકે છે, તો તેનો સારા આચાર્યે ઉત્તર દેવાનું શું પ્રયોજન છે?

૨-કોઈ એમ કહે છે કે, સ્વરૂપતઃ બુદ્ધિ વિદ્યમાન હોવા છતાં પણ કેવળ શબ્દાદિ આકાર પરિણામની નિવૃત્તિનું નામ મોક્ષ છે, એ આચાર્ય દેશીયનું મત છે. સ્વરૂપથી જ બુદ્ધિના વિલયનું નામ મોક્ષ છે, એ આચાર્યનું મત છે.

सू–तदभावात् संयोगाऽभावो हानं, तद् दृशेः कैवल्यम् ॥ २५॥

સૂત્રાર્થઃ–(तदभावात्) તે પૂર્વોક્ત અજ્ઞાનના અભાવથી જે (संयोगाभावः) બુદ્ધિ પુરુષના સંયોગનો અભાવ હોય છે તે (हानम्) હાન કહેવાય છે. (तद्) તે હાન જ (दृशेः) જ્ઞાનસ્વરૂપ પુરુષનો (कैवल्यम्) કેવલતારૂપ મોક્ષ છે.

અર્થાત્–અજ્ઞાનના અભાવદ્વારા બુદ્ધિ અને પુરુષના સંયોગના અભાવરૂપ જે બંધનનો[1] આત્યંતિક અભાવ તેનું નામ હાન અને તેજ પુરુષનું કૈવલ્ય છે. એટલે અમિશ્રીભાવરૂપ ગુણોથી પુરુષનો પાછો સંયોગ થાતો નથી.

જે કાળમાં દુઃખકારક સંયોગની નિવૃત્તિથી દુઃખનો ઉપરમ (અભાવ) થઇ જાય છે, તે કાળમાં એ પુરુષ, કેવલ થયો થકો સ્વ-સ્વરૂપમાં પ્રતિષ્ઠિત થયો કહેવાય છે. ॥ ૨૫ ॥

હવે, હાનકારણ અવિદ્યાના નાશનો ઉપાય શો છે, એ આશંકાનું વારણ કરતાં ચતુર્થ વ્યૂહનું નિરૂપણ કરે છેઃ–

सू–विवेकख्यातिरविप्लवा हानोपायः ॥ २६ ॥

સૂત્રાર્થઃ–(अविप्लवा) મિથ્યાજ્ઞાનરૂપ ઉપદ્રવથી શૂન્ય જે (विवेकख्यातिः) પ્રકૃતિથી પુરુષનો ભિન્નરૂપે સાક્ષાત્કાર, તે (हानोपायः) હાન-કારણ એવી અવિદ્યાની નિવૃત્તિનો ઉપાય છે.

અર્થાત્–જે વિવેકખ્યાતિ, મિથ્યાજ્ઞાનથી યુક્ત હોય છે તે વિપ્લવ-વાળી એટલે ઉપદ્રવવાળી હોય છે, જ્યારે મિથ્યાજ્ઞાનનું બીજ બળીને ભસ્મ થઈ જાય છે ત્યારે તે પોતાનું કાર્ય કરી શકતી નથી. એટલે રજતમ ક્લેશથી રહિત પરવૈશારદ્ય[2] પૂર્વક પરવશીકાર સંજ્ઞામાં રહેલા ચિત્તનો વિવેકજ્ઞાનપ્રવાહ મિથ્યાજ્ઞાનથી રહિત નિર્મળ થઈ જાય છે. આ

૧–અગર જો કે મહાપ્રલયમાં પણ સંયોગનો અભાવ હોય છે, પરંતુ તે સૃષ્ટિકાળમાં ફરીથી ઉદ્ભૂત હોવાથી અપુરુષાર્થ છે, તેના બોધન માટે કહેલું છે કે, "આત્યંતિક બંધનનો અભાવ". એ પ્રમાણે નિવૃત્ત થયા પછી કદી ફરીથી ઉજ્જીવન ન થવાનું નામ આત્યંતિક છે.

૨–વૈશારદ્યની બાબતમાં પૂર્વપાદના ૪૭ મા સૂત્રમાં અને વશીકારની બાબતમાં પૂર્વપાદના ૪૦ મા સૂત્રમાં જોવું.

જે નિર્મળ વિવેકજ્ઞાનપ્રવાહરૂપ અવિપ્લવા[1] વિવેકખ્યાત, તે હાનનો ઉપાય છે.

વિવેકખ્યાતિથી જ મિથ્યાજ્ઞાનનું બીજ દગ્ધ થઈ જાય છે, ને તે પોતાનું કાર્ય કરવાને અસમર્થ થઈ જાય છે. એથી તે વિવેકખ્યાતિ મોક્ષમાર્ગનો ને હાનનો ઉપાય[2] છે, એ સિદ્ધ થાય છે. ॥ ૨૬ ॥

હવે વિવેકખ્યાતિરૂપ નિષ્ઠાના સ્વરૂપના નિરૂપણાર્થે વિવેકખ્યાતિનિષ્ઠ યોગીને જે પ્રજ્ઞાનો લાભ થાય છે, તે કહે છે.

सू—तस्य सप्तधा प्रान्तभूमिः प्रज्ञा ॥ २७ ॥

સૂત્રાર્થઃ-(तस्य) ઉત્પન્ન વિવેકખ્યાતિ યોગીની (प्रज्ञा) બુદ્ધિ, (सप्तधा) વિષયભેદથી સાત પ્રકારની છે. ને તે (प्रान्तभूमिः) સર્વ કરતાં ઉત્કૃષ્ટ અવસ્થાવાળી છે.

અર્થાત્-રજતમના આધિક્યથી યુક્ત જે અશુદ્ધિસંજ્ઞક આવરણરૂપ મળ તે મળના અપગમ (અભાવ)થી જે રાજસ તામસ પ્રયુક્ત વ્યુત્થાનપ્રત્યયનો અભાવ, તેનાથી વિવેકખ્યાતિનિષ્ઠ યોગીના ચિત્તને સાત પ્રકારની પ્રજ્ઞા પ્રાપ્ત થાય છે. જેમ, "परिज्ञातं हेयं नाऽस्य पुनः परिज्ञेयमस्ति" એટલે નિખિલ હેયસંજ્ઞક સંસાર, પરિણામ દુઃખતાદિથી અનુવિદ્ધ છે, એ મેં સારી રીતે જાણી લીધું, હવે મારે બીજું હેય વિષયક જ્ઞાતવ્ય રહ્યું નથી. બીજી એ છે કે "क्षीणाः हेयहेतवो न पुनरेतेषां क्षेतव्यमस्ति" એટલે હેયના કારણભૂત અવિદ્યાદિ મારા સઘળા કલેશ ક્ષીણ થઈ ગયા

૧-યદ્યપિ આગમ અને અનુમાનથી પણ વિવેકજ્ઞાન ઉત્પન્ન થાય છે, પરંતુ તે મિથ્યાજ્ઞાનજનિત વ્યુત્થાન અને તેના સંસ્કારોનું બાધક થતું નથી. કેમકે આગમ અનુમાનજન્યજ્ઞાનશીલના ચિત્તમાં પણ મિથ્યાજ્ઞાનમૂલક વ્યુત્થાનજન્ય સંસ્કાર વિદ્યમાન જ રહે છે, તેથી એ જ્ઞાન, વિપ્લવ સહિત છે અને આગમ અનુમાનજન્ય જ્ઞાનની નિરંતર દીર્ઘકાલ સત્કારપૂર્વક ભાવનાથી જે પ્રકર્ષપર્યંત સમાધિમાં હોવાવાળી સાક્ષાત્કારવતી ઋતંભરા પ્રજ્ઞા, તે જ મિથ્યાજ્ઞાન શૂન્ય હોવાથી અવિપ્લવા છે, એ તાત્પર્ય છે.

૨-યદ્યપિ પૂર્વસૂત્રમાં અવિદ્યાના અભાવથી ને હાનના લાભ કથનથી અવિદ્યાની નિવૃત્તિ જ હાનના લાભનો ઉપાય છે, તથાપિ હાનહેતુભૂત અવિદ્યાની નિવૃત્તિનો ઉપાય હોવાથી વિવેકખ્યાતિને હાનનો ઉપાય કહેલો છે. અર્થાત્-અવિદ્યાની નિવૃત્તિદ્વારા વિવેકખ્યાતિ હાનનો ઉપાય છે, કાંઈ સાક્ષાત્ નથી.

છે, હવે પછી એનો ક્ષય કરવા જેવું કાંઈ રહ્યું નથી. ત્રીજી એ છે કે– "**साक्षात्कृतो निरोधसमाधिना हानम्**" એટલે અસંપ્રજ્ઞાત સમાધિદ્વારા મેં હાનસંજ્ઞક કૈવલ્યનો પણ સાક્ષાત્કાર કર્યો છે, હવે એ વિષયનો કાંઈ બીજો નિશ્ચય કર્ત્તવ્ય નથી. ચોથી એ છે કે–**भावितो विवेकख्यातिरूपः हानोपायः** એટલે હાનના ઉપાયભૂત વિવેકખ્યાતિ પણ મેં નિષ્પાદન કરી લીધી, હવે બીજું કંઈ નિષ્પાદન કરવાનું રહ્યું નથી.

આ ચાર પ્રકારની પ્રજ્ઞાની વિમુક્તિ કાર્યાં એટલે પ્રયત્નથી સાધ્ય છે.[1] એ ચાર પ્રજ્ઞાના લાભથી જે સ્વતઃ બીજી ત્રણ પ્રજ્ઞા પ્રાપ્ત થાય છે, તેમાં પહેલી ચિત્તવિમુક્તિ[2] નામની પ્રજ્ઞા છે. ભોગાપવર્ગરૂપ પુરુષાર્થના સંપાદનથી મારી બુદ્ધિ સમાપ્ત અધિકારવાળી થઈ ગઈ છે. બીજી–જેમ પર્વતના શિખરથી ચ્યુત એટલે અધઃપતિત પાષાણ વિદીર્ણ થઈ જાય છે, તેમ આ ત્રણ ગુણ પણ ચિત્તરૂપ આશ્રયના અભાવથી નિરાધાર અને સ્વકારણ પ્રકૃતિમાં લયાભિમુખ થયેલા ચિત્તની સાથે અસ્ત પામી ગયા છે, અને લય પામેલા એ ગુણો પ્રયોજન ન હોવાથી પાછો ઉત્પન્ન થાશે નહિ. અને ત્રીજી–એ અવસ્થામાં ગુણ સંબંધથી રહિત અને સ્વરૂપ માત્ર જ્યોતિઃ–સ્વરૂપ મલરહિત થયેલો પુરુષ, કેવલ તથા જીવનમુક્ત કહેવાય છે.

એ સાત પ્રકારની પ્રજ્ઞાને જાણવાવાળો અને તેનો આશ્રયભૂત જે યોગી તે કુશલ કહેવાય છે. એ પ્રમાણે પ્રધાનમાં ચિત્તનો લય થવાથી પણ પુરુષ કુશલ તથા મુક્ત[3] કહેવાય છે. કેમકે એ બંને ગુણાતીત છે. ॥ ૨૭ ॥

આ પૂર્વોક્ત વિવેકખ્યાતિ પ્રાપ્ત થઈ કે તે હાનનો ઉપાય છે, પરંતુ વિવેકખ્યાતિ સાધનોના અનુષ્ઠાન વિના પ્રાપ્ત થાતી નથી, માટે જે સાધનોના અનુષ્ઠાનથી વિવેકખ્યાતિ સિદ્ધ થાય છે, તે સાધનોનું પ્રતિપાદન કરવા સારુ વિવેકખ્યાતિના લાભનો ઉપાય કહે છે.

૧–વિમુક્તિ નામ ચિત્તના અધિકારની સમાપ્તિનું છે. અર્થાત્–એ ચાર પ્રકારની પ્રજ્ઞા સંબંધી વિમુક્તિ, કાર્યાં એટલે પ્રયત્ન સાધ્ય છે. (કોઈ જગાએ "કાર્ય વિમુક્તિ" એવો પાઠ છે, તેનો અર્થ એ છે કે પ્રજ્ઞાની નિખિલ કાર્યોના કર્ત્તવ્યથી સમાપ્તિ.)

૨–અર્થાત્–એકવાર જ ચિત્તના અધિકારની સમાપ્તિ.

૩–અર્થાત્–જેમ અસંપ્રજ્ઞાત સમાધિદ્વારા ચિત્તના, લયપ્રયુક્ત ગુણાતીત હોવાથી પુરુષ મુક્ત કહેવાય છે, તેમ આ પ્રજ્ઞાવાળો પણ મુક્ત જ છે. પરંતુ ચિત્તલયવાળો વિદેહમુક્ત અને આ પ્રજ્ઞાવાળો જીવન્મુક્ત છે, એટલું વિશેષ છે.

सू–योगाङ्गाऽनुष्ठानादशुद्धिक्षये ज्ञानदीप्तिराविवेकख्यातेः ॥२८॥

સૂત્રાર્થઃ–(योगाऽङ्गाऽनुष्ठानाद्) હવે પછી કહેવાના યોગના યમાદિ આઠ અંગોના અનુષ્ઠાનથી, (अशुद्धिक्षये) રજ તમ પ્રયુક્ત પંચ પ્રકારવાળી વિપર્યયજ્ઞાનરૂપ અશુદ્ધિને ક્ષય થવાથી (आविवेकख्यातेः) વિવેકખ્યાતિપર્યન્ત (ज्ञानदीप्तिः) સમ્યક્‌જ્ઞાનની અભિવ્યક્તિ થાય છે.

અર્થાત્–જેમ જેમ પુરુષ યોગનાં અંગોનાં અનુષ્ઠાન કરે છે, તેમ તેમ અશુદ્ધિ, તનુભાવને એટલે ક્ષયને પામતી જાય છે, અને જેમ જેમ અશુદ્ધિ ક્ષીણ થતી જાય છે, તેમ તેમ ક્રમના અનુરોધથી જ્ઞાનની દીપ્તિ પણ વૃદ્ધિને પામતી જાય છે. તે જ્ઞાનદીપ્તિ અત્યંત વૃદ્ધિ પામે છે અને પ્રકૃતિપુરુષના વિવેકજ્ઞાનપર્યન્ત ઉન્નતિને પામતી જાય છે.

અહીં જેમ કુઠાર (કુહાડો) છેદ્ય એવા કાષ્ઠાદિના વિયોગનું કારણ છે, તેમ યોગાંગોનું અનુષ્ઠાન, અશુદ્ધિના વિયોગનું કારણ છે. અને જેમ ધર્માનુષ્ઠાન સુખની પ્રાપ્તિનું કારણ છે, તેમ યોગાંગોનું અનુષ્ઠાન વિવેકખ્યાતિની પ્રાપ્તિનું કારણ છે, એમ જાણવું.

ભાવ એ છે કે–કારણ નવ પ્રકારનાં છે.[1] એક ઉત્પત્તિ કારણ–જેમ મન એ વિજ્ઞાનનું કારણ છે.[2] બીજું સ્થિતિકારણ–જેમ પુરુષાર્થતા એ મનની સ્થિતિનું[3] અને અન્ન તથા જળને આહાર એ શરીરની સ્થિતિનું

૧–આ સ્થળે ભાષ્યકારોએ "कति चैतानि कारणानि शास्त्रे "भवति" એ વાકયથી શાસ્ત્રમાં કેટલાં કારણ માનેલાં છે, એવો પ્રશ્ન કરી नवैवेत्याह" એ વચનથી નવ જ કારણ છે, એવી રીતે સામાન્યથી કહીને પછી "उत्पत्ति स्थित्यभिव्यक्ति विकारप्रत्ययाऽऽप्तयः वियोगाऽन्यत्वधृतयः कारणं नवधा स्मृतम्" એ કારિકાથી નવ કારણની ગણતરી કરીને પછી "तत्रोत्पत्तिकारणं मनो भवति विज्ञानस्य" ઇત્યાદિ ભાષ્યથી એ નવના સ્વરૂપનો નિર્દેશ કર્યો છે, આ વાત "ઉત્પત્તિ કારણં' ઇત્યાદિ વચનોથી કહે છે.

૨–સત્કાર્યવાદમાં વર્તમાન અવસ્થાપાદન કરવું, એજ ઉત્પત્તિ શબ્દને અર્થ છે, અને મનજ જ્ઞાનની અતીતાવસ્થાનો નાશ કરીને વર્તમાનાવસ્થાવાળું કરે છે, તેથી મન, જ્ઞાનની ઉત્પત્તિનું કારણ છે. અહીં સર્વત્ર ષષ્ઠી તત્પુરુષ સમાસ છે.

૩–જ્યાંસુધી મન, ભોગાપવર્ગરૂપ પુરુષાર્થ સંપાદન કરતું નથી ત્યાંસુધી તે સ્થિત રહે છે, અને જ્યારે એ પુરુષાર્થ સમાપ્ત થાય છે, ત્યારે તેને લય થાય છે, તેટલા માટે પુરુષાર્થપણું જ મનની સ્થિતિનું કારણ છે. અહીં સઘળે સ્પષ્ટાર્થ અન્વયાનુસરણ કર્યું નથી.

કારણ છે. ત્રીજું અભિવ્યક્તિકારણ–જેમકે આલોક (પ્રકાશ) એ રૂપની અભિવ્યક્તિનું અને બુદ્ધિવૃત્તિરૂપ રૂપજ્ઞાન એ પૌરુષેય બોધનું કારણ છે.[1] ચોથું વિકારકારણ–જેમકે સ્ત્રી આદિ–વિષય મનના વિકારનું[2] અને અગ્નિ એ પાક્ય તંડુલાદિનું[3] કારણ છે. પાંચમું પ્રત્યયકારણ[4]–જેમ ધૂમજ્ઞાન એ અગ્નિના જ્ઞાનનું કારણ છે. છઠ્ઠું પ્રાપ્તિકારણ–જેમ યોગના અંગોનું અનુષ્ઠાન એ વિવેકખ્યાતિની પ્રાપ્તિનું કારણ[5] છે. સાતમું વિયોગકારણ–જેમ યોગના અંગોનું અનુષ્ઠાન, એ અશુદ્ધિના વિયોગનું કારણ છે. અર્થાત્ તેનાથી અશુદ્ધિનો નાશ થાય છે. આઠમું અન્યત્વકારણ–જેમ સુવર્ણકાર (સોની) એ કુંડલ વગેરે નિર્માણદ્વારા સુવર્ણના[6] અન્યત્વનું કારણ છે. એવી રીતે[7]

૧–પ્રત્યક્ષજ્ઞાનના નિમિત્તભૂત જે વિષયનું પ્રકટપણું, તે અભિવ્યક્તિ છે. તેમાં સૂર્યાદિનો પ્રકાશ એ બુદ્ધિવૃત્તિરૂપ સ્વરૂપજ્ઞાનનો અભિવ્યંજક છે, અને બુદ્ધિવૃત્તિરૂપ રૂપજ્ઞાન એ પૌરુષેય બોધનો અભિવ્યંજક છે, તેથી તે અભિ-વ્યક્તિનું કારણ છે. અર્થાત્–સૂર્યાદિના પ્રકાશથી કંઈ ઘટની ઉત્પત્તિ થતી નથી પણ વિદ્યમાન ઘટની અભિવ્યક્તિ થાય છે.

૨–વિષયાન્તરની આસક્તિ, મનના વિકારનું કારણ છે. જેમ સમાધિનિષ્ઠ મૃકંડુ મુનિનું ચિત્ત, ઉમ્લોચા નામની અપ્સરાએ વગાડેલી વીણાથી નીકળેલા સપ્તસ્વરાન્તર્ગત કોકિલરવતુલ્ય પંચમ સ્વરના શ્રવણ કરવાથી વ્યુત્થિત થઈ એ અપ્સરામાં આસક્ત થઈ વિકારી બની ગયું હતું.

૩–કઠણ અવયવવાળા તંડુલાદિ વગેરેનો શિથિલ અવયત્વરૂપ જે વિકાર, તેનું કારણ અગ્નિ છે. ૪–પ્રત્યયકારણ=જ્ઞાનનું કારણ.

૫–વસ્તુનિષ્ઠ સ્વાભાવિક સામર્થ્યનું નામ પ્રાપ્તિ છે અને એ સ્વાભાવિક સામર્થ્યનો કોઈ પ્રતિબંધક વશથી અભાવ થઈ જવો, તેનું નામ અપ્રાપ્તિ છે. જેમકે નીચાણમાં વહન કરવાવાળા જળનું સ્વાભાવિક સામર્થ્ય પ્રાપ્તિ કહેવાય છે અને સેતુદ્વારા તેનો નિરોધ અપ્રાપ્તિ કહેવાય છે. એ પ્રમાણે બુદ્ધિની સ્વા-ભાવિકપ્રકાશતારૂપ જે વિવેકખ્યાતિ તે પ્રાપ્તિ છે અને અધર્મ વા તમોગુણ-રૂપ પ્રતિબંધકથી તેનો જે અભાવ થવો તે અપ્રાપ્તિ થઈ કહેવાય છે. અર્થાત્–જ્યારે યોગાંગાનુષ્ઠાનથી અધર્મ અને તમરૂપ પ્રતિબંધક દૂર થઈ જાય છે, ત્યારે વિવેકખ્યાતિ આપોઆપ પ્રાપ્ત થઈ જાય છે. એ પ્રમાણે યોગાંગોનું અનુષ્ઠાન, વિવેકખ્યાતિની પ્રાપ્તિનું કારણ છે, પણ યોગાંગોની ઉત્પત્તિ કારણ નથી.

૬–અગર જો કે સત્કાર્યવાદમાં કુંડળ એ સુવર્ણથી ભિન્ન નથી, તોપણ કાર્યનું ભિન્નાભિન્ન સ્વરૂપ હોવાથી ભેદવિવક્ષાથી કુંડળને સુવર્ણથી ભિન્ન કહેલું છે.

૭–બાહ્ય અન્યત્વકારણનું ઉદાહરણ પ્રદર્શન કરી આધ્યાત્મિક અન્યત્વ-કારણનું ઉદાહરણ "એવી રીતે" ઇત્યાદિથી કહે છે.

એક જ સ્ત્રી જ્ઞાનનિષ્ઠ મૂઢત્વરૂપ અન્યત્વનું અવિદ્યાકારણ, અને તન્નિષ્ઠ દુઃખત્વરૂપ અન્યત્વનું દ્વેષકારણ તથા તન્નિષ્ઠ સુખત્વરૂપ અન્યત્વનું રાગકારણ, અને તન્નિષ્ઠ માધ્યસ્થરૂપ અન્યત્વનું તત્ત્વજ્ઞાન કારણ જાણી લેવું.

અર્થાત્–કામી પુરુષનું જે અન્ય અપ્રાપ્ય એવી સ્ત્રી સંબંધી જે જ્ઞાન હોય છે, "આ સ્ત્રી સુંદર છે." એવી રીતની પૂર્વોક્ત અવિદ્યાથી મોહ (વિષાદ) યુક્ત હોય છે;[1] એવી રીતે એ જ્ઞાનમાં જે મોહ છે તે અવિદ્યાથી થયો છે તેથી અવિદ્યા જ, એ જ્ઞાનના મૂઢત્વરૂપ અન્યત્વનું કારણ છે. એ પ્રમાણે સપત્નીનો જે એ સ્ત્રીમાં દ્વેષ, તે એ સ્ત્રીજ્ઞાનના દુઃખત્વરૂપ અન્યત્વમાં કારણ છે. અને તેના પતિનો જે તેનાપર રાગ છે, તે, એ સ્ત્રીજ્ઞાનના સુખત્વરૂપ અન્યત્વમાં કારણ છે. તથા વિવેકી પુરુષનું એ સ્ત્રીવિષયક મળમૂત્રથી ભરેલાંપણારૂપ જે તત્ત્વજ્ઞાન, તે, એ સ્ત્રીજ્ઞાનના હેયત્વરૂપ અન્યત્વમાં કારણ છે.[2]

અને નવમું ધૃતિકારણ–જેમકે ઇંદ્રિય[3] એ શરીરધારણનું કારણ છે, અને શરીર એ ઇંદ્રિયધારણનું કારણ છે, તથા પંચમહાભૂત એ શરીર

૧–આ [illegible] પુરુષને જ આ સ્ત્રીરત્ન પ્રાપ્ત થયું, અને મને મંદભાગ્યને પ્ર[illegible]હ, એ પ્રમાણે ખેદયુક્ત જ્ઞાન થાય છે.

૨–એક જ સ્ત્રીને જોઇને અજ્ઞાની પુરુષ તેની પ્રાપ્તિના અભાવથી મોહયુક્ત થાય છે; તે સ્ત્રીની સપત્ની દ્વેષથી દુઃખ પામે છે; તે સ્ત્રીનો પતિ, રાગથી સુખી થાય છે; અને વિવેકી પુરુષ તેને મળમૂત્રથી ભરેલી જાણીને ગ્લાનિવાળો થાય છે. એ પ્રમાણે એક જ સ્ત્રીવિષયક જ્ઞાનના મૂઢત્વાદિરૂપ અન્યત્વમાં અવિદ્યાદિ કારણ હોવાથી એ સર્વ અવિદ્યાદિ અન્યત્વમાં કારણ છે.

૩–ઇંદ્રિય નામ પ્રાણનું છે. પ્રાણ વિના શરીર રહી શકતું નથી, અને શરીર વિના પ્રાણ પણ નિરાધાર રહી શકતો નથી, તેથી એ બંને પરસ્પર એક બીજાને ધારણ કરવાવાળા છે. એવી રીતે શરીરના પ્રત્યેક અંગનો પણ પરસ્પર વિધાર્યવિધારકભાવ જાણી લેવો. એ પ્રમાણે પંચમહાભૂત પણ શરીરનાં કારણ તથા આધાર હોવાથી પંચમહાભૂત પણ શરીરનું ધૃતિકારણ છે. એ પ્રમાણે આકાશાદિ ભૂતો પણ પૂર્વપૂર્વ ઉત્તરઉત્તરમાં અનુગત હોવાથી પૃથ્વીમાં પાંચ ભૂતો, જળમાં ચાર ભૂતો, અગ્નિમાં ત્રણ ભૂતો અને વાયુમાં બે ભૂતો રહેલાં હોવાથી તેમનો પણ પરસ્પર વિધાર્યવિધારકભાવ જાણવો. એવી રીતે મનુષ્યશરીર, પશુપક્ષી વગેરેને ઉપયોગી છે, અને પશુપક્ષી આદિ મનુષ્ય શરીરને ઉપયોગી છે. મનુષ્યે કરેલાં યજ્ઞ બળિદાન દેવોને ઉપયોગી છે અને જળની વૃષ્ટિ કરવાદ્વારા દેવશરીર મનુષ્યોને ઉપયોગી છે. એ બધાં પરસ્પર એક બીજાનાં ધૃતિકારણ છે.

ધારણનું કારણ છે. એ પ્રમાણે પંચમહાભૂતનો પણ પરસ્પર વિધાર્ય-વિધારકભાવ જાણી લેવો, તથા તિર્યગ્ પક્ષીઓ, મનુષ્ય અને દેવશરીરનો પણ પરસ્પર વિધાર્યવિધારકભાવ જાણી લેવો. એ નવ કારણોમાંથી જ્યાં જેનો સંભવ હોય ત્યાં તેનો સમન્વય કરીને બીજા પદાર્થોમાં પણ તેનો ઊહાપોહ (તર્ક) દ્વારા કારણનો નિશ્ચય કરી લેવો. ચાલુ પ્રસંગમાં યોગાંગનું અનુષ્ઠાન તો એજ પ્રકારથી કારણભાવને પામે છે, એટલે વિવેક-ખ્યાતિની અપેક્ષા એ પ્રાપ્તિ કારણ છે અને અશુદ્ધિની અપેક્ષા એ વિયોગ કારણ છે. ॥ ૨૮ ॥

હવે ન્યૂનાધિક સંખ્યાના વારણ અર્થે યોગનાં અંગો ગણાવે છેઃ-

सू–यमनियमाऽऽसनप्राणायामप्रत्याहार-
धारणाध्यानसमाधयोऽष्टावङ्गानि ॥ २९

સૂત્રાર્થઃ–યમ, નિયમ, આસન, પ્રાણાયામ, પ્રત્યાહાર, ધારણા, ધ્યાન, સમાધિ, એ (अष्टौ) આઠ (अङ्गानि) યોગનાં અંગ છે.[1] અર્થાત્–વિવેક-ખ્યાતિની ઇચ્છાવાળાએ યથાક્રમ તેઓનું અનુષ્ઠાન કરવું ॥ ૨૯॥

હવે યથાક્રમ તેમના સ્વરૂપનિર્દેશાર્થ પ્રથમ યમ[illegible]રૂપ કહે છે.

सू–अहिंसासत्यमस्तेयब्रह्मचर्याऽपरिग्रहा यमाः ॥ ३० ॥

સૂત્રાર્થઃ–અહિંસા, સત્ય, અસ્તેય, બ્રહ્મચર્ય અને અપરિગ્રહ આ પાંચ યમ છે.

અહિંસા–મન, વાણી, કાયાથી બીજાનું અનિષ્ટચિંતન, કઠોર ભાષણ, પ્રાણીઓનો દ્રોહ કરવો (સતાવવું) આ હિંસા છે; અને સર્વ પ્રકારે[2] સર્વકાળે કોઇનો પણ દ્રોહ ન કરવો, તે અહિંસા છે.

૧–યદ્યપિ પૂર્વપાદમાં કહેલાં અભ્યાસ, વૈરાગ્ય, શ્રદ્ધા, વીર્ય પણ યોગનાં અંગ છે, તેથી આઠ જ અંગ છે, એવો કંઈ નિયમ નથી. તથાપિ એ આઠમાં જ સર્વનો અંતર્ભાવ જાણીને દોષનો અભાવ જાણવો. તેમાં અભ્યાસનો સમાધમાં, વૈરાગ્યનો સંતોષમાં અને વીર્યનો ધારણામાં અંતર્ભાવ જાણી લેવો. શ્રદ્ધા વિના યમાદિમાં પ્રવૃત્તિ સંભવે નહિ, તેથી શ્રદ્ધાનો પણ અર્થતઃ લાભ થયો.

૨–"સર્વ પ્રકારે" એમ કહેવાથી શ્રૌતપશ્વાલંભન (વૈદિકી હિંસા)નો પણ પરિત્યાગ જાણવો. શૌચાદિ ક્રિયામાં ક્ષુદ્ર જંતુઓની હિંસા દુર્નિવાર્ય હોવાથી તે હિંસાજનિત પાપની નિવૃત્તિ માટે અધિક પ્રાણાયામનો અભ્યાસ કરવો, એ પણ જાણી લેવું.

એ સઘળાં અંગોમાં અહિંસા જ સઘળાનું મૂળ છે. કેમકે આગળનાં જે યમ નિયમ વગેરે છે, તે સર્વ અહિંસાની સિદ્ધિને માટે પ્રતિપાદન કરવામાં આવ્યાં છે. અર્થાત્–અહિંસાને નિર્મળ તથા પુષ્ટ કરવા સારુ જ બીજાં અંગોનો સ્વીકાર છે.[1]

એ પ્રમાણે પંચશિખાચાર્યે પણ કહેલું છે કે–"**स खल्वयं ब्राह्मणो यथा यथा व्रतानि बहूनि समादित्सते तथा तथा प्रमादकृतेभ्यो हिंसानिदानेभ्यो निवर्तमानस्तामेवाऽवदातरूपामहिंसां करोति" इति**

તે આ મોક્ષેચ્છુ, બ્રાહ્મણ જેમ જેમ યમનિયમાદિ વ્રતોને સંપાદન કરે છે, તેમ તેમ પ્રમાદથી કરવામાં આવતાં હિંસામાં કારણરૂપ મિથ્યાભાષણ વગેરેથી નિવૃત્ત થઈને શુદ્ધ એવા અહિંસાધર્મને પાળે છે.

સત્યમ્=વાણી તથા મનનું યથાર્થપણું. અર્થાત્–યથાદૃષ્ટ, યથાનુમિત, યથાશ્રુત હોય, તે પ્રમાણે જ[2] માનસજ્ઞાનની બરાબર બીજા તરફ વાણીદ્વારા કથન કરવું, તે સત્ય છે.

ભાવ એ છે કે, બીજા પુરુષના ચિત્તમાં સ્વચિત્તનિષ્ઠ જ્ઞાનસદૃશ જ્ઞાનના ઉત્પાદનાર્થે જે વાણી બોલાય, તે જો અવંચિકા એટલે છેતરનારી[3] ન હોય તથા નિરર્થક ન હોય, તો તે વાણી સત્ય જાણવી. એવી

૧–મિથ્યા સંભાષણ, ચોરી, સ્ત્રીસંગ વગેરેથી પણ કોઈ કોઈનો તો અવશ્ય જ દ્રોહ થાય છે, તેથી એ ત્રણેના અભાવરૂપ જે સત્ય, અસ્તેય, બ્રહ્મચર્યાદિ યમ એ હિંસાનાં જ નિવર્તક થયાં. એ પ્રમાણે અહિંસાની જ પુષ્ટિને લીધે યમ નિયમાદિનું ઉપાદાન છે, એ ફલિત થાય છે. એવી રીતે અન્યત્ર પણ જાણી લેવું.

૨–જેવું ઇંદ્રિયાદિકથી જોયું હોય, જેવું ઊહાપોહ (તર્ક) થી જાણ્યું હોય અને જેવું કોઈ પાસેથી સાંભળ્યું હોય, એવું જ કહેવું, તેનું નામ સત્ય છે.

૩–જેવું આપણા ચિત્તમાં ઇંદ્રિયાદિજન્ય જ્ઞાન છે, તેવું જ જ્ઞાન બીજાના મનમાં ઉત્પન્ન કરવા માટે માનસજ્ઞાનાનુસારી જે વાણી બોલાય તે વાણી અવંચિકા કહેવાય છે. આ પ્રમાણે દ્રોણાચાર્ય પ્રતિ યુધિષ્ઠિરે એવું કહેલું હતું કે, "અશ્વત્થામા મરણ પામ્યો" એ વાણી વંચિકા હોવાથી મિથ્યા જાણવી. કેમકે જેવો ઇંદ્રિયજન્ય અશ્વત્થામા નામક હસ્તીના હનનના વિષયનો બોધ યુધિષ્ઠિરના ચિત્તમાં વર્તમાન હતો, તેવો દ્રોણાચાર્યના ચિત્તમાં ન થયો, પરંતુ યુધિષ્ઠિરના વચનથી પોતાના પુત્રના વધનો બોધ થયો હતો.

રીતે જે વાણી[1] સઘળા ભૂતના ઉપકારાર્થે બોલવામાં આવી હોય અને તે કોઈ પ્રાણીનો અપકાર કરે તેવી ન હોય, તો તે વાણીને સત્ય જાણવી.

ઉચ્ચારેલી વાણી[2] જો કોઈ પ્રાણીને અપકારક હોય, તો તે અસત્ય ગણાય છે. કેમકે જે બોલેલી વાણીથી કોઈ પ્રાણીનું અનિષ્ટ થાય, તે વાણી પાપજનક હોવાથી મિથ્યા તુલ્ય છે. અર્થાત્ જે પ્રાણીઓનો અપકાર કરવાવાળી સત્ય વાણી છે તે પુણ્યાભાસ છે. એથી તે પુણ્યાભાસથી જેમ અપકાર પામેલા પુરુષને કષ્ટ થાય છે, તેમ તે વાણી ઉચ્ચારણ કરવાવાળાને પણ અવશ્ય કષ્ટ થાય છે. તેથી વિચાર કરીને એવું જ સત્ય સંભાષણ કરવું કે જેથી સર્વભૂતોનું હિત થાય. એથી જ મનુભગવાને કહેલું છે કે-"सत्यं ब्रूयात्प्रियं ब्रूयान्न ब्रूयात्सत्यमप्रियम्" એ વાક્યથી અનિષ્ટકારક સત્ય ભાષણનો નિષેધ કર્યો છે. એ અભિપ્રાયથી જ ધર્મશાસ્ત્રકારોએ, "प्राणत्राणेऽनृतं वाच्यमात्मनो वा परस्य च" ઇત્યાદિ વચનોથી પોતાના અને પરના પ્રાણના રક્ષણઅર્થે મિથ્યા ભાષણ કરવામાં પાપ નથી.

અસ્તેય=શાસ્ત્રોક્ત વિધિ વિના બીજા પાસેથી દ્રવ્યનું ગ્રહણ કરવું તે સ્તેય છે, અને તેનો અભાવ તે અસ્તેય છે. અર્થાત્-શાસ્ત્રમાં જે "पादुके चापि गृह्णीयात् कन्थां शीतनिवारिणीम्" ઇત્યાદિ વાક્યોથી પાદુકા તથા કંથા (ગોદડી) કૌપીન[3] વગેરે અત્યુપયુક્ત પદાર્થોનું ભિક્ષુકે ગ્રહણ કરવું, એમ લખેલું છે. એ સિવાય બીજા પ્રદાર્થોનું ગ્રહણ ન કરવું તેનું નામ અસ્તેય કહેવાય છે. આ સ્થળે એટલું વિશેષ એ પણ જાણી લેવું કે ગ્રહણનો જે પ્રતિષેધ કર્યો છે, તે એવો નહિ કે પોતાના હાથથી

૧-હવે "एषा सर्वभूतोपकारार्थं प्रवृत्ता न भूतापघाताय" ઇત્યાદિ ભાષ્યનો અનુવાદ કરતાં જે સત્ય બીજાનું અનિષ્ટ કરે છે, તે મિથ્યાની પેઠે અનિષ્ટકર હોવાથી હેય જાણવું, તે કહે છે, "એવી વાણી" ઇત્યાદિથી.

૨-કોઈ માર્ગે થઈ ધનવાન્ પુરુષ જતો હતો અને ચોર તેને શોધતા તેની પાછળ જતા હતા. પછી ચોરોએ કોઈ સત્યવક્તાને પૂછ્યું, કે એ ધનવાન્ કઈ તરફ ગયો છે? ત્યારે તે સત્યસંભાષણશીલ બોલ્યો કે, આ તરફ ગયો છે. આ સત્યસંભાષણ એકનો ઉપકાર કરનારું અને બીજાનું ભુંડું કરનારુ છે, તેથી મિથ્યા જાણવું, એ તત્ત્વ છે.

૩-કૂપમાં પતન યોગ્ય હોવાથી કૌપીન નામ પાપનું છે. શિશ્ન ઇંદ્રિય પણ પાપનું સાધન હોવાથી કૌપીન કહેવાય છે, અને તે ઇંદ્રિયનું આચ્છાદક લંગોટી નામનાં વસ્ત્રને પણ કૌપીન જાણવું.

દ્રવ્ય ન ગ્રહણ કરવું; પણ ચિત્તમાં બિલકુલ સ્પૃહાનો અભાવ થવો, તેનું નામ અસ્તેય છે. એથી જ ભાષ્યકારે "**अस्पृहारूपमस्तेयम्**" એ વાકયથી ઇચ્છાના અભાવને અસ્તેય કહેલું છે.

બ્રહ્મચર્ય=બીજી સર્વ ઇંદ્રિયોના નિરોધપૂર્વક ઉપસ્થ ઇંદ્રિયનો સંયમ કરવો, તેનું નામ બ્રહ્મચર્ય છે.

અર્થાત્–"**स्मरणं कीर्तनं केलिः प्रेक्षणं गुह्यभाषणं। संकल्पोऽध्यवसायश्च क्रियानिर्वृत्तिरेव च॥ एतन्मैथुनमष्टाङ्गं प्रवदन्ति मनीषिणः। विपरीतं ब्रह्मचर्यमेतदेवाष्टलक्षणम्**"॥[1] એ દક્ષમુનિના વચનાનુસાર આઠ પ્રકારના મૈથુનનો ત્યાગ, તે બ્રહ્મચર્ય છે.

અપરિગ્રહ–વિષયભોગમાં અર્જન,[2] રક્ષણ, ક્ષય, સંગ અને હિંસારૂપ દોષને જાણીને આપોઆપ પ્રાપ્ત થયેલા વિષયોનો પણ સ્વીકાર ન કરવો, તેનું નામ અપરિગ્રહ છે.

યદ્યપિ અસ્તેય કથનથી જ વિષયોનો અસ્વીકાર પ્રાપ્ત થાય છે, તેથી અપરિગ્રહનું ભિન્ન કથન નિરર્થક છે તથાપિ અસ્તેયમાં શાસ્ત્રોક્ત વિધિથી સ્વીકારનો દોષાભાવ કહેલો છે અને અહીં શાસ્ત્રવિધિથી પ્રાપ્ત થયેલા પદાર્થમાં પણ દોષ જાણીને ત્યાગ કરવાનો ઉપદેશ કરેલો છે એટલો ભેદ જાણી લેવો અથવા અસ્તેયમાં ચોરીનો અભાવ અને દાનનું ગ્રહણ કરવું અને અપરિગ્રહથી, ઉપયુક્ત કૌપીન વગેરે બીજા પદાર્થોના ગ્રહણનો પણ યથાસંભવ અભાવ ગ્રહણ કરવો.

આ પાંચ જ હિંસા, જૂઠ, ચોરી, મૈથુન અને પરિગ્રહના અભાવરૂપ હોવાથી યમ છે. કેમકે યમ નામ ઉપરમનું છે. ॥૩૦॥

૧–સ્ત્રીનું સ્મરણ, કીર્તન, સ્ત્રી સાથે હાસ્યાદિ ક્રીડા, સ્ત્રી તરફ દૃષ્ટિપાત કરવો, સ્ત્રીની સાથે એકાંતમાં વાત કરવી, સ્ત્રીભોગનો સંકલ્પ કરવો, સ્ત્રીભોગ માટે નિશ્ચયપૂર્વક એક સ્થિર વિચાર અને ક્રિયાનિર્વૃત્તિ એટલે પશુધર્મ નામક પરસ્પર ચર્મસંઘર્ષ એ આઠ પ્રકારનું મૈથુન છે. એનાથી ઉલટું એ બધાનો ત્યાગ તે આઠ પ્રકારનું બ્રહ્મચર્ય કહેવાય છે.

૨–અર્જન નામ સંપાદનનું છે. વિષયભોગના સંપાદનાદિમાં દુઃખ તો સ્પષ્ટ છે અને સંગ દોષ એ છે કે, આસક્તિથી રાગની વૃદ્ધિ થાય છે અને ભૂતહિંસા વિના ભોગ થઈ શકતો નથી, તેથી તેમાં હિંસા દોષ છે, એ આ પાદના ૧૫ મા સૂત્રમાં સ્પષ્ટ છે. પ્રતિગ્રહથી પણ પુણ્યનો ક્ષય થાય છે, તેથી તેનો પણ બનતાં સૂધી ત્યાગ કરવો ઉચિત છે.

એ પ્રમાણે સામાન્ય રીતે યમનું નિરૂપણ કર્યું. હવે કેવી રીતે એ યમ યોગીને ગ્રહણ કરવા જોગ છે તે બતાવે છેઃ—

ते तु—

सू—जातिदेशकालसमयाऽनवच्छिन्नाः सार्वभौमा महाव्रतम् ॥३१॥

સૂત્રાર્થઃ-(**ते तु**) તે પૂર્વોક્ત પાંચ યમ (**जातिदेशकालसमयाऽनवच्छिन्नाः**) જાતિ, દેશ, કાલ, સમયરૂપ અવચ્છેદ (વિભાગ)થી રહિત હોવાથી (**सार्वभौमाः**) સર્વ અવસ્થામાં થઈ શકે તેવા (**महाव्रतम्**) મહાવ્રતના નામથી કહેવાય છે.

અર્થાત્-એક અહિંસા જાતિઅવચ્છિન્ન હોય છે. જેમકે હું મત્સ્યની જ હિંસા કરીશ, બીજાની નહિ. આવા પ્રકારની મત્સ્યબંધકની[1] મત્સ્યસંબંધી જાતિઅવચ્છિન્ન અહિંસામાં જ જો એટલું વિશેષ બીજું સંમેલન થાય કે-“બીજા દેશમાં જ હું હિંસા કરીશ, તીર્થમાં નહિ કરું.” ત્યારે તે દેશાવચ્છિન્ન હિંસા થાય છે અને એ ઉભયાવચ્છિન્ન અહિંસામાં જો એટલું વિશેષ સંમેલન કરાય કે-“ચતુર્દશી, સંક્રાન્તિ વગેરે પુણ્યકાળમાં હું હિંસા નહિ કરું.” ત્યારે તે કાલાવચ્છિન્ન થઈ જાય છે. આ ત્રણ પ્રકારની હિંસાથી રહિત પુરુષ, દેવતા વા બ્રાહ્મણોના અર્થે જ હું હિંસા કરીશ, બીજી રીતે નહિ કરું. એવી રીતના સંકેતથી હિંસા કરે તે સમયાવચ્છિન્ન હિંસા કહેવાય છે; તેમ હું ક્ષત્રિય હોવાથી યુદ્ધમાં હિંસા કરીશ, બીજે ઠેકાણે નહિ કરું, એ પણ સમયાવચ્છિન્ન હિંસા જાણવી.

એવી રીતે જાતિ, દેશ, કાળ, સમયરૂપ વિભાગનો ત્યાગ કરીને સર્વથા જ સર્વજાતિ, સર્વકાળ, સર્વદેશ, સર્વપ્રયોજનરૂપ વિશેષ પરિત્યાગપૂર્વક અહિંસાનું જે પરિપાલન, તે, જાતિ, દેશ, કાળ, સમયાવચ્છિન્ન અહિંસા છે.

એવી રીતે કોઇના પ્રાણનું રક્ષણ કરવા વગેરે કામ સિવાય બીજી રીતે હું મિથ્યા ભાષણ નહિ કરું, એ પ્રકારના સત્યને સમયાવચ્છિન્ન સત્ય જાણવું. દુર્ભિક્ષના સમય વિના બીજા કોઈ સમયે ચોરી નહિ કરું, એવી રીતના અસ્તેયને સમયાવચ્છિન્ન ચોરી જાણવી અને ઋતુકાળ સિવાય બીજા સમયમાં સ્ત્રીગમન નહિ કરું, એવી રીતના બ્રહ્મચર્યને સમયાવચ્છિન્ન બ્રહ્મચર્ય જાણવું. એ પ્રમાણે વૃદ્ધ માતાપિતાના પરિપાલન માટે જ હું પ્રતિગ્રહ કરીશ (દાન લઇશ) અન્યથા નહિ. એ પ્રકારના અપરિગ્રહને સમયાવચ્છિન્ન જાણવો.

૧-મત્સ્યબંધક એટલે માછલાં પકડનાર.

આ સઘળા જાતિ આદિ વિભાગનો ત્યાગ કરીને જે સર્વથા જ હિંસા, અસત્ય, ચૌર્ય, સ્ત્રીગમન, પ્રતિગ્રહનો ત્યાગ, તે જાતિ, દેશ, કાળ, સમયથી અનવચ્છિન્ન અહિંસાદિ છે.

એવી રીતે અનવચ્છિન્ન હોવાથી જે સાર્વભૌમ અર્થાત્, સર્વ જાતિ, દેશ, કાળ, સમય વગેરેની અવસ્થાથી અવ્યભિચરિત અહિંસાદિકના અનુષ્ઠાનનું નામ મહાવ્રત છે.

આ પ્રમાણે વિવેકજ્ઞાનની ઇચ્છાવાળા યોગીએ મહાવ્રતનું અનુષ્ઠાન કરવું, પણ જાત્યાદિ અવચ્છિન્ન અહિંસાદિનું નહિ, એમ સિદ્ધ થાય છે. ॥ ૩૧ ॥

હવે ક્રમપ્રાપ્ત નિયમોનું સ્વરૂપ કહે છે:—

सू–शौचसन्तोषतपःस्वाध्यायेश्वरप्रणिधानानि नियमाः ॥ ३२ ॥

સૂત્રાર્થ:-શૌચ, સંતોષ, તપ, સ્વાધ્યાય, ઈશ્વરપ્રણિધાન, આ પાંચ નિયમ છે.

શૌચ=મૃત્તિકા, જલ, ગોમય વગેરેથી શરીરનું પ્રક્ષાલન, અને હિતકારક, અલ્પ, પવિત્ર ભોજનથી ઉદરનું પ્રક્ષાલન[1] તથા મૈત્રી વગેરે ભાવનાથી ચિત્તના મળોનું પ્રક્ષાલન કરવું, તેનું નામ શૌચ છે.

સંતોષ=વિદ્યમાન ભોગના સાધનની વસ્તુ કરતાં અધિક બીજી અનુપયોગી વસ્તુની ઇચ્છા ન કરવી તે.

તપ=દ્વંદ્વનું સહન કરવું. અર્થાત્, ક્ષુધા પિપાસા, શીત ઉષ્ણ, સ્થાન આસન,[2] ઇત્યાદિ દ્વંદ્વોને સહન કરવાં તે, તથા કાષ્ઠમૌન,[3] આકારમૌન અને યથાયોગ કૃચ્છ્રચાન્દ્રાયણ, સાન્તપનાદિ વ્રતોનું[4] અનુષ્ઠાન કરવું, તે તપ કહેવાય છે.

૧–હિત, અલ્પ, પવિત્ર ભોજનનું વિવરણ સાધનપાદના ૧ લા સૂત્રમાં અને મૈત્રી વગેરે ભાવનાનું નિરૂપણ સમાધિપાદના ૩૩ મા સૂત્રમાં કરેલું છે.

૨–સ્થાન એટલે ઉભું રહેવું અને આસન એટલે બેસી રહેવું.

૩–ઈંગિત=હસ્તાદિ ચેષ્ટા–ઇસારાદ્વારા પણ પોતાના અભિપ્રાયનો પ્રકાશ ન કરવો, તેનું નામ કાષ્ઠમૌન છે. કેવળ વાણીમાત્રનો નિરોધ કરવો તેનું નામ આકારમૌન છે.

૪–ત્રણ દિવસ સુધી દરરોજ પ્રાતઃકાળમાં જ કુકડાના ઈંડા જેવડા છવીશ ગ્રાસ, અને પાછા ત્રણ દિવસ સુધી સાયંકાળે જ કુકડાના ઈંડા જેવડા બત્રીસ ગ્રાસ, તે પછી ત્રણ દિવસ યાચના કર્યા વિના જ પ્રાપ્ત થયેલા–

સ્વાધ્યાય=મોક્ષપ્રતિપાદક અધ્યાત્મશાસ્ત્ર તથા વેદનું અધ્યયન અને પ્રણવનો જપ કરવો તે.

ઈશ્વરપ્રણિધાન=પરમગુરુ પરમેશ્વરમાં સર્વ ક્રિયા અર્પણ કરવી તે. એ પ્રણિધાનથી જે ફળ પ્રાપ્ત થાય છે, તે શ્રી વેદવ્યાસજીએ "शय्याऽऽसनस्थोऽथ पथि व्रजन् वा स्वस्थः परिक्षीणवितर्कजालः, संसारबीजक्षयमीक्षमाणः, स्यान्नित्ययुक्तोऽमृतभोगभागी"[१] આ શ્લોકથી કહેલું છે. એવી રીતે સૂત્રકારે પણ "ततः प्रत्यक्चेतनाऽधिगमोऽप्यन्तरायाऽभावश्च"[२] એ સૂત્રથી એ પ્રણિધાનનું આત્મસાક્ષાત્કારરૂપ ફળ કહેલું છે. એ પ્રમાણે ઈશ્વરપ્રણિધાન અવશ્ય કરવા યોગ્ય છે. ॥ ૩૨ ॥

હવે એ શ્રેષ્ઠ કાર્યોમાં વિઘ્નની સંભાવના હોવાથી જો અહિંસાદિ યમ કોઈ વિઘ્નથી નાશ થવા માંડે તો તેના પ્રતિપક્ષની ભાવનાદ્વારા તેની નિવૃત્તિ કરવી. તે કહે છેઃ—

एतेषां यमनियमानां—

सू—वितर्कबाधने प्रतिपक्षभावनम् ॥ ३३ ॥

માંથી ચોવીશ ગ્રાસનો આહાર કરવો, અને પછી ત્રણ દિવસ ઉપવાસ કરવો, તેનું નામ કૃચ્છ્ર છે. શુકલપક્ષના પડવાથી લઇને જેમ જેમ ચંદ્રની કળા વૃદ્ધિ પામતી જાય, તેમ તેમ મોરના ઈંડા જેવડો એકેક ગ્રાસ વધારતા જઈ પૌર્ણમાસી સુધી પંદર ગ્રાસનો આહાર કરવો. તે પછી કૃષ્ણપક્ષના પડવાને દિવસે ચૌદ, બીજને દિવસે તેર એમ દરરોજ એકેક ગ્રાસ કમી કરતાં છેવટે અમાવાસ્યાએ ઉપવાસ કરવો, તેનું નામ ચાંદ્રાયણ છે. પહેલે દિવસે બીજા કોઈ પણ આહારનો ત્યાગ કરી આઠ માષા તાંબાના જેવા વર્ણવાળી ગાયનું મૂત્ર, સોળ માષા ધોળી ગાયનું છાણ, બાર માષા કાંચનવર્ણી ગાયનું દૂધ અને દશ માષા કાળી ગાયનું ઘી તથા એ બધાના અર્ધ પરિમાણવાળા કુશ તથા જળ તેમાં મેળવીને તેનું પાન કરવું, અને બીજે દિવસે ઉપવાસ કરવો, તેનું નામ સાંતપનવ્રત છે. એ બધું મનુસંહિતાના ૧૧ મા અધ્યાયમાં ૧૧૨ વગેરે શ્લોકોમાં તથા યાજ્ઞવલ્કયસ્મૃતિના પ્રાયશ્ચિત્તાધ્યાયના ૩૧૫ વગેરે શ્લોકોની મિતાક્ષરામાં સ્પષ્ટ છે.

૧—જે યોગીઓ શય્યા વા આસન ઉપર બેઠા હોય ત્યારે માર્ગમાં ચાલતા વા એકાંતમાં હોય ત્યારે હિંસાદિના વિતર્કોથી રહિત થઇને ઈશ્વરનું પ્રણિધાન કરે છે, તે દિવસે દિવસે સંસારબીજ રાગાદિના ક્ષયનો અનુભવ કરતા જીવનમુક્તિના સુખને ભોગવતા નિત્યમુક્ત છે, એવો આ શ્લોકનો ભાવ છે.

૨—પૂર્વ પાદનું ૨૯ મું સૂત્ર જુઓ.

સૂત્રાર્થઃ-(एतेषां यमनियमानाम्) એ પૂર્વોક્ત યમનિયમોના (वितर्कबाधने) અહિંસાદિના[1] વિરોધી તર્કરૂપ હિંસા, મિથ્યાભાષણાદિથી બાધ પ્રાપ્ત થતાં (प्रतिपक्षभावनम्) હિંસા વગેરેમાં દોષદૃષ્ટિરૂપ અહિંસાદિ વિરોધી વિચારનું સેવન કરવું.

અર્થાત્-જ્યારે બ્રહ્મજ્ઞાનેચ્છુ યોગીના ચિત્તમાં અહિંસાદિના વિરોધીભૂત આવો વ્યવસાય ઉદય પામે કે-"હું અવશ્ય જ એ વૈરીનું હનન કરીશ, અને તેને દુઃખ દેવામાટે મિથ્યાસંભાષણ પણ કરીશ, તેના દ્રવ્યનું અપહરણ કરીશ, તેની સ્ત્રી સાથે પશુધર્મ આચરીશ, અને તેના ધનનો ધણી પણ થઇશ," ત્યારે અત્યંત વધેલા કુમાર્ગ તરફ પ્રવાહવાળા વિતર્ક નામના જ્વરથી બંધનને પામતાં હિંસાદિમાં તેણે પ્રવૃત્ત ન થવું, પણ "આ ઘોર સંસારરૂપ અંગારમાં નિરંતર દાઝતાં અને પચતાં મેં સઘળાં ભૂતોના અભયદાન અર્થે કથંચિત્ અહિંસાદિરૂપ યોગધર્મનું શરણ ગ્રહણ કર્યું છે. તે જો હું એ ગૃહીત અહિંસાદિનો ત્યાગ કરીને ફરીથી તેના વિરોધીભૂત હિંસાદિનું ગ્રહણ કરીશ, તો હું પણ કુતરાના જેવા આચરણવાળો થઈ જઇશ, કેમકે જેમ કુતરો વાન્તસ્વાદી (ઓકેલું ખાનારો) છે, તેમ ત્યકત કરેલા વિષયને ગ્રહણ કરવાથી હું પણ વાન્તભક્ષી થઇશ." એવા પ્રકારની પ્રતિપક્ષ (ઉલટી) ભાવના કરવી. એવી રીતે નિયમાદિમાં પણ વિતર્કોની પ્રતિપક્ષભાવના જાણી લેવી. ॥ ૩૩ ॥

હવે વિતર્કોનાં સ્વરૂપ, પ્રકાર, કારણ, ધર્મ, ફળ ભેદનું નિરૂપણ કરતાં પ્રતિપક્ષ ભાવનાનું સ્વરૂપ કહે છેઃ—

सू—वितर्का[2] हिंसादयः कृतकारिताऽनुमोदिता
लोभक्रोधमोहपूर्वका मृदुमध्याऽधिमात्रा
दुःखाऽज्ञानाऽनन्तफला इति प्रतिपक्षभावनम् ॥ ३४ ॥

(हिंसादयः) હિંસા, મિથ્યા ભાષણ વગેરે જે (वितर्काः) વિતર્કો અહિંસાદિના વિરોધી છે, તે (दुःखाऽज्ञानाऽनन्तफलाः) દુઃખ અને અજ્ઞાનરૂપ અનંત ફળનાજ દેવાવાળા છે, કાંઈ સુખ તથા જ્ઞાનરૂપ ફળને

૧-અહિંસાદિના વિરોધીભૂત જે તર્ક એટલે "હું અવશ્ય હિંસા કરીશ." ઇત્યાદિ નિશ્ચયનું નામ વિતર્ક છે.

૨-हिंसादयः એ પદથી વિતર્કોના સ્વરૂપનું કથન; कृतकारित-ઇત્યાદિ પદથી પ્રકારનું કથન; लोभ-ઇત્યાદિ પદથી કારણકથન; मृदु-ઇત્યાદિ પદથી ધર્મકથન અને दुःख ઇત્યાદિથી ફલકથન જાણી લેવું.

આપવાવાળા નથી, (**इति प्रतिपक्षभावनम्**) એવી રીતનો જે વિચાર કરવો, તેનું નામ પ્રતિપક્ષભાવના છે. તે આ હિંસાદિ (**कृतकारिताऽनुमोदिताः**) કૃત એટલે પોતે જાતે કરેલાં; કારિત એટલે આજ્ઞાદ્વારા બીજાની પાસે કરાવેલાં તથા અનુમોદિત એટલે "હા ઠીક છે, ઠીક છે." એ પ્રકારે અનુમતિદ્વારા અનુમોદન કરેલાં પણ દુઃખફળ આપવાવાળાં છે. તે હિંસાદિ કોઈવાર માંસ ચર્માદિના લોભથી થાય છે; કોઇવાર "મારો આ પ્રાણીએ અપકાર કર્યો છે, તો હું પણ તેનો અવશ્ય અપકાર કરીશ." એવી રીતના ક્રોધથી ઉત્પન્ન થાય છે; તથા કોઈવાર બલિદાન દેવાથી કાંઈ ધર્મ થશે, એવા પ્રકારના મોહ (અવિદ્યા)થી પેદા થાય છે. તે જ કહે છે કે (**लोभक्रोधमोहपूर्वका**) લોભ, ક્રોધ અને મોહ પૂર્વક ઉત્પન્ન થાય છે. એ લોભાદિ પણ (**मृदुमध्याऽधिमात्राः**) મૃદુ, મધ્ય અને તીવ્ર ભેદથી ત્રણ પ્રકારના છે. એ રીતે એકંદર એકાશી[1] પ્રકારના જે હિંસાદિ છે, તે દુઃખફલ આપવાવાળા હોવાથી હેય એટલે ત્યાગ કરવા યોગ્ય છે, માટે એ બધા વિચારથી હિંસાદિથી નિવૃત્ત થવું, એમ સિદ્ધ થાય છે.

ભાવ એ છે કે, હિંસક પુરુષ પ્રથમ વધ્યપશુના વીર્યનો[2] નાશ કરે છે, પછી શસ્ત્રાદિ નિપાતદ્વારા (મારવાથી) પશુને દુઃખપ્રદાન કરે છે અને પછી તેને જીવનથી રહિત કરી દે છે. ત્યાં પશુના વીર્યનો નાશ કરવાથી હનન કરવાવાળા પ્રાણીનાં પુત્ર કલત્ર ધનાદિક ઉપકરણો ક્ષીણ થઈ જાય છે. અર્થાત્ તેને ભોગવવા યોગ્ય રહેતાં નથી, અને શસ્ત્રનિપાતદ્વારા પશુને દુઃખ દેવાથી પોતે નરક, તિર્યંક, પ્રેતાદિ યોનિઓમાં દુઃખનો અનુભવ કરે છે, અને પશુના જીવનનું મોચન કરવાથી દુઃસાધ્ય રોગથી પીડિત

૧–પહેલાં કૃત, કારિત, અનુમોદિત ભેદથી ત્રણ પ્રકારની: પછી લોભ, મોહ, ક્રોધજન્ય ભેદથી દરેક ત્રણ પ્રકારની હોવાથી નવ પ્રકારની હિંસા થઈ; અને પછી લોભાદિના મૃદુ, મધ્ય, અધિમાત્ર ભેદથી ત્રણ ત્રણ પ્રકાર થતાં સત્તાવીસ પ્રકારની થઈ. તે પછી મૃદુ આદિ ત્રણેની પણ મૃદુમૃદુ, મધ્યમૃદુ, તીવ્ર મૃદુ ઇત્યાદિ ભેદથી ત્રણ ત્રણ પ્રકારની થતાં કુલ એકાશી પ્રકારની હિંસા થઈ. વસ્તુતાએ હું મત્સ્યની જ હિંસા કરીશ, અન્યની નહિ, એ નિયમના ભેદથી વા એક દિવસમાં એક જ કોઇની હિંસા કરીશ, બીજાની નહિ, એવા વિકલ્પના ભેદથી અથવા સઘળાની હિસા કરીશ, એવી રીતના સમુચ્ચય ભેદથી એ હિસા અસંખ્યાત છે. તેમ પ્રાણીઓ પણ અનંત હોવાથી હિંસા પણ અસંખ્ય છે.

૨–યૂપ (યજ્ઞસ્તંભ) બંધનદ્વારા સામર્થ્યનો નાશ.

હોવાથી મરણની અણીએ પ્રાપ્ત છતાં મરણની ચાહના રાખતાં છતાં પણ દુઃખ ફળ અવશ્ય ભોગવવાનું હોવાથી ઘણી મુશ્કેલીથી ઉર્ધ્વ-શ્વાસદ્વારા જીવન ધારણ કરે છે, અને જો કદાચ અંગીભૂત કોઈ પુણ્યના અનુષ્ઠાનથી હિંસાજન્ય પાપ કાંઇક નિવૃત્ત થઈ જાય છે તો તે પુણ્યના ફળભૂત સ્વર્ગની પ્રાપ્તિ થયા પછી પણ તે અલ્પાયુ અને દુઃખી થાય છે, એ હિંસાના કાર્યમાં દુઃખ આપવાવાળાં છે.

એ પ્રમાણે મિથ્યા સંભાષણાદિકને પણ દુઃખફળ દેવાવાળાં જાણવાં.

હિંસાદિ વિતર્કોના એ પૂર્વોક્ત અનિષ્ટ ફળની ભાવના કરતો પુરુષ ફરીથી વિતર્કોમાં મન ન આપે, પણ પ્રતિપક્ષ ભાવનાથી તેનો પરિત્યાગ જ કરે, એ પરમાર્થ છે. ॥ ૩૪ ॥

એવી રીતે પ્રતિપક્ષ ભાવનાથી જ્યારે એ હિંસાદિ દગ્ધબીજ તુલ્ય અ-ર્થાત્ જેનાં બીજ બળી ગયાં હોય તેવી થઈ જાય છે, ત્યારે યોગીને યમોની સિદ્ધિનું સૂચક યમાદિકૃત ઐશ્વર્ય પ્રાપ્ત થાય છે, તેનું નિરૂપણ કરે છેઃ—

सू० अहिंसाप्रतिष्ठायां तत्सन्निधौ वैरत्यागः ॥ ३५ ॥

સૂત્રાર્થઃ-(**अहिंसाप्रतिष्ठायाम**) અહિંસામાં યોગીની ઉત્તમ સ્થિતિ થાય છે ત્યારે (**तत्सन्निधौ वैरत्यागः**) તે યોગીની પાસે આવવાથી વિરોધીઓ પણ પોતાનું વૈર તજી દે છે.

અર્થાત્-જે યોગી જાત્યાદિ અનવચ્છિન્ન અહિંસામાં નિષ્ઠાવાળો હોય છે, તે યોગીની પાસે આવેલા સ્વાભાવિક વિરોધવાળા અશ્વ-મહિષ, મૂષક-માર્જાર, સર્પ-નકુળ પણ મિત્રભાવને પામી જાય[1] છે ॥ ૩૫ ॥

सू-सत्यप्रतिष्ठायां क्रियाफलाऽऽश्रयत्वम् ॥ ३६ ॥

સૂત્રાર્થઃ-(**सत्यप्रतिष्ठायाम**) સત્યમાં પ્રતિષ્ઠા (સ્થિતિ) થવાથી (**क्रिया-फलाऽऽ श्रयत्वम**) ક્રિયા સંજ્ઞક ધર્માધર્મનો અને તેનાં ફલ સ્વર્ગ નર્ક વગેરેનો આશ્રય પુરુષને થાય છે.

અર્થાત્-સત્યસંભાષણ કરનારો પુરુષ જો કોઈ પાપીને કહે કે "તારું પાપ નષ્ટ થયું અને તારો ધર્મ વધ્યો." તો અવશ્ય જ તે ધાર્મિક થઈ જશે. એ પ્રમાણે[2] "તને સ્વર્ગ મળશે" એવું કોઇને કહે, તેને અવશ્ય

૧-જ્યારે પોતાની પાસે આવેલાં સ્વાભાવિક વિરોધી પ્રાણી પણ પર-સ્પર વૈરનો ત્યાગ કરે, ત્યારે યોગીએ જાણવું કે, હવે હું અહિંસાનિષ્ઠ થયો છું, એ પ્રમાણે આગળ પણ જાણી લેવું.

૨-ક્રિયાનો આશ્રય કહીને ફળનો આશ્રય કહે છે. "એ પ્રમાણે" ઇત્યાદિથી

સ્વર્ગ પ્રાપ્તિ થઈ જાય છે. એટલે કે સત્યનિષ્ઠની વાણી અમોઘા[1] થઈ જાય છે. ॥ ૩૬ ॥

सू–अस्तेयप्रतिष्ठायां सर्वरत्नोपस्थानम् ॥ ३७ ॥

સૂત્રાર્થઃ–અસ્તેયમાં પ્રતિષ્ઠા સ્થિતિ થવાથી સઘળા રત્નોની ઉપસ્થિતિ થાય છે.

અર્થાત્–અસ્તેયનિષ્ઠ પુરુષની પાસે સઘળી દિશા દેશાંતરમાં હોવાવાળાં અમૂલ્ય રત્ન, હીરા, મુક્તાફળ વગેરે ઉત્તમ દ્રવ્ય આપોઆપ હાજર થાય છે. ॥ ૩૭ ॥

सू–ब्रह्मचर्यप्रतिष्ठायां वीर्यलाभः ॥ ३८ ॥

સૂત્રાર્થઃ–બ્રહ્મચર્યમાં પ્રતિષ્ઠા (સ્થિતિ) થવાથી "વીર્ય" (સામર્થ્યવિશેષ)નો લાભ થાય છે. અર્થાત્, જે પૂર્ણપણે બ્રહ્મચર્યનું પાલન કરે છે, તે એવું સામર્થ્ય મેળવે છે કે, જે સામર્થ્યના યોગથી હવે પછી જેનું વર્ણન કહેવામાં આવશે એવી અણિમાદિ સિદ્ધિઓને સંપાદન કરી, પોતે સિદ્ધ થઇને પોતાના શિષ્યોને પણ જ્ઞાની અને યોગી બનાવી શકે છે. ॥૩૮॥

सू–अपरिग्रहस्थैर्ये जन्मकथन्तासंबोधः ॥ ३८ ॥

સૂત્રાર્થઃ–અપરિગ્રહમાં પરિપૂર્ણરૂપે સ્થિરતા થવાથી યોગીને (जन्मकथन्ता) ભૂત, વર્ત્તમાન, ભાવિજન્મ સંબંધી કિંપ્રકારતાનું જ્ઞાન થાય છે.

અર્થાત્–પૂર્વજન્મમાં હું કોણ હતો, ક્યાં હતો, કેવી રીતે રહેતો હતો અને વર્ત્તમાન કાળનું શરીર, ભૂતોનું કાર્ય છે, વા ભૂતોનો સમૂહ છે, કે ભૂતોથી અન્ય છે. વળી આગળ ઉપર હું કયાં અને કોણ થઇશ, કેવી રીતે હું થઇશ, એ પ્રકારે ભૂત, વર્ત્તમાન, ભાવિજન્મવિષયક યથાર્થ જ્ઞાન ઉદય પામે છે.

આ ઉપર કહેલી પાંચ સિદ્ધિઓ, પાંચ પ્રકારના યમની સ્થિરતા થવાથી પ્રાપ્ત થાય છે. ॥ ૩૯ ॥

હવે નિયમવિષયક નિષ્ઠાશીલને જે સિદ્ધિઓનો લાભ થાય છે, તેનું યથાક્રમ પ્રતિપાદન કરે છે.

सू–शौचात् स्वाङ्गजुगुप्सा परैरसंसर्गः ॥ ४० ॥

સૂત્રાર્થઃ–શૌચનું પૂર્ણપણે અનુષ્ઠાન કરવાથી (स्वांगजुगुप्सा) પોતાના

---

૧ અમોઘ નામ સફળનું છે. જે યોગીનો આશીર્વાદ વા શાપ સફળ થઈ જાય, તે યોગી પૂર્ણપણે સત્યનિષ્ઠ થયો એમ જાણવું.

શરીરના અવયવોમાં ગ્લાનિ થાય છે અને (परैरसंसर्गः) અન્ય મલિન વા અશુદ્ધ પુરુષોના સંસર્ગનો અભાવ થઈ જાય છે.

અર્થાત્-જ્યારે યોગી પોતાનાં અંગોમાં અશુદ્ધિ પ્રયુક્ત ગ્લાનિ થવાથી શૌચનું અનુષ્ઠાન કરે છે, ત્યારે "स्थानाद् बीजाद्" ઇત્યાદિ પૂર્વોક્ત યુક્તિથી શૌચ કરવા છતાં પણ શરીરને શુદ્ધ ન જાણતો શરીરના અ-ધ્યાસથી પણ રહિત થઈ જાય છે, અને કાયાનો સ્વભાવ તે જાણે છે. પછી કોઈ બીજાની સાથે તે સંસર્ગ કરતો નથી અને એકાંતસેવી થઈ જાય છે. અર્થાત્-જે પુરુષ મૃત્તિકા જલાદિથી પ્રક્ષાલન કરવાથી પણ પોતાના શરીરને શુદ્ધ ન જાણીને શરીરના ત્યાગની ઇચ્છા કરે છે તે પુરુષ, અન્ય મૃતકતુલ્ય મલિન શરીરોનો તો કેમ જ સંસર્ગ કરશે ?[1] ॥ ४० ॥

બાહ્યશૌચપ્રયુક્ત સિદ્ધિનું નિરૂપણ કરી હવે આંતરશૌચની સિદ્ધિનું ફળ કહે છે-

सू-सत्त्वशुद्धिसौमनस्यैकाग्र्येन्द्रियजयाऽऽत्मदर्शनयोग्यत्वानि च ॥४१॥

સૂત્રાર્થ:-મૈત્રી આદિ ભાવનાથી રાગાદિની નિવૃત્તિદ્વારા (सत्त्वशुद्धि) ચિત્તસત્ત્વની નિર્મળતા પ્રકટ થાય છે, અને નિર્મળતા (सौमनस्य) સ્ફટિકના જેવી સ્વચ્છતા, સ્વચ્છતાથી એકાગ્રતા અને એકાગ્રતાથી તદધીન ઇંદ્રિયોની વશ્યતા તથા વશ્યતાથી આત્મસાક્ષાત્કારની યોગ્યતાનો લાભ થાય છે, એ શૌચની સ્થિરતાનું ફળ છે.

सू-सन्तोषादनुत्तमः सुखलाभः ॥ ४२ ॥

સૂત્રાર્થ:-સન્તોષમાં નિષ્ઠા થવાથી (अनुत्तम) જેનાથી બીજું કોઈ ઉત્તમ નથી એવાં સુખનો લાભ થાય છે.

એ પ્રમાણે શ્રીવ્યાસજીએ પણ કહેલું છે કે- "यच्च कामसुखं लोके यच्च दिव्यं महत्सुखं, तृष्णाक्षयसुखस्यैते नाऽर्हतः षोडशीं कलाम्"[2] इति ॥ પોતાના પુત્ર પુરુને યૌવન અર્પણ સમયે યયાતિ રાજાએ પણ "या दुस्त्यजा दुर्मतिभिर्या

૧-એવી રીતે શરીરાધ્યાસની નિવૃત્તિ તથા એકાંતનું સેવન, એ જ શૌચનું ફળ છે, અને એ બંનેના હોવાથી યોગી શૌચનિષ્ઠ પ્રતીત થાય છે, એમ જાણવું.

૨-આ લોકમાં જે કામસુખ, અર્થાત્ ઐહિક માળા, ચંદન, વનિતાદિ-જન્ય સુખ છે; તથા સ્વર્ગમાં હોવાવાળાં જે અપ્સરાભોગ, અમૃતપાનાદિક દિવ્ય સુખ છે, એ બંને સુખ તૃષ્ણાક્ષયથી થયેલા સંતોષ સુખની સોળમી કળાને પણ યોગ્ય નથી. અર્થાત્-સંતોષસુખના સોળમા હિસ્સાનું સુખ, એ બંનેમાં નથી.

न जीर्यति जीर्यति । तां तृष्णां संत्यजन् प्राज्ञः सुखेनैवाऽभिपूर्यते "[1] એ વાક્યથી તૃષ્ણા ત્યાગરૂપ સંતોષને અનુત્તમ સુખનો પેદા કરનાર કહેલો છે. ॥ ૪૨ ॥

सू–कायेन्द्रियसिद्धिरशुद्धिक्षयात् तपसः ॥ ४३ ॥

સૂત્રાર્થઃ-(तपसः) તપના અનુષ્ઠાનથી (अशुद्धिक्षयात्) રજ તમથી થયેલા અશુદ્ધિ સંજ્ઞક આવરણરૂપ મળનો ક્ષય થવાથી (कायेन्द्रियसिद्धिः) શરીરનું તથા ઇંદ્રિયનું ઐશ્વર્ય પ્રાપ્ત થાય છે. અર્થાત્-શરીર સંબંધી, અણિમાદિ સિદ્ધિઓ અને ઇંદ્રિય સંબંધી દૂરથી સાંભળવું, દૂરનું દેખવું, વગેરે સિદ્ધિઓ યોગીને મળે છે. ॥ ૪૩ ॥

सू–स्वाध्यायादिष्टदेवतासंप्रयोगः ॥ ४४ ॥

સૂત્રાર્થઃ-(स्वाध्यायात्) સ્વાધ્યાય કરવાથી (इष्टदेवता) અભિમત (ઇચ્છેલા) દેવતાઓનો (संप्रयोग) સાક્ષાત્કાર થાય છે.

અર્થાત્-સ્વાધ્યાય કરનારો યોગી જે દેવતાઓનું, ઋષિઓનું વા સિદ્ધોનું દર્શન કરવાને તે ઇચ્છે છે, તે દેવતાદિ તેને દર્શન દેછે અને તેનાં કહેલાં કાર્યને સંપાદન કરી આપશે. ॥ ૪૪ ॥

सू–समाधिसिद्धिरीश्वरप्रणिधानाद् ॥ ४५ ॥

સૂત્રાર્થઃ-(ईश्वरप्रणिधानात्) ઇશ્વર પ્રણિધાનથી (समाधिसिद्धिः) સંપ્રજ્ઞાત સમાધિની સિદ્ધિ પ્રાપ્ત થાય છે.

અર્થાત્-જેણે સર્વ કર્મો ઈશ્વરને અર્પણ કર્યાં છે, તે માણસ એવી સમાધિપ્રજ્ઞાનો લાભ કરે છે કે જે પ્રજ્ઞાદ્વારા તે યોગી દેશાંતરમાં, દેહાંતરમાં અને કાળાંતરમાં હોવાવાળા અભિમત પદાર્થોને પણ યથાર્થ રીતે જાણે છે.

આ સ્થળે એવી શંકા ન કરવી કે, "જ્યારે ઈશ્વરપ્રણિધાનથી જ સમાધિનો લાભ થાય છે, ત્યારે બીજાં સાત અંગોના અનુષ્ઠાનનું શું પ્રયોજન છે?" કેમકે એ સાતે વિના ઈશ્વરપ્રણિધાનનો લાભ ન હોવાથી તે સાતે[2] ઈશ્વરપ્રણિધાનનાં ઉપયોગી છે. ॥ ૪૫ ॥

૧–દુર્મતિ પુરુષોવડે તજવામાં જે કઠિન છે અને દેહ જીર્ણ થાય તો પણ જે જીર્ણ થતી નથી. અર્થાત્ શરીરમાં વૃદ્ધત્વ આવ્યા છતાં પણ જેમાં વૃદ્ધત્વ આવતું નથી, એવી તૃષ્ણાનો ત્યાગ કરવાવાળો પુરુષ અનુત્તમ સુખને પ્રાપ્ત કરે છે, એવો એ શ્લોકનો ભાવાર્થ છે.

૨–યમાદિ, અશુદ્ધિનો ક્ષય કરીને તે-દ્વારા ઈશ્વરપ્રણિધાનમાં ઉપયોગી છે અને આસનાદિ, દષ્ટફળ દ્વંદ્વ આદિ નિવૃત્તિદ્વારા ઉપયોગી છે.

એવી રીતે સિદ્ધિઓ સહિત યમ નિયમોનું નિરૂપણ કરીને હવે ક્રમપ્રાપ્ત આસનનું લક્ષણ કહે છે.

सू–स्थिरसुखमासनम् ॥ ४६ ॥

સૂત્રાર્થઃ–(**स्थिरसुखम्**) જે દ્વારા નિશ્ચળ હોવાની સાથે સુખલાભ થાય, તે (**आसनम्**) આસન કહેવાય છે.

અર્થાત્–પદ્માસનાદિ આસનોમાંથી જે આસનદ્વારા સ્થિરતા સિદ્ધ થાય, તે આસનનું યોગીએ સેવન કરવું.

પદ્માસન–વામ[1] ઉરુ ઉપર જમણા પગને અને દક્ષિણ ઉરુ ઉપર ડાબા ચરણને સ્થાપન કરી દક્ષિણ હસ્તને પીઠ તરફ લઈ જઈ તે-વડે વામ ઉરુ ઉપર રહેલા દક્ષિણ ચરણના અંગુષ્ઠનું ગ્રહણ કરવું; તથા વામ હસ્તને પીઠ તરફ લઈ જઇને તેવડે દક્ષિણ ઉરુ ઉપર રહેલા વામ ચરણના અંગુષ્ટનું ગ્રહણ કરવું. પછી છાતીથી ચાર આંગળ મધ્યે ચિબુક (દાઢી) ને સ્થાપન કરી, નાસાના અગ્રભાગનું અવલોકન જે સ્થિતિમાં કરાય છે, તે પદ્માસન કહેવાય છે.

વીરાસન–એક પાદને ભૂમિ ઉપર સ્થાપન કરી બીજા પગનો જાનુ વાંકો કરી તે ઉપર સ્થિતિ કરવી, તેનું નામ વીરાસન છે.

ભદ્રાસન–બંને પાદતલોને અંડકોષની પાસે સંપુટિત કરીને તેના ઉપર બંને હાથોને સંપુટિત કરીને બેસવું, તેને ભદ્રાસન કહે છે.

સ્વસ્તિકાસન–વામ ચરણને આકુંચન કરી દક્ષિણ જાંઘ અને ઉરુના મધ્યમાં સ્થાપન કરવો, તથા દક્ષિણ ચરણને વાંકો કરી વામ જાંઘ અને ઉરુના મધ્યમાં સ્થાપન કરવો, તેનું નામ સ્વસ્તિકાસન છે.

એવી રીતે દંડાસન,[2] સોપાશ્રય, પર્યંક, ક્રૌંચનિષદન,[3] હસ્તિ-

૧–યદ્યપિ આસન અનેક છે, તથાપિ જે આસનોનું ભાષ્યકારે પરિ-ગણન કર્યું છે, તેનું નિરૂપણ કરે છે. "વામ" ઇત્યાદિથી.

૨–બંને ચરણની આંગળીઓને અને ગુલ્ફને શ્લિષ્ટ (પરસ્પર મિલિત) કરી અને જંઘ–ઉરુ–પાદોને ભૂમિથી શ્લિષ્ટ કરી પસારી દેવાનું નામ દંડાસન છે.

બાહુઓનો આધાર વિશેષ કાષ્ઠનિર્મિત ચૌગાનસંજ્ઞક જે ઉદાસીનોમાં "યોગપટ્ટક" નામથી પ્રસિદ્ધ છે, તે યોગપટ્ટક (આશા=કુબડી) દ્વારા સ્થિત થવું તેનું નામ સોપાશ્રય છે, અને જાનુઓની ઉપર બાહુ પસારીને શયન કરવું, તેનું નામ પર્યંક છે.

૩–ક્રૌંચ નામક પક્ષીવિશેષની પેઠે સ્થિત થવું, તેનું નામ ક્રૌંચાસન

નિષદન, ઉષ્ટ્રનિષદન, સમસંસ્થાન,[1] સ્થિરસુખ, યથાસુખ ઇત્યાદિ આસન જાણી લેવાં.

એ બધાંમાંથી જે પ્રકારે પુરુષને સુખથી સ્થિરતા પ્રાપ્ત થાય, તે જ સ્થિરસુખ નામનું આસનયોગીએ ગ્રહણ કરવું. એ ભગવાન્ સૂત્રકારને સંમત છે. ॥ ૪૬ ॥

આસનનું સ્વરૂપ કથન કરીને હવે આસનસિદ્ધિનું સાધન કહે છે;-

सू-प्रयत्नशैथिल्याऽनन्तसमापत्तिभ्याम् ॥ ४७ ॥

સૂત્રાર્થ:-(प्रयत्नशैथिल्य) સ્વાભાવિક શરીરચેષ્ટાનું નામ પ્રયત્ન છે અને અંગમેજયત્વ (શરીર કંપન)ના અભાવ અર્થે તે સ્વાભાવિક ચેષ્ટાને ન્યૂન કરવી,[2] તે પ્રયત્નની શિથિલતા છે. એ પ્રયત્ન શૈથિલ્યથી આસન સિદ્ધ થાય છે અને એ પ્રમાણે અનંત સમાપત્તિથી અર્થાત્ જેણે ફણામંડલ ઉપર બ્રહ્માંડને ધારણ કર્યું છે એવા શેષનાગમાં ચિત્તને એકતાન કરી દેવાથી પણ આસન સિદ્ધ થઈ જાય છે. ॥ ૪૭ ॥

હવે આસન સિદ્ધિસૂચક ચિન્હને કહેવાની સાથે આસનસિદ્ધિનું ફળ કહે છે:—

सू-ततो द्वन्द्वाऽनभिघातः ॥ ४८ ॥

સૂત્રાર્થ:-(ततः) તે આસનના લાભથી (द्वन्द्वाऽनभिघातः) શીત-ઉષ્ણ આદિ દ્વંદ્વોથી યોગી પીડિત થતો નથી. ॥ ૪૮ ॥

હવે ક્રમપ્રાપ્ત પ્રાણાયામનું સામાન્ય લક્ષણ કહે છે:—

सू-तस्मिन् सति श्वासप्रश्वासयोर्गतिविच्छेदः प्राणायामः ॥ ४९ ॥

સૂત્રાર્થ:-(तस्मिन् सति) તે પૂર્વોક્ત આસનને પૂર્ણરૂપે લાભ થવાથી

છે. એ પ્રમાણે હસ્તીસદૃશ સ્થિતિનું નામ હસ્તિનિષદન અને ઉષ્ટ્રસદૃશ સ્થિતિનું નામ ઉષ્ટ્રનિષદન જાણી લેવું.

૧-પાર્ષ્ણિ (એડી) અને પગના અગ્રભાગને વાંકો કરીને પરસ્પર સંપીડનનું નામ સમસંસ્થાન છે. કોઈ કહે છે કે, બંને જાનુઓના ઉપર હાથ રાખીને શરીર, મસ્તક અને ડોકને સરળ ભાવથી રાખવાં, તેનું નામ સમસંસ્થાન છે.

૨-જો કોઈ લૌકિક વ્યાપાર કર્યા પછી આસન કરે છે, તો શરીર થાકી ગયેલું હોવાથી અંગ કંપવા માંડે છે, તેથી સ્થિર આસન થશે નહિ. તેથી લૌકિકવ્યાપારથી દૂર રહેવું, એ યોગીનું કર્ત્તવ્ય છે, કે જેથી આસન સમયે અંગ કંપે નહિ એ ભાવ છે.

જે (श्वासप्रश्वासयोर्गतिविच्छेदः) શ્વાસ પ્રશ્વાસની સ્વાભાવિક ગતિનો જે અભાવ, તે (प्राणायामः) પ્રાણાયામ છે.

બાહ્ય વાયુને અંદર લેવો, તેનું નામ શ્વાસ છે અને ઉદરસ્થિત વાયુને બહાર કહાડવો તેનું નામ પ્રશ્વાસ છે. એ બંનેના અભાવનું નામ[1] પ્રાણાયામ છે ॥ ૪૯ ॥

હવે પ્રાણાયામનાં વિશેષ ત્રણ લક્ષણ કહે છે:—

स तु—

स-बाह्याऽऽभ्यंतरस्तंभवृत्तिर्देशकालसंख्याभिः परिदृष्टो दीर्घसूक्ष्मः ५०

સૂત્રાર્થ:-(स तु) તે આ પ્રાણાયામ (बाह्याऽऽभ्यन्तरस्तंभवृत्तिः) બાહ્યવૃત્તિ, આભ્યંતરવૃત્તિ, અને સ્તંભવૃત્તિ ભેદથી ત્રણ પ્રકારનો છે.

અર્થાત્-પ્રશ્વાસદ્વારા સ્વાભાવિક પ્રાણની ગતિનો જે અભાવ, તે બાહ્યવૃત્તિ (રેચક) છે; શ્વાસદ્વારા જે સ્વાભાવિક ગતિનો અભાવ તે આભ્યંતરવૃત્તિ (પૂરક) છે; અને પ્રયત્નથી એક સાથે જ એ બંનેનો અભાવ, તે સ્તંભવૃત્તિ (કુંભક) છે. અર્થાત્-જેમ તપ્તપાષાણ વા તપ્ત લોહ ઉપર નાંખેલું જળ સંકોચને પામે છે, તેમ દૃઢ પ્રયત્નથી શ્વાસપ્રશ્વાસનો એક સાથે જ જે અભાવ, તે કુંભકપ્રાણાયામ છે.

તે આ ત્રણ પ્રકારનો પ્રાણાયામ (देश, काल, संख्याभिः परिदृष्टः) આભ્યંતર તથા બાહ્ય દેશ, ક્ષણોની ઇયત્તા (માપ)ના નિશ્ચયરૂપ કાળ, તથા શ્વાસપ્રશ્વાસની સંખ્યા, એ ત્રણેદ્વારા અને અભ્યાસદ્વારા પરીક્ષિત અને પરિવર્દ્ધિત થયેલો (दीर्घसूक्ष्मः) દીર્ઘ તથા સૂક્ષ્મ થઈ જાય છે.

અર્થાત્-જ્યારે યોગી પ્રાણાયામ કરે છે ત્યારે પ્રથમ તેની દેશદ્વારા પરીક્ષા કરે છે, કે આટલો દેશ તેનો વિષય છે.[2] પછી કાળ-

---

૧-યદ્યપિ પૂરક પ્રાણાયામમાં શ્વાસના હોવાથી અને રેચક પ્રાણાયામમાં પ્રશ્વાસના હોવાથી, એ બંનેમાં શ્વાસપ્રવાસનો અભાવ નથી પરંતુ કુંભકમાં જ છે. તથાપિ સ્વાભાવિક જે લોકોના શ્વાસપ્રશ્વાસ અનિયત રહ્યા કરે છે, તેનો અભાવ એ ત્રણેમાં સમાન જ છે. તેથી એ સામાન્ય લક્ષણ છે, એમ જાણવું.

૨-અર્થાત્-વાતરહિત દેશમાં નાસિકાના અગ્રભાગથી પ્રાદેશમાત્ર પરિમાણ ઉપર રુ રાખી બાહ્ય વાયુવિષયક રેચક પ્રાણાયામની પરીક્ષા કરવી કે એ રુ સુધી વાયુ પહોંચતો છે કે નથી પહોંચતો? રુ હાલે તો નિશ્ચય થાય કે અહીં સુધી બાહ્યવાયુ સ્થિરતાથી વહે છે, ત્યારે એક વેંત દૂર રુ રાખી

કાળદ્વારા પરીક્ષા કરે છે કે આટલી માત્રા[1] પર્યંત તે સ્થિર રહે છે, અને ત્યાર પછી સંખ્યાદ્વારા તેની પરીક્ષા કરે છે કે આટલા શ્વાસપ્રશ્વાસથી આ પ્રથમ ઉદ્ઘાત[2] થયો અને આટલા શ્વાસપ્રશ્વાસથી તે દ્વિતીય ઉદ્ઘાત થયો અને આટલા શ્વાસપ્રશ્વાસથી આ તૃતીય ઉદ્ઘાત થયો. એ પ્રમાણે આ મંદ પ્રાણાયામ છે, આ મધ્ય પ્રાણાયામ છે અને આ તીવ્ર પ્રાણાયામ છે, એવી રીતે દેશ કાળ સંખ્યા[3] દ્વારા પરીક્ષિત થયેલો અને અભ્યાસદ્વારા પરિવર્દ્ધિત થયેલો જે પ્રાણાયામ, તે દીર્ઘ-સૂક્ષ્મ કહેવાય છે.[4]

ભાવ એ છે કે-જેમ પીંજેલા રુનો ઢગલો પ્રસરીને લાંબો અને સૂક્ષ્મ થઈ જાય છે, તેમ દેશ કાળ આદિ વૃદ્ધિથી પરિવર્દ્ધિત થયેલો પ્રાણાયામ પણ દીર્ઘ અને સૂક્ષ્મ થઈ જાય છે. ॥ ૫૦ ॥

પ્રાણાયામના ત્રણ ભેદ કથન કરીને હવે ચોથા ભેદનું લક્ષણ કહે છે:—

सू–बाह्याऽऽभ्यन्तरविषयाऽऽक्षेपी चतुर्थः ॥ ५१ ॥

પરીક્ષા કરવી. એ પ્રમાણે જ્યારે દ્વાદશ અંગુલપર્યંત રેચક સ્થિર થઈ જાય, ત્યારે જાણવું કે એ દીર્ઘ-સૂક્ષ્મ થયો. એ પ્રમાણે પિપીલિકા (કીડી) સદૃશ સ્પર્શથી આંતરવિષયક પૂરકની પરીક્ષા કરવી. નાભિચક્ર સુધી જવાથી તે પૂરક પણ દીર્ઘસૂક્ષ્મ કહેવાય છે.

૧–હાથને જાનુ ઉપરથી ચારે તરફ ફેરવીને એક ચપટી બજાવવામાં જેટલો સમય લાગે છે, તેનું નામ માત્રા છે. દિવસે દિવસે વૃદ્ધિ પામેલો પ્રાણાયામ જ્યારે છત્રીસ માત્રાપર્યન્ત સ્થિર થઈ જાય, ત્યારે જાણવું કે તે દીર્ઘસૂક્ષ્મ થયો.

૨–ઉર્ધ્વગમન કરતો પ્રાણ જ્યારે અપાનને દબાવીને સ્થિર થઈ જાય છે, ત્યારે તેને ઉદ્ઘાત કહે છે. તેમાં બાર માત્રા પર્યન્ત પ્રાણનું સ્થિર રહેવું, એ પ્રથમ ઉદ્ઘાત; ચોવીસ માત્રાપર્યન્ત સ્થિર રહેવું એ દ્વિતીય ઉદ્ઘાત અને છત્રીસ માત્રાપર્યન્ત સ્થિર રહેવું, એ તૃતીય ઉદ્ઘાત છે. એ પ્રમાણે ૧૨ માત્રા પરિમિત મૃદુ, ચોવીસ માત્રા પરિમિત મધ્ય અને ૩૬ માત્રા પરિમિત તીવ્ર પ્રાણાયામ જાણવો.

૩–માત્રાના પરિમાણથી વૃદ્ધિને પામેલો કાળદષ્ટ કહેવાય છે અને શ્વાસપ્રશ્વાસના પરિમાણથી વૃદ્ધિ પામેલો સંખ્યાપરિદષ્ટ કહેવાય છે, એટલો ભેદ છે.

૪–નાસિકાના અગ્રભાગથી બહાર બાર આંગળ સુધી ગમનશીલ અને આંતર નાભિચક્ર વા પાદતલપર્યન્ત ગમનશીલ જે છત્રીસ માત્રાપર્યન્ત સ્થિર પ્રાણાયામ, તે દીર્ઘસૂક્ષ્મ કહેવાય છે.

સૂત્રાર્થઃ-(बाह्यविषय) રેચક પ્રાણાયામ (आभ्यन्तरविषय) પૂરક પ્રાણાયામ, એ બંનેનો (आक्षेपी) આક્ષેપ કરવાવાળો, અર્થાત્ એ બંનેની અપેક્ષાથી રહિત જે કેવળ કુંભક તે (चतुर्थः) ચોથો પ્રાણાયામ છે.

અર્થાત્-કુંભક બે પ્રકારનો છે. એક "સહિત" અને બીજો "કેવળ" તેમાં[1] પૂરક પ્રાણાયામ પછી કે રેચક પ્રાણાયામ પછી જે પ્રાણનિરોધ થાય છે, તે "સહિત"-કુંભક છે, અને રેચન તથા પૂરણ વિના પ્રથમ એકવારે જ નિરોધ કરવો, તે "કેવળ"કુંભક છે.[2]

એ બંનેમાંથી પહેલો કુંભક બાહ્યાભ્યન્તર વિષય રેચક પૂરકની અપેક્ષાવાળો છે અને બીજો કુંભક બાહ્ય વિષય રેચક અને આંતર વિષય પૂરકની અપેક્ષા ન કરવાથી તે બંનેનો અનપેક્ષી (અપેક્ષા વિનાનો) છે, તે ચતુર્થ પ્રાણાયામ છે.

યદ્વા 'આક્ષેપી' નામ વિચારપૂર્વક વર્ત્તવાવાળાનું છે, તેથી પૂરકનો જે નાસાના અગ્રભાગથી માંડીને ૧૨ આંગળ પર્યન્તનો બાહ્યવિષય અને રેચકનો જે નાભિચક્ર પર્યન્તનો આભ્યંતર વિષય, એ બંનેનો વિચારપૂર્વક જે કુંભક, તે ચતુર્થ પ્રાણાયામ છે. અર્થાત્-જે કુંભકનો પૂરક રેચક સંબંધી દેશ કાળ સંખ્યાની પરીક્ષા ન કરતાં એકદમ જ આરંભ કરાય છે, તે તૃતીય કુંભક છે અને જે પૂરક રેચકની તથા પોતાની પણ પરીક્ષાદ્વારા આરંભ કરાય છે, તે ચતુર્થકુંભક છે. તે કુંભક થવો કાંઈ સહજ નથી, પરંતુ અભ્યાસદ્વારા પૂર્વપૂર્વ અવસ્થાને સંપાદન કરી ક્રમે ક્રમે મેળવાય છે. કેમકે જ્યાં સૂધી પૂર્વ ભૂમિનો વિજય નહિ કરે ત્યાં સૂધી ઉત્તર ભૂમિની પ્રાપ્તિ થવી અસંભવિત છે, એમ જાણવું. ॥ ૫૧ ॥

આ પ્રાણાયામનું અવાંતર[3] પ્રયોજન કહે છેઃ--

सू-ततः क्षीयते प्रकाशाऽऽवरणम् ॥ ५२ ॥

સૂત્રાર્થઃ-(ततः) પ્રાણાયામના અનુષ્ઠાનથી (प्रकाशाऽऽवरणम्) પ્રકાશ

૧-"आरेच्याऽऽपूर्य वा कुर्यात् स हि सहितकुम्भकः" એ સ્મૃતિનું અનુસરણ કરી સહિતકુંભકનું લક્ષણ કહે છે, "તેમાં" ઇત્યાદિથી.

૨-"रेचकं पूरकं त्यक्त्वा सुखं यद् वायुधारणं, प्राणयामोऽयमित्युक्तः स हि केवलकुंभकः" એ વસિષ્ઠવચન, તેમાં પ્રમાણ છે.

૩-પ્રાણાયામનું મુખ્ય ફળ તો અગ્રિમ સૂત્રમાં કહેવા પ્રમાણે ચિત્તની સ્થિરતા છે, પરંતુ સ્થિરતાનું ઉપયોગી જે મળની નિવૃત્તિરૂપ અવાન્તર ફળ, તે પ્રથમ કહે છે.

સ્વરૂપ વિવેક જ્ઞાનને આવરણ કરવાવાળું (આચ્છાદક) જે અજ્ઞાન, તે (क्षीयते) ક્ષય થઈ જાય છે.

બુદ્ધિમાં રહેલા વિવેક જ્ઞાનરૂપ પ્રકાશનાં આચ્છાદક જે અવિદ્યા વગેરે ક્લેશ તથા અજ્ઞાનજન્ય પાપ તે પ્રકાશાનું આવરણ કરનારાં છે. એ પ્રમાણે જ પંચશિખાચાર્યજીએ કહેલું છે– **"महामोहमयेनेन्द्रजालेन प्रकाशशीलं सत्त्वमावृत्य तदेवाऽकार्ये नियुंक्ते' इति.**[1]

પ્રકાશાના આવરણરૂપ અને સંસારના કારણભૂત અજ્ઞાનજન્ય પાપ પ્રાણાયામના અભ્યાસથી પ્રતિક્ષણ દુર્બળ થઈ જાય છે, એવી જ રીતે આગમજ્ઞાતા પંચ શિખાચાર્યજીએ કહેલું છે કે–જેમ **"तपो न परं प्राणायामात् ततो विशुद्धिर्मलानां दीप्तिश्च ज्ञानस्य**[2]**"** મનુ ભગવાને પણ **"प्राणायामैर्दहेद् दोषान्**[3]**"** ઇત્યાદિથી પ્રાણાયામની પ્રશંસા કરી છે. ॥ ૫૨ ॥

હવે પ્રાણાયામનું મુખ્ય ફળ કહે છે:—

सू–धारणासु च योग्यता मनसः ॥ ५३ ॥

સૂત્રાર્થઃ–પ્રાણાયામના અભ્યાસથી (**मनसः धारणासु योग्यता**) મનની હવે પછી કહેવાની ધારણામાં ચોગ્યતા થાય છે.

અર્થાત્–પ્રાણાયામ, મનને સ્થિર કરીને ધારણામાં સમર્થ કરે છે. મનની સ્થિરતામાં પ્રાણાયામ કારણ છે, એ વાત " **प्रच्छर्दनाविधारणाभ्यां वा प्राणस्य**[4] એ સૂત્રમાં સ્પષ્ટ છે. ૫૩

૧–ઈંદ્રજાળ તુલ્ય જે મહામોહસંજ્ઞક રાગ, તે દ્વારા પ્રકાશશીળ ચિત્તને આવૃત (આચ્છાદિત) કરી અવિદ્યાજન્ય અધર્મ જ પુરુષને અકાર્ય હિંસાદિમાં પ્રવૃત્ત કરે છે.

૨–પ્રાણાયામથી શ્રેષ્ઠ બીજું કોઈ તપ નથી, કેમકે એ પ્રાણાયામથી જ રાગાદિ મળોની વિશુદ્ધિ (નિવૃત્તિ) થઈ જાય છે તથા જ્ઞાનની દીપ્તિ (અભિવ્યક્તિ) થાય છે.

૩–"**प्राणायामैर्दहेद् दोषान् धारणाभिश्च किल्बिषम्, प्रत्याहारेण संसर्गान् ध्यानेनानीश्वरान् गुणान्**" પ્રાણાયામદ્વારા રાગાદિ દોષોનો દાહ કરવો, ધારણાદ્વારા કિલ્બિષ (પાપ)નો નાશ કરવો, પ્રત્યાહારદ્વારા ઇંદ્રિયોનો વિષયની સાથેનો સંસર્ગ નિવૃત્ત કરવો અને ધ્યાનદ્વારા કામલોભાદિ અનીશ્વર ગુણોનો નાશ કરવો.

૪–સમાધિપાદ સૂત્ર ૩૪ જુઓ.

હવે ક્રમ પ્રમાણે પ્રત્યાહારનું લક્ષણ કહે છે:-

सू-स्वविषयाऽसम्प्रयोगे चित्तस्य स्वरूपाऽनुकार इवेन्द्रियाणां प्रत्याहारः ॥ ५४ ॥

સૂત્રાર્થઃ-(इन्द्रियाणां) ઇંદ્રિયોનો (स्वविषयाऽसम्प्रययोगे) પોતપોતાના વિષયોના સંગે સન્નિકર્ષનો અભાવ હોવાથી (चित्तस्यस्वरूपाऽनुकार इव) ચિત્તના રૂપ જેવી ઇંદ્રિયોની જે અવસ્થિતિ થવી, તેનું નામ પ્રત્યાહાર છે.

અર્થાત્-પ્રાણાયામથી સ્થિર થયેલા ચિત્તનો વિષયોની સાથે જે અસંપ્રયોગ (સંયોગ ન થવો તેના) અને તેનાથી આધીન ઇંદ્રિયોનો પણ વિષયોની સાથે સંયોગ ન થવો, તે ઇંદ્રિયોનો ચિત્ત સ્વરૂપાનુકાર કહેવાય છે[1]. અને તે જ પ્રત્યાહાર છે.

એ પ્રમાણે ચિત્ત નિરુદ્ધ થવાથી ઇંદ્રિયો પોતેજ સ્થિર થઈ જાય છે, તેથી ઇંદ્રિયોના નિરોધને અર્થે બીજા કોઈ ઉપાયની અપેક્ષા રહેતી નથી.

ભાવ એ છે કે-જેમ ઉડતા મધુકરરાજને દેખીને બીજી સઘળી મધુ મક્ષિકાઓ તેની પછવાડે જ ઉડી જાય છે, અને મધુકરરાજ બેસે છે કે સઘળી બેસી જાય છે; તેમ ઇંદ્રિયો પણ ચિત્તને અધીન હોવાથી ચિત્તના વિષયોન્મુખ થવાથી પોતે વિષયાસક્ત અને ચિત્ત, નિરુદ્ધ થવાથી તે સઘળી ઇંદ્રિયો નિરુદ્ધ થઈ જાય છે. આ ચિત્તના નિરોધથી બીજી ઇંદ્રિયોનો જે સ્વતઃ નિરોધ થઈ જવો, તે જ પ્રત્યાહાર છે. ॥ ૫૪ ॥

હવે તે પ્રત્યાહારનું ફળ કહે છે:-

सू-ततः परमा वश्यतेन्द्रियाणाम् ॥ ५५ ॥

સૂત્રાર્થઃ-(ततः) તે પ્રત્યાહારથી (इन्द्रियाणाम्) ઇંદ્રિયોની (परमा) ઉત્કૃષ્ટ (वश्यता) વશીકારતા થઈ જાય છે.

વશ્યતાનો અર્થ ઇંદ્રિયજય, એવો છે. અહીં[2] શબ્દાદિ વિષયો વિષયક આસક્તિના અભાવનું નામ ઇંદ્રિયવિજય છે. કોઈ એમ કહે છે કે શાસ્ત્રથી અવિરુદ્ધ વિષયોનું સેવન અને નિષિદ્ધ વિષયોનો પરિત્યાગ,એ જ

૧-ઇંદ્રિયોનો સ્વભાવ ચિત્તને અનુસરવું એ છે, કાંઈ તેના સ્વરૂપનો નાશ થતો નથી. તેના બોધન અર્થે કહેલું છે કે " अनुकार इव " એ પ્રમાણે

૨-પરમાવશ્યતાના નિરૂપણ અર્થે પહેલાં અન્ય ઉક્ત અપરવશ્યતા કહે છે, "અહીં" ઇત્યાદિથી.

ઇંદ્રિયજય છે; અને કોઈ એમ કહે કે, પોતાની ઇચ્છાથી જ[1] વિષયોની સાથે ઇંદ્રિયોનો સંયોગ થવો, તે ઇંદ્રિયજય છે; અને કોઈ આમ કહે છે કે, રાગદ્વેષના અભાવપૂર્વક સુખદુઃખ શૂન્ય શબ્દાદિનું જ્ઞાન થવું, તે ઇંદ્રિયજય છે.

ચિત્ત એકાગ્ર થવાથી એકદમ ઇંદ્રિયોની શબ્દાદિ વિષયોમાં પ્રવૃત્તિનો અભાવ થઈ જવો, એ જ ઇંદ્રિયજયરૂપ વશ્યતા છે, એવો જૈગીષવ્ય યોગીનો મત છે, અને એ જ સૂત્રકારસંમત પરમાવશ્યતા છે.

એ પ્રમાણે ચિત્તનો નિરોધ થવાથી બીજી ઇંદ્રિયોનો પ્રયત્નની અપેક્ષા વિના જ નિરોધ થઈ જવો, એ જ પરમાવશ્યતા છે, અને એ જ પ્રત્યાહારનું ફળ છે, એ નિષ્પન્ન થાય છે.

ભાવ એ છે કે, જેમ યતમાન નામના વૈરાગ્યનો લાભ થયા છતાં પણ અન્ય ઇંદ્રિયજયને માટે એકેન્દ્રિય સંજ્ઞાવાળા વૈરાગ્યની અપેક્ષા રહે છે; તેમ પ્રાણાયામ એટલે ચિત્તનિરોધ હોવાથી બાહ્યઇંદ્રિયોના નિરોધને માટે અન્ય યત્નની અપેક્ષા રહેતી નથી, પરંતુ સ્વતઃ પરમાવશ્યતા થઈ જાય છે. ॥ ૫૫ ॥

दोहा—क्रियायोगपथ क्लेश करि, कर्मफलादि[2] बखाणि।
योगअङ्ग बाहिरङ्ग करि, कर्यु पाद अवसान ॥१॥

इति श्रीमत्परमहंसपूज्यपादश्रीसत्प्रकाशशिष्य निखिलशास्त्रनिष्णात स्वामी बालराम उदासीनोद्भासिते पातञ्जलदर्शनप्रकाशे साधनपादो द्वितीयः।

૧–અર્થાત્–પોતાના વિષયોને અધીન ન થઈ વિષયોને પોતાને અધીન રાખવા.

૨–"આદિ" શબ્દથી પરિણામ દુઃખતાદિ અને વ્યૂહોનું ગ્રહણ કરવું. અહીં પહેલા સૂત્રથી ક્રિયાયોગ, બીજા સૂત્રથી ક્રિયાયોગનું ફળ, ત્રીજા સૂત્રથી નવમા સૂત્રપર્યન્ત ક્લેશોનું વિવરણ કર્યું. પછી બે સૂત્રોથી ક્લેશોની નિવૃત્તિનો ઉપાય કહ્યો. હવે પછી ત્રણ સૂત્રથી ધર્માધર્મને ક્લેશમૂલક કહીને કર્મોનું ફળ કહ્યું. તે પછી એક સૂત્રથી વિષયભોગને દુઃખરૂપ કહ્યા. ત્યારપછી ૨૭ સૂત્રપર્યન્ત ચાર વ્યૂહોનું નિરૂપણ કરીને એક સૂત્રથી વિવેકખ્યાતિનો ઉપાય કહ્યો, અને પછી પાદસમાપ્તિપર્યન્ત સાંગોપાંગ યોગનાં બહિરંગ અંગોનું નિરૂપણ કર્યું. આ પાદમાં સાધનનું નિરૂપણ પ્રધાન છે, તેથી તેનું નામ સાધનપાદ છે.

इति श्रीयतिवर आत्मस्वरूप उदासीन समुद्दीपितं पातञ्जलदर्शनप्रकाश टिप्पणनो गुजराती अनुवादवाळो साधनपाद समाप्त ॥

॥ पातंजलदर्शनप्रकाश ॥

विभूतिपादस्तृतीयः ॥ ३ ॥

ॐ नमोऽन्तर्यामिणे ।

दोहा–जिज्ञासु विश्वास हित[१], योग विभूतिपाद ।
करे प्रकाश सुयोगीवर, उर धरीँ हरिहरपाद ॥१॥

પહેલા અને બીજા પાદથી યથાક્રમ સમાધિ અને સમાધિનાં સાધનોનું નિરૂપણ કર્યું. હવે સમાધિનાં સાધનોના અનુષ્ઠાનમાં મનુષ્યની વિશ્વાસપૂર્વક દૃઢ પ્રવૃત્તિ થાય, તેટલા માટે ત્રીજા વિભૂતિપાદનો આરંભ કરાય છે.

તેમાં હવે પછી કહેવાની વિભૂતિઓ સંયમવડે સાધ્ય હોવાથી અને

---

[१]सोरठा–उदासीन कविभूप, शिक्षा–विद्याप्रद गुरु ।
नमीने आतमरूप, पाद तृतीय विवर्ण हित ॥ १ ॥

१–વિભૂતિ નામ ઐશ્વર્યનું છે. અર્થાત્–યોગબળથી બીજાનો અભિપ્રાય જાણી લેવો; પશુપક્ષી વગેરે સઘળાં ભૂતોની વાણી સમજી લેવી; બેઠાં બેઠાં ચંદ્રમા વગેરેને આંગળીથી સ્પર્શ કરવો, જળની માફક પૃથ્વીમાં ઉડવું, પૃથ્વીની માફક જળ ઉપર ચાલ્યા જવું, વગેરે સામર્થ્યનું નામ વિભૂતિ છે. આ પાદમાં તે ઐશ્વર્યનું સ્વરૂપ સાધન સહિત નિરૂપણ કર્યું છે, તેથી તેનું નામ વિભૂતિપાદ છે.

યદ્યપિ આ કૈવલ્ય આપનારા શાસ્ત્રમાં એ વિભૂતિઓના નિરૂપણનો કાંઈ ઉપયોગ નથી, તથાપિ જ્યારે જિજ્ઞાસુને એ નિશ્ચય થઈ જશે કે "જો સ્થૂલ પદાર્થવિષયક સમાધિ કરવાથી તે તે ઐશ્વર્ય અવશ્ય પ્રાપ્ત થઈ જાય છે, તો પુરુષવિષયક સમાધિ કરવાથી પુરુષનો સાક્ષાત્કાર થવો કાંઈ દુર્ઘટ નથી" ત્યારે દૃઢ વિશ્વાસપૂર્વક સાધનોના અનુષ્ઠાનમાં જિજ્ઞાસુની અનાયાસે જ પ્રવૃત્તિ થશે. એ તાત્પર્યથી જ આ વિભૂતિપાદનો આરંભ કર્યો છે, કાંઈ મુક્તિનો સહાયક જાણીને નહિ, એ જ કહે છે કે–"जिज्ञासु विश्वास हित" ઇતિ.

સંયમ, ધારણા, ધ્યાન, સમાધિ એ ત્રણના સમુદાયરૂપ હોવાથી પ્રથમ વિભૂતિના સાધનભૂત ધારણાદિ ત્રણનું નિરૂપણ કરે છે.

યદ્યપિ ધારણાદિ ત્રણ યોગનાં સાધન હોવાથી, સાધનપાદમાં જ એ ત્રણનું નિરૂપણ કરવું ઉચિત હતું, તથાપિ "યમ વગેરે પાંચ બહિરંગ સાધનોથી ધારણાદિ ત્રણ અંતરંગ સાધન છે," એ વિશેષ હકીકતના બોધને માટે સાધનપાદમાં તેનું નિરૂપણ ન કરતાં ભિન્ન પ્રકરણમાં નિરૂપણ કર્યું છે, એમ જાણવું.

એથી જ ભાષ્યકારે "**उक्तानि पंच बहिरङ्गाणि साधनानि धारणा वक्तव्या**" એ વાક્યથી યમ વગેરેને બહિરંગ અને ધારણાદિને અંતરંગ કહેલાં છે.

તેમાં ધારણાદિ ત્રણેમાંથી પૂર્વપૂર્વ, ઉત્તર ઉત્તરનું કારણ હોવાથી પ્રથમ ધારણાનું લક્ષણ કહે છે:—

सू–देशबन्धश्चित्तस्य धारणा ॥ १ ॥

સૂત્રાર્થ:-(**चित्तस्य**) ચિત્તનો જે (**देशबंधः**) કોઈ દેશવિશેષની સાથે સંબંધ તે (**धारणा**) ધારણા નામક યોગનું અંગ છે.

અર્થાત્–નાભિચક્ર, હૃદયકમલ, મસ્તકમાં વિદ્યમાન જ્યોતિ, નાસિકાનો અગ્રભાગ, જિહ્વાનો અગ્રભાગ, તાલુ ઈત્યાદિક આધ્યાત્મિક દેશરૂપ વિષયોમાં તથા હિરણ્યગર્ભ, ઈંદ્રિ આદિક બાહ્ય વિષયોમાં ચિત્તનો વૃત્તિદ્વારા જે સંબંધ છે, તેનું નામ ધારણા કહેવાય છે.[1]

ભાવ એ છે કે–સ્થૂલ વા સૂક્ષ્મ, બાહ્ય વા આભ્યન્તર કોઈ ને કોઈ વિષયમાં ચિત્તને બાંધી દેવું, અર્થાત્ લગાવી દેવું, તેનું નામ ધારણા છે.

વિષ્ણુપુરાણમાં પણ "**प्राणायामेन पवनं प्रत्याहारेण चेन्द्रियं, वशीकृत्य ततः कुर्याच्चित्तस्थानं शुभाश्रये**" એ શ્લોકથી પ્રાણાયામ અને પ્રત્યાહારથી

૧–સૂત્રમાં અને ભાષ્યમાં હૃદયાદિ દેશ વિષયક ચિત્તની સ્થિતિને જ ધારણા કહેલી છે, તથાપિ એ દેશરૂપ આધારોમાં બ્રહ્મની ભાવનાવડે તે બ્રહ્મમાં ચિત્તની સ્થિતિને ધારણા જાણવી. તેથી જ "प्राणायामैर्द्वादशभिर्यावत्कालः कृतो भवेत्, स तावत्कालपर्यन्तं मनो ब्रह्मणि धारयेद्" ઈત્યાદિ ગરુડપુરાણના વાક્યમાં બ્રહ્મમાં કરેલી ચિત્તની સ્થિતિને ધારણા કહી છે. તેનો અર્થ એ છે કે–બાર પ્રાણાયામ કરતાં જેટલો વખત લાગે છે, તેટલા સમય પર્યન્ત બ્રહ્મમાં ચિત્તને ધારણ કરવું.

શુભ આશ્રયમાં[1] ચિત્તની સ્થિતિ કરીને ચતુર્ભુજ આદિ વિષ્ણુ ભગવાનની મૂર્ત્તિમાં ચિત્ત સ્થિર કરવું, તેને ધારણા કહેલી છે. ॥ ૧ ॥

એ પ્રકારે ધારણાનું લક્ષણ કહ્યું; હવે ધારણાવડે સાધ્ય ધ્યાનનું લક્ષણ કહે છેઃ–

सू–तत्र प्रत्ययैकतानता ध्यानम् ॥ २ ॥

સૂત્રાર્થઃ–(**तत्र**) તે પૂર્વોક્ત દેશ (વિષય) માં જે (**प्रत्ययैकतानता**) ધ્યેયાકાર ચિત્તવૃત્તિની એકાગ્રતા, તેનું નામ (**ध्यानम्**) ધ્યાન કહેવાય છે.

અર્થાત્–જે વિષયમાં ધારણાવડે ચિત્તવૃત્તિ લગાડેલી હોય, તે વિષયમાં વિજાતીય વૃત્તિપ્રવાહથી રહિત સજાતીય વૃત્તિનો નિરંતર પ્રવાહ કરી દેવો,[2] તે ધ્યાન છે. ॥ ૨ ॥

હવે ક્રમપ્રાપ્ત ધ્યાનસાધ્ય સમાધિનું લક્ષણ કહે છેઃ–

सू–तदेवाऽर्थमात्रनिर्भासं स्वरूपशून्यमिव समाधिः ॥ ३ ॥

સૂત્રાર્થઃ–(**तद्एव**) તે પૂર્વોક્ત ધ્યાન જ (**समाधिः**) સમાધિ કહેવાય છે. કેવું ધ્યાન સમાધિ કહેવાય છે, તે વિષે કહે છે કે, (**अर्थमात्रनिर्भासम्**) (અર્થમાત્ર) ધ્યેય સ્વરૂપ માત્રનું જ (નિર્ભાસં) નિરંતર જેમાં ભાન થાય છે એવું તથા (**स्वरूपशून्यम्**) પોતાના ધ્યાનાકાર રૂપથી શૂન્ય (રહિત) હોય તે.

અર્થાત્ પૂર્વોક્ત ધ્યાન જ જ્યારે અભ્યાસના બળથી પોતાના ધ્યાનાકારપણાને છોડીને કેવળ ધ્યેયસ્વરૂપ માત્રથી સ્થિતિ કરીને પ્રકાશિત થાય, ત્યારે તેને સમાધિ જાણવી.[3]

ધ્યાન અને સમાધિમાં એટલો તફાવત છે કે, ધ્યાનમાં ધ્યેય તથા ધ્યાનના ભેદનું ભાન થાય છે, અને સમાધિમાં ધ્યેયના સ્વરૂપમાં અનુગત થયેલા ધ્યાનનું ધ્યેયથી અભિન્ન ભાન થાય છે. અર્થાત્

૧–શુભ આશ્રય નામ શાસ્ત્રોક્ત શ્રેષ્ઠ આશ્રયનું છે. અર્થાત્ જે દેવ વા પરમાત્માના રૂપમાં ચિત્તની અધિક રુચિ હોય, તેમાં ચિત્તને સ્થિર કરવું.

૨–જે ધ્યાનનો વિષય છે, અર્થાત્, જેનું ધ્યાન કરાય છે, તે વિષયક જ ચિત્તવૃત્તિનો પ્રવાહ રહે, પણ અન્ય વિષયક નહિ, તે વિજાતીય પ્રત્યયથી રહિત સજાતીય પ્રત્યયપ્રવાહ કહેવાય છે.

૩–અર્થાત્–જેમ જળમાં પડેલું લવણ જળાકાર થઈ જાય છે, તેમ જ્યારે ધ્યેયવિષયક ધ્યાન પણ ધ્યેયસ્વરૂપ જ થઈ જાય ત્યારે તેને સમાધિ જાણવી.

ધ્યાનમાં ત્રિપુટીનું[1] ભાન હોય છે અને સમાધિમાં કેવળ ધ્યેયનું[2] ભાન હોય છે.

યદ્યપિ ધ્યાનમાં પણ ધ્યેયનું ભાન હોય છે, તથાપિ ધ્યેયમાત્રનું ભાન હોતું નથી, તે સૂચવવા માટે સૂત્રમાં (अर्थमात्रनिर्भासम) એમાં "मात्र" પદ આપેલું છે. જો સમાધિમાં ધ્યાન, સ્વરૂપથી રહિત જ છે, તો પછી ધ્યેયનો પ્રકાશ શાથી થશે? કેમકે ધ્યાનને આધીન જ ધ્યેયનું ભાન હોય છે, સ્વાભાવિક નહિ. એ શંકાના નિવારણ અર્થે (स्वरूपशून्यमिव) એમાં "इव" પદ આપ્યું છે.

અર્થાત્-સર્વથા ધ્યાનનો અભાવ નથી કિંતુ ધ્યેયથી ભિન્નરૂપતાવડે ભાન ન હોવાથી સ્વરૂપશૂન્યની પેઠે છે, પરંતુ સ્વરૂપશૂન્ય જ નથી. ॥ ૩ ॥

હવે લાઘવ સારુ ધારણા, ધ્યાન, સમાધિ એ ત્રણેની તાંત્રિકી[3] પરિભાષા કહે છે:-

सू-त्रयमेकत्र संयमः ॥ ४ ॥

૧-ધ્યાન કરવાવાળું ચિત્ત, જે ચિત્તવૃત્તિથી ધ્યેયનું ભાન થાય છે તે, તથા જે ધ્યાનનો વિષય છે, એ ત્રણે ધ્યાતા, ધ્યાન, ધ્યેયરૂપ પુટ (આકાર) છે, તેનો સમાહાર (એકઠું થવું) તેને ત્રિપુટી કહે છે.

૨-આ સ્થળે એટલું વિશેષ એ પણ જાણી લેવું કે, પાંચ ઘડી સૂધી ધ્યેયવિષયક ચિત્તની વૃત્તિ લગાડી રાખવી, તે ધારણા છે; સાઠ ઘડી સૂધી એકતાનથી ધ્યેયનું ચિંતન કરવું, તેનું નામ ધ્યાન છે; અને બાર દિવસ પર્યન્ત નિરંતર ધ્યાનને ધ્યેયાકાર કરી દેવું, તેનું નામ સમાધિ છે. એ પ્રમાણે જ સ્કંધપુરાણમાં કહ્યું છે કે-"धारणा पंचनाडीका ध्यानं स्यात् षष्टिनाडिकं। दिनद्वादशकेनैव समाधिरभिधीयते" ઇતિ.

૩-તંત્ર નામ યોગ શાસ્ત્રનું છે અને તેમાં કહેલી પરિભાષા તાંત્રિકી કહેવાય છે. સંક્ષેપથી પદાર્થજ્ઞાનને માટે શાસ્ત્રકારોના જે સંકેત, તેનું નામ પરિભાષા છે. આ પાદમાં આગળ કહેશે કે, ત્રણે પરિણામોમાં ધારણા, ધ્યાન, સમાધિ કરવાથી અતીત, અનાગતનું જ્ઞાન થાય છે; અને શબ્દ, તથા અર્થના જ્ઞાનની ધારણાદિથી સઘળા ભૂતોની વાણીનું જ્ઞાન થાય છે, ઇત્યાદિ. યદિ આ સૂત્રોમાં સર્વત્ર જ ધારણા, ધ્યાન, સમાધિ લખવામાં આવી હોત તો વિસ્તાર થઈ જાત, તેથી સંક્ષેપમાં કરવાના હેતુથી એ ત્રણેમાં સંયમ પદનો સંકેત કર્યો છે. એવી રીતે જ્યાં જ્યાં હવે પછી સંયમપદ આવશે, ત્યાં ત્યાં એ ત્રણેનું જ્ઞાન થઈ જશે.

સૂત્રાર્થઃ-(एकत्र) એકમાં જે (त्रयम) ધારણા, ધ્યાન, સમાધિ એ ત્રણ, (संयमः) સંયમ કહેવાય છે.

અર્થાત્-ધારણા, ધ્યાન, સમાધિ એ ત્રણના સમુદાયને યોગશાસ્ત્રની પરિભાષામાં સંયમ કહે છે. જે વિષયમાં પ્રથમ ધારણા કરી હોય, તે જ વિષયમાં ધ્યાન અને સમાધિ થાય, ત્યારે સંયમ જાણવો અને જ્યારે અન્યની ધારણા કરી હોય તથા અન્યનું ધ્યાન કે સમાધિ કરવામાં આવે તો તે સંયમ કહેવાય નહિ. તે જણાવવા માટે સૂત્રકારે "एकत्र" એવો શબ્દ કહેલો છે. ॥૪॥

હવે એ સંયમના અભ્યાસનું ફળ કહે છેઃ-

सू-तज्जयात्प्रज्ञाऽऽलोकः ॥ ५ ॥

સૂત્રાર્થઃ-(तज्जयात्) તે સંયમના જયથી (प्रज्ञाऽऽलोक) સમાધિની પ્રજ્ઞાનો આલોક (નિર્મળતા) થાય છે.

અભ્યાસના બળથી સંયમનો દૃઢ પરિપાક થઈ જવો, તેનું નામ સંયમજય છે, અને અન્ય વિજાતીય પ્રત્યયોના અભાવપૂર્વક કેવળ ધ્યેયમાં શુદ્ધ સાત્ત્વિક પ્રવાહરૂપથી બુદ્ધિનું સ્થિર થવું, તે પ્રજ્ઞાલોક છે.

અર્થાત્-જેમ જેમ અભ્યાસથી સંયમ સ્થિરપદ (દૃઢ) થતો જશે, તેમ તેમ સમાધિમાં હોવાવાળી બુદ્ધિ પણ નિર્મળ થતી જશે. એ પ્રમાણે સમાધિપ્રજ્ઞાને વિમલકરવામાટે જિજ્ઞાસુએ, સંયમનો અભ્યાસ કરવો, એ ફલિત થયું. ॥૫॥

હવે જે વિષયમાં સંયમનો વિનિયોગ[1] કરવાથી પૂર્વોક્ત પ્રજ્ઞાલોક ફળ થાય છે, તે વિષય કહે છેઃ-

सू-तस्य भूमिषु विनियोगः ॥ ६ ॥

સૂત્રાર્થઃ-(तस्य) તે સંયમનો (भूमिषु) સવિતર્ક આદિ યોગની અવસ્થાઓમાં (विनियोगः) વિનિયોગ કરવો.

અર્થાત્-પ્રથમ પાદમાં કહેલી જે સ્થૂલવિષયસંબંધી સવિતર્ક-નિર્વિતર્ક સમાપત્તિ અને સૂક્ષ્મ વિષયસંબંધી સવિચાર-નિર્વિચાર સમાપત્તિ નામની યોગભૂમિકાઓ છે, તેમાં સંયમ કરવાથી પ્રજ્ઞાલોક થાય છે.

ભાવ એ છે કે, પ્રથમ સ્થૂલ ભૂતોનો સંયમ કરવો. તે પછી જ્યારે સ્થૂલ પદાર્થનો સવિતર્ક સમાધિ સ્થિર થઈ જાય, ત્યારે વશીભૂત ન

૧-વિનિયોગ નામ સંબંધનું છે.

થયેલી એવી જે નિર્વિતર્ક સમાપત્તિ, તેમાં સંયમ કરવો. તે પછી સવિચાર અને નિર્વિચારમાં સંયમ કરવો. એ પ્રમાણે જે જે ભૂમિકાનો જય થતો જાય, તેથી ઉત્તર ઉત્તર ભૂમિકાનો સંયમ કરવો.

અર્થાત્–જ્યાંસૂધી અધરભૂમિ[1] સવિતર્ક નામની પ્રથમ યોગભૂમિકાના સંયમદ્વારા વશ ન થાય ત્યાંસૂધી ઉત્તરભૂમિમાં સંયમ કરવાનો ઉદ્યોગ ન કરવો. કેમકે પ્રથમ ભૂમિનો જય કર્યા વિના મધ્યભૂમિકાનું ઉલ્લંઘન કરીને અંતની ભૂમિકામાં સંયમનો લાભ થઈ જાય, એ કદી પણ સંભવિત નથી. માટે ક્રમ પ્રમાણે જ સંયમ કરવો. ક્રમપૂર્વક સંયમ ન કરવાથી ઉત્તર ભૂમિનો લાભ થતો નથી અને તેથી પ્રજ્ઞાલોક થાતો નથી.

પુરાણોમાં પણ પ્રથમ શંખ ચક્ર વગેરે આયુધવિશિષ્ટ પરમાત્માના ધ્યાનનું વિધાન કરીને પછી જ્યારે તે ધ્યાનની સિદ્ધિ થાય, ત્યારે શંખચક્રાદિ આયુધરહિત મૂર્તિનું ધ્યાન ધરવાનું કહ્યું છે. તે પછી કેયૂરકિરીટાદિના પરિત્યાગદ્વારા શરીરમાત્રના ધ્યાનપૂર્વક ઉત્તમ મુખાદિ અવયવ પર્યન્ત ઉત્તર ઉત્તર સૂક્ષ્મ વિષયનું ધ્યાન કરવાનું કહ્યું છે. તે પછી "सोहं" એ ભાવનાનો વિધિ કહ્યો છે. પછી તેનો પણ ત્યાગ કરી "अहंअहं" એવી અતિ સૂક્ષ્મ ભાવનાનું વિધાન કરેલું છે.[2] તેથી ક્રમેકરી સંયમ કરવો એ સિદ્ધ થાય છે. પરંતુ એટલું વિશેષ એ પણ જાણી લેવું, કે જો પુણ્ય પરિપાકથી વા મહાત્માઓની કૃપાથી અથવા ભક્તિથી

૧–અધરભૂમિ નામ ગ્રાહ્યસમાપત્તિનું છે. મધ્યભૂમિ નામ ગ્રહણસમાપત્તિનું છે અને પ્રાન્તભૂમિ નામ ગ્રહીતૃસમાપત્તિનું છે. તેમનેજ યથાક્રમથી પ્રથમ, મધ્યમ, ઉત્તમભૂમિકા કહે છે. એ સમાપત્તિઓનું નિરૂપણ પ્રથમ પાદના ૪૧ થી ૪૬ મા સૂત્ર સૂધીમાં કરેલું છે.

૨–વિષ્ણુપુરાણમાં પ્રથમ ભૂષણવિશિષ્ટ ચતુર્ભુજાદિના ધ્યાનનું વિધાન કરી તે પછી—

"ततः शङ्खगदाचक्रशार्ङ्गादिरहितं बुधः ।
चिंतयेद् भगवद्रूपं प्रशान्तं साक्षसूत्रकम् ॥ १ ॥
यदा च धारणा तस्मिन्नवस्थानवती ततः ।
किरीटकेयूरमुखैर्भूषणै रहितं स्मरेत् ॥ २ ॥
तदैकावयवं देवं सोहं चेति पुनर्बुधः ।
कुर्यात् ततोह्यहमितिप्रणिधानपरो भवेद् ॥ ३ ॥

ઇત્યાદિ શ્લોકોથી એ બધું નિરૂપણ કરેલું છે.

સંયમ વિના જ ઉત્તર ભૂમિકામાં ચિત્તની સ્થિતિનો લાભ થઈ જાય, તો પૂર્વ (પહેલી) ભૂમિકાઓમાં સંયમ કરવાનું કાંઈ પ્રયોજન નથી. કેમકે પૂર્વભૂમિમાં સંયમ કરવાનું ફળ જે ઉત્તર ભૂમિનો લાભ હતો, તે તેને ઈશ્વરની કૃપાથી પ્રાપ્ત થયો છે.

કદી એમ કહો કે, અમે કેવી રીતે જાણીએ કે, આ પ્રથમ ભૂમિ છે, આ દ્વિતીય છે અને આ તૃતીય છે. તો તેમાં યોગશાસ્ત્ર જ પ્રમાણ જાણવું, એવી રીતે યોગભાષ્યકારોએ કહેલું છે. જેમ "**योगेन योगो ज्ञातव्यः योगो योगात्प्रवर्तते, योऽप्रमत्तस्तु योगेन स योगे रमते चिरम्**" इति અર્થાત્ યોગબળથી આપોઆપ જ પૂર્વ અને ઉત્તર ભૂમિકાનો વિવેક થઈ જાય છે. ॥૬॥

आशंका–યમ વગેરે આઠ યોગનાં અંગોમાંથી ધારણાદિ ત્રણમાં શી વિશેષતા છે, કે જેથી બીજાં પાંચ અંગનો ત્યાગ કરીને એ ત્રણનો જ સમાધિમાં વિનિયોગ કહેલો છે?

समाधान–યમ વગેરે જે પાંચ અંગ છે, તે ધારણા ધ્યાનદ્વારા સમાધિનાં સાધન છે, કાંઈ સાક્ષાત્ સાધન નથી. તેથી તે બહિરંગ છે અને ધારણાદિ ત્રણ સમાધિનાં સાક્ષાત્ સાધન હોવાથી અંતરંગ છે, એ જ સૂત્રકાર કહે છે–

सू० त्रयमन्तरङ्गं पूर्वेभ्यः ॥७॥

સૂત્રાર્થ–(**पूर्वेभ्यः**) ધારણાદિથી પૂર્વનાં જે પાંચ યમ આદિ અંગ છે, તેનાથી (**त्रयम्**) આ ધારણાદિ ત્રણ અન્તરંગ છે.

અર્થાત્–સાધનીય જે સંપ્રજ્ઞાત સમાધિ છે, તેનો જે વિષય છે, તે જ ધારણાદિનો વિષય છે. તેથી સમાન વિષય હોવાથી ધારણાદિ ત્રણ, સંપ્રજ્ઞાત સમાધિનાં અંતરંગ સાધન છે.[1] અને યમ વગેરે સમાન વિષય ન હોવાથી બહિરંગ છે. ॥૭॥

આજે ધારણાદિ ત્રણેનું અંતરંગ સાધનત્વ કહેલું છે, તે પણ સંપ્રજ્ઞાત સમાધિને જ સિદ્ધ કરવામાં જાણવું,[2] કાંઈ નિર્બીજ અસંપ્રજ્ઞાતમાં

૧–એ બધું નીચેના બીજા' ટિપ્પણમાં સ્પષ્ટ છે.

૨–ભાવ એ છે કે–અંતરંગ બે પ્રકારનું છે. એક તો જે સાધનની પછી અવશ્ય જ સાધ્યની સિદ્ધિ થઈ જાય તે અને બીજું જે વિષય સાધ્યનો હોય તે વિષયવાળું હોય તેમાંથી આ સ્થળે પ્રથમ અંતરંગ તો સૂત્રકારને અભિમત નથી. કેમકે સાધનપાદના ૪૫ મા સૂત્રથી ઈશ્વરપ્રણિ-

નહિ. કેમકે તે સમાધિ એ ત્રણે નિરુદ્ધ થયા પછી થાય છે, એ જ આશયથી કહે છે કેઃ-

सू—तदपि बहिरङ्गं निर्बीजस्य ॥ ८ ॥

સૂત્રાર્થઃ-(तदपि) તે પૂર્વોક્ત ધારણાદિ ત્રણ અંતરંગ પણ (निर्बीजस्य) અસંપ્રજ્ઞાત સમાધિનાં બહિરંગ સાધન છે.

અર્થાત્-પરવૈરાગ્યથી જ્યારે ધારણાદિ ત્રણેનો પણ નિરોધ થઈ જાય છે, ત્યારે અસંપ્રજ્ઞાત સમાધિનો ઉદય થાય છે, તેથી પર વૈરાગ્ય જ અસંપ્રજ્ઞાતનું અંતરંગ સાધન છે, પણ ધારણાદિ ત્રણ નહિ, એ સિદ્ધ થાય છે.॥૮॥

आशंका–ગુણોનો સ્વભાવ ચંચળ છે, તેથી ગુણ, પ્રતિક્ષણ પરિણામવાળા છે, એવું અગાઉ પ્રતિપાદન કરી ચૂકયા છીએ; તો એ પ્રમાણે નિરોધ સમાધિ કાળમાં જે ચિત્ત છે, તેનું પણ ક્ષણે ક્ષણે પરિણામ અવશ્ય થતું જ હશે. કેમકે પરિણામ વિના ક્ષણભર પણ ચિત્તનું સ્થિર હોવું અસંભવિત છે. તો એ કાળમાં ચિત્તનું કેવું પરિણામ થાય છે, એ આશંકાનું સમાધાન કહે છેઃ-

सू—व्युत्थाननिरोधसंस्कारयोरभिभवप्रादुर्भावौ
निरोधक्षणचित्तान्वयो निरोधपरिणामः ॥ ९ ॥

સૂત્રાર્થઃ-(व्युत्थाननिरोधसंस्कारयोः) ક્ષિપ્ત–મૂઢ–વિક્ષિપ્ત ભૂમિ નામનું જે વ્યુત્થાન અને જ્ઞાનપ્રસાદ નામનો જે પરવૈરાગ્યરૂપ નિરોધ, એ બંનેનો જે સંસ્કાર તેના (अभिभवप्रादुर्भावौ) તિરોભાવ અને આવિર્ભાવ, અર્થાત્-વ્યુત્થાન સંસ્કારોનો તિરસ્કાર અને નિરોધ સંસ્કારોનો પ્રાદુર્ભાવ, એનો જે (निरोधक्षणचित्तान्वयः) નિરોધ કાળમાં હોવાવાળો ચિત્તનો બંને સંસ્કારોમાં અન્વય (સંબંધ). તે નિરોધ પરિણામ કહેવાય છે.

અર્થાત્-નિરોધ સમાધિકાળમાં વ્યુત્થાનજન્ય[1] સંસ્કારોની અતીતા-

ધાનને સંપ્રજ્ઞાતનું સાધન કહેલું છે, અને તેને બહિરંગ માન્યું છે. કેમકે ધારણાદિ ત્રણ જ સૂત્રકારના મતમાં અંતરંગ છે, તેથી બીજા પ્રકારનું અંતરંગ જ સૂત્રકારને અભીષ્ટ છે, અને અહીં તો સંયમ પછી નિર્બીજ સમાધિ ઉદય પામતી નથી અને સંયમનો વિષય નિર્બીજ સમાધિના વિષયની સમાન નથી; કેમકે એ અવસ્થામાં ત્રિપુટીનો અભાવ હોવાથી એ નિર્વિષયક સમાધિ છે. માટે બંને પ્રકારની અંતરંગતાનો અભાવ હોવાથી નિર્બીજ સમાધિનું સંયમ કાંઈ અંતરંગ સાધન નથી, કિંતુ પરવૈરાગ્ય જ તેનું અંતરંગ સાધન છે.

૧–અસંપ્રજ્ઞાત સમાધિની અપેક્ષાએ સંપ્રજ્ઞાતને પણ અહીં વ્યુત્થાન જાણવું.

વસ્થા હોય છે, અને પરવૈરાગ્યરૂપ નિરોધના સંસ્કારોની વર્તમાનાવસ્થા હોય છે, તથા એ બન્ને અવસ્થાઓમાં, વિશિષ્ટ સંસ્કારોના આશયભૂત જે ધર્મીરૂપ ચિત્ત છે, તે અનુગત છે. તે પ્રમાણે પ્રતિક્ષણ જે ચિત્તનું સંસ્કારાન્યથાત્વ, અર્થાત્ વ્યુત્થાન સંસ્કારોનું હાન અને નિરોધ સંસ્કારોનું આધાન (નિવાસ), તે જ નિરોધ કાળમાં ચિત્તનું પરિણામ છે.

ભાવ એ છે કે, ક્ષણ ક્ષણમાં જે ચિત્તમાંથી વ્યુત્થાન સંસ્કારોનું નીકળવું અને નિરોધ સંસ્કારોનો તેમાં પ્રવેશ થવો, એજ અસંપ્રજ્ઞાતકાળમાં ચિત્તનું પરિણામ છે. એ પ્રમાણે વ્યુત્થાન સંસ્કારોના નાશ અર્થે અભ્યાસથી નિરોધ સંસ્કારોનો પ્રાદુર્ભાવ કરવો, એ નિષ્પન્ન થાય છે.

आशंका–કારણના નાશથી કાર્યનો નાશ સર્વ સંમત છે, તેથી અવિદ્યારૂપ કારણના નાશથી તેનાં કાર્ય રાગાદિ સ્વતઃ નિવૃત્ત થઈ જાય છે; એ પ્રમાણે જ્યારે વ્યુત્થાન વૃત્તિનો નિરોધ થઈ ગયો, ત્યારે તે વૃત્તિથી જન્ય સંસ્કારોનો નિરોધ પણ સ્વતઃ થઈ જશે, તો પછી વ્યુત્થાન સંસ્કારોના નાશ અર્થે નિરોધ સંસ્કારોની શી જરૂર છે?

समाधान–કાંઈ એવો નિયમ નથી કે, કારણ માત્રની નિવૃત્તિથી જ કાર્યની નિવૃત્તિ થઈ જાય છે, પરંતુ ઉપાદાન કારણની નિવૃત્તિથી તેના કાર્યની નિવૃત્તિ થાય છે, એ નિયમ છે. એ પ્રમાણે વ્યુત્થાન સંસ્કારોનું ઉપાદાન કારણભૂત જે ચિત્ત છે, તેના વિદ્યમાન હોવાથી વ્યુત્થાન સંસ્કારોની સ્વતઃ નિવૃત્તિ થવી અસંભવ છે,[1] અને વૃત્તિ તો સંસ્કારોનું નિમિત્ત કારણ છે, તેથી વૃત્તિના નાશથી સંસ્કારોનો નાશ થવો અસંભવિત છે.[2] અને અવિદ્યા તો રાગાદિનું ઉપાદાન કારણ છે, તેથી અવિદ્યાના નાશથી રાગાદિનો નાશ થવો યુક્ત છે. એ અભિપ્રાયથી ભાષ્યકારે અહીં આ કહેલું છે કે–"**व्युत्थानसंस्काराश्चित्तधर्मा न ते प्रत्ययात्मका इति प्रत्ययनिरोधेन निरुद्धाः**"[3] **इति**. તેથી વ્યુત્થાન સંસ્કારોના અભાવાર્થે નિરોધ સંસ્કારોની

૧–એથી જ લાંબા સમયથી વૃત્તિનો નાશ હોવા છતા પણ સંસ્કારદ્વારા પદાર્થનું સ્મરણ લોકમાં જોવામાં આવે છે.

૨–લોકમાં પણ કુંભારરૂપ નિમિત્ત કારણના નાશથી ઘટરૂપ કાર્યનો નાશ થતો નથી. કિંતુ ઉપાદાન કારણરૂપ કપાલનો નાશ થવાથી જ ઘટનો નાશ જોવામાં આવે છે; તેમ અહીં પણ જાણી લેવું.

૩–વ્યુત્થાન સંસ્કાર એ ચિત્તનો ધર્મ છે. અર્થાત્–ચિત્ત એનું ઉપાદાન કારણ છે, કાંઈ પ્રત્યયાત્મક નથી. અર્થાત્–વૃત્તિ તેનું ઉપાદાન કારણ નથી; તેથી વૃત્તિનિરોધ થયા છતાં પણ સંસ્કારોનો નિરોધ થઈ શકતો નથી. કેમકે ઉપાદાન કારણ ચિત્ત વિદ્યમાન છે, એવો ભાષ્યનો અર્થ છે.

વૃદ્ધિ કરવી, કે જેથી ચિત્ત, સંસ્કારશેષ થઈ જાય. જે પ્રકારે અસંપ્રજ્ઞાતમાં ચિત્ત સંસ્કારશેષમાત્ર થાય છે, તે પ્રકાર પ્રથમ પાદમાં કહી ચૂકયા છીએ. ॥ ૯ ॥

હવે એ નિરોધસંસ્કારનું ફળીભૂત પરિણામ કહે છે–

सू० तस्य प्रशान्तवाहिता संस्कारात् ॥ १० ॥

સૂત્રાર્થઃ-(**संस्कारात्**) નિરોધ સંસ્કારથી (**तस्य**) તે ચિત્તની (**प्रशान्तवाहिता**) વિમલ નિરોધ સંસ્કાર ધારાની પરંપરારૂપ સ્થિતિ થાય છે.

અર્થાત્–નિરોધ સંસ્કારોના અભ્યાસથી ચિત્તની પ્રશાન્તવાહિતા સ્થિતિ થઈ જાય છે. વ્યુત્થાન[1] સંસ્કારમળથી રહિત જે નિરોધ સંસ્કારની ઉત્તરોત્તર અવિચ્છિન્ન પરંપરા, તેનું નામ પ્રશાન્તવાહિતા છે. એ પ્રમાણે પ્રશાન્તવાહિતારૂપ સ્થિતિને માટે નિરોધ સંસ્કારોનો એવો અભ્યાસ કરવો કે, જેથી નિરોધ સંસ્કારમાં એવી નિપુણતા આવી જાય કે તે વ્યુત્થાન સંસ્કારોનો તિરસ્કાર કરી દે. જો એમ નહિ થાય તો નિરોધસંસ્કારો મંદ હોવાથી વ્યુત્થાન સંસ્કારો જ નિરોધસંસ્કારોનો તિરસ્કાર કરી દેશે. ॥૧૦॥

એ પ્રકારે અસંપ્રજ્ઞાત કાળમાં હોવાવાળા નિરોધ પરિણામનાં સ્વરૂપ તથા ફળ કથન કરીને હવે સંપ્રજ્ઞાતમાં હોવાવાળા સમાધિ પરિણામનું કથન કરે છે–

सू० सर्वार्थतैकाग्रतयोः क्षयोदयौ चित्तस्य समाधिपरिणामः ॥ ११ ॥

સૂત્રાર્થઃ-(**चित्तस्य**) ચિત્તની (**सर्वार्थता–एकाग्रतयोः**) વિક્ષિપ્તતા અને એકાગ્રતાનો જે (**क्षय–उदयौ**) નાશ તથા પ્રાદુર્ભાવ થવો, એ 'સમાધિપરિણામ' કહેવાય છે.

અર્થાત્-ક્ષણે ક્ષણે અનેક વિષયોમાં ચિત્તનું જે ગમન, તે સર્વાર્થતારૂપ ચિત્તધર્મ છે; અને કોઈ એક જ આલમ્બનમાં નિશ્ચલ વૃત્તિપ્રવાહથી ચિત્તનું સ્થિર થઈ જવું, તે એકાગ્રતારૂપ ચિત્તધર્મ છે. એ બંને ધર્મોમાંથી જે સર્વાર્થતારૂપ ચિત્તના ધર્મનો ક્ષય (તિરોભાવ) થઈ જવો અને એકાગ્રતારૂપ ચિત્તના ધર્મનો ઉદય (આવિર્ભાવ) થવો, તેનું નામ સમાધિપરિણામ છે.

અહીં પણ પૂર્વવત્ વિક્ષિપ્તતા–એકાગ્રતારૂપ ધર્મોનો આવિર્ભાવ

૧–પ્રશાન્તવાહિતાનું લક્ષણ કહે છે, "વ્યુત્થાન" ઇત્યાદિથી.

તિરોભાવ થાય છે, અને ચિત્તરૂપ ધર્મી બંને સમયમાં અનુગત રહે છે, એમ જાણવું.

નિરોધ પરિણામથી સમાધિપરિણામમાં એટલું વિશેષ છે કે, નિરોધ પરિણામમાં વ્યુત્થાન સંસ્કારોનો પરાભવ અને નિરોધ સંસ્કારોનો પ્રાદુર્ભાવ થાય છે; અને સમાધિ પરિણામમાં સંસ્કારને ઉત્પન્ન કરનારા વ્યુત્થાનનો ક્ષય અને એકાગ્રતારૂપ ધર્મનો આવિર્ભાવ[1] થાય છે. ॥૧૧॥

હવે એ સંપ્રજ્ઞાતની દૃઢ અવસ્થા કહેતાં એકાગ્રતા પરિણામનું લક્ષણ કહે છે–

सू–ततः पुनः शान्तोदितौ तुल्यप्रत्ययौ
चित्तस्यैकाग्रतापरिणामः ॥ १२ ॥

સૂત્રાર્થ:–(ततः) વિક્ષિપ્તતારૂપ ધર્મનો ક્ષય થવાથી જે (शान्त–उदितौ) ભૂત વર્ત્તમાન (तुल्यप्रत्ययौ) પ્રત્યયતુલ્ય થઈ જાય, તેનું નામ એકાગ્રતા-પરિણામ છે.[2]

અર્થાત્–પહેલાં સમાહિત ચિત્તનો જે પ્રત્યય ઉદય થઈ શાંત થયો હતો, તેની તુલ્ય જ પાછળથી પ્રત્યય ઉત્પન્ન થાય છે, કાંઈ જૂદો ઉત્પન્ન થતો નથી અને ચિત્તરૂપી ધર્મી બંને પ્રત્યયોમાં અનુગત રહે છે, તેથી તેમાં બંને પ્રત્યય તુલ્ય છે.

ભાવ એ છે કે, સંપ્રજ્ઞાત સમાધિના પ્રથમ ક્ષણમાં વ્યુત્થાન વૃત્તિ ઉત્પન્ન થઈ શાંત થઈ જાય છે અને દ્વિતીય ક્ષણમાં એકાગ્રતારૂપ વૃત્તિ ઉદય પામે છે. એ પ્રકારે સંપ્રજ્ઞાતમાં પૂર્વ અને ઉત્તર પ્રત્યય વિલક્ષણ છે. કેમકે પૂર્વ પ્રત્યય જે શાંત થયો છે, તે તો વિક્ષેપરૂપ છે અને ઉત્તર પ્રત્યય જે ઉદય થયો છે, તે નિરોધરૂપ છે. એ જ ચિત્તનાં પરિણામને પૂર્વસૂત્રમાં સમાધિપરિણામના નામથી કહેલું છે અને જ્યારે અભ્યાસના જોરથી વિક્ષેપનો અત્યંતાભાવ થવાથી નિરંતર પ્રતિક્ષણ નિરોધ-રૂપ જ પ્રત્યય ઉદય થાય છે, ત્યારે પ્રથમ ક્ષણમાં ઉત્પન્ન થયેલો જે પ્રત્યય, તે પણ નિરોધરૂપ છે અને દ્વિતીય ક્ષણમાં શાંત થયેલો જે

૧–ભાવ એ છે કે, પહેલાં સંપ્રજ્ઞાતમાં વ્યુત્થાનનો ક્ષય અને એકાગ્રતાનો ઉદય કરાય છે, અને અસંપ્રજ્ઞાતમાં નિરોધ સંસ્કારોના અવિર્ભાવથી વ્યુત્થાન સંસ્કારોનો પણ તિરોભાવ થાય છે.

૨–અર્થાત્–સમાધિકાળમાં સર્વદા એકાગ્રતાનો પ્રવાહ થઈ જવો, એ જ એકાગ્રતા પરિણામ છે.

પ્રત્યય, તે પણ નિરોધરૂપ છે તથા તૃતીય ક્ષણમાં ઉદય થયેલો પ્રત્યય પણ નિરોધરૂપ છે. એ પ્રમાણે બંને પ્રત્યય, તુલ્ય હોય છે, પણ વિલક્ષણ હોતા નથી, એનું જ નામ એકાગ્રતાપરિણામ છે. યોગી જેટલો સમય સમાધિમાં હોય છે, તેટલો સમય એ એકાગ્રતાપરિણામ રહે છે, અને જ્યારે સમાધિમાંથી યોગીનું ઉત્થાન થાય છે, ત્યારે વિક્ષેપ પ્રત્યયનો પણ ઉદય થાય છે.

એ પ્રમાણે ઉત્થાનકાળમાં વિક્ષેપની નિવૃત્તિને અર્થે યોગી અસંપ્રજ્ઞાતનું અનુષ્ઠાન કરે, પણ સંપ્રજ્ઞાતની પ્રાપ્તિથી જ પોતાને કૃતકૃત્ય ન માને, એમ સિદ્ધ થાય છે. ॥૧૨॥

જેવી રીતે ચિત્ત પરિણામી છે, તેવી રીતે બીજી વસ્તુ પણ પરિણામી છે, તેના સમજાવવામાટે ભૂતાદિકોમાં પણ ત્રણ પ્રકારનું પરિણામ સૂચન કરે છે:–

सू–एतेन भूतेन्द्रियेषु धर्मलक्षणावस्थापरिणामा व्याख्याताः ॥१३॥

સૂત્રાર્થઃ–(**एतेन**) એ પૂર્વોક્ત ચિત્તનું પરિણામ કથન કરવાથી (**भूतेन्द्रियेषु**) ભૂત તથા ઇંદ્રિયોમાં પણ (**धर्मलक्षणाऽवस्थापरिणामा**) ધર્મપરિણામ, લક્ષણપરિણામ, અને અવસ્થાપરિણામ (**व्याख्याताः**) કહેલાં જાણવાં. અર્થાત્–ચિત્તનાં ત્રણ પરિણામ કહેવાથી ભૂતાદિકોનાં પણ ત્રણ પરિણામ અર્થથી કહેવાયાં, એમ જાણી લેવું.

યદ્યપિ સૂત્રકારે સાક્ષાત્ શબ્દોચ્ચારણદ્વારા આ ત્રણ પરિણામનું નિરૂપણ કર્યું નથી, તો પણ નિરોધ પરિણામના કથનથી એની સૂચના કરી છે.

તેમાં[1] ધર્મી વિદ્યમાન હોતાં પૂર્વ ધર્મના તિરોભાવપૂર્વક બીજા ધર્મનો જે પ્રાદુર્ભાવ, તે ધર્મપરિણામ છે. જેમકે, ચિત્તરૂપી ધર્મીના રહેવાં છતાં જ પૂર્વ વ્યુત્થાન સંસ્કારરૂપ ધર્મનો પ્રાદુર્ભાવ થઈ જવારૂપ નિરોધપરિણામ થાય છે. વિદ્યમાન[2] ધર્મોના અનાગતાદિ કાળના ત્યાગપૂર્વક વર્ત્તમાનાદિ કાળનો લાભ થવો, તે લક્ષણ પરિણામ છે. તેમ જે વસ્તુ નષ્ટ થઈ ગઈ છે, તેને અતીત લક્ષણવાળી કહે છે. જે વર્ત્તમાન

૧–જે પ્રકારે સૂચિત કરાયું છે, તે જ સ્પષ્ટ કરીને બતાવે છે, "તેમાં" ઇત્યાદિથી.

૨–ધર્મપરિણામ કહીને હવે લક્ષણપરિણામ કહે છે, "વિદ્યમાન" ઇત્યાદિથી.

છે તેને વર્ત્તમાન લક્ષણવાળી કહે છે, અને જે આગળ ઉપર હોવાવાળી છે, તેને અનાગત લક્ષણવાળી કહે છે.

પુરુષ જે સમયે સમાધિસ્થ હોય છે, તે સમયે વ્યુત્થાન, પોતાના વર્ત્તમાન લક્ષણને છોડી દઇને અતીત લક્ષણને પામે છે. અને નિરોધ, અનાગત લક્ષણનો ત્યાગ કરીને વર્ત્તમાન લક્ષણને પામે છે. એ પ્રમાણે ફરીથી જે વ્યુત્થાન થશે, તે આ અનાગત લક્ષણનો ત્યાગ કરી વર્ત્તમાન લક્ષણને પામી જશે. આ જે ધર્મોના લક્ષણભેદ છે, તે જ ધર્મોમાં લક્ષણપરિણામ છે.

અર્થાત્-વ્યુત્થાનની વર્ત્તમાન દશામાં નિરોધની જે અનાગતતાની દશા તે જ નિરોધનું સૂક્ષ્મ લક્ષણપરિણામ અને વ્યુત્થાનની અતીતતાવાળી દશામાં નિરોધની જે વર્ત્તમાનતાવાળી દશા, તે જ નિરોધનું વર્ત્તમાન લક્ષણપરિણામ જાણવું.

એ પ્રમાણે નિરોધની વર્ત્તમાન દશામાં નિરોધ સંસ્કારોની જે પ્રબળતા અને વ્યુત્થાન સંસ્કારોની દુર્બળતા, તે અવસ્થાપરિણામ છે.

એ પ્રમાણે[1] પ્રથમ જે ચિત્તરૂપ ધર્મીના રહેવા સાથે વ્યુત્થાનનો તિરોભાવ અને નિરોધનો આવિર્ભાવ, તે ધર્મપરિણામ થયું; અને નિરોધરૂપ ધર્મમાં જે અનાગત લક્ષણનો તિરોભાવ તથા વર્ત્તમાન લક્ષણનો પ્રાદુર્ભાવ, તે નિરોધરૂપ ધર્મનું લક્ષણ પરિણામ થયું. નિરોધના વર્ત્તમાન લક્ષણની જે બલવત્તા, તે લક્ષણનું અવસ્થાપરિણામ થયું. એ પ્રકારે ધર્મીનું ધર્મપરિણામ, ધર્મોનું લક્ષણપરિણામ અને લક્ષણોનું અવસ્થાપરિણામ જાણી લેવું.

ભાવ[2] એ છે કે-જે હેતુથી ગુણોનો સ્વભાવ ચંચળ છે, તે હેતુથી ગુણોનો પ્રચાર ક્ષણભર પણ એકરસ રહી શકતો નથી. એથી જ સર્વ વસ્તુ ત્રિગુણાત્મક હોવાથી વસ્તુ માત્ર પરિણામી છે. કેમકે એ ત્રણે પરિણામ વિના કોઈ પણ વસ્તુ સ્થિર રહી શકતી નથી. એ પ્રમાણે જેમ ચિત્તમાં ત્રણ પ્રકારનાં પરિણામ છે, તેમ ભૂત તથા ઇન્દ્રિયોમાં પણ ધર્મધર્મી ભાવથી ત્રણ પરિણામ જાણી લેવાં.

૧-હવે ત્રણે પરિણામનું એકત્ર સંકલન કરી ઉપસંહાર કરે છે, "એ પ્રમાણે" ઇત્યાદિથી.

૨-દૃષ્ટાન્તરૂપ ચિત્તમાં ત્રણે પરિણામોનું કથન કરીને હવે દાર્ષ્ટાન્તરૂપ ભૂતાદિકમાં ત્રણે પરિણામના કથનનો આરંભ કરે છે, "ભાવ એ છે કે" ઇત્યાદિથી.

તેમાં પૃથ્વીરૂપ ધર્મીનો જે ઘટરૂપ વિકાર, તે ધર્મ પરિણામ છે. કેમકે પિંડાકાર ધર્મના તિરોભાવપૂર્વક કંબુગ્રીવ આદિ આકારનો એમાં પ્રાદુર્ભાવ છે અને[1] ઘટનું જે અનાગત લક્ષણના ત્યાગપૂર્વક વર્તમાન લક્ષણવાળું થઈ જવું, તે ઘટરૂપ ધર્મનું લક્ષણપરિણામ છે. વળી વર્તમાન લક્ષણવાળા ઘટનું જે નવીનપણું તથા ક્ષણે ક્ષણે જૂનાપણું, તે અવસ્થાપરિણામ છે.

એ પ્રમાણે ઇંદ્રિયોના નીલાદિ વિષયોનું આલોચન (જ્ઞાન), તે ઇંદ્રિયોનું ધર્મપરિણામ, નીલાદિજ્ઞાનનું જે વર્તમાન લક્ષણવાળું થઈ જવું, તે લક્ષણપરિણામ, અને વર્તમાનતાયુક્ત દશામાં જે સ્ફુટત્વ અસ્ફુટત્વ, તે અવસ્થાપરિણામ જાણવું. એ પ્રમાણે બીજે પણ જાણી લેવું.

આ જે ત્રણ પ્રકારનાં પરિણામ કહ્યાં છે, તે ધર્મીથી ધર્માદિકોની ભેદવિવક્ષાથી કહેલાં છે. પરમાર્થથી તો[2] કેવળ ધર્મપરિણામ જ મુખ્ય છે. કેમકે ધર્મનું ધર્મીસ્વરૂપ માત્ર હોવાથી ધર્મીના વિકારનો જ ધર્મ-લક્ષણ-અવસ્થાપરિણામ શબ્દથી વ્યવહાર થાય છે, કાંઈ ધર્માદિના વિકારથી નહિ. એ પ્રમાણે ધર્માદિદ્વારા એ સઘળા ધર્મીના વિકારનો જ પ્રપંચ (વિસ્તાર) જાણવો.

અહીં એટલું વિશેષ એ પણ જાણી લેવું કે, મૃત્તિકારૂપ ધર્મીમાં અનાગત અવસ્થાથી વર્તમાન જે ઘટરૂપ ધર્મ છે, તેનું જ અતીત, અનાગત, વર્તમાન કાળમાં અન્યથાત્વ હોય છે, કાંઈ મૃત્તિકારૂપી ધર્મીનું નહિ. જેમ સુવર્ણના પાત્રને ગળાવી અન્યથા કરવાથી કેવળ કુંડલ કટકાદિ આકાર અને આ કુંડળ છે, આ કટક છે, ઈત્યાદિ વ્યવહારનો ભેદ થાય છે; પણ કાંઈ સુવર્ણ, એ અસુવર્ણ[3] થઈ જતું નથી.

અહીં બૌદ્ધ લોકો એવી શંકા કરે છે કે-“જો ધર્મીનો સર્વકાલ અને સર્વ અવસ્થામાં ધર્મોમાં અન્વય હોય, તો મૃત્તિકાદિ ધર્મી સદા વિદ્યમાન હોવાથી ચેતનની પેઠે તેની કૂટસ્થ નિત્યતા આવી જશે અને તે નિત્યતા તમને સંમત નથી. કેમકે તમારા મતમાં ચિતિશક્તિરૂપ

૧–ધર્મપરિણામ કહી ધર્મમાં હોવાવાળું જે લક્ષણ પરિણામ છે, તે કહે છે, “અને ઘટનું” ઇત્યાદિથી.

૨–સાંખ્યયોગ મતમાં સત્કાર્યવાદ અને પરિણામવાદ હોવાથી ધર્મ અને ધર્મીનો વાસ્તવિક ભેદ મનાતો નથી.

૩–અસુવર્ણ–સુવર્ણથી ભિન્ન રજત વગેરે.

પુરુષ વિના બીજું કોઈ કૂટસ્થ નિત્ય નથી." તેનો પરિહાર ભાષ્યકારે એવો કરેલો છે કે-અમે ચેતનની પેઠે મૃત્તિકાદિને એકાન્ત નિત્ય માનતા નથી, કિંતુ તે અત્યંત નિત્ય નથી અને અત્યન્ત અનિત્ય પણ નથી; પરંતુ કથંચિત્ નિત્ય છે અને કથંચિત્ અનિત્ય પણ છે. એ પ્રકારે માનીએ છીએ.

ભાવ એ છે કે-જેટલાં કાર્ય છે, તે સઘળાં પોતાની વ્યક્તિથી અપાયને પામે છે.[1] અર્થાત્-પોતાની વર્તમાન અવસ્થાનો ત્યાગ કરી અતીતરૂપતાને પામે છે. એથી જ અત્યન્તનિત્યતાનો કાર્યમાત્રમાં અભાવ છે અને ફૂટી ગયા પછી ઘટનો અત્યંત અભાવ થાય છે, એમ પણ નહિ જાણવું. કિંતુ અતીતાવસ્થાપન્ન પણ ઘટ મૃત્તિકામાં વિદ્યમાન જ રહે છે. કેમકે અત્યંત અનિત્યતાના અભાવથી કાર્યનો અત્યંત ઉચ્છેદ અમારા મતમાં પ્રમાણવિરુદ્ધ છે. પરંતુ એટલું વિશેષ છે કે, વર્તમાનાવસ્થાપન્ન ઘટની ઉપલબ્ધિ[2] થાય છે, અને અતીતાવસ્થાપન્ન ઘટ સ્વકારણમાં લીન હોવાથી સૂક્ષ્મતાને પામેલો હોવાથી દર્શનને અયોગ્ય થવાથી ઉપલબ્ધ[3] થતો નથી.

અને એટલું વિશેષ એ પણ જાણવું કે, ઘટરૂપ જે ધર્મ છે, તે ભૂત, ભવિષ્યત્, વર્ત્તમાન એ ત્રણે કાળમાં મૃત્તિકારૂપ ધર્મીમાં વિદ્યમાન રહે છે. જે કાળમાં ઘટ ફૂટવાથી અતીતાવસ્થાને પામે છે, તે સમયમાં પણ તે સૂક્ષ્મ અનાગત તથા વર્તમાન અવસ્થાથી સંયુક્ત જ હોય છે, કાંઈ વિયુક્ત હોતો નથી. એ પ્રમાણે અનાગતાવસ્થાવાળો જે ઘટ છે, તે પણ વર્તમાન અને અનાગત અવસ્થાથી સંયુક્ત છે; તથા વર્તમાનાવસ્થાવાળો જે ઘટ છે, તે પણ અતીત તથા અનાગત લક્ષણથી સંયુક્ત છે.

અર્થાત્-જેમ કોઈ પુરુષ, એક સ્ત્રી ઉપર રાગવાળો છે, તેથી અન્ય સ્ત્રીઓમાં વિરક્ત છે, એમ મનાતું નથી, કિંતુ જે સ્ત્રીમાં રાગ છે, ત્યાં તે વર્તમાન અવસ્થાવાવાળો છે અને અન્ય સ્ત્રીઓમાં તે રાગ અતીતાવસ્થાવાળો છે, એમ મનાય છે.[4] તેમ જે સમયે ઘટ વર્તમાનાવસ્થાવાળો છે, તે સમયે અન્ય અવસ્થાનો અભાવ નહિ જાણવો, પણ તે અવસ્થા સામાન્યરૂપે એ સમયે અનુગત છે.

અહીં કોઈ એ દોષ દે છે કે, "પરસ્પર વિરુદ્ધ ત્રણે અવસ્થાનું

---

૧ જેમકે ઉત્પન્ન થયેલા ઘટનું ફૂટી જવું. ૨ નેત્રાદિની વિષયતારૂપ જ્ઞપ્તિ. ૩ પ્રત્યક્ષ જ્ઞાનનો વિષય થઈ શકતો નથી.

૪ એ સઘળું દ્વિતીય પાદના ચોથા સૂત્રના વ્યાખ્યાનમાં સ્પષ્ટ છે.

એક કાળમાં એક વસ્તુમાં અનુગત હોવું અસંભવિત છે, અને જો અનુગત માનીએ તો જે કાળમાં "घटो वर्तमानः"[1] એવો વ્યવહાર થાય છે, તે સમયે "घटोऽतीत"[2] ઇત્યાદિ વ્યવહાર પણ થવો જોઇએ." એ આશંકાનો પરિહાર એ છે કે–ક્રોધ પછીના સમયમાં પણ ચિત્ત, રાગ-ધર્મવાળું પ્રતીત થાય છે. જો વર્તમાનમાં જે ધર્મ હોય, તેને જ ધર્મત્વ માનશો, તો ઉત્તર કાળમાં ચિત્ત રાગધર્મવાળું ન થવું જોઇએ. કેમકે અવિદ્યમાન વસ્તુની ઉત્પત્તિ નરશૃંગવત્ અસંભવિત છે. તેથી[3] ક્રોધ સમયે પણ રાગ અનાગતાવસ્થાથી વિદ્યમાન છે, તે અવશ્ય સિદ્ધ થયું, તેમ અહીં પણ જાણી લેવું.

અર્થાત્–[4]વિશેષની સાથે વિશેષનો વિરોધ હોય છે, સામાન્યની સાથે નહિ, એમ પાછળ કહી ચૂકયા છીએ. તેથી પરસ્પર વિરોધ છતાં પણ ત્રણે અવસ્થાનો એક કાળમાં અસંભવ હોઈ શકતો નથી, અને આ વર્ત્તમાન છે, આ અતીત છે અને આ અનાગત છે, એવો વ્યવહાર તો વિશેષને લઇને થાય છે, તેથી વ્યવહારસંકર પણ થતો નથી.[5]

પૂર્વે જે લક્ષણપરિણામ કહેલું છે, તે ઘટ આદિ ધર્મનું જ છે, કાંઈ મૃત્તિકારૂપ ધર્મીનું નહિ. કેમકે ઘટરૂપ ધર્મ જે તે તે અવસ્થાને પામેલો અન્ય અવસ્થાવાળાથી ભિન્નરૂપતાવાળો કહેવાય છે, કાંઈ મૃત્તિકારૂપ ધર્મીથી ભિન્નરૂપતાવાળો નહિ. કેમકે મૃત્તિકારૂપ ધર્મી સર્વ અવસ્થામાં અનુગત છે.

અર્થાત્–જેમ એક જ રેખાવિશેષ, તે તે સ્થાનના ભેદથી અર્થાત્ શતના સ્થાનમાં શત, દશના સ્થાનમાં દશ અને એકના સ્થાનમાં એક ઇત્યાદિ ભેદથી ભેદવાળી થઈ જાય છે, પરંતુ વસ્તુતાએ એક જ છે. વળી જેમ એક જ સ્ત્રી, સંબંધીઓના ભેદથી[6] માતા, ભગિની, પુત્રી ઇત્યાદિ

---

૧ આ ઘટ વર્તમાન અવસ્થાવાળો છે.

૨ આ ઘટ અતીતાવસ્થાવાળો છે. "આદિ" પદથી ઘટ અનાગતાવસ્થાવાળો છે, એમ પણ જાણી લેવું.

૩ તેથીજ આ મતમાં સત્કાર્યવાદ માનવામાં આવે છે.

૪–એ સઘળું સાધનપાદના ૧૫ મા સૂત્રના વ્યાખ્યાનમાં સ્પષ્ટ છે, તેને ફરીથી સ્પષ્ટ કરે છે, "અર્થાત્" ઇત્યાદિથી.

૫–અર્થાત્–એક કાળમાં ત્રણે વ્યવહાર થઈ શકતા નથી.

૬–સંબંધીઓના ભેદથી એટલે પુત્ર, ભ્રાતા, પિતા, આદિના ભેદથી.

ભેદવાળી થઈ જાય છે, તેમ ધર્મી એક જ છે, પરંતુ તે તે અવસ્થાના ભેદથી ભિન્નરૂપવાળો પ્રતીત થાય છે, પણ કાંઈ ખરી રીતે તેવો નથી.

आशंका–આ સ્થળે કોઈ આક્ષેપ કરે છે કે, જો ધર્મી સદા વિદ્યમાન રહે છે, તો તે પણ ચેતનની પેઠે કૂટસ્થ નિત્ય થઈ જશે.

અર્થાત્–તમારો સિદ્ધાંત એ છે કે, જે કાળમાં જલ આહરણાદિ[1] કાર્યને ન કરતો ઘટ મૃત્ પિંડમાં વિદ્યમાન છે, તે કાળમાં તે ઘટ અનાગત કહેવાય છે; જે કાળમાં જલ આહરણાદિ કાર્ય કરતો તે વિદ્યમાન છે, તે કાળમાં તે ઘટ વર્તમાન કહેવાય છે અને જે કાળમાં જલાહરણાદિ કાર્ય સંપાદન કરી તે કાર્યથી નિવૃત્ત થઈ કારણમાં સૂક્ષ્મરૂપે વિદ્યમાન રહે છે, તે કાળમાં તે ઘટ અતીત કહેવાય છે. એ પ્રમાણે તમારા મતમાં સર્વદા જ ઘટરૂપ ધર્મ વિદ્યમાન હોવાથી પુરુષની પેઠે ઘટાદિ પણ કૂટસ્થ નિત્ય હોવા જોઈએ.

समाधान તેનો પરિહાર એ છે કે–સર્વદા વિદ્યમાન હોવું, એ જ કૂટસ્થનિત્યત્વ નથી પણ અપરિણામ હોઈ સર્વદા એકરસ રહેવું તેનું નામ કૂટસ્થનિત્યતા છે. તે નિત્યતા મહત્તત્વ આદિ સઘળાં કાર્યમાં બાધિત છે. કેમકે તેઓ સર્વદા વિદ્યમાન હોવા છતાં પણ તે તે રૂપથી આવિર્ભાવ તિરોભાવ હોવાથી તે સઘળાં પરિણામી છે. અર્થાત્ ગુણી પ્રધાન યદ્યપિ નિત્ય છે તથાપિ ગુણોની વિમર્દ વિચિત્રતાથી[2] તે એકરસ નથી પણ પરિણામી છે, તેથી તેઓ કૂટસ્થ નિત્ય નથી.

ભાવ એ છે કે–જેમ આવિર્ભાવ–તિરોભાવવાળાં પૃથ્વી આદિ પંચભૂતો, શબ્દ આદિ પંચ તન્માત્રાનાં કાર્ય હોવાથી પૃથ્વી આદિની અપેક્ષાએ શબ્દાદિને અતિરોભાવી[3] કહે છે, તેમ આવિર્ભાવ-તિરોભાવશીલ મહત્તત્ત્વ, પ્રધાનનું કાર્ય હોવાથી મહત્તત્ત્વની અપેક્ષાથી પ્રધાનને અતિરોભાવી જાણી લેવું. એ પ્રકારે સઘળે ઠેકાણે કાર્યની અપેક્ષાથી કારણ અતિરોભાવી અને સર્વદા વિદ્યમાન કહેવાય છે, પરંતુ તે કાંઈ કૂટસ્થ નિત્યતાને લીધે અતિરોભાવી કહેવાતું નથી. જેમ[4] મૃત્તિકારૂપ ધર્મીનો પ્રથમ પિંડાકાર ધર્મ હોય છે, તે પછી ઘટાકાર ધર્મ થાય છે. પરંતુ તેમાં મૃત્તિકા સર્વદા

૧–પાણીને પોતાનામાં ધારણ કરવું વગેરે.

૨–ગુણોનું ન્યૂનાધિક્ય થઈ જવું, તે વિમર્દ કહેવાય છે.

૩ નાશથી રહિત.

૪ હવે આપેક્ષિક ધર્મ ધર્મીભાવ કહે છે, "જેમ" ઇત્યાદિથી.

અનુગત રહે છે, તેથી તેને ધર્મી કહે છે. તેમ ઘટ પણ અનાગત લક્ષણનો પરિત્યાગ કરીને વર્તમાન લક્ષણને પામવાથી લક્ષણ પરિણામ ધર્મવાળો હોવાથી ધર્મી છે. આ પ્રકારે પોતપોતાના ધર્મની અપેક્ષાથી બધાને ધર્મી જાણવા.

યદ્યપિ સૂત્રકારે ત્રણ પરિણામ કહેલાં છે, તથાપિ એ સઘળાં પરિણામ, ધર્મીના સ્વરૂપમાં જ અનુગત હોવાથી તે ધર્મપરિણામ જ જાણવાં.

અથવા એ સઘળાં પરિણામોને ધર્મીની અવસ્થા હોવાથી ધર્મીનાં જ એ અવસ્થાપરિણામ જાણવાં. અર્થાત્ વાસ્તવિક રીતે તે સઘળાં ધર્મીનાં જ ધર્મપરિણામ વા અવસ્થાપરિણામ કહેલાં છે અને અવાંતર ભેદને લીધે સૂત્રકારે પણ તેને પરિણામ કહેલાં છે, એ જ ભાષ્યકારનો સિદ્ધાન્ત છે. પરિણામનાં લક્ષણ આ સૂત્રના વ્યાખ્યાનના આરંભમાં કહી ચૂકયા છીએ, તેથી તે ફરીથી કહેવાની કાંઈ આવશ્યકતા નથી.

હવે જે ધર્મીનાં આ ત્રણ પરિણામ કહેલાં છે, એ ધર્મીનું લક્ષણ કહે છે.

तत्र[1]

सू–शान्तोदिताऽव्यपदेश्यधर्मानुपाती धर्मी ॥ १४ ॥

સૂત્રાર્થઃ-(**शान्त**) અતીત, (**उदित**) વર્તમાન, (**अव्यपदेश्य**) ભવિષ્યત્ જે ધર્મ, તેમાં જે (**अनुपाती**) અનુગત હોવાવાળો, તે ધર્મી કહેવાય છે.

અર્થાત્-ભૂત વર્તમાન ભવિષ્યત્ જે ઘટ આદિ ધર્મ છે, તેમાં સર્વદા અનુગત જે **મૃત્તિકારૂપ** કારણ, તે ધર્મી છે.

મૃત્તિકાદિ[2] દ્રવ્યમાં રહેવાવાળી પિંડ, ઘટ વગેરેની ઉત્પત્તિની યોગ્યતારૂપ જે શક્તિ તે ધર્મ છે અને મૃત્તિકા ધર્મી છે.

યદ્યપિ ઘટોત્પત્તિની યોગ્યતારૂપ શક્તિનો મૃત્તિકામાં પ્રત્યક્ષ અનુભવ થતો નથી, તથાપિ કાર્યની ઉત્પત્તિમાં જે આ નિયમ જોવામાં આવે છે કે, મૃત્તિકામાંથી જ ઘટનું બનવું અને રેતીથી ઘટનું ન બનવું, તેમ જેવો તંતુથી જ પટનું બનવું અને મૃત્તિકાથી ન બનવું, એ નિય-

---

૧ "तत्र" એ પદનો ભાષ્યકારે અધ્યાહાર કર્યો છે. કોઈ એ પદને સૂત્રનું અંતર્ગત માને છે. તે ધર્મ અને ધર્મીઓની માંહે અથવા તો પરિણામ અને પરિણામીઓની માંહેથી–એવો એ પદનો અર્થ છે.

૨ ધર્મના જ્ઞાન વિના ધર્મીનું જ્ઞાન થવું અસંભવિત છે, તેથી પ્રથમ ધર્મનું સ્વરૂપ કહે છે, "મૃત્તિકાદિ" ઇત્યાદિથી.

મ જ અનુમાનદ્વારા એ બોધ કરે છે કે, મૃત્તિકામાં ઘટની ઉત્પત્તિની યોગ્યતારૂપ શક્તિ છે, પણ રેતીમાં નથી. એવી રીતે ઘટનું ઉત્પન્ન થવું, તેજ મૃત્તિકામાં ઘટની ઉત્પત્તિ કરવાની યોગ્યતારૂપ શક્તિમાં પ્રમાણ જાણવું. આ જે યોગ્યતારૂપ ધર્મ છે, તે કાંઈ એક પ્રકારનો નથી પણ અનેક પ્રકારનો છે, તેથી જ એક મૃત્તિકાનાં ચૂર્ણ, પિંડ, ઘટ એમ અનેક પ્રકારનાં પરિણામ જોવામાં આવે છે.

તેમાં[1] મૃત્તિકારૂપ ધર્મીનો પ્રથમ ચૂર્ણરૂપ વિકાર થાય છે, પછી પિંડરૂપ અને પછી ઘટરૂપ વિકાર થાય છે. જે સમયે ચૂર્ણમાંથી પિંડ બનાવાય છે, તે કાળમાં વર્તમાન દશાને પામેલો તે પિંડ અતીતાવસ્થાવાળા ચૂર્ણથી અને અનાગતાવસ્થાવાળા ઘટથી ભિન્ન કહેવાય છે, પણ કાંઈ મૃત્તિકાથી ભિન્ન નથી હોતો; કેમકે મૃત્તિકા સર્વમાં અનુગત છે અને જ્યારે એ પિંડ પણ અવ્યક્તરૂપે મૃત્તિકારૂપ હતો, ત્યારે તેનો કોઇથી ભેદ નહોતો. કેમકે મૃત્તિકારૂપ ધર્મી સઘળામાં અનુગત છે. તેથી ચૂર્ણ, પિંડ, ઘટરૂપ ધર્મો ભિન્ન હોવા છતાં પણ જે સર્વમાં અભિન્નરૂપે અનુગત મૃત્તિકા, તે ધર્મી થઈ.

એ મૃત્તિકારૂપ ધર્મીના શાંત, ઉદિત અને અવ્યપદેશ્ય, એમ ત્રણ પ્રકારના ધર્મ છે. તેમાં જે પોતાનું કાર્ય કરી ઉપરામ થઈ ગયો હોય, તે શાંત[2] કહેવાય છે, અને જે ધર્મ પોતાનું કાર્ય કરી રહેલો છે, તે વર્તમાન કહેવાય છે. અહીં એટલું એ પણ વિશેષ છે કે, અનાગત પછી વર્તમાન હોય છે અને વર્તમાન પછી અતીત હોય છે. પણ અતીત પછી પાછું વર્ત્તમાન હોતું નથી. કેમકે અનાગત અને વર્તમાનનું જ પૂર્વ પશ્ચાત્ હોવું જોવામાં આવે છે, પણ અતીત તથા વર્ત્તમાનનું નહિ. એ પ્રમાણે કારણમાં સૂક્ષ્મરૂપે જે રહેલું હોય છે, તે અવ્યપદેશ્ય કહેવાય છે અને તેને જ અનાગત કહે છે.

અર્થાત્–સર્વ વસ્તુઓમાં જે સર્વ વિકારને ઉત્પન્ન કરવાની યોગ્યતારૂપ શક્તિઓ છે, તે સૂક્ષ્મરૂપે હોય છે ત્યારે તે અવ્યપદેશ્ય કહેવાય છે.

એ જ પ્રમાણે પૂર્વના આચાર્યોએ કહેલું છે કે–"**जलभूम्योः पारिणामिकं रसादिवैश्वरूप्यं स्थावरेषु दृष्टं, तथा स्थावराणां जंगमेषु जङ्गमानां स्थावरेषु**" **इति.**

૧–અનેક પ્રકારનાં પરિણામોને સ્પષ્ટ કરે છે, "તેમાં" ઇત્યાદિથી.

૨–અર્થાત્–પોતાના કારણમાં લીન થઈ ગયેલાં.

અર્થાત્[1] વનસ્પતિ લતા ગુલ્માદિકનાં ફળ, ફૂલ, મૂળ, પલ્લવમાં જે રસગંધાદિકનું વૈચિત્ર્ય જોવામાં આવે છે, તે જળ તથા ભૂમિનું જ પરિણામ છે. નહિ તો ફળાદિકમાં રસ વગેરેની વિલક્ષણતા સિદ્ધ થાય નહિ. કેમકે અસતનો આવિર્ભાવ થવો, એ પ્રમાણથી વિરુદ્ધ છે. એ પ્રમાણે જળ અને ભૂમિમાં સૂક્ષ્મરૂપે વિદ્યમાન જે ફલાદિકમાં રસ વગેરે વિકારજનનશક્તિરૂપ યોગ્યતા, તેજ અવ્યપદેશ્ય કહેવાય છે, એ સિદ્ધ થયું. એ પ્રકારે સ્થાવરોનાં પરિણામ જંગમોમાં અને જંગમોનાં પરિણામ સ્થાવરોમાં જોવામાં આવે છે. તેમાં સેવ, દ્રાક્ષ, નારંગી વગેરેના ભક્ષણથી પુરુષોમાં વિલક્ષણ રૂપાદિ સંપત્તિનું થઈ જવું, એ જંગમોમાં સ્થાવરોનું પરિણામ છે અને પુરુષ વગેરેના રુધિર સેચનથી દાડમનું તાલફળ સદશ થઈ જવું, એ સ્થાવરોમાં જંગમોનું પરિણામ છે. એ પ્રમાણે સઘળી વસ્તુઓમાં સર્વ વિકાર, જનનની (ઉત્પત્તિની) શક્તિરૂપ યોગ્યતા જાણી લેવી. યદ્યપિ સર્વ પૂર્ણ શક્તિવાળા છે તેથી સઘળી વસ્તુઓથી સર્વદા જ સર્વ દેશમાં સર્વની ઉત્પત્તિ થવી જોઇએ, પરંતુ દેશ, કાળ, આકાર, નિમિત્ત આદિ સહકારી કારણોના અભાવથી સર્વત્ર સર્વથી સર્વની ઉત્પત્તિ થઈ શકતી નથી.

ભાવાર્થ–યદ્યપિ પૃથ્વીમાં કેશરજનનની શક્તિ છે તથાપિ કાશ્મિરાદિ દેશ તેનું સહકારી કારણ છે, તેથી બીજા દેશમાં કેશર ઉત્પન્ન થતું નથી.

એ પ્રમાણે[2] આમ્રવૃક્ષમાં જે ફળજનનની શક્તિ છે, તેનો સહકારી સમય છે, તેથી હેમંત ઋતુમાં આમ્રની ઉત્પત્તિ થતી નથી. એ પ્રમાણે મૃગીમાં મનુષ્યરૂપ આકારનો આવિર્ભાવ ન હોવાથી મૃગી, મનુષ્યને ઉત્પન્ન કરી શકતી નથી અને પુણ્યરૂપ નિમિત્તનો આવિર્ભાવ ન થવાથી પાપી માણસ સુખ ભોગવી શકતો નથી.

એ પ્રમાણે સર્વ વસ્તુઓમાં સૂક્ષ્મરૂપે રહેલી જે વસ્તુ, તે અવ્યપદેશ્ય કહેવાય છે, એમ સિદ્ધ થયું. એ શાંત, ઉદિત, અવ્યપદેશ્યરૂપ

૧–સ્થાવર=વૃક્ષાદિકમાં જલભૂમિના પરિણામ નિમિત્તક જ રસાદિકની વિચિત્રતા દેખાય છે. એવી રીતે સ્થાવરોની જંગમોમાં તથા જંગમોની સ્થાવરોમાં વિચિત્રતા જોવામાં આવે છે, એ અક્ષરાર્થને સ્પષ્ટ કરે છે, "અર્થાત્" ઇત્યાદિથી.

૨–એ પ્રમાણે દેશને સહકારી કહી, હવે કાળને સહકારી બતાવે છે, "એ પ્રમાણે" ઇત્યાદિથી. એ પ્રકારે પછીનાં બંને ઉદાહરણમાં યથાક્રમ આકાર અને નિમિત્તને સહકારી જાણવાં.

ધર્મોમાં અનુગત જે મૃત્તિકાદિ, તે ધર્મી કહેવાય છે. જે બૌદ્ધ લોકો ધર્મ ધર્મીભાવને ન માની કેવળ ક્ષણિક વિજ્ઞાન માત્રને જ પદાર્થ માને છે, તેમના મતનું પૂર્વે[1] નિરાકરણ થઈ ચૂકયું છે, તેથી હવે ફરીથી અહીં કહેવાની જરૂર નથી. ॥ ૧૪ ॥

એ પ્રમાણે ધર્મીનું પ્રતિપાદન કરી હવે એક ધર્મીનાં અનેક પરિણામ હોવાનાં કારણ કહે છેઃ–

सू–क्रमाऽन्यत्वं परिणामाऽन्यत्वे हेतुः ॥ १५ ॥

સૂત્રાર્થઃ–(परिणामाऽन्यत्वे) પરિણામોના ભેદમાં (क्रमाऽन्यत्वं) ક્રમોનો ભેદ (हेतुः) કારણરૂપ છે.

અર્થાત્–પ્રથમ મૃત્તિકાનું ચૂર્ણરૂપે પરિણામ થાય છે, પછી પિંડરૂપે, પછી ઘટરૂપે, ફૂટ્યા પછી કપાલરૂપે, પછી કપાલિકારૂપે અને ત્યાર પછી કણરૂપે પરિણામ થાય છે. આ જે એક મૃત્તિકારૂપ ધર્મીનું પરિણામાન્યત્વ એટલે ભિન્ન ભિન્નરૂપે પરિણામ પામવું, તેમાં ક્રમાન્યત્વ એટલે ચૂર્ણ, પિંડ, ઘટનો જે પૂર્વાપરીભૂતરૂપ[2] ક્રમભેદ, તે જ કારણ છે.

ભાવ એ છે કે, એક જ મૃત્તિકાના ચૂર્ણ, પિંડ, ઘટ, કપાલ, કણ વગેરે આકારથી જે પરિણામપરંપરા, તે સઘળા લોકોને પ્રત્યક્ષ ક્રમવાળા જોવામાં આવે છે. કેમકે ચૂર્ણ અને પિંડનો જે આનન્તર્યરૂપ ક્રમ છે, તે અન્ય છે અને પિંડ તથા ઘટનો જે આનન્તર્ય ક્રમ છે, તે અન્ય છે. એ પ્રમાણે ઘટ અને કપાલનો જે આનન્તર્ય ક્રમ છે, તે અન્ય છે અને કપાલ તથા કણનો પણ આનન્તર્ય ક્રમ છે તે અન્ય છે. આ આનન્તર્યરૂપ ક્રમના જે અનેક પ્રકારના ભેદ છે, તેજ પરિણામ ભેદના સંપાદક છે. અર્થાત્ એ ક્રમભેદ જ પરિણામભેદનું કારણ છે. તેમાં જે ધર્મની પછી જે ધર્મ થાય છે, તે ધર્મ તેનો ક્રમ કહેવાય છે. જેમ કે પિંડરૂપ ધર્મ પછી ઘટરૂપધર્મ થવાથી, ઘટ એ પિંડનો ક્રમ છે. એ પ્રકારે સર્વત્ર જાણી લેવું.

આ ચૂર્ણ, પિંડ, ઘટાદિરૂપ જે ક્રમ પ્રદર્શન કર્યો છે, તેને ધર્મ-પરિણામક્રમ કહે છે.

અને ઘટનો અનાગતભાવથી વર્ત્તમાનભાવ થઈ જવો તથા પિંડનો વર્ત્તમાનભાવથી અતીતભાવ થઈ જવો, તે લક્ષણ પરિણામક્રમ છે.

૧–પ્રથમ પાદના ૩૨ મા સૂત્રમાં જોવું.

૨–આગળ પાછળ હોવારૂપ.

અતીતભાવ પછી અન્ય પરિણામનો અસંભવ હોવાથી અતીતના ક્રમનો અભાવ જાણવો. કેમકે બે ધર્મોનો પૂર્વાપર ભાવ હોવાથી જ ક્રમ થાય એમ નથી. તેથી અતીતનો કોઇથી પૂર્વભાવ ન હોવાથી અતીતના ક્રમનો અભાવ છે. માટે અનાગત તથા વર્તમાન, એ બંને લક્ષણોના ક્રમ જાણવા.

એ પ્રમાણે જ નૂતન ઘટમાં જે ક્ષણ પરંપરાને અનુસરી પુરાણપણું જોવામાં આવે છે, તે ઘટનો અવસ્થા પરિણામક્રમ જાણી લેવો. યદ્યપિ ધર્મપરિણામક્રમની પેઠે અવસ્થા પરિણામક્રમ જોવામાં આવતો નથી, તથાપિ અતિ પુરાણપણાને જોઇને અનુમાનથી તેનું જ્ઞાન જાણી લેવું.

અર્થાત્–[1]યત્નથી કોઠીમાં રાખી મૂકેલાં વ્રીહિ (ડાંગર) વગેરે અનાજ ઘણાં વર્ષ પછી કાઢતાં પ્રશિથિલ (અત્યંત શિથિલ) અવયવવાળાં થયેલાં હસ્તના સ્પર્શમાત્રથી એવાં ધૂળ જેવાં થઈ જાય છે કે, જાણે પરમાણુભાવને પામી ગયાં હોય. આ તેમનો પ્રશિથિલાવયવ હોવાથી જે પરમાણુભાવ થઈ જવો, તે એકદમ થઈ જવો તો અસંભવિત છે, પણ ક્ષણપરંપરાથી સૂક્ષ્મતમ, સૂક્ષ્મતર, સૂક્ષ્મ, સ્થૂળ, સ્થૂળતર, સ્થૂળતમરૂપ ક્રમથી તેવો ભાવ થઈ જાય છે, એમ માનવું પડશે. એ પ્રમાણે ક્ષણપરંપરા ક્રમથી ક્ષણે ક્ષણે વસ્તુમાં પુરાણાપણું આવી જવું, તે અવસ્થાપરિણામ છે. તેમાં એટલું વિશેષ છે કે, ધર્મ તથા લક્ષણ પરિણામ તો કાદાચિત્ક[2] હોય છે અને આ અવસ્થાપરિણામ તો પ્રતિક્ષણમાં બન્યું જ રહે છે, અને સ્થૂળભાવને પામીને પ્રકટ થાય છે.

ત્રણ પ્રકારના ક્રમોના જે ભેદ કહ્યા, તે ધર્મધર્મીના ભેદની અપેક્ષાને લઈ કહેલા છે. અર્થાત્ એ સઘળા ધર્મધર્મીભાવ આપેક્ષિક છે. કાંઈ વાસ્તવથી એવો નિયમ નથી કે, આ ધર્મ અને આ ધર્મી. કેમકે જે મૃત્તિકારૂપ ધર્મીનાં ત્રણ પરિણામ કહેવાયાં છે, તે મૃત્તિકા પણ ગંધતન્માત્રનો ધર્મ જ છે. એ પ્રમાણે જે ગંધતન્માત્ર, મૃત્તિકાની અપેક્ષાએ ધર્મી છે, તે પણ અહંકારનો ધર્મ છે.[3]

એ પ્રમાણે પ્રધાન જ મુખ્ય ધર્મી છે અને તે ધર્મીનાં આ બધાં પરિણામ છે, પણ યત્કિંચિત્ ભેદને લીધે તે ત્રણ પ્રકારનાં કહેલાં છે. વાસ્તવિક તો એક ધર્મીના જ ધર્મપરિણામનો બધો વિસ્તાર છે, એ સિદ્ધ થાય છે.

૧–તે અનુમાન પ્રકાર દર્શાવે છે, "અર્થાત્" ઇત્યાદિથી.

૨–કાદાચિત્ક=કોઈ કોઇવાર હોવાવાળું અર્થાત્ પ્રતિક્ષણમાં ન હોવાવાળું.

૩–એ પ્રમાણે અહંકારરૂપ ધર્મી પણ મહત્તત્ત્વનો ધર્મ છે, અને મહત્તત્ત્વ પણ પ્રધાનનો ધર્મ છે. એ પ્રકારે ધર્મધર્મી ભાવ આપેક્ષિક છે, પણ નિયત નથી.

જેમ આ બાહ્ય પદાર્થોમાં અનેક ધર્મપરિણામ છે, તેમ ચિત્તમાં પણ અનેક પ્રકારનાં ધર્મપરિણામ વિદ્યમાન છે. તેમાં[1] ચિત્તના ધર્મ બે પ્રકારના છેઃ–એક તો પરિદૃષ્ટ, અર્થાત્ પ્રત્યક્ષરૂપ અને બીજો અપરિદૃષ્ટ, અર્થાત્ પરોક્ષરૂપ છે. જે પ્રમાણ આદિ[2] ચિત્તની વૃત્તિઓ છે, તે પ્રત્યક્ષરૂપ છે, અને નિરોધ વગેરે જે ચિત્તના ધર્મ છે, તે પરોક્ષ રૂપ છે. કેમકે નિરોધ વગેરે શાસ્ત્ર અનુમાનદ્વારા જ પરિજ્ઞાત થાય છે, કાંઈ પ્રત્યક્ષ જણાતાં નથી. તે નિરોધ આદિ ધર્મ સાત છે. ૧ નિરોધ, ૨ ધર્મ, ૩ સંસ્કાર, ૪ પરિણામ, ૫ જીવન, ૬ ચેષ્ટા અને ૭ શક્તિ. એ પ્રમાણે જ ભગવાન્ વ્યાસજીએ કહેલું છે કે–"**निरोधधर्मसंस्काराः परिणामोऽथ जीवनं, चेष्टा शक्तिश्च चित्तस्य धर्मा दर्शनवर्जिताः**" इति । તેમાં ચિત્તવૃત્તિઓની નિરોધરૂપ જે અસંપ્રજ્ઞાત અવસ્થા છે, તે કેવળ યોગશાસ્ત્રથી પ્રતીત હોવાથી આગમગમ્ય[3] છે, તેથી નિરોધરૂપ ચિત્તધર્મ પરોક્ષ છે અને પુણ્યપાપરૂપ જે ચિત્તના ધર્મ છે, તે પણ આગમગમ્ય હોવાથી વા સુખદુઃખના ભોગદર્શનથી અનુમેય[4] હોવાથી પરોક્ષરૂપજ છે. એ પ્રમાણે સ્મૃતિદ્વારા સંસ્કારોનું અનુમાન હોવાથી સંસ્કારો પણ અપ્રત્યક્ષરૂપ છે; તથા જીવનરૂપ જે ચિત્તનો ધર્મ છે, તે પણ શ્વાસપ્રશ્વાસદ્વારા અનુમેય હોવાથી અપ્રત્યક્ષરૂપ છે.

એ પ્રમાણે પ્રતિક્ષણ ચિત્તનાં જે અનેક પ્રકારનાં પરિણામ છે, તે પણ અપ્રત્યક્ષ છે. કેમકે ચિત્ત ત્રિગુણાત્મક હોવાથી તથા ગુણોનો સ્વભાવ અતિચંચળ હોવાથી ચિત્તનું પરિણામ અનુમેય છે. વળી ચિત્તની જે ચેષ્ટા (ક્રિયા), તે પણ અપ્રત્યક્ષ છે. કેમકે તે પણ તે તે ઇંદ્રિયોની સાથે જ્ઞાનનો હેતુ જે સંયોગ છે, તેનાથી અનુમેય છે.

એ પ્રમાણે ચિત્તમાં કાર્યોની જે સૂક્ષ્માવસ્થારૂપ શક્તિ છે, તે પણ પરોક્ષ છે. કેમકે તે પણ સ્થૂળ કાર્યના જ્ઞાનથી અનુમેય[5] છે. ॥૧૫॥

૧–"**चित्तस्य द्वये धर्मा**" ઇત્યાદિ ભાષ્યનો અનુવાદ કરે છે, "તેમાં" ઇત્યાદિથી.

૨–આદિ શબ્દથી વિપર્યય, વિકલ્પ, નિદ્રા, સ્મૃતિ, રાગ, દ્વેષાદિ વૃત્તિઓનું ગ્રહણ કરવું.

૩–જે પદાર્થ કેવળ શાસ્ત્રદ્વારા પરિજ્ઞાત હોય, તે આગમગમ્ય કહેવાય છે.

૪–સુખદર્શનથી પુણ્યનું અને દુઃખદર્શનથી પાપનું અનુમાન થાય છે.

૫–અર્થાત્–સત્કાર્યવાદ સિદ્ધાંત હોવાથી સ્થૂલ રાગાદિને જોઈ સૂક્ષ્મ રાગાદિનું અનુમાન કરાય છે.

હવે આ પાદની સમાપ્તિપર્યન્ત, ધારણાદિમાં નિષ્ઠાવાળા સંયમી યોગીને, જિજ્ઞાસિત પદાર્થના સાક્ષાત્કારાર્થ સંયમના વિષય તથા સંયમની સિદ્ધિ જણાવનાર વિભૂતિઓ વિવેકપૂર્વક દેખાડવામાં આવશે. તેમાં પ્રથમ પૂર્વોક્ત પરિણામત્રય વિષયક સંયમ કરવાથી જે સિદ્ધિ પમાય છે, તેનું નિરૂપણ કરે છેઃ-

सू–परिणामत्रयसंयमादतीताऽनागतज्ञानम् ॥ १६ ॥

સૂત્રાર્થઃ-(**परिणामत्रयसंयमाद्**) ધર્મ, લક્ષણ, અવસ્થાસંજ્ઞક ત્રણ પરિણામોમાં ધારણા ધ્યાન, સમાધિ કરવાથી (**अतीताऽनागतज्ञानम्**) અતીત અને અનાગત (ભૂત અને ભવિષ્યત્) પદાર્થોનો યોગીને સાક્ષાત્કાર થઈ જાય છે.

અર્થાત્[1]–ત્રણે પરિણામ વિષયક સંયમ કરવાથી પ્રથમ એ પરિણામોનો સાક્ષાત્કાર થાય છે. પછી એ પરિણામોમાં અનુગત જે અતીત અને અનાગત ધર્મ છે, તેનું જ્ઞાન થાય છે. એ પ્રકારે પરંપરાથી એ ત્રણ પરિણામોના સંયમને અતીત અનાગત સાક્ષાત્કારનો હેતુ જાણવો. ॥૧૬॥

सू–शब्दार्थप्रत्ययानामितरेतराध्यासात्सङ्कर-
स्तत्प्रविभागसंयमात्सर्वभूतरुतज्ञानम् ॥ १७ ॥

સૂત્રાર્થઃ-(**शब्दार्थप्रत्ययानामितरेतराध्यासात्**) શબ્દ, અર્થ, જ્ઞાન એ ત્રણેનો પરસ્પર અધ્યાસ થવાથી (**संकर**) પરસ્પર મેળ પ્રતીત થાય છે. પરંતુ જે માણસ એ ત્રણેના વિભાગને જાણી તે વિષયક સંયમ કરે છે, તે પુરુષને (**तत्प्रविभागसंयमात्**) તે વિભાગ વિષયક સંયમ કરવાથી (**सर्वभूतरुतज्ञानम्**) સંપૂર્ણ પશુપક્ષી આદિની વાણીનું પરિજ્ઞાન થાય છે.

જે પ્રકારે શબ્દ, અર્થ, જ્ઞાન એ ત્રણેનો પરસ્પર અધ્યાસ થવાથી સંકર થાય છે, તે પ્રકાર, પ્રથમ પાદમાં સ્પષ્ટ કરેલો છે, અને જે પ્રકારે એ ત્રણે વિભિન્ન છે, એ પ્રકાર પણ ત્યાં સ્પષ્ટ છે.[2]

જે યોગી વિવેકથી એ ત્રણેના સંકર મિશ્રણને વિકલ્પરૂપ હોવાથી મિથ્યા જાણી, એ ત્રણેના વિભાગમાં સંયમ કરીને ('ગો' શબ્દ કંઠમાં

૧–જે વિષયક સંયમ કરાયો છે તેનો જ સાક્ષાત્કાર થવો ઉચિત છે, અન્યનો નહિ. તો એ નિયમ પ્રમાણે પરિણામવિષયક સંયમ કરવાથી અતીતાદિનો સાક્ષાત્કાર કેમ થાય? એ આશંકાનું વારણ કરતાં ભાષ્યનો ભાવાર્થ કહે છે, "અર્થાત્" ઇત્યાદિથી.

૨–પ્રથમ પાદના ૪૨ મા સૂત્રના વ્યાખ્યાનમાં એ સઘળું સ્પષ્ટ છે.

વિદ્યમાન અને ઉદાત્ત, અનુદાત્ત, મંદ, ઉચ્ચતાદિ ધર્મવાળો છે, અને 'ગો' શબ્દનો અર્થ ભૂમિમાં સ્થિત શૃંગાદિ વિશિષ્ટ વ્યક્તિ છે, તથા 'ગો' શબ્દનું જ્ઞાન ચિત્તમાં સ્થિત તથા પ્રકાશરૂપ છે.) એ પ્રકારના દૃઢ સંયમ-જન્ય યથાર્થજ્ઞાનવાળો જે હોય છે, તે સઘળાં પ્રાણીઓની વાણીના અર્થનો જાણનાર થઈ જાય છે.

અર્થાત્–સજાતીય તો શું, પણ વિજાતીય પશુપક્ષી આદિની વાણીનું અર્થજ્ઞાન એ યોગીને થાય છે.

આ સ્થળે ભાષ્યકારે પ્રસંગથી કાંઇક સ્ફોટવાદનો વિચાર કરેલો છે, પરંતુ યોગ જિજ્ઞાસુઓને અનુપયુક્ત જાણી, તેનો ઉલ્લેખ અહીં કર્યો નથી. ॥૧૭॥

सू–संस्कारसाक्षात्करणात् पूर्वजातिज्ञानम् ॥ १८ ॥

સૂત્રાર્થઃ–(संस्कारसाक्षात्करणात्) સંસ્કારવિષયક સંયમદ્વારા સંસ્કારોનો સાક્ષાત્કાર થવાથી (पूर्वजातिज्ञानम्) પૂર્વજાતિનું પરિજ્ઞાન થાય છે.

અર્થાત્–જેટલા જન્મ, પૂર્વે વ્યતીત થઈ ગયા છે, તે બધાનું યથાર્થ જ્ઞાન થઈ જાય છે.

ભાવ એ છે કે, સંસ્કાર બે પ્રકારના હોય છે. એક તો વાસના-રૂપ, કે જે સ્મૃતિ તથા ક્લેશનો હેતુ છે;[1] અને બીજા ધર્માધર્મરૂપ, કે જે જાતિ, આયુ, ભોગનો હેતુ છે. પૂર્વજન્મોમાં પોતપોતાના કારણોથી ઉત્પન્ન થયેલા, એ બધા સંસ્કાર ચિત્તમાં રહે છે, અને પરિણામ ચેષ્ટાદિની પેઠે અપ્રત્યક્ષરૂપ છે.[2] એ સંસ્કારોનો સંયમ કરવાથી સંસ્કારોનો સાક્ષાત્કાર થાય છે.

સંસ્કારનો જો કે સંયમ કરવાથી સંસ્કારોનો જ સાક્ષાત્કાર થવો ઉચિત છે, પણ પૂર્વજન્મનો નહિ. કેમકે અન્યનો સંયમ કરવાથી અન્યનો સાક્ષાત્કાર થવો, એ અનુભવથી વિરુદ્ધ છે. તથાપિ દેશ[3] કાળ

૧–તેમાં પ્રત્યક્ષાદિ પ્રમાણજન્ય સંસ્કાર, સ્મૃતિનો હેતુ છે અને અવિદ્યા આદિ સંસ્કાર અવિદ્યા આદિ ક્લેશોના હેતુ છે.

૨–પરિણામ ચેષ્ટાદિ અપ્રત્યક્ષ ધર્મોનું નિરૂપણ ૧૫ મા સૂત્રની વ્યાખ્યાના અંતમાં સ્ફુટ છે.

૩–દેશ=જે સ્થાનમાં જન્મ થયો તે. કાળ=જે કાળમાં પદાર્થોનો અનુભવ થયો છે તે. નિમિત્ત=જે શરીર ઇંદ્રિયાદિના સંબંધથી જ્ઞાન થયું છે તે. એ બધાનું જ્ઞાન ન હોતાં કેવળ સંસ્કારોનું જ્ઞાન થવું અસંભવિત છે.

નિમિત્તના જ્ઞાન વિના સંસ્કારોનો સાક્ષાત્કાર થવો અસંભવિત હોવાથી સંસ્કારોનો સાક્ષાત્કાર જ પૂર્વજન્મના જ્ઞાનનો આક્ષેપક (સાધક) જાણવો. અર્થાત્[1] દિવસે નહિ જમનારની રાત્રિ ભોજન વિના સ્થૂળતાની અનુપપત્તિ હોવાથી સ્થૂળતા, એ રાત્રિ ભોજનનો આક્ષેપક કરે છે; તેમ પૂર્વજન્માદિના જ્ઞાન વિના સંસ્કારોનો સાક્ષાત્કાર અસિદ્ધ હોવાથી સંસ્કારનો સાક્ષાત્કાર જ પૂર્વજન્મના જ્ઞાનનો આક્ષેપ કરે છે.

આ સ્થળે ભાષ્યકારે "**परत्राऽप्येवमेव संस्कारसाक्षात्करणात् परजातिसंवेदनम्**" એમ કહ્યું છે. તેનો અર્થ વાચસ્પતિમિશ્રે એવો કરેલો છે કે–સ્વસંસ્કારોમાં સંયમદ્વારા અન્ય પુરુષોના સંસ્કારોનો સાક્ષાત્કાર થવાથી યોગીને અન્ય પુરુષોના પૂર્વજન્મનું જ્ઞાન થઈ શકે છે અને વિજ્ઞાન ભિક્ષુએ તેનો એવો અર્થ કરેલો છે કે–અનાગત અવસ્થાથી વિદ્યમાન આગામી જન્મોના સંસ્કારોના સાક્ષાત્કારથી આગામી જન્મનું જ્ઞાન થાય છે. એ બંને અર્થના યુક્તાયુક્તમાં કેવળ યોગીનો જ અનુભવ આધારભૂત છે, તેથી અહીં વિશેષ વિચારની આવશ્યકતા નથી.

હવે ભાષ્યકારે આ ઠેકાણે પૂર્વોક્ત અર્થના વિશ્વાસ માટે આવટ્ય નામે યોગીશ્વરનો યોગીરાજ જૈગીષવ્યની સાથે થયેલા સંવાદનો ઉપન્યાસ કરેલો છે, તેનું નિરૂપણ કરે છે. "એક ભગવાન્ જૈગીષવ્ય નામના યોગીશ્વર હતા, કે જે સંસ્કારોના સાક્ષાત્કારને લીધે દશ મહાકલ્પોમાં વ્યતીત થયેલા પોતાના જન્મ પરિણામની પરંપરાનો અનુભવ કરતા વિવેકજન્ય જ્ઞાનસંપન્ન હતા; અને એક ભગવાન્ આવટ્ય નામે યોગીરાજ હતા, કે જે યોગબળથી સ્વેચ્છામય દિવ્ય શરીરને ધારણ કરી વિચરતા હતા. કોઈ સમયે એ બંને મહાનુભાવોનો મેળાપ થઈ ગયો, ત્યારે આવટ્યજીએ જૈગીષવ્યને પૂછ્યું કે, દશ મહાકલ્પ સૂધીમાં દેવ મનુષ્યાદિ યોનિઓમાં ઉત્પન્ન થઈ આપે જે અનેક પ્રકારની નરક તિર્યગ્ યોનિઓમાં તથા ગર્ભમાં દુઃખોનો અનુભવ કરેલો છે, તે બધો આપ જાણો છો. કેમકે આપનું ભવ્ય[2] અને અનભિભૂત બુદ્ધિસત્ત્વ હોવાથી સઘળા પૂર્વજન્મોનું આપને જ્ઞાન છે. તો આપ કહો, કે દશ

૧–હવે જે પ્રકારે, સંસ્કારોનો સાક્ષાત્કાર પૂર્વજન્મના જ્ઞાનનો આક્ષેપક એટલે સાધક છે, તે પ્રકારનું નિરૂપણ કરે છે, "અર્થાત્" ઇત્યાદિથી.

૨–ભવ્ય નામ સારાનું છે. અર્થાત્ રજતમરૂપ મળથી રહિત આપ છો, તેથી જ આપના બુદ્ધિનિષ્ઠ સત્ત્વને રજતમે દબાવેલું નથી.

મહાકલ્પોમાં આપે જે અનેક પ્રકારના જન્મ ધારણ કરેલા છે, એ જન્મોમાં આપે સુખ અને દુ:ખ એ બેમાંથી અધિક શું જાણ્યું? અર્થાત્ સંસાર, સુખ બહુલ છે કે દુ:ખ બહુલ? ત્યારે આવટ્ય ભગવાન્ પ્રતિ જૈગીષવ્યે જવાબ દીધો કે, એ દશ મહાકલ્પોમાં અનેક પ્રકારની નરકતિર્યગ્ યોનિઓમાં દુ:ખોનો અનુભવ કરતાં વારંવાર દેવ અને મનુષ્યાદિ યોનિઓમાં ઉત્પન્ન થઇને મેં જે અનુભવ કરેલો છે, તે સઘળાને હું દુ:ખરૂપ જાણું છું. અર્થાત્ વિષયસુખ, દુ:ખરૂપ હોવાથી સંસાર એ દુ:ખબહુલ જ છે, પણ સુખબહુલ નથી. ત્યારે ભગવાન્ આવટચે કહ્યું કે, હે જૈગીષવ્ય મુને! દીર્ઘ આયુવાળા આપને યોગબળથી પ્રધાનવશિત્વ[1] અને અનુત્તમ સંતોષસુખનો લાભ થયો છે, તેને પણ શું? દુ:ખપક્ષમાં ગણો છો ત્યારે ભગવાન્ જૈગીષવ્ય બોલ્યા કે, હે આવટ્ય મુને! વિષયસુખની અપેક્ષાથી જ આ સંતોષસુખ અનુત્તમ કહેવાય છે, પણ કૈવલ્યની અપેક્ષાથી તો તે પણ દુ:ખરૂપ જ છે. કેમકે સંતોષ એ બુદ્ધિનો ધર્મ છે, અને જે જે બુદ્ધિના ધર્મ છે, તે સઘળા ત્રિગુણાત્મક પ્રત્યય હોવાથી હેય પક્ષમાં ગણેલા છે.

અર્થાત્-સંતોષ એ બુદ્ધિનો ધર્મ છે, તેથી તે પણ મુખ્ય સુખરૂપ નથી. જો કે[2] સૂત્રકારે "**सन्तोषादनुत्तमः सुखलाभः** એ સૂત્રથી (સાધનપાદ સૂત્ર ૪૨) સંતોષને અનુત્તમ સુખનો હેતુ કહેલો છે. તેનું તાત્પર્ય એ છે કે, રજ્જુની પેઠે પુરુષોને બાંધવાવાળો જે દુ:ખસ્વરૂપ તૃષ્ણારૂપ તંતુ છે, તે તૃષ્ણારૂપ દુ:ખનો સંતોષથી નાશ થાય છે અને પછી તૃષ્ણાના અભાવથી પીડારહિત થયેલું ચિત્ત પ્રસન્ન થઈ જાય છે. એ પ્રમાણે તૃષ્ણાની નિવૃત્તિદ્વારા સર્વાનુકૂળ સંતોષને ઉત્તમ કહેલો છે, કાંઈ વસ્તુતાએ નહિ. કેમકે કૈવલ્યની અપેક્ષાથી એ સઘળું દુ:ખરૂપ જ છે." ॥૧૮॥

सू–प्रत्ययस्य परचित्तज्ञानम् ॥ १९ ॥

સૂત્રાર્થ:-(**प्रत्ययस्य**) પરચિત્તનો સંયમ કરવાથી (**परचित्तज्ञानम्**) બીજાના ચિત્તનો સાક્ષાત્કાર થાય છે.

૧-પ્રધાનવશિત્વ=પ્રકૃતિને પોતાને અધીન કરી લેવી તે. એ સામર્થ્ય હોવાથી જ યોગીને ઇશ્વર કહે છે. કેમકે પ્રધાનવશિત્વ હોવાથી જે ચાહે તે યોગી કરી શકે છે.

૨-જ્યારે સંતોષ પણ મુખ્ય સુખસ્વરૂપ નથી, તો સૂત્રકારે તેને અનુત્તમ સુખ કેમ કહ્યું, તેનું સમાધાન કરે છે, "જોકે" ઇત્યાદિથી.

યદ્યપિ પ્રત્યય નામ કેવળ ચિત્તનું છે, કાંઈ પરચિત્તનું નહિ, તથાપિ પરાયા ચિત્તના સાક્ષાત્કારરૂપ ફળનાં કથનથી અહીં "પ્રત્યય" પદનો અર્થ પરનું ચિત્ત જાણવો. કેમકે જે વિષયનો સંયમ કરવામાં આવે છે, તેનો જ સાક્ષાત્કાર થવો યુક્ત છે, અન્યનો નહિ. ॥ ૧૯ ॥

જેવી રીતે સંસ્કારોના સાક્ષાત્કારથી પૂર્વજન્મનો સાક્ષાત્કાર કહેલો છે, તેવી રીતે પરચિત્તના સાક્ષાત્કારથી વિષયસહિત ચિત્તનો સાક્ષાત્કાર થાય છે, કે કેવળ ચિત્તનો, તે વિષે કહે છે-

सू–न च तत्सालम्बनं[1] तस्याऽविषयीभूतत्वाद् ॥२० ॥

સૂત્રાર્થ:-(तत्) તે પરચિત્તનું જ્ઞાન (सालम्बनं न च) તેના વિષય સહિત[2] થતું નથી. કેમકે (तस्याऽविषयीभूतत्वाद्) પરચિત્તના વિષયનો સંયમ કરવામાં આવતો નથી અર્થાત્ એ પુરુષનું ચિત્ત રાગયુક્ત છે કે દ્વેષયુક્ત છે, એટલું જ માત્ર યોગીને જ્ઞાન હોય છે, પણ કયા વિષયમાં રાગ વ દ્વેષવાળું છે, એમ વિશેષ જ્ઞાન હોતું નથી.

ભાવ એ છે કે-પરાયા ચિત્તનું જે આલંબન (વિષય) છે, અર્થાત્ પરચિત્ત જે વિષયમાં રાગયુક્ત હોય છે, તે વિષયનો યોગીના ચિત્તે સંયમ નથી કર્યો, કિંતુ પરચિત્તનો જ યોગીના ચિત્તે સંયમ કર્યો છે, તેથી પરાયા ચિત્તનું જ યોગીને જ્ઞાન થાય છે, પણ પરાયા ચિત્તના વિષયનું થતું નથી. પરંતુ જો વિષય વિશિષ્ટમાં સંયમ કરાય, તો વિષયનું જ્ઞાન થવું દુર્ઘટ જાણવું નહિ; મતલબ કે તે પણ થાય. ॥૨૦॥

सू–कायरूपसंयमात् तद्ग्राह्यशक्तिस्तम्भे चक्षुःप्रकाशाऽसम्प्रयोगेऽन्तर्द्धानम् ॥ २१ ॥

સૂત્રાર્થ:-(कायरूपसंयमात्) પોતાના શરીરના રૂપનો સંયમ કરવાથી (तद्ग्राह्यशक्तिस्तम्भे) તે રૂપની ગ્રાહ્યશક્તિના રોકાઈ જવાથી (चक्षुःप्रकाशाऽसम्प्रयोगे) બીજાના નેત્રજન્ય પ્રકાશથી યોગીના શરીરનો સંબંધ ન હોવાથી (अन्तर्द्धानम्) યોગીનું શરીર અંતર્દ્ધાન થાય છે.

અર્થાત્-આ જે પાંચભૌતિક[3] શરીર છે, તે રૂપવાળું હોવાથી નેત્ર-

૧-"આ સૂત્ર નથી પણ ભાષ્ય છે." એમ માનવું એ યોગવાર્તિકકારનો ભ્રમ જાણવો. કેમકે ભોજવૃત્તિકાર અને વાચસ્પતિમિશ્રે એને સૂત્ર માનેલું છે.

૨-આલંબન નામ રાગાદિ વિષયોનું છે.

૩-પંચભૂતોનું પરિણામવિશેષ.

જન્ય જ્ઞાનનો વિષય છે. અર્થાત્ રૂપદ્વારા જ આ શરીર ચક્ષુવડે જોઈ શકાય છે. યોગી જ્યારે આ શરીરના રૂપનો સંયમ કરે છે, ત્યારે રૂપમાં જે ગ્રાહ્યશક્તિ છે, તે પ્રતિબદ્ધ થઈ જાય છે. અર્થાત્ ચક્ષુનો વિષય થઈ જવું, એવું જે રૂપમાં સામર્થ્ય છે, તે રોકાઈ જાય છે. તેના રોકાઈ જવાથી પરકીય ચક્ષુજન્ય જ્ઞાનથી યોગીના શરીરનો અસંપ્રયોગ થઈ જાય છે. અર્થાત્ સન્મુખ વિદ્યમાન છતાં પણ યોગીના શરીરને કોઈ જોઈ શકતું નથી. તેનું નામ અંતર્દ્ધાન[1] સામર્થ્ય છે.

જેમ રૂપનો સંયમ કરવાથી યોગીનાં શરીરને કોઈ દેખી શકતું નથી, તેમ શબ્દનો સંયમ કરવાથી શબ્દની ગ્રાહ્ય શક્તિના રોકાવાથી શ્રોત્રનો શબ્દની સાથે અસંનિકર્ષ (સંબંધનો અભાવ) હોવાથી શબ્દનું અંતર્દ્ધાન જાણી લેવું. અર્થાત્-જેમ યોગીનું રૂપ કોઇને પ્રત્યક્ષ થતું નથી, તેમ યોગીનો શબ્દ પણ કોઈ સાંભળી શકતું નથી. એ પ્રમાણે સ્પર્શ, રસ અને ગંધનું[2] પણ અંતર્દ્ધાન જાણી લેવું. ॥૨૧॥

सू–सोपक्रमं निरुपक्रमं च कर्म तत्संयमादपरान्तज्ञानमरिष्टेभ्यो वा २२

સૂત્રાર્થ:-સોપક્રમ અને નિરૂપક્રમરૂપ એમ જે બે પ્રકારનું કર્મ છે, તેનો સંયમ કરવાથી (**अपरान्तज्ञानम्**) મરણનું જ્ઞાન થાય છે. (**वा**) અથવા (**अरिष्टेभ्यो**) ત્રણ પ્રકારના અરિષ્ટોના જ્ઞાનથી મરણનું જ્ઞાન થાય છે.

અર્થાત્-કર્મ બે પ્રકારનાં છે. એક સોપક્રમ અને બીજું નિરૂપક્રમ. જે કર્મ પોતાનાં ફળ દેવામાં પ્રવૃત્ત થયેલું ઘણાં ફળ આપી ચૂકેલું છે, અને થોડાં ફળ દેવાં જેનાં બાકી છે, તે સોપક્રમ કહેવાય છે. કેમકે (ઉપક્રમ) ફળદાનરૂપ વ્યાપારથી તે યુક્ત છે અને જે કર્મ વર્ત્તમાન કાળમાં ફળદાનરૂપ વ્યાપારથી રહિત છે, પણ કાળાંતરે ફળ દેવાવાળું છે, તે નિરૂપક્રમ[3] કર્મ કહેવાય છે.

૧–અંતર્દ્ધાન એટલે ગુપ્ત થઈ જવું, છૂપાઈ જવું.

૨–અર્થાત્–જેમ યોગી પોતાના શરીરના રૂપ તથા શબ્દનો સંયમ કરવાથી રૂપ તથા શબ્દની ગ્રાહ્યશક્તિને પ્રતિબદ્ધ કરી દે છે; તેમ સ્પર્શ, રૂપ, રસ, ગંધનો સંયમ કરવાથી તેઓની ગ્રાહ્યશક્તિને પણ પ્રતિબદ્ધ કરી દે છે. અર્થાત્–શબ્દાદિ પાંચ વિષયનો સંયમ કરવાથી યોગીના શરીરનાં શબ્દ, સ્પર્શ, રૂપ, રસ, ગંધને સમીપમાં રહેલો માણસ પણ જાણી શકતો નથી.

૩–અર્થાત્–જલદી ફળ દેવાવાળું કર્મ સોપક્રમ કર્મ છે અને વિલંબથી ફળ દેવાવાળું કર્મ નિરૂપક્રમ જાણવું.

ભાવ એવો છે કે-જેમ લીલું (ભીનું) વસ્ત્ર વિસ્તારપૂર્વક પહોળું કરીએ તો જલદી સૂકાઈ જાય છે, તેમ સોપક્રમ કર્મ છે; અને તે જ વસ્ત્ર એકઠું કરી રાખી મૂકેલું વિલંબથી સૂકાય છે, તેમ નિરૂપક્રમ કર્મ જાણવું. અથવા જેમ સૂકા ઘાસ ઉપર ફેંકેલો અગ્નિ ચારે તરફથી પવન આવતાં જલદીથી તૃણને બાળી દે છે, તેવું સોપક્રમ કર્મ જાણવું, અને લીલા ઘાસ ઉપર ફેંકેલો અગ્નિ વિલંબથી ઘાસને બાળે છે, તેમ વિલંબથી ફળ દેવાવાળું નિરૂપક્રમ કર્મ જાણવું. એ બંને જાતનાં કર્મનો સંયમ કરવાથી યોગીને મરણનું જ્ઞાન થાય છે. અર્થાત્ આ દેશમાં, આ કાળમાં મારા શરીરનો પાત થશે, એવું યોગીને દૃઢ જ્ઞાન થાય છે. (अरिष्टेभ्यो वा) અથવા અરિષ્ટોના જ્ઞાનથી પણ મરણજ્ઞાન થઈ શકે છે. અરિષ્ટ એટલે નજીક આવેલું મરણસૂચક ચિહ્ન. તે અરિષ્ટ ત્રણ પ્રકારનાં છે. આધ્યાત્મિક, આધિભૌતિક અને આધિદૈવિક. કાનને આંગળી વા હાથથી બંધ કરવાથી અંદરનો અવાજ ન સાંભળવો; અને નેત્રો મીંચ્યા છતાં પણ અંદર અગ્નિકણ સમાન જ્યોતિનું પ્રતીત ન થવું, એ આધ્યાત્મિક અરિષ્ટ કહેવાય છે. અકસ્માત્ યમદૂતોને અને પોતાનાં મૃત માતપિતા વગેરેને જોવાં, તે આધિભૌતિક અરિષ્ટ છે, અને અકસ્માત્ સ્વર્ગ વા સિદ્ધ વગેરેને જોવા, એ આધિદૈવિક અરિષ્ટ છે. એ ત્રણ પ્રકારનાં અરિષ્ટ હોવાથી પણ સમીપ મરણનું જ્ઞાન થાય છે.

એ પ્રમાણે જ[1] વિપરીત જ્ઞાન થવું, એને પણ એક અરિષ્ટ જાણવું. અર્થાત્-મનુષ્ય લોકને જ સ્વર્ગ જાણવું, અધર્મને ધર્મ જાણવો અને ધર્મને અધર્મ જાણવો, એ પણ સન્નિહિત મરણનાં ચિહ્ન છે. એ પ્રમાણે[2] પ્રકૃતિવિપર્યય પણ મરણનું ચિહ્ન જાણવું. ॥ ૨૨ ॥

सू–मैत्र्यादिषु बलानि ॥ २३ ॥

સૂત્રાર્થ:-(मैत्र्यादिषु) મૈત્રી, કરુણા, મુદિતા એ ત્રણે ભાવનાનો સંયમ કરવાથી (बलानि) મૈત્ર્યાદિ બળ પ્રાપ્ત થાય છે.

અર્થાત્, સુખી પ્રાણીઓની સાથે જે મૈત્રીભાવના પૂર્વની સાથે

૧–"विपरीतं वा सर्वम्" એ ભાષ્યનો અનુવાદ કરે છે, "એ પ્રમાણે" ઇ૦

૨–कृपणोऽपि वदान्यः स्याद् वदान्यः कृपणो यदि, प्रकृतेर्विकृतिश्चेत् स्यात्तदा पंचत्वमृच्छति" ઇત્યાદિ સ્કંધપુરાણનાં વચનોમાં, કૃપણનું ઉદાર થવું, ઉદારનું કૃપણ થવું વગેરે, સ્વભાવનું બદલાઈ જવું, એ મરણનાં ચિહ્ન છે, તે કહે છે, "એ પ્રમાણે" ઇત્યાદિથી.

કહી છે, તે ભાવનાના નિરંતર પ્રવાહરૂપ સંયમ નામનો દૃઢ અભ્યાસ કરવાથી પુરુષને મૈત્રીબળ પ્રાપ્ત થાય છે. અર્થાત્, સઘળા માણસો તેના મિત્ર બની જાય છે, અને બધાનો તે સુખકારી થઈ જાય છે. એ પ્રમાણે દુ:ખી પ્રાણીઓમાં કરુણાભાવનાનો સંયમ કરવાથી કરુણાબળ પ્રાપ્ત થઈ જાય છે. અર્થાત્, દુ:ખી જનોનાં દુ:ખની નિવૃત્તિ કરવાના સામર્થ્યવાળો બની જાય છે. એ પ્રમાણે પુણ્યશીળોમાં મુદિતાભાવના વિષયક સંયમ કરવાથી મુદિતાબળ પ્રાપ્ત થાય છે. અર્થાત્-ચિન્તાયુક્ત ખિન્ન પુરુષોને આનંદયુક્ત કરે છે.

અને જે[1] પાપીજનો ઉપર ઉપેક્ષારૂપ ચિત્તની વૃત્તિ છે, તે તો ત્યાગસ્વરૂપ છે પણ ભાવનારૂપ નથી. તેથી ઉપેક્ષા વિષયક ભાવનાના અભાવથી સંયમનો અભાવ હોવાથી ઉપેક્ષાબળની પ્રાપ્તિનો અહીં પણ અભાવ જાણવો. ॥ ૨૩ ॥

सू–बलेषु हस्तिबलादीनि ॥ २४ ॥

સૂત્રાર્થ:-હસ્તી વગેરેના બળ વિષે સંયમ કરવાથી હસ્તી આદિનું બળ પ્રાપ્ત થાય છે.

અર્થાત્-હસ્તિના બળનો સંયમ કરવાથી હસ્તિના જેવો બળવાળો થઈ જાય છે, અને ગરુડના બળનો સંયમ કરવાથી ગરુડ સમાન બળવાળો થઈ જાય છે. વાયુના બળનો સંયમ કરવાથી વાયુસદૃશ બળવાળો થઈ જાય છે. અર્થાત્ જેના બળનો સંયમ કરે છે તેના બળને યોગી પ્રાપ્ત થાય છે, એ તત્ત્વ છે. ॥ ૨૪ ॥

सू–प्रवृत्त्याऽऽलोकन्यासात् सूक्ष्मव्यवहितविप्रकृष्टज्ञानम् ॥२५॥

સૂત્રાર્થ:-પ્રથમપાદમાં જે જ્યોતિષ્મતી નામે મનની પ્રવૃત્તિ નિરૂપણ કરેલી છે,[2] તેનો જે આલોક[3] છે, તેનો સૂક્ષ્મ,[4] વ્યવહિત, વા વિપ્રકૃષ્ટ

૧-પૂર્વપાદમાં મૈત્રી, કરુણા, મુદિતા, ઉપેક્ષા એ ચાર ભાવનાનું નિરૂપણ કરેલું હોવાથી અહીં પણ એ ચારેનું ફળ કહેવું જોઇએ, છતાં ત્રણનું ફળ કેમ કહ્યું, તેનો ઉત્તર આપે છે, "અને જે" ઇત્યાદિથી.

૨-પ્રથમ પાદ સૂત્ર ૩૬ મું જુઓ.

૩-આલોક=સાત્ત્વિક પ્રકાશ.

૪-સૂક્ષ્મ=પરમાણુ, પ્રકૃતિ વગેરે. વ્યવહિત=વ્યવધાનવાળા પદાર્થ, અર્થાત્ પૃથ્વીની અંદર દબાયલા નિધિ વગેરે. વિપ્રકૃષ્ટ-દૂર રહેલા સુમેરુ વગેરે ગિરિમાં રહેલી ઔષધિ વગેરે.

પદાર્થમાં યોગી સંમયદ્વારા જે ન્યાસ કરશે, તે ન્યાસથી સૂક્ષ્મઆદિ સઘળા પદાર્થનું જ્ઞાન યોગીને થઈ જશે. ॥ ૨૫ ॥

सू–भुवनज्ञानं सूर्ये संयमात् ॥ २६ ॥

સૂત્રાર્થ:–સૂર્યવિષયક સંયમ કરવાથી ભુવનનું જ્ઞાન થાય છે. હવે અહીં ભાષ્યકારે જે પ્રકારે ભુવનના વિન્યાસનું[1] કથન કરેલું છે, તે પ્રકાર પ્રદર્શન કરે છે.

તેમાં ભૂમિ આદિ સપ્તલોક, અવીચિ આદિ સપ્ત મહાનરક તથા મહાતલ આદિ સપ્ત પાતાળ, એ ભુવન પદનો અર્થ છે અને તેનો વિન્યાસ એ છે કે, અવીચિથી માંડી મેરુના પૃષ્ઠ પર્યંત જે લોક છે, તે ભૂલોક છે; મેરુ પૃષ્ઠથી ધ્રુવ નામના તારા પર્યંત જે ગ્રહ નક્ષત્ર તારાવડે ચિત્રિત લોક છે, તે અંતરિક્ષ લોક છે; અને ત્યાંથી દૂર પંચ પ્રકારના સ્વર્ગ લોક છે. તેમાં ભૂલોક અને અંતરિક્ષ લોકથી દૂર જે ત્રીજો સ્વર્ગલોક છે, તે માહેન્દ્રલોક કહેવાય છે; અને ચતુર્થ જે મહઃ નામે લોક છે, તે પ્રાજાપત્ય સ્વર્ગ કહેવાય છે. ત્યાંથી આગળ જે જનલોક, તપલોક, સત્યલોક નામે ત્રણ સ્વર્ગ છે, તે ત્રણે લોક બ્રહ્મલોક કહેવાય છે.

"**ब्राह्मस्त्रिभूमि को लोकः प्राजापत्यस्ततो महान्, माहेन्द्रश्च स्वरित्युक्तो दिवि तारा भुवि प्रजाः॥**[2] આ, એ લોકોનો સંક્ષિપ્ત શ્લોક છે.

જેવી રીતે પૃથ્વીથી ઉપરના ભાગમાં બીજા છ લોક છે, તેવી રીતે પૃથ્વીની નીચેના ભાગમાં બીજા ચૌદ લોક છે. તેમાં સઘળાથી નીચે અવીચિ નામે નરક છે. તેની ઉપર મહાકાલ નામે નરક છે, જે માટી, પાષાણ, કંકરયુક્ત છે. તે ઉપર અંબરીષ નામે નરક છે, જે જળથી ભરેલું છે. તેની ઉપર રૌરવ નામે નરક છે, જે અગ્નિથી ભરેલું છે. તેની ઉપર મહારૌરવ નામે નરક છે, જે વાયુથી ભરપૂર છે. તે ઉપર કાલસૂત્ર નામનું નરક છે, જે અંદરથી ખાલી છે. તેની ઉપર અંધતામિસ્ર નામનું નરક છે, જે અંધકારથી વ્યાપ્ત છે. એ સઘળાં નરકોમાં તે જ માણસ

૧–વિન્યાસ=ગોઠવણ, રચના. ઉંચે નીચે રહેલા લોકની ગોઠવણ.

૨–જન, તપ, સત્ય નામે ત્રણ ભૂમિકાવાળો બ્રહ્મલોક છે, અને તેની નીચે મહર્ નામે પ્રજાપતિલોક છે. તેની નીચે સ્વર્ગ નામે માહેન્દ્રલોક છે, અને તેની નીચે અંતરિક્ષ લોક છે, જેમાં તારા વગેરે વિદ્યમાન છે. તેની નીચે પૃથ્વી લોક છે, કે જેમાં અનેક પ્રકારની મનુષ્ય પ્રજા વિદ્યમાન છે, એવો આ શ્લોકનો અર્થ છે.

દુઃખદાયક લાંબું આયુષ્ય લઈ જન્મ લે છે, કે જે પોતાનાં કરેલાં પાપ કર્મોનું દુઃખ ભોગવવાવાળો હોય. એ નરકોની ઉપર મહાતલ, રસાતલ, અતલ, સુતલ, વિતલ, તલાતલ અને પાતાલ, આ સપ્ત પાતાલ છે; અને આઠમી ભૂમિ વસુમતી છે. જે સાત દ્વીપોથી સંયુક્ત છે અને જેના મધ્યમાં સુવર્ણમય પર્વતરાજ સુમેરુ વિરાજમાન છે, તે સુમેરુ પર્વતરાજની ચારે દિશામાં ચાર શિખર છે. તેમાં પૂર્વ દિશામાં જે શિખર છે, તે રૂપાનું છે, દક્ષિણ દિશાનું શિખર વૈદૂર્યમણિનું છે; પશ્ચિમ દિશાનું શિખર સ્ફટિકનું છે; અને ઉત્તર દિશામાં જે શૃંગ છે, તે સુવર્ણનું છે.

વૈદૂર્ય નામના મણિની[1] પ્રભાના સંબંધથી સુમેરુના દક્ષિણ ભાગના આકાશનો વર્ણ નીલ કમલના પત્ર જેવો શ્યામ છે, અને તેના પૂર્વ ભાગમાં રહેલું આકાશ શ્વેત વર્ણવાળું છે. પશ્ચિમ ભાગનું આકાશ સ્વચ્છ વર્ણવાળું છે, અને ઉત્તર ભાગનું આકાશ પીળા રંગવાળું છે. અર્થાત્ જે જે દિશામાં જે જે વર્ણવાળાં શિખર છે, તે તે દિશાનું આકાશ તેવા તેવા રંગનું જણાય છે. એ સુમેરુ પર્વતની ઉપર દક્ષિણ ભાગમાં એક જંબૂ નામે વૃક્ષ છે, તેના નામથી આ દ્વીપનું નામ જંબૂદ્વીપ છે.

તે સુમેરુ પર્વતની ચારે તરફ સૂર્ય ભ્રમણ કરે છે, તેથી જ સુમેરુના જે ભાગને સૂર્ય છોડી જાય છે, ત્યાં રાત્રિ હોય છે, અને જે ભાગને સૂર્ય ભૂષિત કરે છે, ત્યાં દિવસ થાય છે. એ પ્રમાણે સર્વદા સુમેરુ દિવસ અને રાત્રિથી યુક્ત રહે છે. એ સુમેરુની ઉત્તર દિશામાં નીલ-શ્વેત શૃંગવાળા નામે ત્રણ પર્વત છે. એ ત્રણે પર્વત બબ્બે યોજન વિસ્તારવાળા છે અને એ પર્વતોની વચ્ચે જે અવકાશ છે, તેમાં રમણક, હિરણ્યમય અને ઉત્તર કુરુ નામે ત્રણ વર્ષ (ખંડ) છે. એ બધા નવ નવ હજાર યોજન વિસ્તારવાળા છે. એ પ્રમાણે દક્ષિણ ભાગમાં બબ્બે હજાર યોજન વિસ્તારવાળા નિષધ, હેમકૂટ, હિમશૈલ નામે ત્રણ પર્વત છે, અને તેમની મધ્યેના અવકાશમાં નવ નવ હજાર યોજન વિસ્તારવાળા હરિવર્ષ, કિંપુરુષ, ભારત નામના ત્રણ વર્ષ વિદ્યમાન છે. એવી રીતે સુમેરુની પૂર્વ દિશાથી સંયુક્ત માલ્યવાન્ નામે પર્વત છે, અને એ પર્વતથી સમુદ્રપર્યન્ત ભદ્રાશ્વ નામે દેશ છે. એ પ્રમાણે સુમેરુની પશ્ચિમ દિશાથી સંયુક્ત ગંધમાદન નામે પર્વત છે; અને એ પર્વતથી સમુદ્રપર્યન્ત કેતુમાલ નામે દેશ છે અને એ બંનેની વચ્ચેના વર્ષનું નામ ઇલાવૃત્ત છે.

૧—વૈદૂર્યમણિ નીલા (આકાશી) રંગનો હોય છે.

એ પ્રકારે[1] આ સઘળો જંબૂદ્વીપ સો હજાર યોજન વિસ્તારવાળો છે.

તેમાં એટલું વિશેષ છે કે, પચાસ હજાર યોજન વિસ્તારવાળા દેશમાં તો સુમેરુ વિરાજમાન છે અને પચાસ હજાર યોજન વિસ્તારવાળો દેશ સુમેરુની ચારે તરફ છે.[2] એ બધો મળી લાખ યોજન પરિમાણવાળો જંબૂદ્વીપ કહેવાય છે. આ જે સો હજાર યોજન વિસ્તારવાળો જંબૂદ્વીપ છે, તે તેનાથી બમણા પરિમાણવાળા વલયાકાર (કંકણાકાર) ક્ષાર સમુદ્રથી વિંટાયલો છે.

એ જંબૂદ્વીપથી આગળ તેનાથી બમણા પરિમાણવાળો શાકદ્વીપ છે. એ પણ પોતાનાથી બમણા પરિમાણવાળા વલયાકાર ઈક્ષુરસ (શેરડીનો રસ) ના સાગરથી વેષ્ટિત છે. તેનાથી આગળ તેનાથી બમણા પરિમાણવાળો કુશદ્વીપ છે. તે પણ પોતાનાથી બમણા પરિમાણવાળા[3] વલયાકાર મદિરાના સમુદ્રવડે વેષ્ટિત છે. તેનાથી આગળ બમણા વિસ્તારવાળો ક્રૌંચદ્વીપ છે, તે પણ પોતાનાથી બમણા પરિમાણવાળા વલયાકાર ઘૃતસમુદ્રથી વેષ્ટિત છે. તેનાથી આગળ બમણા વિસ્તારવાળો શાલ્મલદ્વીપ છે, તે પણ તેનાથી દ્વિગુણ પરિમાણવાળા વલયાકાર દધિના સમુદ્રવડે વેષ્ટિત છે. તેનાથી આગળ દ્વિગુણ પરિમાણવાળો મગધદ્વીપ છે. તે પણ પોતાથી દ્વિગુણ પરિમાણવાળા વલયાકાર ક્ષીર સમુદ્રથી વિંટાયલો છે. તેનાથી આગળ દ્વિગુણ પરિમાણવાળો પુષ્કરદ્વીપ છે. તે પણ પોતાનાથી બમણા પરિમાણવાળા વલયાકાર મિષ્ટ જળના સમુદ્રવડે વેષ્ટિત છે. આ સાતે સમુદ્ર સર્ષપરાશિના જેવા[4] છે અને દ્વીપ, વિચિત્ર સમુદ્રવાળા ને સુંદર છે. એ સાત દ્વીપોની આગળ લોકાલોક પર્વત છે.

એ લોકાલોક પર્વતથી પરિવૃત સપ્તસમુદ્ર સહિત સપ્તદ્વીપ જે છે, તે બધું મળીને પચાસ કોટિ યોજના વિસ્તારવાળું છે. કેમકે ઋષિઓએ

૧–"स खल्वयं शतसहस्रायामो जम्बूद्वीपः" એ ભાષ્યનો અનુવાદ કરતાં સંપૂર્ણ જંબૂદ્વીપના વિસ્તારનું નિરૂપણ કરે છે, "એ પ્રકારે" ઇત્યાદિથી.

૨–અર્થાત્–સુમેરુની ચારે દિશાઓમાં જે અવકાશ અને દેશ છે, તે પચાસ હજાર યોજન વિસ્તારવાળો છે.

૩–કુશદ્વીપથી બમણા વિસ્તારવાળો–એ પ્રમાણે સઘળે પૂર્વ પૂર્વ દ્વીપથી ઉત્તર ઉત્તર દ્વીપને બમણો જાણવો.

૪–જેમ સરસવના ઢગલા ઉંચા હોતા નથી કે ભૂમિની સમાન હોતા નથી, તેવા સમુદ્ર છે.

એટલું જ તેનું પરિસંખ્યાન કરેલું છે, કાંઈ ન્યૂન વા અધિક નહિ.

જે આ શોભન સંનિવેશવાળા લોકાલોક પર્વતવડે પરિવૃત વિશ્વંભરા (પૃથ્વી) મંડળ છે, તે સઘળું બ્રહ્માંડની અંતર્ગત સંક્ષિપ્ત રૂપથી વર્તમાન છે, અને તે બ્રહ્માંડ, પ્રધાનનો એક સૂક્ષ્મ અવયવ છે. કેમકે જેમ આકાશના એક અતિ અલ્પ દેશમાં ખદ્યોત વિરાજમાન છે, તેમ પ્રધાનના અતિ અલ્પદેશમાં આ બ્રહ્માંડ વિરાજમાન છે.

આ[1] બધાં પાતાળ, સમુદ્ર તથા પર્વતોમાં, અસુર, ગંધર્વ, કિન્નર (કિંપુરુષ), યક્ષ, રાક્ષસ, ભૂત, પ્રેત, પિશાચ, અપસ્મારક, અપ્સરા, બ્રહ્મરાક્ષસ, કુષ્માંડ, વિનાયક નામે દેવયોનિ વિશેષ નિવાસ કરે છે. સઘળા દ્વીપોમાં પુણ્યાત્મા દેવમનુષ્ય નિવાસ કરે છે. સુમેરુ પર્વત એ દેવતાઓની ઉદ્યાનભૂમિ છે. કેમકે ત્યાં મિશ્રવન, નંદનવન, ચૈત્રરથવન, સુમાનસવન, એવાં ચાર વન છે. તે સુમેરુ ઉપર સુધર્મા નામે દેવસભા છે, અને સુદર્શન નામનું પુર છે, તથા વૈજયંત નામે પ્રાસાદ (મહેલ) છે. એ સઘળું પૂર્વોક્ત ભૂલોક કહેવાય છે. તેના ઉપર અંતરિક્ષ લોક છે. જેમાં ગ્રહ, નક્ષત્ર તથા તારકા[2] ભ્રમણ કરે છે. એ સઘળા ધ્રુવ નામના જ્યોતિની સાથે વાયુરૂપ રજ્જુથી બાંધેલા, વાયુના પ્રતિનિયત સંચારથી સંચારવાળા થયેલા, ધ્રુવની ચારે તરફ ભ્રમણ કરે છે. એ ધ્રુવસંજ્ઞક જ્યોતિ મેઢિકાષ્ઠની[3] પેઠે નિશ્ચળ છે. તેની ઉપર સ્વર્ગલોક છે. તેને માહેન્દ્રલોક કહે છે. એ માહેન્દ્રલોકમાં ત્રિદશ, અગ્નિષ્વાત્તા, યામ્ય, તુષિત, અપરિનિર્મિતવશવર્તી, પરિનિર્મિતવશવર્તી એ છ દેવયોનિ વિશેષે કરી નિવાસ કરે છે. એ બધા દેવતા સંકલ્પસિદ્ધ, અણિમાદિ ઐશ્વર્યસંપન્ન, કલ્પાયુષવાળા,[4] વૃંદારક, કામભોગી, ઔપપાદિક દેહવાળા અને ઉત્તમ અનુકૂળ અપ્સરાઓવડે પરિવૃત છે, અર્થાત્ અપ્સરાઓ તેમની સ્ત્રીઓ છે.

૧–હવે જે જે સ્થાનમાં નિવાસ કરે છે, તેનું નિરૂપણ કરે છે, "આ બધાં" ઇત્યાદિથી.

૨–ગ્રહ=સૂર્યાદિ; નક્ષત્ર=અશ્વિની આદિ; તારકા=અન્ય ક્ષુદ્ર જ્યોતિ.

૩–મેઢિકાષ્ઠ=ખળાના મધ્ય ભાગે રહેલો સ્તંભ, કે જેની આસપાસ બળદ ફરે છે.

૪–કલ્પાયુષવાળા=કલ્પપર્યન્ત આયુવાળા, વૃંદારક=પૂજા કરવા યોગ્ય. કામભોગી=મૈથુનપ્રેમી. ઔપપાદિક દેહ=માતાપિતા વિના દિવ્ય શરીરવાળા.

તે સ્વર્ગલોકની આગળ મહાન્ નામનું સ્વર્ગ છે, તેને જ મહર્લોક તથા પ્રાજાપત્ય લોક કહે છે. તે મહર્લોકમાં કુમુદ, ઋભુ, પ્રતર્દન, અંજનાભ, પ્રચિતાભ, એ પાંચ પ્રકારની દેવયોનિ નિવાસ કરે છે. એ બધા દેવવિશેષ મહાભૂતવશી,[1] ધ્યાનાહાર અને કલ્પસહસ્ર આયુષ્વાળા છે.

એ મહર્લોકની આગળ જનલોક છે, તેને પ્રથમ બ્રહ્મલોક કહે છે. એ જનલોકમાં બ્રહ્મપુરોહિત, બ્રહ્મકાયિક, બ્રહ્મમહાકાયિક, અમર, એ ચાર પ્રકારની દેવયોનિ નિવાસ કરે છે. એ દેવતાઓ ભૂત તથા ઇંદ્રિયોને સ્વાધીન કરવાવાળા છે. એ જનલોકની આગળ તપલોક છે, તેને જ દ્વિતીય બ્રહ્મલોક કહે છે. એ તપોલોકમાં અભાસ્વર, મહાભાસ્વર, સત્યમહાભાસ્વર, એ ત્રણ પ્રકારની દેવયોનિ નિવાસ કરે છે. એ દેવતાઓ ભૂત, ઇંદ્રિય, પ્રકૃતિ એ ત્રણેને સ્વાધીન કરનારા છે, અને પૂર્વ પૂર્વથી ઉત્તર ઉત્તર દેવતા બમણા બમણા આયુષ્વાળા[2] છે તથા સઘળા ધ્યાનાહાર અને ઉર્ધ્વરેતસ[3] છે. એ પ્રમાણે ઉર્ધ્વ સત્યાદિ લોકમાં અપ્રતિહતજ્ઞાનવાળા અને નીચેના અવીચિ આદિ લોકમાં અનાવૃતજ્ઞાનવાળા[4] હોય છે. એ તપોલોકની આગળ સત્યલોક છે, તેને જ તૃતીય બ્રહ્મલોક કહે છે. એ મુખ્ય બ્રહ્મલોકમાં અચ્યુત, શુદ્ધનિવાસ, સત્યાભ, સંજ્ઞાસંજ્ઞી, એમ ચાર જાતના દેવતાઓ નિવાસ કરે છે. એ દેવતાઓ અકૃતભવનન્યાસ હોવાથી સ્વપ્રતિષ્ઠ[5] છે, અને યથાક્રમે ઉપર ઉપર સ્થિત છે, અને સઘળા, પ્રધાનને સ્વાધીન કરવાવાળા તથા સર્ગ રહે ત્યાં સૂધીના આયુષવાળા છે. તેમાં એટલું વિશેષ છે કે, જે અચ્યુત નામના દેવ છે, તે સંવિતર્ક ધ્યાનથી થનારાં સુખને ભોગવવાવાળા છે અને જે શુદ્ધ નિવાસ છે, તે સવિચાર ધ્યાનથી તૃપ્ત છે અને જે સત્યાભ

૧–જે જે તેમની ઇચ્છા હોય છે, તે તે મહાભૂત સંપાદન કરે છે. અર્થાત્–તેમની ઇચ્છાથી પંચમહાભૂત, તે તે કાર્યરૂપે પરિણામ પામે છે. ધ્યાનાહાર=અન્નાદિના સેવન વિના ધ્યાનમાત્રથી તૃપ્ત તથા પુષ્ટ.

૨–અભાસ્વરોથી દ્વિગુણ આયુવાળા મહાભાસ્વર અને તેમનાથી દ્વિગુણ આયુવાળા સત્યમહાભાસ્વર છે.

૩–જેનો કદી વીર્યપાત ન થાય, તે ઉર્ધ્વરેતા છે.

૪–નિખિલ લોકોને યથાર્થરૂપથી જાણે છે.

૫–અર્થાત્ કોઈ એક નિયતગૃહનો અભાવ હોવાથી પોતાના શરીરરૂપ ગૃહમાં જ રહે છે.

છે, તે આનંદ માત્રના ધ્યાનથી સુખી છે અને જે સંજ્ઞાસંજ્ઞી છે, તે અસ્મિતા માત્રના ધ્યાનવડે તૃપ્ત છે. એ પ્રકારે એ બધા સંપ્રજ્ઞાતનિષ્ઠ[1] છે, તેથી જ તેઓ મુક્ત નથી, પણ ત્રિલોકીના મધ્યમાં જ પ્રતિષ્ઠિત છે.

એ ઉપર કહેલા સાતે લોક જ પરમાર્થથી બ્રહ્મલોક જાણવા. કેમકે હિરણ્યગર્ભના લિંગદેહવડે એ સઘળા લોક વ્યાપ્ત છે. વિદેહ[2] પ્રકૃતિલય નામનો યોગી તો મોક્ષપદ તુલ્ય ભવપ્રત્યય નામની અસંપ્રજ્ઞાત સમાધિમાં સ્થિત છે, તેથી તેઓનો કોઈ લોકમાં નિવાસ કરવાવાળાઓમાં ઉપન્યાસ કર્યો નથી.

એ પૂર્વોક્ત પ્રકારથી વર્ણિત જે ભુવનવિન્યાસ છે, તેનો કરામલક તુલ્ય સાક્ષાત્કાર યોગીને થાય છે, તેથી સૂર્યદ્વારમાં[3] સંયમ કરી યોગીએ ભુવનવિન્યાસનું જ્ઞાન સંપાદન કરવું. કાંઈ એવો નિયમ નથી કે સૂર્યદ્વારમાં સંયમ કરવાથી જ ભુવનજ્ઞાન થાય છે, પણ યોગોપાધ્યાય[4]વડે ઉપદિષ્ટ અન્ય સ્થાનમાં સંયમ કરવાથી પણ ભુવનજ્ઞાન થાય છે. પણ જ્યાં સૂધી ભુવનનો સાક્ષાત્કાર ન થાય, ત્યાં સૂધી દૃઢ ચિત્તથી સંયમનો અભ્યાસ કરવો, કાંઈ વચ્ચે ઉદ્વેગથી ઉપરામ ન પામવું. ॥૨૬॥

सू—चन्द्रे ताराव्यूहज्ञानम् ॥ २७ ॥

સૂત્રાર્થઃ-(**चन्द्रे**) ચંદ્રમાં સંયમ કરવાથી (**ताराव्यूहज्ञानम**) તારાવ્યૂહનું જ્ઞાન થાય છે. અર્થાત્ અમુક તારો અમુક સ્થાનમાં નિવાસ કરે છે, એવું વિશેષ જ્ઞાન ઉત્પન્ન થાય છે. ॥ ૨૭ ॥

सू—ध्रुवे तद्गतिज्ञानम् ॥ २८ ॥

સૂત્રાર્થ-(**ध्रुवे**)ધ્રુવ નામે નિશ્ચળ જ્યોતિમાં સંયમ કરવાથી (**तद्गतिज्ञानम**) તે તારાની ગતિનું જ્ઞાન થાય છે. અર્થાત્, આ તારો આટલા સમયમાં આ રાશિમાં ગમન કરે છે, એવી રીતનું તારા નક્ષત્રાદિકની ગતિનું જ્ઞાન થાય છે. એ પ્રકારે ઉર્ધ્વવિમાન અર્થાત્ સૂર્યાદિકના રથોમાં સંયમ કરવાથી સૂર્યાદિકના રથોનું પરિજ્ઞાન[5] થાય છે. ॥ ૨૮ ॥

૧-સંપ્રજ્ઞાતના ભેદ પ્રથમ પાદના ૧૭ મા સૂત્રના વ્યાખ્યાનમાં સ્પષ્ટ છે.

૨-વિદેહ અને પ્રકૃતિલયોની ગણના કોઈ લોક નિવાસીઓમાં કેમ ન કરી, તેનું સમાધાન કરે છે. "વિદેહ પ્રકૃતિલય" ઇત્યાદિથી. તે યોગીઓનું નિરૂપણ ૧ લા પદના ૨૦ મા સૂત્રમાં સ્પષ્ટ છે.

૩-સૂર્યદ્વાર એ સુષુમ્ણા નાડીનું નામ છે.

૪-યોગોપાધ્યાય નામ યોગશાસ્ત્ર જાણનાર અને યોગાભ્યાસી આચાર્યનું છે.

૫-એ પ્રકારે સૂર્યાદિના રથોના ગમનનું જ્ઞાન પણ જાણી લેવું.

सू– नाभिचक्रे कायव्यूहज्ञानम् ॥ २९ ॥

સૂત્રાર્થઃ–(नाभिचक्रे) નાભિચક્રમાં સંયમ કરવાથી (कायव्यूहज्ञानम्) કાયવ્યૂહનું જ્ઞાન થાય છે. અર્થાત્[1] વાત, પિત્ત, કફ એ ત્રણ દોષ છે. ત્વક્, રક્ત, માંસ, સ્નાયુ, અસ્થિ, મજ્જા, શુક્ર, એ સાત ધાતુ છે. તેમાંથી શુક્ર સઘળાથી આભ્યન્તર છે, તેની ઉપર મજ્જા છે, મજ્જા ઉપર અસ્થિ (હાડકાં) છે, અસ્થિ ઉપર સ્નાયુ, સ્નાયુ ઉપર માંસ, માંસ ઉપર રક્ત, અને રક્ત ઉપર ત્વક્ છે. એ પ્રકારે શરીરમાં વિદ્યમાન પદાર્થોનો જે વિન્યાસવિશેષ, તે યોગીને સાક્ષાત્કારરૂપથી દેખાય છે. ॥ ૨૯ ॥

सू–कण्ठकूपे क्षुत्पिपासानिवृत्तिः ॥ ३० ॥

સૂત્રાર્થઃ–કંઠકૂપમાં સંયમ કરવાથી ક્ષુધા તથા પિપાસાની નિવૃત્તિ થાય છે. અર્થાત્ જિહ્વાના અધોભાગમાં વિદ્યમાન જે જિહ્વામૂળ છે, તેને તંતુ કહે છે. એ તંતુની આગળ નીચેના ભાગમાં કંઠ નામે દેશ છે. તે કંઠની સમીપ અધોભાગમાં ખાડા જેવો એક પ્રદેશ છે, તે કંઠકૂપ કહેવાય છે. એ સ્થાનમાં પ્રાણાદિકનો સ્પર્શ થવાથી પુરુષને ક્ષુધાપિપાસા પીડા કરે છે. તે કંઠકૂપમાં સંયમ કરવાથી પ્રાણાદિકના સ્પર્શની નિવૃત્તિદ્વારા યોગીને ક્ષુધાપિપાસા પીડા કરતાં નથી. ॥ ૩૦ ॥

सू० कूर्मनाड्यां स्थैर्य्यम् ॥ ३१ ॥

સૂત્રાર્થઃ–(कूर्मनाड्यां) કૂર્મ નામની નાડીમાં સંયમ કરવાથી (स्थैर्य्यम्) સ્થિરતાની પ્રાપ્તિ થાય છે. અર્થાત્–કંઠકૂપના અધોભાગે ઉરમાં વિદ્યમાન એક કૂર્માકાર નાડી છે, જે કુંડલીરૂપે રહેલા સર્પની પેઠે રહેલી છે. તે નાડીમાં સંયમ કરવાથી યોગીનું ચિત્ત, સ્થિરપદનો લાભ મેળવે છે. ભાવ એ છે કે–ગોધા (પાટલા ઘો) ની પેઠે યોગીનું ચિત્ત એક વિષયમાં દૃઢ સ્થિર થઈ જાય છે. ॥ ૩૧ ॥

सू० मूर्द्धज्योतिषि सिद्धदर्शनम् ॥ ३२ ॥

સૂત્રાર્થઃ–(मूर्द्धज्योतिषि) મૂર્દ્ધમાં હોવાવાળી જ્યોતિમાં સંયમ કરવાથી (सिद्धदर्शनम्) અદૃશ્ય સિદ્ધ પુરુષોનું દર્શન થાય છે. અર્થાત્–કપાળના મધ્યમાં જે બ્રહ્મરંધ્ર નામનું એક છિદ્ર છે, તે છિદ્રની મધ્યે એક પ્રભા-

---

૧–કાવ્યવ્યૂહ પદનો અર્થ કરતાં શરીરમાં સ્થિત પદાર્થોના વિન્યાસ વિશેષનું કથન કરે છે, "અર્થાત્" ઇત્યાદિથી.

સ્વર (પ્રકાશમાન) જ્યોતિ છે. તે જ્યોતિમાં સંયમ કરવાથી આકાશ અને પૃથ્વીના મધ્યવર્તી દિવ્ય[1] પુરુષોનું દર્શન થાય છે. ॥ ૩૨ ॥

હવે સર્વજ્ઞતાના ઉપાયનું કથન કરે છે—

सू० प्रातिभाद् वा[2] सर्वम् ॥ ३३ ॥

સૂત્રાર્થઃ-(प्रातिभाद् वा) પ્રાતિભ નામે જ્ઞાનથી પણ યોગી (सर्वम) સર્વ પદાર્થોને જાણે છે, અર્થાત્ સર્વજ્ઞ થઈ જાય છે. ભાવ એ છે કે, વિવેકજ્ઞાનના કારણીભૂત સંયમના દૃઢ અભ્યાસથી મનમાં જે અતીત, અનાગત, સૂક્ષ્મ, વ્યવહિત પદાર્થોના જ્ઞાનનું જે સામર્થ્ય, તે પ્રાતિભ કહેવાય છે. કેમકે તે પોતાની પ્રતિભાથી ઉત્પન્ન અનૌપદેશિક જ્ઞાન છે. એ પ્રાતિભજ્ઞાન જ પ્રસંખ્યાનની સમીપતાના સંપાદનદ્વારા સંસારથી પુરુષોનો ઉદ્ધાર કરે છે, તેથી તેને તારકજ્ઞાન પણ કહે છે, અને તેજ વિવેકજન્ય જ્ઞાનનું પૂર્વરૂપ છે. કેમકે તે હોવાથી વિવેકજ્ઞાન અવશ્ય ઉત્પન્ન થાય છે.

અર્થાત્-જેમ સૂર્યના ઉદય થવાનું પ્રથમ જ્ઞાપક ચિહ્ન પ્રભા છે, તેમ પ્રસંખ્યાનનો ઉદય થવામાં પ્રથમ ચિહ્ન પ્રાતિભજ્ઞાન છે. એ પ્રાતિભજ્ઞાનનો ઉદય થવાથી યોગીને સઘળા પદાર્થોનું પરિજ્ઞાન થાય છે, અને પછી તેને બીજા સંયમની અપેક્ષા રહેતી નથી. ॥ ૩૩ ॥

सू–हृदये चित्तसंविद् ॥ ३४ ॥

સૂત્રાર્થઃ-(हृदये) હૃદયમાં સંયમ કરવાથી (चित्तसंविद्) ચિત્તનું સંવિદ્ (જ્ઞાન) થાય છે.

અર્થાત્-આ બ્રહ્મપુર નામે હૃદયદેશમાં જે અધોમુખ સ્વલ્પ પુંડરીક છે, તે, ચિત્તનું નિવાસસ્થાન છે. તેમાં સંયમ કરવાથી વૃત્તિવિશિષ્ટ ચિત્તનો સાક્ષાત્કાર થાય છે. ॥ ૩૪ ॥

सू० सत्त्वपुरुषयोरत्यन्ताऽसङ्कीर्णयोः प्रत्ययाऽविशेषो भोगः परार्थत्वात् स्वार्थसंयमात् पुरुषज्ञानम् ॥ ३५ ॥

સૂત્રાર્થઃ-(अत्यन्ताऽसंकीर्णयोः) અતિશય ભિન્ન ભિન્ન ધર્મવાળું હોવાથી

૧-અંતરિક્ષમાં વિચરવાવાળા સિદ્ધ પુરુષોને દિવ્ય પુરુષ કહે છે.

૨-પૂર્વે કહેલા સંયમોમાંથી પ્રત્યેક પ્રત્યેક સંયમ કરવાથી જે જે ફળ થાય છે, તે સઘળાં એક પ્રાતિભજ્ઞાનથી પ્રાપ્ત થાય છે, તેના બોધનમાટે 'वा' પદનો ઉપયોગ કરેલો છે.

અત્યંત વિભિન્ન (सत्त्वपुरुषयोः) બુદ્ધિ અને પુરુષનું જે (प्रत्ययाऽविशेषः) અભેદ-રૂપતાવડે ભાન તે (भोगः) ભોગ કહેવાય છે. તે ભોગરૂપ પ્રત્યય જો કે બુદ્ધિનો ધર્મ છે, તથાપિ બુદ્ધિ (परार्थत्वात्) પુરુષને અર્થે હોવાથી એ ભોગરૂપ બુદ્ધિનો ધર્મ પણ પુરુષને અર્થે જાણવો. તેથી (બુદ્ધિનો ધર્મ હોવાથી) એ ભોગરૂપ પ્રત્યય દૃશ્ય (ભોગ્ય તથા અનાત્મ) કહે-વાય છે અને ભોગરૂપ પ્રત્યયથી ભિન્ન ચેતનમાત્રને આલંબન કરવાવાળો પૌરુષેય પ્રત્યયરૂપ બુદ્ધિનો ધર્મ છે, તે સ્વાર્થપ્રત્યય કહેવાય છે. તે (स्वार्थसंयमात्) સ્વાર્થપ્રત્યયમાં સંયમ કરવાથી (पुरुषज्ञानम्) ચેતનમાત્ર-રૂપ પુરુષનો સાક્ષાત્કાર થાય છે.

ભાવ એ છે કે, રજ વા તમોગુણની પ્રધાનતાવાળું જે બુદ્ધિ-સત્ત્વ,[1] તે તો અત્યન્ત વિધર્મ હોવાથી પુરુષથી અત્યન્ત વિભિન્ન છેજ, પરંતુ જે બુદ્ધિસત્ત્વ સમાનસત્ત્વોપનિબન્ધન[2] હોવાથી રજતમનો પરા-ભવ કરી સત્ત્વગુણના પ્રાધાન્યથી પ્રખ્યાશીલ થયેલું વિવેકખ્યાતિરૂપે પરિણત છે, તે બુદ્ધિસત્ત્વ પણ ચિન્માત્રરૂપ પુરુષથી વિધર્મ હોવાથી[3] અત્યન્ત વિભિન્ન છે. કેમકે બુદ્ધિસત્ત્વ પરિણામી હોવાથી મલિન છે, અને પુરુષ કૂટસ્થ હોવાથી શુદ્ધ છે.

એ પ્રકારે અત્યંત અસંકીર્ણ (વિભિન્ન) બુદ્ધિ પુરુષનો જે પ્રત્યયા-વિશેષ એટલે શાંત, ઘોર, મૂઢરૂપ બુદ્ધિના ધર્મોનો બુદ્ધિપ્રતિબિંબિત ચેતનમાં અધ્યારોપ, તે પુરુષનિષ્ઠ ભોગ છે.

અર્થાત્ બુદ્ધિવડે દર્શિતવિષય હોવાથી બુદ્ધિનો ધર્મરૂપ ભોગ પુરુષનિષ્ઠ કહેવાય છે. તેથી જ તે બુદ્ધિના ધર્મભોગરૂપ પ્રત્યય[4] પરાર્થ હોવાથી દૃશ્ય કહેવાય છે. અને જે એ ભોગથી વિલક્ષણ ચિતિમાત્રને આલંબન કરવાવાળો પૌરુષેય પ્રત્યય છે, તે સ્વાર્થપ્રત્યય કહેવાય છે. એ સ્વાર્થપ્રત્યયમાં સંયમ કરવાથી પુરુષને વિષય કરવાવાળી પ્રજ્ઞા ઉત્પન્ન થાય છે. પરંતુ એમ ન જાણવું કે, બુદ્ધિના ધર્મભૂત પુરુષપ્રત્યયવડે પુરુષનું જ્ઞાન થાય છે. કિંતુ પુરુષ જ બુદ્ધિમાં પ્રતિબિંબિત થયેલો

૧–બુદ્ધિરૂપે પરિણામ પામેલો જે સત્ત્વગુણ, તે બુદ્ધિસત્ત્વ કહેવાય છે.

૨–સમાન સત્ત્વોપનિબંધન=સત્ત્વગુણને સંગે સર્વદા સંબંધવાળું.

૩–વિધર્મ=વિલક્ષણ ભિન્ન ભિન્ન ધર્મવાળું હોવાથી, જે પ્રકારે એ બંને વિભિન્ન છે, તે સમાધિપાદના બીજા સૂત્રના વ્યાખ્યાનમાં સ્પષ્ટ છે.

૪–અહીં સર્વત્ર પ્રત્યય નામ વૃત્તિનું છે.

સ્વાત્માવલંબનરૂપ[1] પ્રત્યયને દેખે છે. વેદમાં પણ એ પ્રમાણે જ કહેલું છે કે–" विज्ञातारमरे केन विजानीयात् " અરે મૈત્રેયિ,[2] સર્વને જાણવાવાળા વિજ્ઞાતા પરમાત્માને, પુરુષ કયા સાધનથી જાણી શકે છે? અર્થાત્ જાણી શકતો નથી,[3] એવો શ્રુતિનો અર્થ છે. ॥ ૩૫ ॥

હવે સ્વાર્થસંયમ જ્યાંસૂધી પોતાના મુખ્ય ફળ પુરુષજ્ઞાનને ઉત્પન્ન કરતો નથી, ત્યાંસૂધી તેની પહેલાં જે ગૌણ ફળ થાય છે, તેનું નિરૂપણ કરે છે—

सू–ततः प्रातिभश्रावणवेदनाऽऽदर्शास्वादवार्ता जायन्ते ॥ ३६ ॥

સૂત્રાર્થઃ-(ततः) તે સ્વાર્થસંયમથી પ્રાતિભ, શ્રાવણ, વેદન, આદર્શ, આસ્વાદ, વાર્તા નામે ષટ્ ઐશ્વર્ય (जायन्ते) ઉત્પન્ન થાય છે.

અર્થાત્–[4] મનનું જે અતીત, અનાગત, વિપ્રકૃષ્ટ, સૂક્ષ્મ, વ્યવહિત પદાર્થો જાણવાનું સામર્થ્ય, તે પ્રાતિભાજન્ય સામર્થ્ય છે. શ્રોત્રનું જે સૂક્ષ્મ, દિવ્ય[5] શબ્દ ગ્રહણ કરવાનું સામર્થ્ય, તે શ્રાવણ કહેવાય છે. ત્વક્નું જે સૂક્ષ્મ દિવ્ય સ્પર્શ ગ્રહણનું સામર્થ્ય, તે વેદન કહેવાય છે. એ રીતે ચક્ષુ, જિહ્વા, ઘ્રાણ, એ ત્રણે ઇંદ્રિયોનું જે યથાક્રમ દિવ્ય રૂપ, રસ, ગંધ ગ્રહણ કરવાનું સામર્થ્ય, તે અનુક્રમે આદર્શ, આસ્વાદ અને વાર્તા એ ત્રણ નામથી વ્યવહૃત છે. અથવા[6] સૂક્ષ્મ વ્યવહિતાદિ પદાર્થોને જાણવાની શક્તિવાળું જે મન, તેનું નામ પ્રાતિભ છે અને દિવ્ય શબ્દને ગ્રહણ કરવાવાળા શ્રોત્રનું શ્રાવણ નામ છે. એ પ્રકારે દિવ્ય સ્પર્શ, રૂપ, રસ, ગંધોને ગ્રહણ કરવાની શક્તિવાળાં જે ત્વક્, ચક્ષુ, જિહ્વા, ઘ્રાણ, એ ચાર, યથા-

---

૧–સ્વાત્માવલંબન=પોતાના સ્વરૂપને પ્રકાશ કરવાવાળો.

૨–એ યાજ્ઞવલ્કય ઋષિનું પોતાની સ્ત્રી મૈત્રેયિપ્રતિ સંબોધન છે.

૩–અર્થાત્ ચેતન જ જડને પ્રકાશિત કરી શકે છે, કાંઈ જડબુદ્ધિ ચેતનનો પ્રકાશ કરી શકતી નથી. તેથી પુરુષ સ્વયંપ્રકાશ છે. આ વિવેકનો દૃઢ અભ્યાસ કરવાથી પુરુષના યથાર્થ સ્વરૂપનું પરિજ્ઞાન થાય છે.

૪–હવે સૂત્રમાં કહેલા જે પ્રાતિભ આદિ ષટ્ પદાર્થ, તેનું યોગશાસ્ત્રના સંકેતથી અર્થ નિરૂપણ કરે છે. "અર્થાત્" ઇત્યાદિથી.

૫–દેવતાઓને ભોગવવા યોગ્ય જે સૂક્ષ્મ શબ્દાદિ છે, તે દિવ્ય કહેવાય છે.

૬–એ પ્રકારે ઇંદ્રિયોમાં હોવાવાળા અલૌકિક સામર્થ્ય વિશેષની પ્રાતિભ આદિ સંજ્ઞાનું નિરૂપણ કરીને હવે અન્ય મતથી અલૌકિક સામર્થ્યવાળી વિશિષ્ટ ઇંદ્રિયોની સંજ્ઞા કહે છે. "અથવા" ઇત્યાદિથી.

ક્રમે વેદના, આદર્શ, આસ્વાદ તથા વાર્તા એ ચાર પદાર્થનાં નામ જાણવાં. આ સઘળું યોગશાસ્ત્રકૃત સંકેતથી ગમ્ય છે.

તેમાંથી પ્રાતિભ હોવાથી સૂક્ષ્માદિ પદાર્થોનું જ્ઞાન, શ્રાવણથી દિવ્ય શબ્દનું શ્રવણ, વેદનથી દિવ્ય સ્પર્શનું જ્ઞાન, આદર્શથી દિવ્ય રૂપનું જ્ઞાન, આસ્વાદથી દિવ્ય રસનું જ્ઞાન અને વાર્તાથી દિવ્ય ગંધનું જ્ઞાન યોગીને ઉત્પન્ન થાય છે. એ બધું સ્વાર્થસંયમનું આનુષંગિક ફળ જાણવું. ॥ ૩૬ ॥

પરંતુ કદાચિત્ એવું ન થવું જોઈએ કે, સ્વાર્થસંયમમાં પ્રવૃત્ત થયેલો યોગી એ સંયમના પ્રભાવથી એ પૂર્વોક્ત સિદ્ધિઓને પામી, પોતે પોતાને કૃતાર્થ જાણી, એ સંયમથી ઉપરામતા પામી જાય. પણ એ સઘળી સિદ્ધિઓને વિઘ્નરૂપ જાણી પુરુષસાક્ષાત્કાર પર્યન્ત અવશ્ય જ યોગીએ સંયમનો અભ્યાસ કરવો. કેમકે એ સંયમનું આત્મસાક્ષાત્કાર જ મુખ્ય ફળ છે, કાંઈ સિદ્ધિઓ નહિ, એ અભિપ્રાયથી સૂત્રકાર કહે છે:-

સૂ૦-ते समाधावुपसर्गा व्युत्थाने सिद्धयः ॥ ३७ ॥

સૂત્રાર્થઃ-(**ते**) આ જે પૂર્વોક્ત[1] ઐશ્વર્ય છે, તે બધું (**समाधौ**) આત્મ-સાક્ષાત્કારજનક સમાધિમાં (**उपसर्गाः**) વિઘ્ન જાણવાં, અને (**व्युत्थाने**) વ્યુત્થાનસમયે તો એ સઘળાં ઐશ્વર્ય (**सिद्धयः**) સિદ્ધિઓ જાણવી.

અર્થાત્-સમાધિથી ઉત્થાન સમયે યોગીને જે પૂર્વોક્ત ઐશ્વર્યોનો લાભ થાય છે, તે સઘળાં સમાધિની દૃઢતાનું વિરોધી હોવાથી સમાધિમાં વિઘ્ન જાણવાં.

ભાવ એ છે કે, જેમ જન્મથી દરિદ્ર પુરુષ અલ્પ ધનના લાભને અધિક ફળ માની, તે પોતાને કૃતાર્થ સમજે છે, તેમ વિક્ષિપ્ત ચિત્તવાળા-ને જ એ પૂર્વોક્ત ઐશ્વર્ય, સિદ્ધિઓરૂપે પ્રતીત થાય છે, કાંઈ સમાહિત ચિત્તવાળાને નહિ. કેમકે એ તો એ સઘળાંને વિઘ્નરૂપ જાણે છે. કેમકે[2] યોગીને પુરુષના સાક્ષાત્કારમાં એ પ્રતિબંધક છે.

અર્થાત્-એ ઐશ્વર્યો હોવાથી જ પોતાને કૃતાર્થ માનવાથી અને સંયમના અભાવથી યોગીને પુરુષનો સાક્ષાત્કાર થશે નહિ. તેથી એ પ્રાપ્ત ઐશ્વ-ર્યોથી દોષદૃષ્ટિદ્વારા ઉપરામ થઈને યોગીએ પુરુષ સાક્ષાત્કારને માટે સ્વાર્થ-સંયમનો અભ્યાસ કરવો, એ ફલિત થાય છે. ॥ ૩૭ ॥

૧-પ્રાતિભ આદિ ષટ્ પ્રકારનું સામર્થ્યવિશેષ, જે પૂર્વસૂત્રમાં કહેલું છે તે.

૨-એ વિઘ્નરૂપ હોવામાં "तद्दर्शनप्रत्यनीकत्वाद्" એ ભાષ્યકારોક્ત હેતુ બતાવે છે, "કેમકે" ઇત્યાદિથી.

એ પ્રકારે પુરુષદર્શનપર્યન્ત દિવ્યજ્ઞાનરૂપ ફળ[1] નિરૂપણ કરી હવે ક્રિયારૂપ ઐશ્વર્ય કહે છે—

सू–बन्धकारणशैथिल्यात् प्रचारसंवेदनाच्च चित्तस्य परशरीरावेशः ॥३८॥

સૂત્રાર્થઃ–(बन्धकारणशैथिल्यात्) ચિત્તનું બંધન કરવાવાળા ધર્માધર્મના સંયમદ્વારા શૈથિલ્ય હોવાથી (च) અને (प्रचारसंवेदनात्) ચિત્તના પ્રચારના જ્ઞાનથી (चित्तस्य) ચિત્તનો (परशरीराऽऽवेशः) અન્યના શરીરમાં પ્રવેશ થઈ જાય છે.

અર્થાત્[2]-ચંચળ સ્વભાવ હોવાથી એક સ્થાનમાં સ્થિર ન રહેવાવાળા મનનો જે ધર્માધર્મના બળથી એક શરીરમાં સ્થિર નિવાસ થઈ જવો, તે બંધ કહેવાય છે. તે બંધને કરવાવાળા ધર્માધર્મનું નામ બંધકારણ છે. એ બંધકારણ કર્મની જે અદૃષ્ટ[3] સંયમથી શિથિલતા થઈ જવી, તેને બંધકારણશૈથિલ્ય કહે છે અને ચિત્તના ગમન આગમનના માર્ગરૂપ જે નાડીઓ છે, તે પ્રચાર કહેવાય છે અને તે પ્રચારમાં સંયમ કરવાથી ચિત્તના પ્રચારનું જે જ્ઞાન, તે પ્રચારસંવેદન કહેવાય છે.

એ બંધકારણશૈથિલ્ય અને પ્રચારસંવેદનરૂપ બંને કારણોવડે યોગી પોતાના ચિત્તને સ્વશરીરમાંથી કાઢી અન્યના શરીરમાં પ્રવિષ્ટ કરી શકે છે અને જે સમયે ચિત્ત પ્રવિષ્ટ થાય છે, તે સમયે ઇંદ્રિયો પણ ચિત્તની અનુસારી હોવાથી શરીરમાં પ્રવિષ્ટ થઈ જાય છે.

અર્થાત્-જેમ[4] પુષ્પોપરથી ઉડતા મધુકરરાજની પછવાડે જ બધી મધુમક્ષિકાઓ ઉડી જાય છે, અને અન્ય પુષ્પોપર નિવાસ કરતા મધુકરરાજની સાથે જ નિવાસ કરે છે, તેમ ઇંદ્રિયો પણ ચિત્તના નિર્ગ-

---

૧–અર્થાત્–જે સંયમોથી અનેક પ્રકારના દિવ્ય જ્ઞાનરૂપ ઐશ્વર્યની પ્રાપ્તિ થાય છે, તે તો નિરૂપણ કર્યું. હવે જે સંયમોથી અન્યના શરીરમાં પ્રવેશકરણ આદિ ઐશ્વર્યનો લાભ થાય છે, તેના નિરૂપણનો આરંભ કરે છે.

૨–હવે યથાક્રમે સૂત્રમાં આવેલાં, બંધ, બંધકારણ, બંધકારણશૈથિલ્ય, પ્રચાર, પ્રચારસંવેદન, એ પદોના અર્થ કહેતાં સૂત્રનો સ્પષ્ટાર્થ નિરૂપણ કરે છે. "અર્થાત્" ઇત્યાદિથી.

૩–અદૃષ્ટ નામ ધર્મ તથા અધર્મનું છે.

૪–"यथा मधुकरराजनं मक्षिका उत्पतन्तमनूत्पतन्ति" એ ભાષ્યનો અનુવાદ કરતાં ઇંદ્રિયોનો પરશરીરમાં પ્રવેશ થવામાં દૃષ્ટાન્ત કહે છે, "જેમ" ઇત્યાદિથી. તેમાં જે સ્થૂળ આકારવાળો ભ્રમર છે, તેને મધુકરરાજ જાણવો. અને જે ક્ષુદ્ર મધુમક્ષિકાઓ છે, તેને મધમાખી જાણવી.

મનની સાથે જ પૂર્વ શરીરમાંથી નીકળીને ચિત્તના પરશરીરમાં પ્રવેશ થવાની સાથે જ તે શરીરમાં પ્રવેશ કરે છે.

ભાવ એ છે કે, ચિત્ત ચંચળ હોવાથી એક સ્થાનમાં સ્થિરતાથી રહી શકતું નથી અને આત્મા પણ વ્યાપક હોવાથી સર્વત્ર વિદ્યમાન છે, તેથી એ બંનેનું એક શરીરમાં નિરંતર સ્થિર હોવું જો કે અસંભવવાળું છે, તથાપિ એ બંને જે ભોક્તૃભોગ્યભાવ[1] સંબંધથી એક શરીરમાં સ્થિર છે, તે ધર્માધર્મપ્રયુક્ત છે. તેથી જ ધર્માધર્મ બંધનું કારણ કહેવાય છે. પછી જ્યારે સંયમદ્વારા યોગી ધર્માધર્મને શિથિલ કરી દે છે, અર્થાત્–ધર્માધર્મના બંધન કરવાના સામર્થ્યને નિવૃત્ત કરી દે છે, ત્યારે એક શરીરમાં ચિત્તની પ્રતિષ્ઠા કરવાવાળા પ્રતિબંધકના અભાવથી સ્વતંત્ર પ્રચારવાળું ચિત્ત સર્વ શરીરમાં ગમન આગમનની યોગ્યતાવાળું થઈ જાય છે. એ પ્રમાણે આત્મા પણ બંધ કરવાવાળા અદૃષ્ટના અભાવથી સર્વ શરીરોમાં સ્વતંત્ર પ્રચારવાળો થઈ જાય છે. પરંતુ[2] જ્યાંસૂધી યોગી જાણતો નથી કે આ નાડી ચિત્તવહા છે, અર્થાત્ આ નાડીદ્વારા ચિત્ત બહાર નીકળે છે, ત્યાંસૂધી પણ ચિત્તનો પરશરીરમાં પ્રવેશ થવો અસંભવ છે. તેથી નાડીસંયમદ્વારા ચિત્તના પ્રચારવાળી નાડીઓના જ્ઞાનની પણ યોગીને આવશ્યકતા છે, એમ જાણવું.

એ પ્રમાણે યોગીને અન્ય શરીરમાં પ્રવેશ કરવામાં અદૃષ્ટસંયમ તથા નાડીસંયમ, એ બંને સાધનોનો સમુચ્ચય જાણવો,[3] કાંઈ વિકલ્પ સમજવો નહિ. ॥ ૩૮ ॥

सू० उदानजयाज्जलपङ्ककण्टकादिष्वसङ्ग उत्क्रान्तिश्च ॥ ३९ ॥

સૂત્રાર્થઃ–(**उदानजयात्**) ઉદાન નામે પ્રાણનો જય કરવાથી (**जलपङ्ककण्टकादिषु**) જળ, કાદવ, કાંટા વગેરેથી યુક્ત સ્થાનોમાં (**असङ्गः**) અટકાવાય તો અભાવ થાય છે. અર્થાત્ જળ વગેરે, યોગીની ગતિનો પ્રતિઘાત કરી

૧–આત્મા ભોક્તા અને ચિત્ત ભોગ્ય છે.

૨–યોગીને અન્ય શરીરમાં પ્રવેશ કરવામાં કાંઈ અદષ્ટ સંયમ જ કારણ નથી, પરંતુ નાડીસંયમ પણ અપેક્ષિત છે. એ આશયથી સૂત્રકારે સમુચ્ચય બોધક 'च' પદ આપ્યું છે, તેને સ્પષ્ટ કરે છે, "પરંતુ" ઈત્યાદિથી.

૩–તેમાં એટલું વિશેષ છે કે, અદૃષ્ટ સંયમથી ધર્માધર્મની શિથિલતા થાય છે, અને નાડીસંયમથી પ્રતિબંધથી રહિત ચિત્ત બહાર નીકળીને અન્ય શરીરમાં પ્રવિષ્ટ થઈ જાય છે.

શકતાં નથી, પરંતુ યોગીઓ રમણીય ભૂમિની પેઠે તે ઉપર પણ સ્વચ્છંદ ગમન કરી શકે છે. (च) અને ઉદાનના જયનું ફળ એ છે કે, (उत्क्रान्तिः) એટલે પ્રયાણકાળમાં ઉત્તરાયણ માર્ગદ્વારા ઉર્ધ્વગમન કરવાનો લાભ થાય છે.

ભાવ એ છે કે-તુષજ્વાલા[1] વા કપોતપંજરચાલનની[2] પેઠે એક સમયે ઉત્પન્ન થવાવાળી નિખિલ ઇંદ્રિયોની જે સાધારણ વૃત્તિ, તે 'જીવન' છે. એ જીવનવૃત્તિના જ ક્રિયાભેદથી પ્રાણ, અપાન આદિ નામથી વ્યવહાર થાય છે. તેમાં મુખ તથા નાસિકાદ્વારા ગમન કરવાવાળી તથા નાસિકાના અગ્રભાગથી તે હ્રદયપર્યન્ત વર્તવાવાળી જે જીવનવૃત્તિ-વિશેષ, તે પ્રાણ કહેવાય છે અને અશિત પીત (ખાધેલું પીધેલું) અન્ન જળના પરિણામરૂપ રસને પોતપોતાના સ્થાનોમાં સમાનરૂપે પહોંચાડવાવાળા તથા હ્રદયથી તે નાભિપર્યન્ત સ્થિતિવાળું જે જીવન છે, તેનું નામ 'સમાન'' છે.

અને મૂત્ર, પુરીષ, ગર્ભાદિને બહાર કાઢવાના સામર્થ્યવાળા તથા નાભિથી તે પાદતલપર્યન્ત વર્તવાવાળા જીવનને અપાન કહે છે. વળી રસાદિકને કંઠની ઉપર પહોંચાડવાવાળા તથા નાસિકાના અગ્રભાગથી તે શિરપર્યન્ત સ્થિતિવાળા જીવનને ઉદાન કહે છે. તેમ જ જે આખા

૧-તુષ નામ ફોતરાંનું છે. જેમ તુષમાં અગ્નિ લગાડવાથી એકદમ અગ્નિ પ્રજ્વલિત થઈ જાય છે. તેમ એક સમયે ઉત્પન્ન થયેલી જે ઇંદ્રિયોની વૃત્તિઓ, તે પ્રાણપદની વાચ્ય છે. કાંઈ તેનાથી ભિન્ન વાયુનો વિકાર, એ પ્રાણ નથી. એ સાંખ્ય તથા યોગનો સિદ્ધાંત છે.

૨-જેમ એક કપોત પાંજરાને ચલાવી શકતું નથી, પણ ઘણાં એકઠાં મળેલાં કપોત સાથે ક્રિયા કરવાથી તે પાંજરાને ચલાવી શકે છે; તેમ એકઠી મળેલી ઇંદ્રિયોનો શરીરધારણરૂપ જે વ્યાપાર, તે પ્રાણ જાણવો. અહીં એટલું વિશેષ જાણવું કે, એકઠાં મળેલાં જે ત્રણ અંતઃકરણ છે, તેની જ આ સાધારણ વૃત્તિ પ્રાણ છે, કાંઈ બાહ્ય ઇંદ્રિયોની નહિ. કેમકે સુષુપ્તિમાં ચક્ષુ આદિનો લય થયા છતાં પણ પ્રાણોનો વ્યાપાર જોવામાં આવે છે. તેથી જ ''त्रयाणां स्वलक्षण्यम्'' ૨ અ૦ સૂત્ર ૩૦ થી બુદ્ધિ, અહંકાર, મન, એ ત્રણેનું લક્ષણ કથન કરીને પછી ''सामान्यकरणवृत्तिः प्राणाद्या वायवः पञ्च'' એ ૩૧ મા સૂત્રથી કપિલમુનિએ અંતઃકરણત્રયની સાધારણ વૃત્તિને જ પ્રાણ કહેલા છે. તેથી નિખિલ ઇંદ્રિયો કહેવાથી અંદરની અને બહારની સર્વ ઇંદ્રિયો લેવી, એ વિજ્ઞાન ભિક્ષુનું કહેવું સૂત્રવિરુદ્ધ જાણવું.

શરીરમાં વ્યાપ્ત થઈ વર્તી રહેલો છે, તે વ્યાન કહેવાય છે. એ બધા-માંથી પ્રાણ પ્રધાન છે; કેમકે પ્રાણના નીકળવા પછી જ બધા નીકળી જાય છે. તેમાં ઉદાનમાં સંયમ કરવાથી ઉદાનના જયદ્વારા જળાદિકવડે યોગીનો પ્રતિઘાત થતો નથી, અને ભીષ્મપિતાની પેઠે ઉત્ક્રાન્તિને પોતાને સ્વાધીન કરી લે છે. અર્થાત્ સ્વચ્છંદ મૃત્યુવાળો થઈ જાય છે. ॥ ૩૯ ॥

सू—समानजयाज्ज्वलनम् ॥ ४० ॥

સૂત્રાર્થઃ-(समानजयात्) સંયમદ્વારા સમાન નામે પ્રાણનો જય કરવાથી યોગીના શરીરમાં (ज्वलनम्) અગ્નિની પેઠે દીપ્તિ થઈ જાય છે.

અર્થાત્-સમાન નામે જે પ્રાણ છે, તે જઠરાગ્નિને ચારે તરફથી વીંટાઇને રહેલો છે. તેથી તેવડે આચ્છાદિત હોવાથી તે જઠ-રાગ્નિ મંદ તેજવાળો રહે છે ને શરીરની બહાર દીપ્તિવાળો થઈ શકતો નથી. પણ જ્યારે યોગી, સંયમદ્વારા સમાન નામે પ્રાણને સ્વાધીન કરી લઈ અગ્નિને આચ્છાદનરહિત કરી દે છે, ત્યારે તે અગ્નિ ઉત્તેજિત થઈ જાય છે, તેથી તે તેજવડે યોગી તેજસ્વી પ્રતીત થાય છે. અર્થાત્-અગ્નિની પેઠે તેનું શરીર દીપ્તિયુક્ત થઈ જાય છે. ॥ ૪૦ ॥

सू—श्रोत्राऽऽकाशयोः संबन्धसंयमाद् दिव्यं श्रोत्रम् ॥ ४१ ॥

સૂત્રાર્થઃ-શ્રોત્રઇંદ્રિયનો અને આકાશનો સંયમ કરવાથી દિવ્ય શ્રોત્ર થઈ જાય છે.

અર્થાત્-અહંકારનું કાર્ય જે શબ્દ ગ્રહણ કરવાવાળી ઇંદ્રિય છે, તે શ્રોત્ર છે અને શબ્દતન્માત્રનું કાર્ય, જે સઘળા શબ્દોની પ્રતિષ્ઠા (આધાર) છે, તે આકાશ છે.[1] એ બંનેનો જે આધાર આધેયભાવ સંબંધ, તેમાં સંયમ કરવાવાળા યોગીનાં શ્રોત્ર દિવ્ય થઈ જાય છે.

અર્થાત્-તન્માત્રરૂપ સૂક્ષ્મ શબ્દના ગ્રહણ કરવાના સામર્થ્યવાળાં થઈ જાય છે. ॥ ૪૧ ॥

सू—कायाऽऽकाशयोः संबन्धसंयमात्
लघुतूलसमापत्तेश्चाऽऽकाशगमनम् ॥ ४२ ॥

સૂત્રાર્થઃ-(कायाऽऽकाशयोः संबन्धसंयमात्) શરીર અને આકાશના સંબંધવિષયક સંયમ કરવાથી (च) અથવા (लघुतूलसमापत्तेः) સૂક્ષ્મ પદાર્થ રુ

૧—આ સ્થળે ભાષ્યકારે આકાશ અને શ્રોત્રની સિદ્ધિવિષે યત્કિંચિત્ વિચાર કરેલો છે. તે મુમુક્ષુઓને અનુપયોગી જાણી છોડી દીધો છે.

વગેરેમાં સંયમદ્વારા ચિત્તની સમાપત્તિ થવાથી આકાશમાં ગમનરૂપ ફળ થાય છે.

અર્થાત્-જે જે સ્થાનમાં શરીરની સ્થિતિ થાય છે, ત્યાં સર્વત્ર જ આકાશ વિદ્યમાન હોય છે. કેમકે આકાશ વિના શરીરની સ્થિતિ હોતી નથી અને અવકાશ આપવો, એ આકાશનો ધર્મ છે. એ પ્રકારે આકાશની સાથે શરીરનો જે વ્યાપ્યવ્યાપકભાવ[1] સંબંધ છે, તેમાં સંયમ કરવાવાળો જે યોગી છે, તે, તે સંબંધને સ્વેચ્છાધીન કરી લઘુરૂપવાળો થઈ જાય છે. અથવા પરમાણુપર્યન્ત સૂક્ષ્મ પદાર્થ રુ વગેરેમાં ચિત્તની સમાપત્તિને મેળવીને યોગી જિતસંબંધ[2] થઈ લઘુરૂપવાળો થઈ જાય છે. એ પ્રકારે[3] લઘુ થયા પછી તે પાણી ઉપર પગ મૂકી ચાલી શકે છે. અને ઉર્ણનાભિતંતુ[4]માં પણ સ્વચ્છંદ વિહાર કરી સૂર્યકિરણોમાં સૂક્ષ્મરૂપે પ્રવિષ્ટ થઈ કિરણોમાં વિહાર કરે છે તથા એ યોગીને યથેષ્ટ આકાશગમનનો લાભ થાય છે.

અર્થાત્, એ બંને સંયમોના અનુષ્ઠાનથી યોગી પોતાને એવો સૂક્ષ્મ તથા હલકો બનાવી દે છે કે, તે સૂર્યકિરણોમાં સંચારવાળો થઈ આકાશમાં સ્વચ્છંદ પ્રચારવાળો થઈ જાય છે. ॥ ૪૨ ॥

હવે પારકા શરીરમાં પ્રવેશ કરવાના કારણભૂત તથા ક્લેશાદિનો ક્ષય કરવાના કારણભૂત અન્ય સંયમ કહે છે-

सू–बहिरकल्पिता वृत्तिर्महाविदेहा ततः प्रकाशावरणक्षयः ॥ ४३ ॥

સૂત્રાર્થઃ-(बहिः) શરીરની બહાર (अकल्पिता) શરીરની અપેક્ષારૂપ કલ્પનાથી રહિત (वृत्तिः) ચિત્તની જે વૃત્તિ, તે (महाविदेहा) મહાવિદેહા નામે ધારણા છે. (ततः) તે મહાવિદેહા નામની ધારણાથી (प्रकाशाऽऽवरणक्षयः) પ્રકાશરૂપ બુદ્ધિને આવરણ કરવાવાળા ક્લેશાદિકનો ક્ષય થાય છે.

અર્થાત્, શરીરની બહાર કોઈ વિષયમાં મનની વૃત્તિનો પ્રચાર થવો, તે વિદેહા નામે ધારણા છે. તે ધારણા, કલ્પિતા તથા અકલ્પિતારૂપ ભેદથી બે પ્રકારની છે. તેમાં શરીરમાં સ્થિત થયેલા મનનો જે

૧–શરીર એ વ્યાપ્ય અને આકાશ એ વ્યાપક છે. ૨–સંયમના બળથી જેણે કાયા અને આકાશનો સંબંધ પોતાને અધીન કરી લીધો છે, તે જિતસંબંધ કહેવાય છે. ૩–હવે જે ક્રમથી યોગીને આકાશગમનનો લાભ થાય છે, તે ક્રમ બતાવે છે. "એ પ્રકારે" ઇત્યાદિથી. ૪–જે કીડો પોતાના શરીરમાંથી સૂક્ષ્મ તંતુ કાઢે છે, તેને ઉર્ણનાભિ (કરોળીઓ) કહે છે.

બાહ્યદેશમાં વૃત્તિદ્વારા પ્રચાર થવો, તે કલ્પિતા નામે ધારણા છે; અને શરીરની અપેક્ષા વિના જ સ્વતંત્ર ચિત્તનો જે બહાર પ્રચાર થવો, તે અકલ્પિતા નામે ધારણા છે.[1]

એ બન્નેમાંથી જે કલ્પિતા વિદેહા ધારણા છે, તે સાધન છે અને અકલ્પિતા મહાવિદેહા ધારણા સાધ્ય છે. કેમકે કલ્પિતાના અભ્યાસથી જ અકલ્પિતા ધારણા સિદ્ધ થાય છે, અન્યથા નહિ.

એ[2] અકલ્પિતા નામની ધારણાવડે જ યોગીજન ચિત્તના પ્રચારદ્વારા અન્ય શરીરમાં પ્રવેશ કરી યથેષ્ટ વ્યવહાર કરે છે, અને પ્રકાશરૂપબુદ્ધિને આચ્છાદન કરવાવાળા જે રજતમમૂલક ક્લેશ, કર્મ તથા વિપાક છે, તે ત્રણેનો પણ એ ધારણાવડે ક્ષય થઈ જાય છે. ॥ ૪૩ ॥

હવે અણિમાદિ સિદ્ધિઓના હેતુભૂત જે ભૂતજય, તેનું સાધન કહે છે—

सू—स्थूल—स्वरूप—सूक्ष्माऽन्वयाऽर्थवत्त्वसंयमाद् भूतजयः ॥४४॥

સૂત્રાર્થઃ—આકાશાદિ પંચભૂતોની જે સ્થૂલ, સ્વરૂપ, સૂક્ષ્મ, અન્વય અને અર્થવત્વ, એ પાંચ અવસ્થાવિશેષ છે, તેમાં સંયમ કરવાથી ભૂતજય નામે ઐશ્વર્ય પ્રાપ્ત થાય છે.

તેમાં[3] પૃથ્વી આદિમાં હોવાવાળા જે શબ્દ, સ્પર્શ, રૂપ, રસ, ગંધ નામવાળા વિશેષ અને આકાર આદિ ધર્મ[4], તે ભૂતોનાં સ્થૂલરૂપ

૧–યદ્યપિ પ્રાકૃત પુરુષોનું ચિત્ત પણ શરીરમાં રહેલું બાહ્યદેશમાં વૃત્તિલાભ કરે છે, તથાપિ ઇંદ્રિયસન્નિકર્ષદ્વારા જ તેમનું ચિત્ત બાહ્ય વિષયોમાં ગમન કરે છે, સ્વતંત્ર નહિ અને યોગીનું ચિત્ત તો ઇંદ્રિયસંનિકર્ષ વિના પણ વૃત્તિદ્વારા બાહ્યદેશમાં વિષયલાભ કરી શકે, એટલું વિશેષ છે.

૨–હવે એ ધારણાનું ફળ કહે છે, "એ અકલ્પિતા" ઇત્યાદિથી.

૩–હવે અનુક્રમે સ્થૂળ વગેરે પદોનો અર્થ કહે છે, "તેમાં" ઇત્યાદિથી.

૪–આકાર=અવયવોનો સન્નિવેશ વિશેષ; ગૌરવ=ભારેપણું; રૌક્ષ્ય=લુખાપણું; આચ્છાદન=ઢાંકવું, સ્થૈર્ય, સર્વભૂતાધારતા; ભેદ=વિદારણ; સહનશીલતા, કૃશતા, કઠિનતા અને સર્વભોગ્યતા, એ અગિઆર ધર્મ પૃથ્વીના છે. સ્નેહ, સૂક્ષ્મતા, પ્રભા, શુકલતા, મૃદુતા, ગૌરવ, શીતસ્પર્શ, રક્ષા, પવિત્રતા, અને સંમેલન, એ દશ ધર્મ જળના છે. ઉર્ધ્વગમનશીલતા, પવિત્રતા, દાહશીલતા, પાચકતા, લઘુતા, ભાસ્વરતા, પ્રધ્વંસન અને બળશીલતા, એ આઠ ધર્મ અગ્નિના છે. તિર્યગ્ગમન, પવિત્રતા, આક્ષેપ=પાડી દેવું, કમ્પન, બલ, ચંચળતા, અચ્છાદયતા=આચ્છાદનનો અભાવ અને રૌક્ષ્ય, એ આઠ ધર્મ વાયુના છે.

છે અને પંચભૂતોના જે સ્વસ્વસામાન્ય ધર્મ છે, તે ભૂતોનું દ્વિતીય-રૂપ જાણવું.

અર્થાત્–કઠિનતા ધર્મ પૃથ્વીનું સ્વરૂપ છે અને સ્નેહ ધર્મ જળનું સ્વરૂપ છે. એ પ્રમાણે ઉષ્ણતા ધર્મ અગ્નિનું, વહનશીલતારૂપ ધર્મ વાયુનું અને સર્વત્ર વિદ્યમાનતારૂપ ધર્મ આકાશનું સ્વરૂપ જાણવું.

આ કઠિનતાદિ ધર્મ જ સ્વસ્વસામાન્ય કહેવાય છે. એ કઠિનતાદિ સામાન્ય ધર્મવાળાં પૃથ્વી વગેરેનો પરસ્પર ભેદ કરવાવાળા શબ્દસ્પર્શાદિ છે, તેથી શબ્દાદિકને વિશેષ કહેલાં છે.

એવી જ રીતે પંચશિખાચાર્યે કહેલું છે કે–"**एकजातिसमन्वितानामेषां धर्ममात्रव्यावृत्तिः**"[1] **इति**—

એ બંને સામાન્ય વિશેષનો જે સમુદાય છે, તે જ યોગમતમાં દ્રવ્ય[2] કહેવાય છે. પરંતુ તે સમુદાય બે પ્રકારનો છેઃ–એક તો "**प्रत्यस्तमितभेदावयवानुगत**" અર્થાત્–અવાન્તર વિભાગના બોધક શબ્દવડે જે અવયવોનો અવાન્તરવિભાગ બોધન કરેલો નથી તે અવયવોમાં અનુ-ગત જે દ્રવ્ય છે તે "**प्रत्यस्तमितभेदावयवानुगत**" કહેવાય છે. જેમકે શરીર, વૃક્ષ, યૂથ, વન એ સમુદાય[3] છે. કેમકે અહીં અવાન્તર વિભાગના

વ્યાપકતા, વિભાગ કરવા, અવકાશપ્રધાન, એ ત્રણ ધર્મ આકાશના છે. એ બધા ધર્મોસહિત પૃથ્વી આદિમાં હોવાવાળા જે શબ્દાદિક છે, તે ભૂતોનું સ્થૂલરૂપ છે.

૧–એક જાતિવાળાં પૃથ્વી આદિકના અમ્લ (ખાટો) મધુરાદિ ધર્મમાત્રથી વ્યાવૃત્તિ થાય છે. યદ્યપિ કઠિનતાદિ ધર્મ પણ પૃથ્વી આદિકના પરસ્પર ભેદક છે, તથાપિ લીંબુરૂપ પૃથ્વીથી અંગૂરરૂપ પૃથ્વીનો જે ભેદ છે, તેના કરનાર કેવળ ખાટા મીઠા રસ જ કહેવાય છે. તેથી રસ આદિને વિશેષ જાણવું. અર્થાત્ પૃથ્વીનો જળાદિથી જે ભેદ છે, તે તો કઠિનતાદિરૂપ અસાધારણ ધર્મોથી પરિજ્ઞાત થાય છે, પરંતુ પૃથ્વીથી અન્ય પૃથ્વીના ભેદક રસાદિક જ છે, એ અભિપ્રાયથી જ "एकजातिसमन्वितानाम्" એમ કહેલું છે.

૨–અર્થાત્–જેમ તાર્કિકલોક, સામાન્ય વિશેષના આશ્રયને દ્રવ્ય માને છે, તેમ યોગી લોક માનતા નથી, પરંતુ સામાન્યવિશેષના સમુદાયને જ દ્રવ્ય માને છે. કેમકે સાંખ્યયોગ મતમાં સમુદાય અને સમુદાયી ધર્મ તથા ધર્મ અને ધર્મી અભિન્ન મનાય છે.

૩–હસ્તાદિ અવયવોનો સમુદાય, શરીર કહેવાય છે; અને શાખાદિ અવયવોનો સમુદાય, વૃક્ષ કહેવાય છે. તેમ ગાય, બળદ આદિનો સમુદાય

બોધક શબ્દનું ઉચ્ચારણ કરાયું નથી અને જ્યાં અવાન્તરવિભાગના બોધક શબ્દોનું ઉચ્ચારણ કરાય છે, તે "शब्दोपात्तभेदावयवानुगत" સમુદાય કહેવાય છે. જેમકે "उभये देवमनुष्याः" એ સમુદાય છે, તેમાં બે અવયવ જેને હોય, તે ઉભય શબ્દનો અર્થ છે. એ સમુદાયમાં કયા બે અવયવ છે? એ આકાંક્ષા હોવાથી કહ્યું કે, દેવ અને મનુષ્ય. અહીં સમૂહનો એક ભાગ દેવ છે અને બીજો અવયવ મનુષ્ય છે. એ બન્ને "देवमनुष्याः" એ શબ્દવડે ઉચ્ચારણ કરાયા છે, તેથી એ સમુદાય "शब्देनोपात्तभेदावयवानुगत" કહેવાય છે. વળી તે સમુદાય, ભેદ તથા અભેદની વિવક્ષાથી બે પ્રકારના છે. તેમાં ભેદવિવક્ષાથી "आम्राणां वनं" આંબાનું વન છે, "ब्राह्मणानां संघः" બ્રાહ્મણોનો સંઘ (સમૂહ) છે, એ બે પ્રકારનો સમૂહ જાણવો અને અભેદ વિવક્ષાથી आम्रवन, ब्राह्मण-संघ,[1] એ બે સમૂહ જાણવા. વળી બીજી રીતે પણ એ સમુદાય બે પ્રકારનો છે (૧) યુતસિદ્ધ અર્થાત્-જૂદા જૂદા વિરલ અવયવવાળો જેમકે વન અને સંઘરૂપ સમુદાય છે. કેમકે તેમાં વનના અવયવ જે વૃક્ષ, તે જૂદાં જૂદાં અને વિરલ પ્રતીત થાય છે, તેમ યૂથના અવયવ ગાય, બળદ વગેરે પણ પૃથક્ પૃથક્ પ્રતીત થાય છે. (૨) અયુત-સિદ્ધાવયવ સમૂહ-એટલે પૃથક્ પ્રતીતિથી રહિત એકઠા મળેલા અવયવોવાળો. જેમકે શરીર, વૃક્ષ અને પરમાણુરૂપ સમુદાય. કેમકે તેમના અવયવ એકઠા મળેલા છે. એ બંને પ્રકારના સમૂહોમાંથી જે અયુતસિદ્ધાવયવ સમૂહ છે, તે પતંજલિ મુનિના મનમાં દ્રવ્ય કહેવાય છે. એ જ ભૂતોનું દ્વિતીયરૂપ છે અને તેજ સ્વરૂપ પદનો અર્થ છે. ભૂતોનું કારણ જે પંચતન્માત્ર છે, તે સૂક્ષ્મ નામે ભૂતોનું તૃતીયરૂપ જાણવું. એ તન્માત્ર પણ પરમાણુઓનો અયુતસિદ્ધ અવયવાનુગત સમુદાય છે અને સર્વ કાર્યોમાં અનુગત જે પ્રકાશ, પ્રવૃત્તિ, અને સ્થિતિશીલ એ ત્રણ ગુણ છે, તે અન્વય નામે ચતુર્થરૂપ છે. પુરુષોના ભોગ તથા અપવર્ગ સંપાદન કરવાનું ગુણોમાં જે સામર્થ્યવિશેષ, તે અર્થવેત્તા નામે પંચમરૂપ

યૂથ કહેવાય છે, અને વૃક્ષાદિકનો સમુદાય વન કહેવાય છે. આ બધા સમુદાયમાં અવાંતર વિભાગનો બોધક શબ્દ કોઈ ઉચ્ચારણ કરાયો નથી. પણ કેવળ સમુદાય માત્ર ઉચ્ચારણ કરેલો છે. તેથી તે "प्रत्यस्तमितभेदावयवानुगत" સમુદાય કહેવાય છે.

૧-આમ્ર એ જ વન અને બ્રાહ્મણ એ જ સંઘ, એ પ્રકારે સમૂહ સમૂહીની અભેદ વિવક્ષાથી અહીં સમાધિકરણ જાણવું.

છે. તેમાં એટલું વિશેષ છે કે, ગુણોમાં તો ભોગાપવર્ગસંપાદનનું સામર્થ્ય, સાક્ષાત્ અનુગત છે, અને તન્માત્ર, ભૂતભૌતિકોમાં પરંપરાથી (ગુણો-દ્વારા) અનુગત છે. એ પ્રમાણે સાક્ષાત્ અને પરંપરાથી સઘળા જ પદાર્થને અર્થવત્તાવાળા જાણવા.

[1]એ પંચરૂપવાળાં પંચસ્થૂળ ભૂતોમાં સંયમ કરવાથી ભૂતોનાં સઘળાં સ્વરૂપોનું સમ્યગ્જ્ઞાન તથા ભૂતોનો જય યોગીને પ્રાપ્ત થાય છે. અર્થાત્-ભૂતોનાં પંચરૂપોને સ્વાધીન કરી ભૂતજયી થાય છે.

એવી રીતે ભૂતો સ્વાધીન થવાથી ગાયો જેમ પોતાનાં બચ્ચાંને અનુસરે છે, તેમ ભૂતોની સઘળી પ્રકૃતિઓ યોગીના સંકલ્પાનુસાર બની જાય છે. ॥ ૪૪ ॥

હવે યોગીના સંકલ્પાનુસાર ભૂતોનો સ્વભાવ થવાથી યોગીને જે ફળ થાય છે, તેનું નિરૂપણ કરે છે.

सू-ततोऽणिमादिप्रादुर्भावः कायसंपत् तद्धर्मानभिघातश्च ॥४५॥

(**ततः**) તે ભૂતજય થવાથી (**अणिमादिप्रादुर्भावः**) અણિમાદિક આઠ સિદ્ધિઓનો યોગીને પ્રાદુર્ભાવ થાય છે, અને (**कायसंपत्**) શરીરની સંપત્ (**च**) અને (**तद्धर्मानभिघातः**) ભૂતોના ધર્મો યોગીને બાધ કરી શકતા નથી.

અર્થાત્-અણિમા, લઘિમા, મહિમા, પ્રાપ્તિ, પ્રાકામ્ય, વશિત્વ, ઈશિતૃત્વ અને યત્રકામાવસાયિત્વ, આ આઠ સિદ્ધિઓ યોગીને પ્રાપ્ત થાય છે.

[2]તેમાં અણિમા નામે સિદ્ધિની પ્રાપ્તિ થવાથી યોગી મહાન્ પરિમાણવાળો હોય, તે અણુપરિમાણવાળો બની જાય છે.[3] લઘિમા નામની સિદ્ધિવડે યોગીનું શરીર એવું લઘુ થઈ જાય છે કે, તે તૃણની પેઠે આકાશમાં ભ્રમણ કરી શકે છે. મહિમા નામની સિદ્ધિથી અલ્પપરિમાણ-વાળો યોગી નાગ, નગ અથવા નગરના જેવડો[4] બની જાય છે. પ્રાપ્તિ

૧-એ પ્રકારે સૂત્રોક્ત પંચરૂપોનું વ્યાખ્યાન કરી સૂત્રના અર્થકથન-પૂર્વક સંયમનું ફળ કહે છે, "એ" ઇત્યાદિથી.

૨-હવે યથાક્રમે સિદ્ધિઓનું ઉદાહરણદ્વારા વિવરણ કરે છે, "તેમાં" ઇ૦

૩-એ અણિમા નામની સિદ્ધિના બળથી જ યોગી, દેવતા, ગંધર્વ અને પિતૃ આદિક મહાનુભાવો સૂક્ષ્મ બની સર્વત્ર વિચરતા છતાં કોઇને દૃષ્ટિગોચર થતા નથી.

૪-નાગ=હસ્તી; નગ=પર્વત; નગર=ગામ, શહેર.

નામની સિદ્ધિવડે યોગી પૃથ્વીપર રહેલો છતાં અંગુલિના અગ્ર ભાગથી ચંદ્રમાને સ્પર્શ કરે છે. પ્રાકામ્ય નામ ઇચ્છાના અનભિઘાતનું છે. અર્થાત્ પ્રાકામ્ય નામની સિદ્ધિ હોવાથી યોગીની ઇચ્છાનો પ્રતિઘાત થતો નથી, પણ તે જે ચહાય છે તે અવશ્ય જ પ્રાપ્ત થાય છે. તેથી જ તે પાણીની પેઠે ભૂમિ ઉપર ઉન્મજ્જન તથા નિમજ્જન[1] કરવાની શક્તિવાળો થાય છે.

ભૂત અને ભૌતિકોને પોતાને અધીન કરી લેવાં અને પોતે તેને અધીન ન થવું, તેનું નામ વશિત્વ નામે સિદ્ધિ છે. એ વિશિત્વ નામની સિદ્ધિને લીધે યોગીને અનુસરનારાં ભૂત પોતાના ધર્મને પણ તજી દેછે. ભૂત અને ભૌતિકોની ઉત્પત્તિ સ્થિતિ નાશ કરવાનું જે સામર્થ્ય-વિશેષ, તે ઇશિતૃત્વ નામની સિદ્ધિ છે. અને યત્રકામાવસાયિતા એ નામ સત્ય સંકલ્પતનું છે. એ સિદ્ધિથી જેવો યોગીનો સંકલ્પ થાય છે, તેવું જ ભૂતોના સ્વભાવનું અવસ્થાન થઈ જાય છે. તેથી જ એ યોગી ચાહે તો અમૃતને બદલે વિષભોજન કરાવી માણસને જીવતું કરી શકે છે.

આ સ્થળે એટલું એ પણ વિશેષ જાણી લેવું કે, યોગી સર્વસામર્થ્ય-વાળો હોય છે, તથાપિ તે પદાર્થોની શક્તિઓનો જ વિપર્યાસ કરી શકે છે; કાંઈ પદાર્થોનો નહિ.

અર્થાત્–ચંદ્રમાને સૂર્ય તથા સૂર્યને ચંદ્રમા કરી દેવો અને વિષને અમૃત કરી દેવું, એ પ્રકારે યોગી પદાર્થોનો વિપર્ય્યય કરી શકતો નથી, પણ વિષમાં જે પ્રાણવિયોગ કરવાની શક્તિ છે, તેને નિવૃત્ત કરી તેમાં જીવનશક્તિનું સંપાદન કરી દેછે. અર્થાત્–પદાર્થોનો વિપર્ય્યય[2] થવો, એ નિત્યસિદ્ધ ઇશ્વરના સંકલ્પથી વિરુદ્ધ છે, તેથી તેમ થતું નથી અને પદાર્થોની શક્તિઓ તો અનિયત છે, તેથી તેનો વિપર્ય્યય કરવામાં કાંઈ દોષ નથી.

ભાવ એ છે કે, યોગ વિના જે નિત્યસિદ્ધ સત્યસંકલ્પ ઈશ્વર છે, તેનો એવો સંકલ્પ છે કે, સૂર્ય તો સૂર્ય જ રહે અને ચંદ્રમા ચંદ્રમા જ રહે. તો પછી તેની વિરુદ્ધ યોગીનો સંકલ્પ શી રીતે હોઈ શકે ?

૧–જેમ જળનું ઉદ્ભેદન કરી પુરુષ, જળથી બહાર નીકળી જાય છે, તેમ પૃથ્વીનું ઉદ્ભેદન કરી ઉઠીને ઉભો થઈ જાય છે, તેનું નામ ઉન્મજ્જન છે. જેમ જળમાં ડૂબકી મારે છે તેમ પૃથ્વીમાં પણ પ્રવેશ કરવો, તેનું નામ નિમજ્જન છે.

૨–અર્થાત્–નિત્યસિદ્ધ યોગીરાજ ઇશ્વરના સંકલ્પાનુસાર જ યોગીઓનો પણ સંકલ્પ થાય છે, પણ અન્યથા નહિ. તેથી પદાર્થોનો વિપર્ય્યય તે કરી શકતો નથી.

આ જે આઠ પ્રકારનું ઐશ્વર્ય છે, તે ભૂતજયનું ફળ છે.[1] એ પ્રકારે કાયસંપત્ પણ ભૂતજયનું ફળ જાણી લેવું. કાયસંપત્નો અર્થ સૂત્રકાર પોતે જ શ્રીમુખથી આગલા સૂત્રમાં કહેશે, તેથી અહીં તેના વિવરણની આવશ્યકતા નથી. એ પ્રકારે તદ્ધર્માનભિઘાત પણ ભૂતજયનું ફળ જાણી લેવું.

અર્થાત્, પૃથ્વી પોતાના કઠિનતારૂપ ધર્મદ્વારા યોગીના શરીરની ક્રિયાની રોકાવટ કરી શકતી નથી, તેથી જ યોગી શિલા વગેરેની અંદર પેસી શકે છે અને સ્નેહવાળું (આર્દ્ર) જળ પણ યોગીના શરીરને ભીંજવી શકતું નથી; ઉષ્ણ સ્પર્શવાળો અગ્નિ પણ યોગીના શરીરનો દાહ કરી શકતો નથી; નિત્યવહનશીલ વાયુ પણ યોગીના દેહને કંપાયમાન કરી શકતો નથી, અને અનાવરણરૂપ આકાશમાં આવૃતકાય (ઢંકાયલા શરીરવાળો) થયેલો યોગી સિદ્ધોની પેઠે અદૃશ્ય થઈ જાય છે. અર્થાત્ આકાશમાં રહેલા યોગીને કોઈ પણ જોઈ શકતું નથી, તેનું નામ તદ્ધર્માનભિઘાત છે.

હવે કાયસંપત્નો અર્થ કહે છે–

सू–रूप–लावण्य–बल–वज्रसंहननत्वानि कायसंपत् ॥ ४६ ॥

દર્શનીયરૂપ તથા (लावण्य) કાન્તિ અને બળ તથા (वज्रसंहननत्व) વજ્રસદૃશ દૃઢ અવયવયુક્તત્વ, આ બધી કાયસંપત્ કહેવાય છે.

અર્થાત્–યોગીનું શરીર કમનીય, અતિમનોહર, દર્શનીયરૂપવાળું, કાંતિવાળું, અત્યંત જોરાવર અને વજ્રતુલ્ય દૃઢ થઈ જાય છે. ॥૪૬॥

એ પ્રકારે ફળ સહિત ભૂતજયનું કથન કરીને હવે ઇંદ્રિયજયના ઉપાય કહે છે.

सू–ग्रहणस्वरूपाऽस्मिताऽन्वयाऽर्थवत्त्वसंयमादिन्द्रियजयः ॥ ४७ ॥

ગ્રહણ, સ્વરૂપ, અસ્મિતા, અન્વય અને અર્થવત્ત્વ, આ પાંચ રૂપમાં સંયમ કરવાથી યોગીને ઇંદ્રિયજય પ્રાપ્ત થાય છે.

અર્થાત્–ઇંદ્રિયોનાં એ પાંચે રૂપમાં સંયમ કરવાથી સઘળી ઇંદ્રિયો યોગીને વશીભૂત થાય છે. તેમાં સામાન્ય વિશેષરૂપ જે શબ્દાદિ[2] ગ્રાહ્ય

૧–અહીં એટલું વિશેષ છે કે, ભૂતોના સ્થૂલરૂપમાં સંયમ કરવાથી પ્રથમની ચાર સિદ્ધિઓ પ્રાપ્ત થાય છે અને દ્વિતીય સ્વરૂપમાં સંયમ કરવાથી ઇચ્છાનભિઘાત પ્રાપ્ત થાય છે. તેમ તૃતીય સ્વરૂપમાં સંયમ કરવાથી વશિત્વ સિદ્ધિ, ચતુર્થ અન્વયરૂપમાં સંયમ કરવાથી ઇશિતૃત્વ અને પંચમ અર્થવત્તારૂપમાં સંયમ કરવાથી સત્યસંકલ્પતા નામની સિદ્ધિ મળે છે.

૨–અન્ય મત પ્રમાણે જ્યાં ઘટાદિ વિષય લખવાની શૈલી હોય છે, ત્યાં સાંખ્ય–યોગ મત પ્રમાણે "શબ્દાદિ વિષય," પદ લખવાની શૈલી છે.

વિષય અને વિષયાકાર ઇંદ્રિયોની પરિણામરૂપ વૃત્તિ, એ ગ્રહણ પદનો અર્થ છે. તે ઇંદ્રિયોની[1] વૃત્તિ માત્ર સામાન્ય વિષયક હોતી નથી, પણ સામાન્ય-વિશેષ ઉભયરૂપ હોય છે. ઇંદ્રિયોની વૃત્તિ વિષય વિષયક ન માનીએ તો ઇંદ્રિયોવડે ગ્રહણ કરવામાં ન આવતા વિશેષનો મનવડે કેવી રીતે નિશ્ચય થશે? કેમકે બાહ્ય ઇંદ્રિયોને અધીન થયેલું જ મન બાહ્ય વિષયોમાં વ્યવસાયવાળું થાય છે, સ્વતંત્ર નહિ. તેથી સામાન્ય વિશેષરૂપ વિષયાકાર જ ઇંદ્રિયોની વૃત્તિ જાણવી. એ ગ્રહણ નામનું ઇંદ્રિયોનું પ્રથમરૂપ છે અને મહત્તત્ત્વનું પ્રકાશરૂપ પરિણામ, જે અયુતસિદ્ધાવયવરૂપ સાત્ત્વિક અહંકાર, તેમાં કાર્યરૂપથી અનુગત જે સામાન્ય વિશેષ સમૂહરૂપ દ્રવ્ય, તે, ઇંદ્રિયોનું સ્વરૂપ છે.

અર્થાત્-સાત્ત્વિક અહંકારનું કાર્ય જે પ્રકાશ સ્વરૂપ દ્રવ્ય, તે ઇંદ્રિય છે. તે ઇંદ્રિયોનું સ્વરૂપ નામે બીજું રૂપ છે અને ઇંદ્રિયોનું કારણ જે અહંકાર છે, તે ઇંદ્રિયોનું અસ્મિતા નામે ત્રીજું રૂપ છે અને વ્યવસાયરૂપ મહત્તત્ત્વના આકારથી પરિણામને પામેલાં જે પ્રકાશ, ક્રિયા, સ્થિતિશીલ ગુણ છે, તે અન્વય નામે ઇંદ્રિયોનું ચતુર્થરૂપ છે. અર્થાત્ અહંકાર સહિત ઇંદ્રિયો, મહત્તત્ત્વનું પરિણામ હોવાથી અને મહત્તત્ત્વ ગુણોનું પરિણામ હોવાથી ત્રણે ગુણ ઇંદ્રિયોમાં અનુગત છે, તેથી ગુણો અન્વયરૂપ કહેવાય છે, અને ગુણોમાં અનુગત જે પુરુષનું ભોગાપવર્ગ-સંપાદનનું સામર્થ્ય, તે અર્થવત્ત્વ નામે ઇંદ્રિયોનું પાંચમું રૂપ છે.

એ પાંચે ઇંદ્રિયોના રૂપમાં યોગીએ યથાક્રમ સંયમ કરવો જોઇએ. પછી સંયમથી તે તે રૂપના જયદ્વારા પંચરૂપોનો જય થવાથી યોગી ઇંદ્રિયજય પામે છે અર્થાત્ ઇંદ્રિયગણ યોગીને અધીન થઈ રહે છે. ॥૪૭॥

હવે એ પંચરૂપવિશિષ્ટ ઇંદ્રિયોનો જય થવાથી જે ફળ થાય છે, તેનું નિરૂપણ કરે છેઃ–

सू० ततो मनोजवित्वं विकरणभावः प्रधानजयश्च ॥ ४८ ॥

(ततः) તે ઇંદ્રિયજય થવાથી મનોજવિત્વ, વિકરણભાવ અને પ્રધાનજય, એ ત્રણ ફળ થાય છે. તેમાં દેહને અનુત્તમ ગતિનો લાભ

૧–સામાન્ય નામ અનુગત ધર્મનું છે, જેને તાર્કિકો જાતિ કહે છે અને વિશેષ નામ ધર્મીનું છે. બૌદ્ધ લોકો એમ માને છે કે, સામાન્ય એ ઇંદ્રિયગ્રાહ્ય છે અને વિશેષ એ મનવડે ગ્રાહ્ય છે. એ મતની દુષ્ટતાને માટે "તે ઇંદ્રિયો" ઇત્યાદિ કહેવામાં આવ્યું છે.

થવો, એ મનોજવિત્વ કહેવાય છે. અર્થાત્, મનની પેઠે શીઘ્ર જ અનેક યોજન વ્યવહિત દેશમાં ગમન કરવાનું શરીરમાં સામર્થ્ય આવવું, તેને મનોજવિત્વ કહે છે અને વિદેહ ઇંદ્રિયોનો જે અભિલષિત દેશકાળાદિકોમાં વૃત્તિનો લાભ થવો, તે વિકરણભાવ કહેવાય છે.

અર્થાત્-જે દેશ,[1] વા કાળ વા વિષયોમાં યોગીની ઇચ્છા થાય છે, તે દેશાદિકમાં શરીરની અપેક્ષા વિના જ ઇંદ્રિયોની વૃત્તિ થઈ જાય છે. અર્થાત્ હરિદ્વારમાં રહેલો યોગી પ્રયાગરાજમાં સ્થિત પુરુષને નેત્રોથી જોઈ શકે, તેનું નામ વિકરણભાવ છે. અને નિખિલ કારણ તથા કાર્યને વશ કરી લેવાં, એ પ્રધાનજય[2] છે. એ ત્રણે સિદ્ધિઓ યોગમતમાં "મધુપ્રતીકા" નામથી કહેવાય છે અને ઇંદ્રિયોના પંચરૂપના જયથી એ પ્રાપ્ત થાય છે. ॥ ૪૮ ॥

હવે જે વિવેકખ્યાતિને માટે આ બધા સંયમનું નિરૂપણ કરાયું છે,[3] તે વિવેકખ્યાતિનું અવાન્તર ફળ કહે છે:-

सू०—सत्त्वपुरुषान्यताख्यातिमात्रस्य सर्वभावाधिष्ठातृत्वं सर्वज्ञातृत्वं च ॥ ४९ ॥

(**सत्त्वपुरुषाऽन्यताख्यातिमात्रस्य**) પ્રકૃતિ અને પુરુષના વિવેકનિષ્ઠ ચિત્તવાળા યોગીને (**सर्वभावाऽधिष्ठातृत्वम्**) સઘળા પદાર્થોના અધિષ્ઠાતા (સ્વામી)-પણાનો લાભ થાય છે. (**च**) અને (**सर्वज्ञातृत्वम्**) સઘળા પદાર્થના યથાર્થ જ્ઞાનનો લાભ થાય છે.

અર્થાત્ જે સમયે ચિત્ત રજતમરૂપ મળથી યુક્ત હતું, તે સમયે તે ચિત્ત વશીભૂત નહિ હતું. પછી જ્યારે મૈત્રી આદિ ભાવનાના અભ્યાસથી તે ચિત્ત પરવૈશારદ્યમાં[4] વર્તમાન હોય છે, ત્યારે તે ચિત્ત, યોગીને

૧-દેશ=કાશ્મીરાદિ. કાલ=અતીત આદિ. વિષય=સૂક્ષ્મ આદિ.

૨-યદ્યપિ ઇંદ્રિયોના સંયમથી ઇંદ્રિયજયદ્વારા ઇંદ્રિયો જ યોગીને વશ થવી જોઇએ, પ્રધાન વગેરે નહિ. તથાપિ પંચરૂપ વિશિષ્ટ ઇંદ્રિયોનો જય થવાથી પ્રધાનનો જય થવાનું ફળ પણ જાણી લેવું.

૩-મુખ્ય તો સંયમનું નિરૂપણ વિવેકખ્યાતિને જ અર્થે છે, પરન્તુ તેમાં શ્રદ્ધા થવાને માટે અન્ય સંયમોનું નિરૂપણ છે, તેથી બધા જ સંયમ વિવેકખ્યાતિને માટે જાણવા.

૪-સ્વચ્છ તથા સ્થિરરૂપ એકાગ્રતાના પ્રવાહનું નામ પરવૈશારદ્ય છે.

વશીભૂત થાય છે, અને તે ચિત્ત વશીભૂત થવાથી વિવેકખ્યાતિમાં પ્રતિષ્ઠિત થયેલા યોગીને સર્વ પદાર્થોના સ્વામિત્વનો લાભ થાય છે.

અર્થાત્-જડ અને પ્રકાશરૂપ જેટલા ગુણમય પદાર્થ છે, તે બધા ક્ષેત્રજ્ઞરૂપ સ્વામીના ભોગ્ય અને દૃશ્ય બનીને ઉપસ્થિત-હાજર થાય છે. તેથી જ તે યોગી નિખિલ પ્રપંચનો સ્વામી કહેવાય છે, અને સેવકની માફક સઘળા ભૂત-ભૌતિક પદાર્થ તેના સંકલ્પાનુસાર ચેષ્ટાવાળા થઈ જાય છે. એ પ્રમાણે અતીત, અનાગત, વર્તમાન વસ્તુરૂપથી પરિણામ પામેલા જે ત્રણ ગુણ છે, તેનું પણ અક્રમોપારૂઢ એટલે યુગપદ (એકકાળે) ઉત્પન્ન થયેલું વિવેકજન્ય જ્ઞાન થાય છે. અર્થાત્ એક કાળમાં જ સઘળા પદાર્થોનો યથાર્થ સાક્ષાત્કાર થઈ જાય છે, તેથી જ તે યોગી સર્વજ્ઞ કહેવાય છે.

આ જે સર્વભાવાધિષ્ઠાતૃત્વ અને સર્વજ્ઞાતૃત્વ, તેનું જ નામ યોગશાસ્ત્રમાં વિશોકા સિદ્ધિ છે. કેમકે એ બંને ધર્મોથી યોગી શોકરહિત થઈ જાય છે, તથા સર્વજ્ઞ, ક્ષીણક્લેશબંધન[1] અને વશી થઈ સર્વત્ર વિહાર કરે છે. ॥ ૪૯ ॥

બીજા સઘળા સંયમો પુરુષાર્થાભાસરૂપ ફળવાળા હોવાથી વિવેકખ્યાતિસંયમ જ મુખ્ય પુરુષાર્થરૂપ ફળવાળો છે, એ વાત જણાવવાને માટે પરવૈરાગ્યની ઉત્પત્તિદ્વારા વિવેકખ્યાતિનું મુખ્ય ફળ કહે છેઃ—

સૂ૦—तद्वैराग्यादपि दोषबीजक्षये कैवल्यम् ॥ ૫૦ ॥

(**तद्वैराग्याद्**) તે વિવેકખ્યાતિ ઉપર વૈરાગ્ય થવાથી (**दोषबीजक्षये**) રાગાદિ દોષોના બીજભૂત જે અવિદ્યા તેનો ક્ષય થવાથી (**कैवल्यम्**) આત્યન્તિક દુઃખનિવૃત્તિપૂર્વક સ્વરૂપપ્રતિષ્ઠારૂપ કૈવલ્ય ફળ મળે છે. (**अपि**)[2] અને પૂર્વોક્ત ફળ પણ મળે છે.

૧–ક્ષીણક્લેશબંધન=નિવૃત્ત થઈ ગયાં છે અવિદ્યાદિ ક્લેશરૂપ બંધન જેનાં. વશી=સર્વનો સ્વામી.

૨–સૂત્રમાં અપિ શબ્દ ભિન્નક્રમ છે. અર્થાત્-જેની સમીપ રહેલો છે, તેની સાથે અન્વય ન કરતાં એનો કૈવલ્ય પદની સાથે અન્વય કરવો. તેથી એવો અર્થ થયો કે, વિવેકખ્યાતિનું કેવળ સર્વજ્ઞતાદિજ ફળ છે, એમ ન જાણવું. પણ પરવૈરાગ્યદ્વારા અસંપ્રજ્ઞાત સમાધિનો લાભ થવાથી કૈવલ્ય પણ તેનું જ ફળ છે એમ જાણવું.

અર્થાત્–ક્લેશ કર્મનો ક્ષય થવાથી "આ જે વિવેકપ્રત્યયરૂપ ધર્મ છે, તે બુદ્ધિરૂપ સત્ત્વનો ધર્મ છે અને બુદ્ધિ અનાત્મ હોવાથી તેનો હેય-પક્ષમાં અંતર્ભાવ થાય છે અને જે પુરુષ છે, તે બુદ્ધિથી ભિન્ન તથા અપરિણામી છે." એ પ્રકારના વિવેકથી જ્યારે વિવેકખ્યાતિમાં વૈરાગ્યનો ઉદય થાય છે, ત્યારે તે પરવૈરાગ્યવાળા પુરુષના ચિત્તમાં વિદ્યમાન જે ક્લેશ-બીજ છે, તે દગ્ધશાલિ બીજની પેઠે પોતાના અંકુરોત્પાદનમાં અસમર્થ થયેલું મનસહિત જ નષ્ટ થઈ જાય છે, અને તે ક્લેશાદિક પ્રલીન થવાથી તે પુરુષ પછી આધ્યાત્મિકાદિ ત્રણે તાપને ભોગવતો નથી અને કર્મ ક્લેશ વિપાકરૂપે ચિત્તમાં વિદ્યમાન ગુણોનો પ્રતિપ્રસવ એટલે ચરિતાર્થ થયે ગુણો, મનસહિત જ સ્વકારણમાં લય પામી જાય છે. એ જ પુરુષનો આત્યંતિક ગુણવિયોગ છે અને તેને જ કૈવલ્ય કહે છે. એ દશામાં ચિતિશક્તિરૂપ પુરુષ સ્વસ્વરૂપમાં સ્થિત થયેલો કહેવાય છે, અને એ જ યોગની પરમ સીમા છે. ॥ ૫૦ ॥

હવે મુક્તિનાં સાધનોમાં પ્રવૃત્ત થયેલા યોગીજનોને જે વિઘ્ન ઉપસ્થિત થાય છે, તેના નિવારણનું કારણ નિરૂપણ કરે છેઃ-

सू–स्थान्युपनिमन्त्रणेसङ्गस्मयाऽकरणं पुनरनिष्टप्रसङ्गात् ॥ ५१ ॥

(स्थान्युपनिमन्त्रणे)[1] દેવતાઓની સત્કારપૂર્વક પ્રાર્થના થયે તેમના કથનમાં (सङ्गस्मयाऽकरणम्) સંગ તથા વિસ્મય ન કરવું. કેમકે (पुनरनिष्टप्रसङ्गात्) તેમ કરવાથી ફરી અનિષ્ટની પ્રાપ્તિ થવાનો પ્રસંગ આવે છે.

અર્થાત્–જ્યારે દેવતાઓનો સમૂહ અપ્સરાઓ સહિત આવીને પ્રાર્થના કરે કે–સ્વર્ગમાં ભોગ ભોગવવા સારુ ચાલો. ત્યારે તેમનું કહેવું ન માનવું અને કાંઈ ગર્વ પણ ન કરવો. કેમકે એમ કરવાથી ફરી જન્મ મરણરૂપ દુઃખ બન્યું રહે છે.

ભાવ એ છે કે,[2] ચાર પ્રકારના યોગી છે. એક તો પ્રથમ કલ્પિક, બીજો મધુ ભૂમિક, ત્રીજો પ્રજ્ઞાજ્યોતિ અને ચોથો અતિક્રાન્તભાવનીય. તેમાં જે અભ્યાસી પ્રવૃત્ત માત્ર જ્યોતિ છે, એટલે સંયમમાં તત્પર હોવાથી પરચિત્તજ્ઞાન આદિ સિદ્ધિઓની ઉન્મુખ છે, તે પ્રથમ કલ્પિક

૧–સ્થાની નામ ઇંદ્રાદિ દેવતાઓનું છે અને ઉપનિમંત્રણ નામ સમીપ જઈ સત્કારપૂર્વક પ્રાર્થનાનું છે.

૨–હવે જે યોગીઓને વિઘ્ન ઉપસ્થિત થવાની સંભાવના છે, તેના નિશ્ચય માટે યોગીઓના ભેદ કહે છે, "ભાવ એ છે કે" ઇત્યાદિથી.

યોગી છે. જે સમાધિદ્વારા ઋતંભરા પ્રજ્ઞાવાળો છે, તથા ભૂત અને ઇંદ્રિયોને જિતવાની ઇચ્છાવાળો છે, તે મધુભૂમિકયોગી છે. જેણે પૂર્વોક્ત સંયમવડે ભૂત તથા ઇંદ્રિયોને પોતાને અધીન કરેલાં છે અને જે પરચિત્તજ્ઞાનાદિમાં કૃતરક્ષાબંધ[1] છે, તથા વિશોકાદિ સિદ્ધિઓને માટે યત્નશીલ છે, તે ત્રીજો પ્રજ્ઞાજ્યોતિ છે, અને જે યોગીને અસંપ્રજ્ઞાત સમાધિદ્વારા કેવળ ચિત્તના વિલયરૂપ કર્ત્તવ્ય જ અવશિષ્ટ છે, અન્ય કિંચિત્ કર્ત્તવ્ય નથી, અને તેથી જ જે સપ્તવિધ પ્રાન્તભૂમિ પ્રજ્ઞાના[2] લાભવાળો છે, તે ચોથો અતિક્રાન્તભાવનીય યોગી છે.

એ યોગીઓમાંથી જે પ્રથમ કલ્પિકયોગી છે, તેને તો મહેન્દ્રાદિની પ્રાર્થનાના સંભવની પ્રાપ્તિ જ નથી. કેમકે તે હજી યોગમાં પ્રવૃત્ત માત્ર છે. તૃતીય ભૂતેન્દ્રિયજયી યોગી છે. તે સ્વતઃ જ અણિમાદિ ઐશ્વર્યશાળી હોવાથી તેને દેવગણ પ્રલોભન કરી શકતા નથી અને જે અતિક્રાન્તભાવનીય ચતુર્થયોગી છે, તે પરવૈરાગ્યશીલ હોવાથી કોઈની પરવા જ રાખતો નથી. એટલે બાકી રહેલા ઋતમ્ભરાપ્રજ્ઞાવાળા દ્વિતીય યોગીને જ દેવતાકૃત ઉપનિમંત્રણની યોગ્યતાવાળો જાણવો. કેમકે તેને ઐશ્વર્યની પ્રાપ્તિ સિદ્ધ થઈ નથી. તેમ તેને પરવૈરાગ્ય પણ નથી. એ મધુમતી ભૂમિનો સાક્ષાત્કાર કરવાવાળા દ્વિતીય યોગીની બુદ્ધિની શુદ્ધિને જોતા ઇંદ્રાદિ દેવ, એ યોગીની સમીપમાં આવી સ્વર્ગીય[3] વિમાન અપ્સરા વગેરે બતાવી તેના પ્રલોભનને માટે આ પ્રમાણે સત્કારપૂર્વક પ્રાર્થના કરે છે કે–"**भोरिहाऽऽस्यताम्, इह रम्यतां, कमनीयोऽयं भोगः, कमनीयेयं कन्या, रसायनमिदं जरामृत्युं बाधते, वैहायसमिदं यानम्, अमी कल्पद्रुमाः, पुण्या मन्दाकिनी, सिद्धा महर्षयः उत्तमा अनुकूला अप्सरसः, दिव्ये श्रोत्रचक्षुषी, वज्रोपमः कायः, स्वगुणैः सर्वमिदमुपार्जितमायुष्मता, प्रतिपद्यतामिदमक्षयमजरममरस्थानं देवानां प्रियम्" इति.**

"હે યોગિન્[4]! આપ અહીં સ્થિતિ કરો, અને અહીં જ રમણ કરો, જુઓ, આ કેવા રમણીય ભોગ છે? આ કેવી ખૂબસુરત કન્યા

૧–કૃતરક્ષાબંધ=પરચિત્તજ્ઞાનાદિ સિદ્ધિઓના લાભવાળો.

૨–એ બાબત બીજા પાદના ૨૭ મા સૂત્રના વ્યાખ્યાનમાં સ્પષ્ટ છે.

૩–સ્વર્ગમાં હોવાવાળા.

૪–એ અમરગણોનાં લલિત વચનોનો ભાષાનુવાદ "હે યોગિન્" ઇત્યાદિથી કરે છે.

છે? આ કેવું સુંદર રસાયન[1] છે? કે જે જરામૃત્યુને દૂર કરે છે. આ આકાશમાં ચાલવાવાળું વિમાન છે. આપના ભોગને માટે આ કલ્પદ્રુમ તૈયાર છે. આપના સ્નાન માટે આ પવિત્ર મંદાકિની ઉપસ્થિત છે. આ સિદ્ધ અને મહર્ષિઓ આપના સત્કારને માટે ઉપસ્થિત છે. આ ઉત્તમ અને અનુકૂલ અપ્સરાઓ આપની સેવામાં ઉપસ્થિત છે. જે પ્રકારે યોગબળે આપનાં કર્ણ તથા નેત્ર દિવ્ય છે અને શરીર વજ્રસમાન છે, એ પ્રકારે યોગબળથી આપે આ પૂર્વોક્ત ભોગ ઉપાર્જન કર્યા છે, તેટલા માટે દેવતાઓને પ્રિય જે અક્ષય, અજર, અમર સ્થાન છે, તેને પામી આપ આનંદ ભોગવો."

એ પ્રકારે એ દેવતાઓના કથનથી લોભયુક્ત થઈ યોગીએ તેમની વાતોમાં વિશ્વાસ કરી તેમનો સંગ ન કરવો, પણ સંગદોષની ભાવના કરવી.

અર્થાત્[2]–પોતાના મનમાં એવો વિચાર કરવો કે–"આ ઘોરસંસારરૂપ અંગારામાં પચ્યમાન અને વારંવાર જન્મમરણરૂપ અંધકારમાં ભ્રમણ કરતા કેવી રીતે આ યોગરૂપ દીપકનો લાભ કર્યો છે, કે જે ક્લેશરૂપ અંધકારને નાશ કરવાવાળો છે. તે યોગરૂપ દીપકનો આ વિષયરૂપ વાયુ વિરોધી છે.[3] કેમકે આ વિષયરૂપ વાયુ વાસનાથી ઉત્પન્ન થયેલા અનેક પ્રકારના વિષયભોગ તથા તૃષ્ણાને ઉત્પન્ન કરે છે. તો હવે હું યોગજ્ઞાનરૂપ પ્રકાશને પામી પછી કેવી રીતે વિષયરૂપ મૃગતૃષ્ણાથી છેતરાઈને આ સંસારરૂપ અગ્નિમાં મને પોતાને ઇંધનરૂપ કરું? અર્થાત્ જાણીબુજીને હું આ સંસારરૂપ અગ્નિમાં પોતાને લાકડાની પેઠે કેમ બાળું? માટે હે દેવગણ! આપને તથા તુચ્છજનો જેને માટે પ્રાર્થના કરે છે, એવા સ્વપ્નોપમ અપ્સરાદિ વિષયોને હું નમસ્કાર કરું છું. આપનું કલ્યાણ થાઓ, આપ મારાપર કૃપા કરો." એ પ્રમાણે નિશ્ચિત મતિવાળા બની યોગીએ સમાધિના અનુષ્ઠાનમાં તત્પર થવું. એ પ્રકારે વિષયોમાં દોષદષ્ટિદ્વારા તેમાં આસક્તિનો અભાવ કરીને પછી તેમાં સ્મય પણ ન કરવો.

૧–રસાયન નામ આયુર્વેદમાં કહેલી રસાદિ ધાતુઓને સમાન કરનારી ઓષધિનું છે.

૨–હવે જે રીતે સંગદોષની ભાવના કરવી જોઇએ, તે પ્રકાર બતાવે છે, "અર્થાત્" ઇત્યાદિથી.

૩–જેમ બાહ્યવાયુ દીપકનો વિરોધી છે, તેમ વિષયરૂપ વાયુ યોગદીપકનો વિરોધી છે.

અર્થાત્-હું આટલા પ્રભાવવાળો યોગી છું, કે દેવો પણ મારી પ્રાર્થના કરે છે. એ પ્રકારે ગર્વ વા અહંકાર ન કરવો. કેમકે એવો અહંકાર કરવાથી યોગી પોતાને સુસ્થિત એટલે કૃતકૃત્ય માની, મૃત્યુવડે પકડાયલો પોતાને ન જાણી, સમાધિમાંથી ઉપરામ પામી જશે, તો પછી નિરંતર યોગીનાં છિદ્ર જોનાર તથા મહાન્ યત્નથી નિવૃત્ત થવા યોગ્ય જે પ્રમાદ, તે યોગીની સમાધિથી ઉપરામતારૂપ છિદ્રને પ્રાપ્ત થઈ, પછી ક્લેશોને પ્રબળ કરી દેશે, અને તેથી યોગીને અનિષ્ટની પ્રાપ્તિ થશે. અર્થાત્ તે યોગથી ભ્રષ્ટ થઈ અનેક સંકટોમાં પડશે. પણ જો પૂર્વોક્ત પ્રકારે સંગ તથા ગર્વ નહિ કરે, તો ભાવિત[1] અર્થ દૃઢ થઈ જશે અને ભાવનીય અર્થ તેના અભિમુખ થઈ જશે. તેથી સંગ તથા ગર્વનો ત્યાગ કરી નિરંતર યોગીએ યોગના અનુષ્ઠાનમાં જ તત્પર રહેવું, કે જેથી તે પરવૈરાગ્યદ્વારા અસંપ્રજ્ઞાત સમાધિનો લાભ કરી વિશોક થઈ જીવનમુક્તતાને પામી જશે. કેમકે એ જ યોગની પરમ સીમા છે. ॥ ૫૧ ॥

હવે નિઃશેષરૂપથી સર્વજ્ઞતાના કારણભૂત જે વિવેકજન્યજ્ઞાન છે, તેના સાધનભૂત સંયમ કહે છેઃ-

सू–क्षणतत्क्रमयोः संयमाद् विवेकजं ज्ञानम् ॥ ५२ ॥

ક્ષણનો તથા ક્ષણના ક્રમનો સંયમ કરવાથી યોગીને વિવેકજન્ય જ્ઞાન પ્રાપ્ત થાય છે.

તેમાં,[2] જેમ લોષ્ટ[3] આદિના વિભાગ કરવાથી જે અવયવના વિભાગ ન થઈ શકે એવું જે અતિ સૂક્ષ્મ અપકર્ષપર્યન્ત દ્રવ્ય, તેને પરમાણુ કહે છે; તેમ પરમાપકર્ષપર્યન્ત જે અતિસૂક્ષ્મ નિર્વિભાગ કાળ તેનું નામ ક્ષણ.

અથવા જેટલા સમયમાં પરમાણુ ચલાયમાન થઈ પૂર્વ દેશનો પરિત્યાગ કરી ઉત્તર દેશને પ્રાપ્ત થાય છે,[4] તેટલા કાળનું નામ ક્ષણ છે.,

---

૧–સંયમોદ્વારા સંપાદન કરી લીધેલું જે પરચિત્તજ્ઞાન વગેરે, એ ભાવિત અર્થ છે અને વિવેકખ્યાતિના અભ્યાસથી વિશોકાથી તે પરવૈરાગ્યપર્યન્ત જે સંપાદન કરવા યોગ્ય અર્થ, તે ભાવનીય અર્થ કહેવાય છે.

૨–ક્ષણ તથા ક્રમના લક્ષણ કથન કરતાં સૂત્રના અર્થને સ્પષ્ટ કરે છે, "તેમાં" ઇત્યાદિથી.

૩–લોષ્ટ=માટીનું ઢેફું.

૪–પરમાણુમાત્ર દેશનું ઉલ્લંઘન કરે છે.

એ ક્ષણોનો જે પ્રવાહાવિચ્છેદ,[1] તે ક્રમપદનો અર્થ છે. તે ક્રમ વાસ્તવિક (ખરો) નથી, પણ કાલ્પનિક છે. કેમકે એક કાળમાં એકત્રિત ન હોવાવાળા ક્ષણોના સમાહારનો અસંભવ હોવાથી ક્ષણ સમાહારરૂપ ક્રમનો સંભવ હોવો, એ વિચારથી વિરુદ્ધ છે. જેવી રીતે ક્ષણ સમાહારરૂપ ક્રમ અવાસ્તવ છે, તેવી રીતે ક્ષણોના સમાહારરૂપ જે ઘટિકા, મુહૂર્ત, પ્રહર, દિન, રાત્રિરૂપ કાળ છે, તેને પણ અવાસ્તવ (મિથ્યા) જાણવો.

અર્થાત્, ક્ષણ જ અવિવેકી મનુષ્યોની વિકલ્પવૃત્તિથી[2] ઘટિકા આદિ પદવડે વ્યવહારનો વિષય થાય છે. પરમાર્થ રીતે જોતાં તો ક્ષણથી અતિરિક્ત ઘટિકાદિ કાળનો સંભવ જ નથી. તેથી જ કાળના વાસ્તવ રૂપને જાણવાવાળો યોગી ક્ષણને જ મુખ્ય કાળ માને છે, અન્યને નહિ.

ભાવ એ છે કે, ક્ષણોનો નૈરન્તર્યરૂપ જે ક્રમ છે, તેને આશ્રયણ કરવાવાળો જે ક્ષણ, તે વાસ્તવ છે અને તે ક્ષણોનો જે ક્રમ છે, તે મિથ્યા છે. કેમકે પૂર્વના ક્ષણથી ઉત્તરના ક્ષણનું જે અવિરલત્વરૂપ આનન્તર્ય, તેને ક્રમ કહે છે અને તે ક્રમ, બે ક્ષણોનો એક કાળમાં અવસ્થાનરૂપ જે સમાહાર, તેને અધીન છે; અને બે ક્ષણોનો સમાહાર થવો અસંભવિત છે, માટે એક વર્ત્તમાન ક્ષણ જ વાસ્તવ જાણવો, પણ પૂર્વોત્તર ક્ષણ તથા તેનો સમાહાર નહિ.

જેવી રીતે સમાહાર ન હોવાથી ક્રમ કલ્પિત છે, તેવી રીતે સમાહાર ન હોવાથી ઘટિકા પણ કલ્પિત છે, આ યોગશાસ્ત્રનો સિદ્ધાંત છે.

એ પ્રમાણે યોગમતમાં એક વર્ત્તમાન ક્ષણનું જ અર્થ ક્રિયામાં સામર્થ્ય હોવાથી તે બધા વ્યવહારનો આશ્રય છે, અને તે ક્ષણવડે જ સઘળા લોક પરિણામનો[3] અનુભવ કરે છે. માટે પૂર્વોત્તર જે ક્ષણ છે, તે સામાન્યપણે તેમાં સમનુગત છે, એ સિદ્ધ થયું.

તેમાંથી[4] પૂર્વોક્ત ક્ષણનો તથા ક્રમનો સંયમ કરવાથી યોગીને

૧–પ્રવાહ=ક્ષણોનું ઉત્તરોત્તર ભાવરૂપથી જે અવસ્થાન થવું તે અને એ પ્રવાહનો જે અવિચ્છેદ=અવિરલત્વ=નૈરન્તર્ય તેને ક્રમ કહે છે.

૨–શબ્દ માત્રથી પ્રતીત થવાવાળો જે અર્થ શૂન્ય અર્થ, તેનું નામ વિકલ્પ છે, તે પ્રથમપાદમાં સ્પષ્ટ છે.

૩–નાનું મોટું, નવું જુનું, એ કાળકૃત પરિણામ જાણવું.

૪–એ પ્રમાણે ક્ષણ અને ક્રમનું સ્વરૂપ કહી સૂત્રનો અર્થ કરે છે. "તેમાંથી" ઇત્યાદિથી.

ક્ષણ તથા ક્રમનો સાક્ષાત્કાર થાય છે, અને તે પછી વિવેકજન્ય જ્ઞાનનો આવિર્ભાવ થાય છે. ॥૫૨॥

હવે એ વિવેકજન્ય જ્ઞાનનું ઉદાહરણ બતાવવાની સાથે વિવેકજન્ય જ્ઞાનનું અવાન્તર ફળ[1] કહે છેઃ-

सू० जातिलक्षणदेशैरन्यताऽनवच्छेदात् तुल्ययोस्ततः प्रतिपत्तिः ॥५३॥

(जातिलक्षणदेशैः) જાતિ, લક્ષણ અને દેશવડે (अन्यताऽनवच्छेदात्ः) ભેદનો નિશ્ચય ન થવાથી (तुल्ययोः) સમાન પદાર્થોના (प्रतिपत्तिः) ભેદનું જ્ઞાન (ततः) વિવેકજન્ય જ્ઞાનથી થાય છે.

અર્થાત્-જ્યાં જાતિ વગેરેથી બે સમાન પદાર્થોના પરસ્પર ભેદનો નિશ્ચય થઈ શકતો નથી, તે ઠેકાણે કેવળ વિવેકજન્ય જ્ઞાનથી જ ભેદનો નિશ્ચય થાય છે.

ભાવ એ છે કે-લોકમાં બે પદાર્થના પરસ્પર ભેદનું જ્ઞાન, એ ત્રણ કારણથી થાય છે. જેવા કે કોઇકનું જાતિભેદથી, કોઇકનું લક્ષણ-ભેદથી અને કોઇકનું દેશ[2]ભેદથી. જેમ સમાન દેશમાં સ્થિત તથા સમાન વર્ણવાળી[3] જે ગાય અને ઘોડી છે, તે બંનેના ભેદની પ્રતીતિનો હેતુ ગોત્વાદિ જાતિભેદ છે; જ્યાં ગોત્વરૂપ જાતિ પણ સમાન છે અને પૂર્વત્વરૂપ દેશ પણ સમાન છે, ત્યાં જે કાલાક્ષી અને સ્વસ્તિ-મતી ગાયનો પરસ્પર જે ભેદ છે, તેનો હેતુ કાલાક્ષીત્વ તથા સ્વસ્તિ-મત્વરૂપ[4] લક્ષણ ભેદ છે અને જ્યાં આમલત્વરૂપ જાતિ પણ તુલ્ય છે તથા વર્તુલત્વ (ગોલાકાર) રૂપ લક્ષણ પણ બંનેનાં તુલ્ય છે, ત્યાં જે બંને આંબળાંનો પરસ્પર ભેદ છે, તેનો હેતુ પૂર્વત્વ આદિ દેશ ભેદ છે. એ પ્રમાણે લોકમાં જાતિભેદ, લક્ષણભેદ. અને દેશભેદ એ ત્રણ, પદાર્થોના ભેદના હેતુ છે. પરંતુ જ્યાં એ ત્રણ, ભેદના હેતુ નથી ત્યાં જે ભેદજ્ઞાન થવું, તે વિવેકજન્ય જ્ઞાનનું ફળ છે.

૧-અર્થાત્-એનું મુખ્ય ફળ કૈવલ્ય છે, તેથી તે જ્ઞાનનું નામ આગળ ૫૪ મા સૂત્રમાં 'તારક' કહેલું છે.

૨-અનેક વ્યક્તિઓમાં અનુગત જે સામાન્ય ધર્મ, તેને જાતિ કહે છે; અને અસાધારણ ધર્મનું નામ લક્ષણ છે, તથા દેશ નામ પૂર્વત્વ તથા પરત્વનું છે.

૩-સમાનવર્ણવાળી કહેવાથી બંનેનું એક લક્ષણ બોધન કર્યું.

૪-કાળા નેત્રવાળી ગાયને કાલાક્ષી કહે છે અને મસ્તકપર અર્ધ ચંદ્રાદિક ચિહ્નવાળી ગાયને સ્વસ્તિમતી કહે છે.

અર્થાત્, જ્યાં પ્રથમ, તુલ્યજાતિ અને લક્ષણવાળું એક આંબળું યોગીના પૂર્વ દેશમાં સ્થિત હોય, તથા એક ઉત્તર દેશમાં સ્થિત હોય અને પછી યોગી અન્યવ્યગ્ર[1] થતાં યોગીના જ્ઞાનની પરીક્ષા માટે કોઈ પુરુષે ઉત્તર તરફ પડેલા આંબળાને ત્યાંથી ઉઠાવી ત્યાં પૂર્વ દેશસ્થ આંબળાને મૂકી દીધું હોય, તો ત્યાં એ આંબળાનું ઉઠાવેલા આંબળાથી જે ભેદ-જ્ઞાન છે, તે લૌકિકપ્રાજ્ઞને[2] થવું અસંભવિત છે. કેમકે ત્યાં ભેદનું કારણ જાતિ, લક્ષણ કે દેશનો ભેદ નથી, પરંતુ યોગી અસંદિગ્ધ જ્ઞાનવાળો હોવાથી તેવો ભેદ પણ જાણી શકે છે. એ પ્રમાણે એવાં એવાં સ્થળોમાં જે ભેદજ્ઞાન થવું, તે વિવેકજન્ય જ્ઞાનનું ફળ સમજવું.

પરંતુ એવે સ્થળે યોગીને કેવે પ્રકારે જ્ઞાન થાય છે, તે વિષે ભાષ્યકારે કહેલું છે કે-પૂર્વ તરફના આમલકની સાથે સમાન (એક) ક્ષણવાળો જે દેશ છે, તે ઉત્તર તરફના આમલક સહ ક્ષણવાળા દેશથી ભિન્ન છે; અને તે બંને આમલકોના સ્વદેશ સહિત ક્ષણના જ્ઞાનથી તે બંને આમલક પણ ભિન્ન છે. ત્યાં યોગબળદ્વારા તે આમલકના અન્ય દેશસહિત ક્ષણનું જે યથાર્થ જ્ઞાન છે, તે બંને આમલકોના ભેદનું કારણ છે.[3] જેવી રીતે યોગીને આમલકોનું ભેદજ્ઞાન થાય છે, તેવી રીતે પર-માણુઓનું પણ પરસ્પર ભેદજ્ઞાન જાણી લેવું.

અર્થાત્-સમાન જાતિ, લક્ષણ, દેશવાળાં જે પરમ સૂક્ષ્મ પરમાણુ છે, તેમનું ભેદજ્ઞાન પણ ક્ષણના સાક્ષાત્કારથી જાણી લેવું.

વૈશેષિક લોકો જે એવું માને છે કે, "નિત્ય દ્રવ્યમાં વર્તવાવાળો જે વિશેષ પદાર્થ છે, તે જ પરમાણુ આદિ નિરવયવ દ્રવ્યોનો ભેદક[4] છે." આ તેઓનું માનવું અયુક્ત છે. કેમકે વૈશેષિક મતમાં પણ જાતિ,

---

૧-આમલકની તરફ દૃષ્ટિ તથા ધ્યાનના અભાવપૂર્વક બીજા કોઈ પદાર્થ તરફ દૃષ્ટિ તથા ધ્યાનનું લાગવું, તેને અન્યવ્યગ્રતા કહે છે.

૨-યોગબળ વિના જે અન્ય પ્રમાણોથી વ્યવહાર કરવાવાળા છે, તે લૌકિકપ્રાજ્ઞ કહેવાય છે.

૩-એ બધું યોગાભ્યાસ વિના બુદ્ધિમાં આવવું કઠણ છે.

૪-યદ્યપિ સાવયવ દ્રવ્યોનું અવયવભેદથી જ ભેદજ્ઞાન થઈ શકે છે, તથાપિ નિરવય દ્રવ્યોના ભેદજ્ઞાનાર્થે વિશેષ પદાર્થ માન્યો છે. એ વિશેપ પદાર્થના માનવાથી જ કણાદમતાનુયાયીને વૈશેષિક કહે છે.

લક્ષણ, દેશ, મૂર્ત્તિ[1], વ્યવધાન આદિથી ભેદજ્ઞાનનો સંભવ હોવાથી નિરર્થક એક વિશેષ પદાર્થ માનવો, એ ગૌરવગ્રસ્ત છે.

અહીં એટલું વિશેષ છે કે, જાતિ વગેરેના ભેદથી પદાર્થોનું ભેદજ્ઞાન થવું, એ તો સાધારણ છે, પણ ક્ષણભેદથી ભેદજ્ઞાન થવું, એ કેવળ યોગીના જ્ઞાનથી ગમ્ય છે. વળી જ્યાં એ ભેદોનાં કારણ જાતિ વગેરેનો અભાવ હોય છે, ત્યાં લોકોને ભેદજ્ઞાન થતું નથી, તેથી જ વાર્ષગણ્યાચાર્યે કહ્યું છે કે–"मूर्त्ति–व्यवधि जातिभेदाभावान्नास्ति मूलपृथक्त्वम्" इति.

અર્થાત્–જગતના મૂલભૂત પ્રધાનનો (पृथक्त्व) ભેદ જાણી શકતો નથી. કેમકે મૂર્ત્તિ, વ્યવધાન, જાતિ વગેરે જે ભેદનાં કારણ છે, તેનો પ્રધાનમાં અભાવ છે.

અર્થાત્–પૂર્વે જે દ્વિતીય પાદમાં[2] એમ કહેલું છે કે, વિવેકીની દૃષ્ટિમાં યદ્યપિ પ્રધાન નષ્ટ છે, તથાપિ અન્ય જનોની દૃષ્ટિમાં તે અનષ્ટ જ છે. ત્યાં જે નષ્ટ અને અનષ્ટ પ્રધાનનો પરસ્પર ભેદ છે, તે જાત આદિથી જાણી શકાતો નથી પણ શાસ્ત્રીય વિવેકથી જ જણાય છે. ભાવ એ છે કે, એવા એવા વિષયોમાં લૌકિક હેતુઓથી ભેદજ્ઞાન થતું નથી, પણ વિવેક વા યોગબળથી થાય છે. ॥ ૫૩ ॥

એ પ્રમાણે વિવેકજન્યજ્ઞાનનું અવાન્તર ફળ કહી હવે લક્ષણકથનદ્વારા મુખ્ય ફળ દેખાડે છે.

૧–મૂર્ત્તિ નામ અવયવસન્નિવેશ વિશેષનું છે. અર્થાત્, વિશુદ્ધ વા ન્યૂન વા વક્ર અવયવવાળા પદાર્થનું જે મલિન, અધિક તથા સરળ અવયવવાળા પદાર્થથી ભેદજ્ઞાન છે, તેનો હેતુ અવયવસન્નિવેશવિશેષ છે. એ પ્રમાણે કુશદ્વીપ તથા પુષ્કર દ્વીપનો જે પરસ્પર ભેદ છે, તેનો હેતુ વ્યવધાન છે, એમ જાણી લેવું. જાતિ વગેરેનાં ઉદાહરણ પૂર્વે કહી ચૂકયા છીએ. એ પ્રમાણે જાતિ, લક્ષણ, દેશ, મૂર્ત્તિ અને વ્યવધાન એ પાંચ ભેદનાં કારણ છે, એમ સિદ્ધ થયું. અહીં એટલું વિશેષ છે કે, મૂર્ત્તિ તો કેવળ સાવયવ પદાર્થોની ભેદક છે અને જાતિ વગેરે સાવયવ નિરવયવનાં સાધારણ ભેદક છે. એ પ્રમાણે જલીય અને પાર્થિવ પરમાણુનાં પરસ્પર ભેદક જાતિ તથા લક્ષણ છે તથા પાર્થિવ પરમાણુનો પરસ્પર ભેદ કરનાર દેશભેદ છે. તેથી નિરર્થક વિશેષ પદાર્થ માનવો અયુક્ત છે.

૨–બીજા પાદના સૂત્ર ૨૧–૨૨ માં જુઓ.

सू०–तारकं सर्वविषयं सर्वथा विषयमक्रमं चेति विवेकजं ज्ञानम्[1] ॥ ५४ ॥

(तारकम्) સંસારસાગરમાંથી તારવાવાળું (सर्वविषयं) પદાર્થ માત્રને વિષય કરવાવાળું[2] (सर्वथा विषयं) સર્વ પ્રકારે સર્વને વિષય કરવાવાળું અર્થાત્–અવાંતર વિશેષ ધર્મોસહિત ભૂત, વર્ત્તમાન, અનાગત કાળમાં હોવાવાળા પદાર્થને જાણવાવાળું (अक्रमम्) ક્રમ વગર એક કાળમાં હોવા-વાળું (इति) એવું જે જ્ઞાન છે, તે વિવેકથી ઉત્પન્ન થયલું જ્ઞાન કહેવાય છે.

અર્થાત્–કૈવલ્યના હેતુરૂપ, સ્વપ્રતિભોત્પન્ન,[3] અનૌપદૈશિક અને અતીત, અનાગત, વર્ત્તમાન, સૂક્ષ્મ, વ્યવહિત તથા વિપ્રકૃષ્ટ પદાર્થનું જે વિલંબ વિના પેદા થનાર જ્ઞાન, તે વિવેકજન્ય જ્ઞાન જાણવું. એ વિવેક-જન્ય જ્ઞાનનું જ નામ પરિપૂર્ણ જ્ઞાન છે. સંપ્રજ્ઞાત યોગ પણ તે જ્ઞાનનો જ એક અંશ છે, અને એ જ્ઞાનને જ યોગમતમાં તારક કહે છે, તથા ઋત-મ્ભરાપ્રજ્ઞાથી એ જ્ઞાનનો પ્રારંભ થાય છે, અને સાત પ્રકારની પ્રજ્ઞા[4] થવાથી તે સમાપ્ત થાય છે.

એ જ્ઞાન થવાથી જ યોગી કર્તવ્યથી રહિત થયેલો બ્રહ્મવિદ્વરિષ્ઠ અને જીવન્મુક્ત કહેવાય છે. ॥ ૫૪ ॥

એ પ્રકારે પરંપરાથી કૈવલ્યના હેતુભૂત સંયમોનું નિરૂપણ કરીને સંયમના પ્રકરણને સમાપ્ત કરી કૈવલ્યનાં સાક્ષાત્ સાધન કહે છે:–

सू–सत्त्वपुरुषयोः शुद्धिसाम्ये कैवल्यमिति ॥ ५५ ॥

(सत्त्वपुरुषयोः) બુદ્ધિ તથા પુરુષની (शुद्धिसाम्ये) શુદ્ધિનું સમપણું થાય ત્યારે[6] (कैवल्यम्) મોક્ષ થાય છે. इति શબ્દ પાદની સમાપ્તિનો બોધક છે.

અર્થાત–વિવેકખ્યાતિ થવાથી જ પુરુષ કૈવલ્યને પામે છે, પૂર્વોક્ત

૧–विवेकजं ज्ञानं એ લક્ષ્ય છે અને બાકીનાં પદ લક્ષણ છે.

૨–અર્થાત્–એવો કોઈ પદાર્થ નથી કે જે એ જ્ઞાનનો વિષય ન હોય.

૩–ઉપદેશ વિના પોતાના અનુભવથી ઉત્પન્ન થયેલું.

૪–સાત પ્રકારની પ્રજ્ઞાનું નિરૂપણ દ્વિતીય પાદના ૨૭ મા સૂત્રમાં સ્પષ્ટ છે.

૫–સત્ત્વ નામ બુદ્ધિનું છે, અને તેને જ બુદ્ધિસત્ત્વ કહે છે.

૬–બુદ્ધિ અને પુરુષની તુલ્ય શુદ્ધિ થઈ જવાને જ વિવેકખ્યાતિ કહે છે.

વિવેકજન્યજ્ઞાન હોય કે ન હોય, એટલે કે જે સમયે[1] બુદ્ધિસત્ત્વ રજ-તમરૂપ મળથી રહિત થઇને કેવળ વિવેકખ્યાતિ માત્રમાં તત્પર થયેલું દગ્ધ કલેશ બીજવાળું થઈ જાય છે, ત્યારે તે શુદ્ધ કહેવાય છે, અને તેજ પુરુષની શુદ્ધિની સમાન, બુદ્ધિની શુદ્ધિ કહેવાય છે અને અવિ-વેક દશામાં ઉપચારરૂપથી[2] પુરુષમાં પ્રતીયમાન જે બુદ્ધિનો ધર્મ-ભૂત ભોગ, તેનો એકદમ અભાવ થઈ જવો, તે પુરુષની શુદ્ધિ છે. આ જે બુદ્ધિ તથા પુરુષનું એક સરખું શુદ્ધ થઈ જવું, તેને શુદ્ધિસામ્ય કહે છે. એ અવસ્થા પ્રાપ્ત થવાથી જ યોગી કૈવલ્યને પામે છે. પછી ચાહે તો એ યોગી ઈશ્વર હો, વા અનીશ્વર હો.

અર્થાત્–પૂર્વોક્ત સંયમોના બળથી ઐશ્વર્યવાળાએ યોગીને અથવા સંયમોના અભાવથી ઐશ્વર્યથી રહિત જે યોગી છે, તે બંનેને કૈવલ્યનો હેતુ કેવળ વિવેકખ્યાતિ જ છે, પણ કાંઈ સંયમજન્ય સિદ્ધિરૂપ ઐશ્વર્ય નથી. કેમકે વિવેકજ્ઞાનરૂપ અગ્નિથી અવિદ્યાદિ કલેશબીજ દગ્ધ થયા પછી મુક્તિને માટે અન્ય સિદ્ધિ વગેરેની વિવેકીને કાંઈ અપેક્ષા નથી અને આ[3] વિભૂતિપાદમાં અનેક પ્રકારના ઐશ્વર્યરૂપ તથા અલૌકિક જ્ઞાનરૂપ સિદ્ધિઓનું જે નિરૂપણ કરેલું છે, તે તો કેવળ પરંપરાથી અંતઃકરણની શુદ્ધિદ્વારા વા વિશ્વાસદ્વારા જ કૈવલ્યનું ઉપયોગી જાણવું, પણ કાંઈ ખરી રીતે એ ઐશ્વર્ય કૈવલ્યના હેતુરૂપ નથી. કેમકે યોગશાસ્ત્રનો એ સિદ્ધાન્ત છે કે, જ્ઞાન થવાથી અજ્ઞાનની નિવૃત્તિ થાય છે, અને અજ્ઞાન નિવૃત્ત થવાથી રાગાદિ કલેશોનો અભાવ થાય છે તથા કલેશોનો અભાવ થવાથી કર્મ તથા વિપાકનો અભાવ થઈ જાય છે અને પછી એ અવસ્થામાં સમાપ્તાધિકાર થયેલા પુરુષની સન્મુખ દૃશ્યત્વરૂપે વા ભોગ્યરૂપે પરિણામને પામીને ગુણ ઉપસ્થિત થતા નથી. કેમકે વિવેક-ખ્યાતિ થવાથી ગુણોનો અધિકાર સમાપ્ત થઈ જાય છે. આ જે જ્ઞાન

૧–શુદ્ધિસામ્યે એ પદનો અર્થ સ્પષ્ટ કરવાને માટે પ્રથમ બુદ્ધિની શુદ્ધિનું સ્વરૂપ નિરૂપણ કરે છે, 'જે સમયે' ઈત્યાદિથી.

૨–ઉપચાર નામ ઔપાધિકનું છે. એ વિષે વિશેષ હકીકત પ્રથમ પાદના ચતુર્થસૂત્રમાં સ્પષ્ટ કરેલી છે.

૩–જો પૂર્વોક્ત વિભૂતિઓની કૈવલ્યમાં અપેક્ષા નથી, તો પછી આ પાદમાં તેમનું નિરૂપણ શા માટે કર્યું, એ આશંકાનું સમાધાન કરે છે, "અને આ" ઈત્યાદિથી.

થવાથી અવિદ્યાના નાશપૂર્વક ગુણોના અધિકારની સમાપ્તિ થઈ જવી, એનું જ નામ પુરુષનું કૈવલ્ય છે.[1]

અર્થાત્–એ અવસ્થા પ્રાપ્ત થવાથી જ પુરુષ, પ્રકાશસ્વરૂપ તથા નિર્મળ થયેલો કેવળ બની જાય છે. એ પ્રમાણે માત્ર વિવેકખ્યાતિ જ કૈવલ્યનું કારણ છે, પણ અન્ય સિદ્ધિ વગેરે નથી, એ સિદ્ધ થયું. ॥ ૫૫ ॥

दोहा–[2]अन्तरंग योगांग पुन, परिणामन को ख्यान।
संयम भूति ज्ञान भन, कियो पाद अवसान ॥

इति श्रीमन्निखिलशास्त्रनिष्णात श्रीगुरुमंडलसंस्थापकाचार्य योगिराज स्वामिश्री १०८ बालराम परमहंसोद्भासिते पातंजलदर्शनप्रकाशे तृतीयो विभूतिपादः समाप्तः

૧–કૈવલ્ય, અપવર્ગ, નિર્વાણ, મુક્તિ, મોક્ષ, ગુણાધિકારસમાપ્તિ, સ્વરૂપાવસ્થિતિ, વાસ્તવાત્મ સ્વરૂપાભિવ્યક્તિ, પરમ ધામ, પરમપદ, એ સર્વ શબ્દનો એક અર્થ છે.

૨–આ પાદમાં કહેલા અર્થને ગ્રહણ કરવાવાળો દોહો કહે છે, 'અંતરંગ' ઇત્યાદિથી. અર્થાત્–આ પાદમાં યોગનાં અંતરંગ અંગ, ત્રણ પ્રકારનાં પરિણામ, અને સંયમ, વિભૂતિ, વિવેકજન્ય જ્ઞાનાદિનું નિરૂપણ કર્યું છે.

इति श्रीयतिवर उदासीन आत्मस्वरूपकृत पातंजलदर्शनप्रकाशनी हिंदी टीप्पणीनो गुजराती अनुवादवाळो विभूतिपाद समाप्त ॥

॥ पातंजलदर्शनप्रकाश ॥

कैवल्यपादस्तुरीयः ॥ ४ ॥

ॐ नमोऽन्तर्यामिणे ।

दोहा—वास्तव फल कैवल्य हित, पादि तुरीय अनूप ।
करत प्रकाश महेश नम, बालराम यति–भूप ॥ १ ॥

એ પ્રકારે પ્રથમ, દ્વિતીય, તૃતીય પાદોમાં સમાધિ, તત્સાધન અને વિભૂતિઓનું પ્રાધાન્યપણે નિરૂપણ કર્યું અને પ્રાસંગિક[1] તથા ઔપોદ્ઘાતિક બીજું પણ કાંઈ વ્યુત્પાદન કર્યું. હવે કેવળ સમાધિજન્ય કૈવલ્યનું નિરૂપણ કરવું અવશિષ્ટ છે. પરંતુ જ્યાં સુધી કૈવલ્યની યોગ્યતાવાળું ચિત્ત, તથા પરલોકમાં ગમનશીલ અને ક્ષણિકવિજ્ઞાનથી અતિરિક્ત સ્થાયી આત્મા તથા પ્રસંખ્યાનની પરમ કાષ્ઠા વગેરે વિષયોનું વ્યુત્પાદન ન કરાય,[2] ત્યાં સૂધી કૈવલ્યના સ્વરૂપનું યથાર્થ વ્યુત્પાદન ન થઈ શકે, એટલા માટે એ સઘળાના નિરૂપણાર્થે આ ચતુર્થ કૈવલ્યપાદનો આરંભ કરાય છે.

તેમાં પહેલાં પાંચ પ્રકારનાં સિદ્ધ ચિત્તોમાંથી કૈવલ્યની યોગ્યતાવાળું ચિત્ત કયું છે? એ અર્થના નિર્ણયાર્થે પંચ પ્રકારની સિદ્ધિઓનું નિરૂપણ કરે છે-

---

उदासीन कवि–भूप, शिक्षा–विद्या–प्रद गुरु
बन्दत आतमरूप, पादतुरीय विवर्ण–हित ॥ १ ॥

૧–પ્રાસંગિક=પ્રસંગથી પ્રાપ્ત જે ક્ષણિકવાદ તથા પરમાણુપુંજ વગેરેનું ખંડન–ઔપોદ્ઘાતિક=પ્રકૃત શાસ્ત્ર–પ્રતિપાદ્ય જે યોગ, તેને ઉપયોગી વિચારનું નામ ઉપોદ્ઘાત છે. ઉપોદ્ઘાતથી પ્રાપ્ત જે વૃત્તિભેદાદિનું નિરૂપણ, તે ઔપોદ્ઘાતિક કહેવાય છે.

૨–આ સ્થળે પણ એ વિષયોનું નિરૂપણ પ્રાધાન્યથી છે અને પ્રસંગથી પૂર્વજન્મ સદ્ભાવ, ચિત્તપરીક્ષા, પ્રકૃત્યાપૂરાદિનું નિરૂપણ જાણવું.

सू—जन्मौषधिमंत्रतपःसमाधिजाः सिद्धयः ॥ १ ॥

(जन्मौषधिमंत्रतपःसमाधिजाः) જન્મ, ઔષધિ, મંત્ર, તપ, સમાધિ, એ પાંચથી પેદા થનાર પાંચ પ્રકારની સિદ્ધિઓ છે.

જેમ .પક્ષીઓને જન્મથી જ આકાશગમનાદિકનું સામર્થ્યવિશેષ હોય છે, તેમ સ્વર્ગીય[1] કર્મોના અનુષ્ઠાનથી મનુષ્યદેહ પછી જે દેવયોનિ-રૂપ દેહાંતરની પ્રાપ્તિ માત્રથી આકાશ ગમનાદિ સામર્થ્ય થઈ જવું, તે જન્મજન્ય સિદ્ધ કહેવાય છે. લોહગુગ્ગુલુ[2] વગેરે રસાયનના સેવનથી જે દેવસદૃશ સામર્થ્યના લાભદ્વારા જરા અને વ્યાધિથી રહિત થઈ જવું, તે ઔષધિજન્ય સિદ્ધિ જાણવી. મંત્રના અનુષ્ઠાનથી જ આકાશ-ગમન વા અણિમાદિનો લાભ થવો, તે મંત્રજન્ય સિદ્ધિ જાણવી. તપના બળથી સંકલ્પસિદ્ધિ થવાથી જે કામરૂપી[3] અને કામગ થઈ જવું, તે તપોજન્ય સિદ્ધિ જાણવી, અને પૂર્વપાદમાં નિરૂપિત સઘળી સિદ્ધિઓ સમાધિજન્ય જાણવી. એ પ્રમાણે સિદ્ધિઓના પાંચ ભેદથી સિદ્ધોના પણ પાંચ ભેદ જાણી લેવા. ॥૧॥

એ પૂર્વોક્ત સિદ્ધોનાં જે પૂર્વ જાતીય શરીર ઇંદ્રિય બદલાઈ જવાથી તેમને જે અન્ય જાતીય નૂતન અલૌકિક શરીર ઇંદ્રિયોનો લાભ થાય છે, તે શાથી થાય છે? તે આશંકાના નિવારણ અર્થે જાત્યંતર પરિ-ણામનો હેતુ નિરૂપણ કરે છે.

૧–સ્વર્ગના સાધનભૂત કર્મને સ્વર્ગીય કહે છે.

૨–આ સર્વ.

अयःपलं गुग्गुलुरत्र योज्यः पलत्रयं व्योषपलानि पंच ।
पलानि चाष्टौ त्रिफलारजश्च कर्षं लिहन् यात्यमरत्वमेव ॥

ઇત્યાદિ ભાવપ્રકાશમાં સ્પષ્ટ છે. એક પલ લોહચૂર્ણ, ત્રણ પલ ગુગળ, પાંચપલ વ્યોષ (સુંઠ, મરી, પીપર) અને આઠપલ ત્રિફલા (હરડાં, બેડાં, આમળાં). આ બધાંને મેળવી એક કર્ષભાર સેવન કરવાથી દેવભાવને પમાય છે. એમ એનો અર્થ છે. શાસ્ત્રીય પ્રમાણથી ચાર કર્ષનો એક પલ, ૧૬ માસાનો એક કર્ષ અને પાંચ ગુંજા (ચણોઠી) નો એક માસો જાણવો.

૩–જે રૂપની કામના કરે વા જે અણિમાદિની કામના કરે, તેની પ્રાપ્તિ જેને થઈ જાય, તે કામરૂપી કહેવાય છે. જ્યાં ચાહે ત્યાં ગમન કરવા-વાળાનું નામ કામગ છે.

तत्र कायेन्द्रियाणामन्यजातीयपरिणतानाम्[1]

सू–जात्यंतरपरिणामः प्रकृत्यापूरात् ॥ २ ॥

(तत्र अन्यजातीयपरिणतानां कायेन्द्रियाणाम्) ત્યાં મનુષ્યાદિ જાતિરૂપથી પરિણામને પામેલાં શરીર તથા ઇંદ્રિયોનું જે (जात्यंतरपरिणामः) નવીન દેવ-જાતિ આદિ રૂપે પરિણામ થઈ જવું, તે (प्रकृत्यापूरात्) પ્રકૃતિના આપૂરથી થાય છે.

અર્થાત્–ઔષધાદિ સાધનોના અનુષ્ઠાનથી પૂર્વનાં જે મનુષ્યાદિ જાત રૂપથી પરિણામને પામેલાં શરીર તથા ઇંદ્રિયો છે, તેમનું જે સિદ્ધિના બળવડે પૂર્વ પરિણામના ત્યાગપૂર્વક નૂતન દેવતાદિ જાતિરૂપ પરિણામ થઈ જવું, તે પ્રકૃત્યાપૂરવડે[2] જાણી લેવું.

અર્થાત્–શરીરના કારણભૂત પંચભૂત તથા ઇંદ્રિયોના કારણભૂત અહંકાર, તે સઘળા પોતપોતાના વિકારો ઉપર પોતાના નૂતનને સ્વચ્છ અવયવોના પ્રવેશદ્વારા અનુગ્રહ કરે છે. એ જે અનુગ્રહ કરવો, તેનું નામ પ્રકૃત્યાપૂર છે.

પરંતુ[3] એ અનુગ્રહ, પૂર્વોક્ત મંત્રાદિ સાધનથી પેદા થનાર ધર્માદિ નિમિત્તની અપેક્ષાવાળો છે, કાંઈ નિરપેક્ષ નથી, તેથી સઘળાને તેનો લાભ થતો નથી.

આ ઠેકાણે એટલું વિશેષ એ પણ જાણવું કે–જ્યાં મહિમાદિ સિદ્ધિરૂપ પરિણામ થાય છે, ત્યાં પ્રકૃતિના નૂતન અવયવોનો પ્રવેશ જાણવો; અને જ્યાં અણિમાદિરૂપ પરિણામ થાય છે, ત્યાં પ્રકૃતિના અવયવોનો અપગમ (નીકળી જવું) જાણવો.[4]

એવી રીતે જે વામન અવતારના શરીરનું ક્ષણભરમાં ત્રિભુવનમાં વ્યાપી રહેવારૂપી જે પરિણામ છે, શ્રીકૃષ્ણ ભગવાનના શરીરનું જે વિશ્વ-રૂપત્વાદિ પરિણામ છે, એક જ બાળકનું જે કૌમાર યૌવનાદિરૂપથી પરિ-

---

૧–એટલા પાઠનો ભાષ્યકારે સૂત્રની આદિમાં અધ્યાહાર કરેલો છે.

૨–પ્રકૃત્યાપૂર=પ્રકૃતિ નામ ઉપાદાન કારણનું છે, આપૂર એટલે પોતાનાં કાર્યોમાં અવયવોનો જે પ્રવેશ, તેને સ્પષ્ટ કરે છે, "અર્થાત્" ઇત્યાદિથી.

૩–જો પ્રકૃત્યાપૂરથી જ નવા દેહાદિનો લાભ થાય છે, તો સઘળાને તે લાભ કેમ થતો નથી? એ આશંકાનું વારણ કરે છે, "પરંતુ" ઇત્યાદિથી.

૪–એ પ્રમાણે અગસ્ત્યાદિ મુનિઓનુ સમુદ્રપાનાદિ કરવાનું લખેલું છે, તે પણ પ્રકૃત્યપગમથી જાણવું.

ણામ છે અને એક જ વડ બીજનું જે વૃક્ષાદિરૂપ પારણામ છે, તે સર્વ પ્રકૃત્યાપૂરથી જાણી લેવું. ॥૨॥

આ જે આપૂર છે, તે શું, પ્રકૃતિઓનો સ્વાભાવિક ધર્મ છે, અથવા ધર્માદિ નિમિત્તની અપેક્ષાવાળો હોવાથી નૈમિત્તિક છે? એ સંદેહ થવાથી જો કોઈ એમ કહે કે સઘળાને ન હોવાથી ધર્માદિજન્ય છે, પણ સ્વાભાવિક નથી.[1] આ આક્ષેપનું નીચલા સૂત્રવડે વારણ કરે છે;-

सू–निमित्तमप्रयोजकं प्रकृतीनां वरणभेदस्तु ततः क्षेत्रिकवद् ॥३॥

(**निमित्तम्**) ધર્માદિક જે નિમિત્ત છે, તે (**प्रकृतीनाम्**) પ્રકૃતિઓનો (**अप्रयोजकम्**) પ્રયોજક નથી. (**तु**) કિંતુ (**ततः**) તે ધર્માદિકથી (**वरणभेदः**)[2] પ્રતિબંધકની નિવૃત્તિ થાય છે. (**क्षेत्रिकवद्**) ખેતર ખેડવાવાળા ખેડુતની પેઠે.[3]

અર્થાત્-જેમ ખેડુત, જળથી ભરેલા એક ક્યારામાંથી જળને બીજા ક્યારામાં લઈ જવાની ઇચ્છા કરે છે, ત્યારે તે કાંઈ પોતાને હાથે જળને ખેંચીને બીજા ક્યારામાં લઈ જતો નથી, પણ જળ નીકળવાનો પ્રતિબંધક જે ક્યારાની પાળ, તેને ભેદી નાંખે છે, તેથી જળ આપોઆપ બીજા ક્યારામાં પ્રવેશ કરે છે; તેમ ધર્મ પણ પ્રકૃતિઓના આપૂરનો પ્રયોજક[4] નથી, પણ આપૂરના પ્રતિબંધક (ન થવા દેનાર) અધર્મનો ભેદક (નિવર્તક) છે. પછી પ્રતિબંધક નિવૃત્ત થયા પછી પ્રકૃતિઓ પોતે જ પોતપોતાના કાર્ય ઉપર અવયવોના અનુપ્રવેશદ્વારા અનુગ્રહ કરે છે, પણ કાંઈ ધર્મ તેનો પ્રયોજક નથી.

ભાવ એ છે કે-ધર્માદિક કેવળ પ્રકૃત્યાપૂરમાં નિમિત્ત માત્ર છે, કાંઈ પ્રયોજક નથી. કેમકે કારણ જ કાર્યનો પ્રયોજક બને છે; પણ કાંઈ કાર્ય, કારણનું પ્રયોજક બનતું નથી.[5] અને ધર્માદિક તો પ્રકૃતિનાં કાર્ય છે, તેથી તે પ્રકૃતિનાં પ્રયોજક બની શકતાં નથી.

૧–જો સ્વાભાવિક હોય તો પ્રાણી માત્રને પ્રકૃત્યાપૂરનો લાભ થવો જોઇએ, આ તેનો આશય છે.

૨ વરણ નામ આવરણનું છે, તેને જ પ્રતિબંધક કહે છે.

૩ ધર્માદિક, પ્રતિબંધકના નિવર્તક છે, કાંઈ સ્વતંત્ર કારણ નથી. એ અંશે એ દૃષ્ટાંત જાણવું. તેને સ્પષ્ટ કરે છે, "અર્થાત્" ઇત્યાદિથી.

૪ પ્રયોજક નામ સ્વતંત્ર કારણનું છે. તેને હેતુ કહે છે.

૫ જે જેનાથી ઉત્પન્ન થવાવાળું છે, તે તેનો કદાપિ હેતુ થઈ શકતું નથી. કેમકે તે પરતંત્ર છે અને સ્વતંત્ર કારણનું નામ હેતુ છે.

એવી રીતે આપૂર, પ્રકૃતિઓનો સ્વાભાવિક ધર્મ છે, અને[1] ધર્માદિક, પ્રતિબંધકની નિવૃત્તિદ્વારા તેમાં નિમિત્ત છે, એમ સિદ્ધ થયું.

અથવા (**क्षेत्रिकवद्**) એનો એ અર્થ જાણવો કે, જેવી રીતે ખેતરમાં વાવેલાં ધાન્યાદિકનાં મૂળોમાં જળનો પ્રવેશ કરવામાં ખેડુત, સ્વતંત્ર કારણ નથી, કિંતુ મૂળમાં જળ જવાનાં પ્રતિબંધક જે ઉપમૂળમાં[2] ઉત્પન્ન થયેલાં ક્ષુદ્ર તૃણ હોય છે, તેને ઉત્પાટન કરી અલગ કરી દે છે. એટલે પછી તે ઉપડી જવાથી જળ પોતે જ ધાન્યના મૂળમાં પ્રવેશ કરી અંદર જાય છે, કાંઈ ખેડુત તેનો હેતુ નથી. તેમ ધર્મ પણ પ્રકૃતિની પ્રવૃત્તિના પ્રતિબંધક અધર્મની નિવૃત્તિ માત્રમાં કારણ છે, પણ પ્રકૃતિની પ્રવૃત્તિમાં નથી.

અર્થાત્-શુદ્ધિ અને અશુદ્ધિનો પરસ્પર વિરોધ હોવાથી ધર્મ, પોતાના વિરોધી અધર્મને નિવૃત્ત કરી દે છે અને પ્રતિબંધક નિવૃત્ત થવાથી પ્રકૃતિ પોતે જ પોતાના અવયવો ઉપર અનુગ્રહ કરે છે, કાંઈ ધર્મ તેનો હેતુ નથી.

જેવી રીતે ધર્મ, પ્રકૃત્યાપૂરમાં નિમિત્ત છે, તેવી રીતે અધર્મને પણ પ્રકૃત્યાપૂરમાં નિમિત્ત જાણવો. પણ તેમાં[3] એટલું વિશેષ છે કે-જ્યાં નિકૃષ્ટ યોનિમાંથી ઉત્તમ યોનિરૂપ શુદ્ધ પરિણામની પ્રાપ્તિ થાય છે, ત્યાં ધર્મને અધર્મની નિવૃત્તિદ્વારા નિમિત્ત જાણવો; અને જ્યાં ઉત્તમ યોનિમાંથી નિકૃષ્ટ યોનિરૂપ અશુદ્ધ પરિણામની પ્રાપ્તિ થાય છે, ત્યાં અધર્મને ધર્મની નિવૃત્તિદ્વારા નિમિત્ત જાણવો.[4] અહીં ધર્મની બાબતનું ઉદાહરણ નંદીશ્વરને[5] જાણવું અને અધર્મ બાબતનું ઉદાહરણ નહુષ-અજગરને[6] જાણવું. ॥ ૩ ॥

---

૧ જો સ્વાભાવિક ધર્મ છે, તો યોગાદિજન્ય ધર્મનું શું પ્રયોજન છે ? તે શંકાના નિવારણ અર્થે કહે છે, "અને" ઇત્યાદિથી.

૨ ઉપમૂળ=મૂળની પાસે.

૩-કયે સ્થળે ધર્મ, પ્રકૃત્યાપૂરમાં નિમિત્ત છે, અને કયે સ્થળે અધર્મ નિમિત્ત છે. એ આકાંક્ષા ઉપર કહે છે, "તેમાં" ઇત્યાદિથી.

૪-અર્થાત્-સત્ત્વગુણ બહુલ શરીર-ઇંદ્રિયોના પરિણામમાં ધર્મ નિમિત્ત છે. અને તમોગુણ બહુલ શરીર-ઇંદ્રિયોના પરિણામમાં અધર્મ નિમિત્ત છે, એમ જાણવું,

૫-નંદી નામનો મનુષ્ય, શિવપૂજન-ધ્યાનાદિથી પેદા થયેલા ધર્મથી ઇશ્વર અને અમર થયો છે, એ દ્વિતીય પાદના ૧૨ મા સૂત્રના વ્યાખ્યાનમાં સ્પષ્ટ છે.

૬-ઇંદ્રભાવને પામેલો નહુષ નામે રાજા, અગસ્ત્યાદિ મુનિઓનું અપમાનજન્ય અધર્મને લીધે સર્પ થઈ ગયો, એ પણ બીજા પાદના ૧૨ મા સૂત્રમાં સ્પષ્ટ છે.

હવે જે સમયે યોગી અનેક શરીરોદ્વારા કોઈ વ્યવહાર કરવાની ઇચ્છાવાળો થવાથી સ્વશરીર તુલ્ય અનેક શરીરોને રચે છે, તે સમયે તે સઘળાં નિર્માણ થયેલ શરીર, એક મનવાળાં હોય છે,[1] વા અનેક મનવાળાં હોય છે? એ વિકલ્પ થવા ઉપર અંતિમ કલ્પના[2] સિદ્ધાંત કહે છે–

सू–निर्माणचित्तान्यस्मितामात्राद् ॥ ४ ॥

(**अस्मितामात्राद्**) અહંકારરૂપ ઉપાદાન કારણ માત્રને ગ્રહણ કરી યોગી (**निर्माणचित्तानि**) નિર્માણ ચિત્તો[3]ને રચે છે.

અર્થાત્–યોગી જેટલાં શરીર ધારણ કરે છે, તેટલાં ચિત્તોને નિર્માણ કરે છે. તેથી સઘળાં જ યોગીનાં શરીર ભિન્ન ભિન્ન[4] ચિત્ત-વાળાં હોય છે. ॥ ૪॥

જો અનેક ચિત્ત માનવામાં આવશે, તો પ્રત્યેક ચિત્તના અભિપ્રાયો ભિન્ન ભિન્ન હોવાથી એક અભિપ્રાય અનુસારે વ્યવહાર ચાલશે નહિ.[5] તેથી વિલક્ષણ એક જ ચિત્ત, અનેક શરીરવર્તી માનવું જોઇએ. એ આક્ષે-પનું નીચલા સૂત્રથી વારણ કરે છે–

सू–प्रवृत्तिभेदे प्रयोजकं चित्तमेकमनेकेषाम् ॥ ५ ॥

(**अनेकेषाम्**) અનેક ચિત્તોની (**प्रवृत्तिभेदे**) પ્રવૃત્તિવિશેષમાં (**एकं चित्तम्**) એક ચિત્તને (**प्रयोजकम्**) પ્રેરક જાણવું.

અર્થાત્–અનેક ચિત્તની ભિન્ન ભિન્ન પ્રવૃત્તિ ન હોય, કિન્તુ કોઈ એક ચિત્તના અભિપ્રાયાનુસાર જ હોય, એ વાતનો વિચાર કરી તે યોગી

૧–અર્થાત્–અનેક શરીર નિર્માણ કરનાર જે યોગી છે, તેના શરીરમાં વર્તવાવાળા ચિત્તથી જ બીજાં સઘળાં શરીરોમાં સંકલ્પાદિ વ્યવહાર થાય છે, કે સઘળાં શરીર ભિન્ન ભિન્ન ચિત્તવાળાં હોય છે?

૨–અર્થાત્–સઘળાં શરીરમાં ભિન્ન ભિન્ન ચિત્ત હોય છે, એ અંતનો પક્ષ, યોગના સિદ્ધાંતરૂપ છે.

૩–અહંકાર સ્વાધીન હોવાથી સંકલ્પ માત્રથીજ જે ચિત્ત નવાં રચાય છે, તે નિર્માણ ચિત્ત કહેવાય છે.

૪–યદ્યપિ સૂત્રકારે કંઠથી અનેક ચિત્ત કહ્યાં નથી, તથાપિ (**निर्माण-चित्तानि**) એ બહુવચનથી અનેક ચિત્તનો લાભ જાણવો.

૫–ભિન્ન ભિન્ન ચિત્તોના ભિન્ન ભિન્ન સંકલ્પ હોવાથી યોગીને યથેષ્ટ વ્યવહારનો લાભ નહિ થશે.

એક ચિત્તને સઘળાનું નાયક[1] બનાવી દે છે. અર્થાત્ પૂર્વસિદ્ધ[2] જે ચોગીનું ચિત્ત છે, તેને સઘળાનો નિયામક કરી દે છે, એટલે પછી એ નાયકચિત્તના અભિપ્રાયાનુસાર જ સઘળાની પ્રવૃત્તિ થાય છે, પણ કાંઈ સ્વતંત્ર પ્રવૃત્તિ થતી નથી. તેથી અનેક ચિત્ત માનવામાં કાંઈ દોષ નથી, એ ફલિત થયું. ॥૫॥

એ પ્રકારે પ્રાસંગિક વિચારને સમાપ્ત કરી હવે પૂર્વોક્ત પાંચ પ્રકારનાં સિદ્ધ[3] ચિત્તોમાંથી જે કૈવલ્યની ચોગ્યતાવાળું સિદ્ધ ચિત્ત છે, તેનો નિશ્ચય કરે છે–

सू–तत्र ध्यानजमनाशयम् ॥ ६ ॥

(**तत्र**) તે પાંચ પ્રકારનાં સિદ્ધ ચિત્તોમાં જે (**ध्यानजम्**) ધ્યાનજન્ય સિદ્ધચિત્ત છે, તે (**अनाशयम्**) આશય[4]=વાસનાથી રહિત છે.

અર્થાત્–પહેલા સૂત્રમાં કહેલી પાંચ પ્રકારની સિદ્ધિઓના ભેદથી જે પાંચ પ્રકારનાં સિદ્ધચિત્ત છે, તેમાંથી સમાધિજન્ય સિદ્ધિવાળા ચોગીનું જે ચિત્ત છે, તે જ કૈવલ્યની ચોગ્યતાવાળું છે; પણ બીજાં સિદ્ધચિત્ત કૈવલ્યપદની ચોગ્યતાવાળાં નથી. કેમકે બીજાં જે સિદ્ધચિત્ત છે, તે રાગાદિના હેતુભૂત વાસનાવડે વાસિત હોવાથી પુણ્યપાપનાં સંબંધી છે; અને ચોગીનું જે ચિત્ત છે, તે ક્ષીણક્લેશ હોવાથી વાસનાથી વિમુક્ત છે, તેથી જ તે પુણ્યપાપના સંબંધવાળું નથી.[5] ॥ ૬ ॥

ચોગીને પુણ્યપાપનો સંબંધ નથી અને બીજાને છે, તેમાં હેતુ કહે છે–

सू–कर्माऽशुक्लाऽकृष्णं योगिनस्त्रिविधमितरेषाम् ॥ ७ ॥

(**योगिनः**) ચોગીનું જે (**कर्म**) યમનિયમાદિ કર્મ છે તે (**अशुक्लाऽ-**

૧–પ્રયોજક, નાયક, નિયામક, સ્વામી, એ સઘળા એકાર્થક છે.

૨–ચોગીના શરીરમાં જે પ્રથમ વર્ત્તમાન ચિત્ત છે, તે પૂર્વસિદ્ધ જાણવું.

૩–પાંચ પ્રકારની સિદ્ધિઓના ભેદથી પાંચ પ્રકારના સિદ્ધ જાણવા અને પાંચ પ્રકારના સિદ્ધના ભેદથી પાંચ પ્રકારનાં સિદ્ધચિત્ત જાણવાં.

૪–આશય નામ–કર્મ અને ક્લેશોની વાસનાનું છે.

૫–યદ્યપિ ચોગી પણ ધ્યાન સમાધિ વગેરે કર્મોનું અનુષ્ઠાન કરે છે, તથાપિ તે કર્મ પુણ્યજનક નથી, કેમકે રાગાદિપૂર્વક જ કરેલું કર્મ પુણ્ય વા પાપને ઉત્પન્ન કરે છે, કેવલ કર્માનુષ્ઠાન પુણ્યપાપજનક નથી. આ સઘળું દ્વિતીય પાદના ૧૩ મા સૂત્રમાં સ્પષ્ટ છે.

(कृष्णम्) અશુકલ અને અકૃષ્ણ છે. (इतरेषाम्) યોગીથી બીજા લોકોનું જે કર્મ છે તે (त्रिविधम्) શુકલ, કૃષ્ણ અને શુકલકૃષ્ણ ભેદથી ત્રણ પ્રકારનું છે.

અર્થાત્-કૃષ્ણ, શુકલકૃષ્ણ, શુકલ અને અશુકલ અકૃષ્ણ, એવા ભેદથી ચાર પ્રકારનાં કર્મ છે. તેમાં તમોમૂલક તથા દુ:ખરૂપ ફળ દેવાવાળાં જે બ્રહ્મહત્યાદિરૂપ દુરાત્માઓનાં કર્મ છે, તે કૃષ્ણ કહેવાય છે; રજોમૂલક તથા દુ:ખ મિશ્રિત સુખરૂપ ફલ દેવાવાળાં જે બાહ્ય સાધનથી[1] સાધ્ય યજ્ઞાદિ કર્મ છે, તે શુકલ કૃષ્ણ કહેવાય છે. કેમકે યજ્ઞાદિક પરપીડા[2] અને પરાનુગ્રહદ્વારા પુણ્ય તથા પાપનાં જનક છે; અને સત્ત્વમૂલક તથા સુખમાત્ર ફળ દેવાવાળાં જે મનથી જ સાધ્ય તપ,[3] સ્વાધ્યાય, ધ્યાન આદિ કર્મ છે, તે શુકલ કર્મ કહેવાય છે. કેમકે પરપીડાકર ન હોવાથી સ્વાધ્યાયાદિ કેવળ પુણ્યમાત્રનાં જનક છે અને ગુણરહિત તથા સુખદુ:ખરૂપ ફળથી શૂન્ય જે સંપ્રજ્ઞાત સમાધિ વગેરે કર્મ છે, તે અશુકલ-અકૃષ્ણ કહેવાય છે. અર્થાત્-ક્ષીણક્લેશ ચરમદેહવાળો[4] જે સંન્યાસી યોગી છે, તેનું કર્મ અશુકલ અને અકૃષ્ણ છે.

ભાવ એ છે કે-યદ્યપિ યોગી લોક પણ યમનિયમાદિ શુભ કર્મોનું અનુષ્ઠાન કરે છે, તથાપિ ફલકામનાના અભાવથી તે કર્મ શુકલ નથી અને નિષિદ્ધ કર્મોથી ભિન્ન હોવાથી કૃષ્ણ પણ નથી, કિંતુ અશુકલાકૃષ્ણ છે. તે પ્રમાણે પુણ્યપાપના સંબંધવાળું ન હોવાથી યોગીનું જ ચિત્ત કૈવલ્યની યોગ્યતાવાળું છે, બીજાં માણસોનું ચિત્ત તેવું નથી. કેમકે બીજાં માણસોનું જે ચિત્ત છે, તે યથાયોગથી પાપ, પુણ્ય અને પુણ્ય પાપ, એ ત્રણેના સંબંધવાળું છે, એમ સિદ્ધ થયું. ॥ ૭ ॥

એવી રીતે યોગીનાં ચિત્તને વાસનાશૂન્ય નિરૂપણ કરી હવે બીજાઓનાં ચિત્તોને વાસનાના આશ્રયરૂપ નીચેના સૂત્રથી કહે છે—

सू—ततस्तद्विपाकानुगुणानामेवाभिव्यक्तिर्वासनानाम् ॥ ८ ॥

૧—વ્રીહિ, યવ, ઘૃત, પશુ, સ્ત્રી આદિ જે યજ્ઞનાં સાધન છે, તે બાહ્ય સાધન કહેવાય છે.

૨—પશુવધાદિ, પરપીડાદ્વારા પાપનાં જનક છે અને બ્રાહ્મણોને દક્ષિણાદાનાદિરૂપ પરાનુગ્રહ કરવાથી પુણ્યનાં જનક છે.

૩—તપ=ઇંદ્રિયોનો નિગ્રહ. સ્વાધ્યાય=વેદાદિનું અધ્યયન.

૪—જે દેહની પછી બીજા દેહની પ્રાપ્તિ ન થાય, તે ચરમદેહ કહેવાય છે.

(**ततः**) તે પૂર્વોક્ત ત્રણ પ્રકારનાં કર્મથી (**तद्विपाका[1]ऽनुगुणानामेव वासनानाम्**) તે કર્મોના ફલાનુસારી જ વાસનાઓનો (**अभिव्यक्ति**) પ્રાદુર્ભાવ થાય છે.

અર્થાત્-જે પુણ્ય વા પાપરૂપ કર્મનું જે દિવ્ય[2] વા નારકજન્માદિરૂપ ફળ થવાનું હોય છે, તે ફળની અનુકૂળ જ તે કર્મથી વાસના પ્રકટ થાય છે, પણ પ્રતિકૂલ થતી નથી. ફલોન્મુખ થયેલું દૈવકર્મ[3]. નરક-તિર્યક-મનુષ્ય ભોગની વાસનાના નિમિત્તરૂપ કદી પણ થતું નથી; કિંતુ દૈવભોગની[4] અનુકૂળ જે વાસના છે, તેનું જ એ વ્યંજક થાય છે. જો એમ માનીએ નહિ તો જે મનુષ્ય જન્મ પછી ઉષ્ટ્રની જાતિમાં જન્મે છે, તેની કંટકભક્ષણમાં પ્રવૃત્તિ થશે નહિ. તેથી એ અવશ્ય માનવું જોઇએ કે, ઉષ્ટ્રયોનિનું પ્રાપક ફલોન્મુખ જે કર્મ છે, તે ઉષ્ટ્રયોનિના ભોગને ઉપયોગી વાસનાના નિમિત્તરૂપ[5] છે. એ પ્રકારે નારકાદિ[6] કર્મોના સંબંધમાં પણ જાણી લેવું.

એવી રીતે જે જે જીવના વિપચ્યમાન[7] કર્મથી મનુષ્યયોનિ પછી માર્જાર વા ઉષ્ટ્રયોનિની પ્રાપ્તિ થવાની હશે, તે તે જીવના ચિત્તમાં તે કર્મથી માર્જાર-ઉષ્ટ્રયોનિના ભોગને અનુકૂલ જ વાસના પ્રકટ થશે,[8] પણ બીજી યોનિની વાસના પ્રકટ થશે નહિ, એમ સિદ્ધ થયું. ॥૮॥

આ ઠેકાણે કોઈ એવો આક્ષેપ કરે કે, બહુ અંતરાયવાળી માર્જાર અને ઉષ્ટ્રયોનિ જે પૂર્વે થઈ ગઈ છે, તેની વાસના અભિવ્યક્ત થશે અને અંતરાય વિનાના મનુષ્ય જન્મની વાસના પ્રકટ થશે નહિ. પણ એમ કહેવું

૧-વિપાક નામ ફળનું છે. તે ફળ, જાતિ, આયુ, ભોગરૂપભેદથી ત્રણ પ્રકારનું છે. એ સઘળું બીજા પાદના ૧૩ મા સૂત્રમાં સ્પષ્ટ છે.

૨-દિવ્ય=સ્વર્ગમાં હોવાવાળું. નારક=નર્કમાં હોવાવાળું.

૩-દેવતાયોનિની પ્રાપ્તિ કરાવવાવાળાં કર્મ.

૪-દેવયોનિમાં હોવાવાળો ભોગ.

૫-અર્થાત્-કર્મોનાં બે ફળ છે એક તો દેવાદિયોનિની પ્રાપ્તિ કરાવી દેવી; અને બીજું તે જાતિના ભોગની અનુકૂળ વાસના ઉત્પન્ન કરી દેવી.

૬-નારક=નરક દેવાવાળું કર્મ અર્થાત્-નરકનું પ્રાપક કર્મ છે, તે નારકીય ભોગાનુકૂલ વાસનાના નિમિત્તરૂપે છે.

૭-વિપચ્યમાન=ફલોન્મુખ.

૮-તેથી ઉષ્ટ્રયોનિમાં ઉત્પત્તિમાત્રથી જ તે જાતિના ઉચિત ભોગોમાં તે પ્રવૃત્ત થાય છે.

યુક્ત નથી. અંતરાય વિનાનો જે મનુષ્યજન્મ છે, તેની વાસનાનું પ્રકટ માનવું ઠીક છે. કેમકે કોઈ દિવસ એમ સંભવિત હોઈ શકતું નથી કે એક દિવસમાં અનુભૂત પદાર્થનું સ્મરણ થતું નથી અને અંતરાયવાળા દિવસોના અનુભૂત પદાર્થનું સ્મરણ થાય છે.[1] આક્ષેપનું નીચલા સૂત્રથી વારણ કરે છે.

सू—जातिदेशकालव्यवहितानामप्यानन्तर्य्यं स्मृतिसंस्कारयोरेकरूपत्वात् ॥ ९ ॥

(**जातिदेशकालव्यवहितानामपि**) જાતિ, દેશ, કાળકૃત વ્યવધાનવાળી વાસનાઓનું પણ (**आनन्तर्य्यम्**) અવ્યવધાન જ જાણવું. કેમકે (**स्मृतिसंस्कारयोरेकरूपत्वात्**) સ્મૃતિ અને સંસ્કારોનું સમાનરૂપ હોવાથી.

અર્થાત્–માર્જાર વા ઉષ્ટ્ર યોનિનું પ્રાપક જે કર્મ છે, તે જ્યારે પોતાનું ફળ દેવામાં ઉન્મુખ થશે, ત્યારે પૂર્વના ઉષ્ટ્ર અને માર્જારયોનિના સંસ્કારોને[2] લઈને જ ઉન્મુખ થશે, કાંઈ એકલું નહિ થાય. તેથી તે[3] ચાહે તો શત જન્મના વ્યવધાનવાળું વા દૂર દેશના વ્યવધાનવાળું વા શતકલ્પના વ્યવધાનવાળું હોય, તોપણ પૂર્વાનુભૂત જે વ્યવહિત માર્જાર વા ઉષ્ટ્ર યોનિ છે, તેના સંસ્કારોને લઈને જ ઉદય થશે, પણ બીજા અવ્યવહિત સંસ્કારો લઈને નહિ. કેમકે ઉષ્ટ્રાદિ યોનિનું પ્રાપક જે જે કર્મ છે, તે તે સંસ્કારોના નિમિત્તરૂપ છે. તેથી યદ્યપિ તે વાસના વ્યવહિત છે, તથાપિ સમાન કર્મજન્ય હોવાથી ફલદૃષ્ટિથી તેનું આનન્તર્ય (અવ્યવધાન) જ જાણવું.

વ્યવહિત સંસ્કારોના પણ ફળના બલવડે આનંતર્ય (અવ્યવધાન) થાય છે. તેમાં હેતુ કહે છે. (**स्मृतिसंस्कारयोरेकरूपत्वात्**) અર્થાત્ જેવો અનુભવ થાય છે, તેવો જ તેનાથી સંસ્કાર થાય છે, અને તેવું જ એ સંસ્કારથી સ્મરણ થાય છે. એ પ્રકારે સ્મૃતિ અને સંસ્કારોનું એકરૂપ (**समान-विषय विषयक**) હોવાથી જાત્યાદિ વ્યવહિત એ પૂર્વના સંસ્કારોનો જ પ્રાદુર્ભાવ થાય છે, બીજા અવ્યવહિતનો નહિ. જો મનુષ્ય જન્મની વાસ-

---

૧–અર્થાત્–મનુષ્ય જન્મ અવ્યવહિત હોવાથી મનુષ્ય જન્મની જ વાસના થવી જોઈએ, ઉષ્ટ્ર જન્મની નહિ. કેમકે ઉષ્ટ્ર જન્મ વ્યવહિત હોવાથી તેની વાસનાનું આનન્તર્ય નથી.

૨–અનુભવજન્ય સ્મૃતિનો હેતુ જે સંસ્કાર છે, તેનું નામ વાસના છે. તેથી જ અહીં વાસનાને ઠેકાણે સંસ્કારપદ લખ્યું છે.

૩–તે=કર્માશય.

નાનો જ પ્રાદુર્ભાવ મનાશે, તો ઉષ્ટ્ર જાતિના ભોગનું સ્મરણ થશે નહિ.[1] કેમકે એ બંનેનું ભિન્નરૂપ છે. તેથી પૂર્વોક્ત જ સમીચીન જાણવું.

ભાવ એ છે કે-યદ્યપિ[2] મનુષ્યવાસના અવ્યવહિત છે. તથાપિ તેના વ્યંજક કર્મનો અભાવ હોવાથી તે પ્રકટ થઈ શકતી નથી. અને ઉષ્ટ્રાદિની વાસનાનું તો ઉષ્ટ્રયોનિપ્રાપક જે કર્મ છે, તે જ વ્યંજક છે, તેથી વ્યંજકના સદ્ભાવથી ઉષ્ટ્રાદિ વાસનાની જ અભિવ્યક્તિ થાય છે, પણ અવ્યવહિત મનુષ્યવાસનાની નહિ. એ પ્રમાણે વ્યવહિત વાસનાઓનો પણ નિમિત્ત નૈમિત્તિક[3] ભાવ હોવાથી આનંતર્ય છે, એમ સિદ્ધ થયું. ॥૯॥

આ ઠેકાણે જો કોઈ એવી આશંકા કરે કે-"જે જીવને પ્રથમ કોઈ દિવસ ઉષ્ટ્રયોનિની પ્રાપ્તિ થઈ ચૂકી છે, અને પછી ઘણી યોનિઓ થયા પછી પાછી ઉષ્ટ્રયોનિની પ્રાપ્તિ જો થાય તો ત્યાં એમ કહી શકાય કે પૂર્વ ઉષ્ટ્રયોનિના સંસ્કારનો પ્રાદુર્ભાવ થાય છે; પણ પ્રથમ જ ઉષ્ટ્રયોનિની પ્રાપ્તિ થઈ હોય, ત્યાં કેવી રીતે સંસ્કારોનો પ્રાદુર્ભાવ માનવો? કેમકે એ યોનિની પૂર્વે ઉષ્ટ્રજન્મના સદ્ભાવમાં પ્રમાણનો અભાવ છે." આ આશંકાના નિવારણ અર્થે સંસારને અનાદિ કહેવા સાથે વાસનાને પણ અનાદિ નીચલા સૂત્રવડે કહે છે.

सू-तासामनादित्वं चाऽऽशिषो नित्यत्वात् ॥ १० ॥

(**तासाम्**) તે વાસનાઓનું (**अनादित्वम्**) અનાદિપણું છે, કેમકે (**आशिषो नित्यत्वात्**) આશીર્વાદનું[4] નિત્યત્વ હોવાથી.

અર્થાત્ સઘળાં પ્રાણીમાત્રની જે આત્મવિષયક નિરંતર આ પ્રાર્થના છે કે-"મારો અભાવ કોઈ દિવસ ન હોય, કિંતુ સર્વદા જ હું વિદ્યમાન રહું." એ પ્રાર્થના સર્વદા હોવાથી વાસનાને અનાદિ જાણવી.

૧-અર્થાત્-ઉંટની જે સ્વજાતિ ઉચિત કંટક ભક્ષણાદિમાં પ્રવૃત્તિ થાય છે, તે ઉષ્ટ્ર જાતિના ભોગોના સ્મરણથી થાય છે. જો ઉષ્ટ્ર જાતિના ભોગનું સ્મરણ થશે નહિ, તો ઉષ્ટ્રની સ્વજાતીય ભોગમાં પ્રવૃત્તિ નહિ થાય અને પ્રવૃત્તિ તો થાય છે. તેથી ઉષ્ટ્ર સંસ્કારોનો જ પ્રાદુર્ભાવ થવો યુક્ત છે. બીજાનો નહિ.

૨-અવ્યવહિત મનુષ્યવાસનાનો પ્રાદુર્ભાવ કેમ થતો નથી, તેનું સમાધાન કરે છે, "યદ્યપિ" ઇત્યાદિથી.

૩-ઉષ્ટ્રયોનિનું પ્રાપક જે કર્મ છે, તે નિમિત્ત છે અને વાસના નૈમિત્તિક છે.

૪-ઇષ્ટ પદાર્થની પ્રાર્થનાનું નામ આશીર્વાદ છે, તે જ સ્પષ્ટ કરે છે, "અર્થાત્" ઇત્યાદિથી.

ભાવ એ છે કે, જો પૂર્વ પૂર્વજન્મના મરણદુઃખની વાસનાને ન માનીએ તો એક પ્રાણી જન્મે છે, તે જ સમયે તેને જે મરણત્રાસ[1] હોય છે, તે હોવો ન જોઇએ. પણ હોય છે તો ખરો, તેથી વાસનાનું અનાદિ તથા પૂર્વ પૂર્વજન્મનું હોવું અવશ્ય માનવું જોઇએ. એ સઘળું પૂર્વે નિરૂપણ કરી ચૂકયા છીએ.[2] તેથી આ સ્થળે પાછું વિસ્તારથી કહેવાની જરૂર નથી.

જો કે પૂર્વજન્મ ભાવવાદી નાસ્તિક લોક એમ કહે છે કે-"તુરતના જન્મેલાં પ્રાણીને જે મરણત્રાસ હોય છે, તે સ્વાભાવિક[3] છે; પણ નૈમિત્તિક[4] નથી." તો તેને એ પૂછવું જોઇએ કે, જો સ્વાભાવિક છે, તો સર્વદા કેમ થતો નથી ? કેમકે જે સ્વાભાવિક છે, તે કોઈ નિમિત્તની અપેક્ષા કરતું નથી.[5]

અર્થાત્-જો સ્વાભાવિક હોય તો ઇષ્ટ વસ્તુ તથા ભયંકર વસ્તુના દર્શન વિના પણ હર્ષ તથા શોક થવાં જોઇએ, પણ તેમ તો થતું નથી. મરણત્રાસ વાસનાજન્ય હોવાથી નૈમિત્તિક જ છે, પણ સ્વાભાવિક નથી. આથી વાસના અનાદિ છે, એમ સિદ્ધ થયું.

આ સ્થળે એટલું વિશેષ એ પણ જાણી લેવું કે-યદ્યપિ અનાદિ જીવનું ચિત્ત અનેક જન્મોની વિલક્ષણ વાસનાથી યુક્ત છે, તથાપિ સઘળી વાસના અભિવ્યક્ત થતી નથી. કિંતુ જે કર્મ, ફળ દેવામાં ઉન્મુખ હોય છે, તે કર્મ જેનું વ્યંજક હોય છે, તે જ વાસના ઉદય પામી પુરુષના ભોગમાં નિમિત્ત થાય છે, બીજી સઘળી વાસના નહિ.

[6]હવે આ ઠેકાણે એક નીચે પ્રમાણેનો સંદેહ ઉપસ્થિત થઈ શકે છે

૧-મારો અભાવ કોઈ દિવસ ન હો, એવી રીતનો મરણનો ભય, વા ભયંકર પદાર્થ જોવાથી ત્રાસપૂર્વક કંપ, આ સર્વ જન્મેલાં બાળકમાં પણ હોય છે.

૨-દ્વિતીયપાદના ૯ મા સૂત્રના વ્યાખ્યાનમાં જુઓ.

૩-જેમ કમળનો સંકોચ અને વિકાસ સ્વાભાવિક છે, તેમ તુરતના જન્મેલા જંતુને જે ઇષ્ટ વસ્તુદર્શનથી હર્ષ અને ભયંકર વસ્તુદર્શનથી શોક થાય છે, તે પણ સ્વાભાવિક છે, એવો ચાર્વાક મતાનુસારીનો આશય છે.

૪-વાસનારૂપ નિમિત્તથી જન્ય નહિ.

૫-કમલનો વિકાસ અને સંકોચ પણ દિનકર (સૂર્ય)નાં કિરણોના સંપર્ક અને અસંપર્કરૂપ નિમિત્તથી થાય છે, તેથી એ પણ સ્વાભાવિક નથી.

૬-હવે પ્રસંગને લઈ ચિત્તના પરિમાણના નિર્ધારણ અર્થે વિચારનો આરંભ કરે છે, "હવે" ઇત્યાદિથી.

કે–"તે વાસનાઓનું આશ્રય જે ચિત્ત છે, તે મીમાંસક સંમત મહત્પરિમાણ-વાળું હોવાથી વિભુ છે, વા નૈયાયિક સંમત અણુ પરિમાણવાળું હોવાથી અણુ છે; વા સાંખ્યાદિ સંમત મધ્યમ પરિમાણવાળું હોવાથી અણુ અને વિભુથી વિલક્ષણ છે?" એ સંદેહ ઉપસ્થિત થાય છે ત્યાં ભાષ્યકારોએ પ્રથમ તો સાંખ્યમતને લઈને કહેલું છે કે–"**घटप्रासादप्रदीपकल्पं संकोचविकासि चित्तं शरीरपरिमाणाकारमात्रमित्यपरे प्रतिपन्नाः, तथाचाऽन्तराभावः संसारश्च युक्त[1] इति.**" પછી મીમાંસક મતને લઈ આ કહ્યું છે કે–"**वृत्तिरेवास्य विभुनः संकोचविकासिनीत्याचार्यः**"[2] પરંતુ એ બંને પક્ષોમાં કયો પક્ષ સિદ્ધાન્ત છે, તેનો નિર્ણય કરવો, આ કેવળ વ્યાખ્યાકારોનું કામ છે.

તેમાં વાચસ્પતિમિશ્ર આદિ વ્યાખ્યાકારોએ એવો નિર્ણય કર્યો છે કે–પ્રથમ પક્ષ તો એકદેશી છે, અને દ્વિતીયપક્ષ સિદ્ધાંત છે. અર્થાત્–ચિત્ત વિભુ છે, એ સિદ્ધાંતપક્ષ છે.[3] પરંતુ[4] વિચારદૃષ્ટિથી સમાલોચના કરાય, તો પ્રથમ પક્ષ જ યુક્તિયુક્ત પ્રતીત થાય છે. દ્વિતીય પક્ષ

૧–જેમ ઘટ તથા પ્રાસાદ (રાજમહેલ)રૂપ અલ્પ અને મહાન્ આશ્રયના ભેદથી પ્રદીપનો પ્રકાશ સંકોચવાળો તથા વિસ્તારવાળો થાય છે. તેવી રીતે જ કીડી તથા હાથીરૂપ નાના અને મોટા આશ્રયના ભેદથી ચિત્ત પણ સ્વલ્પ અને મહત્પરિમાણવાળું થાય છે. તેથી જ તે તે શરીરના પરિમાણતુલ્ય પરિ-માણવાળું ચિત્ત હોય છે, એમ અપર સાંખ્યલોક માને છે. (तथा च) શરીર પરિમાણ માનવાથી જ પરલોક ગમનરૂપ જે અંતરાભાવ અને પાછું ત્યાંથી આવવારૂપ જે સંસાર, એ બંને યુક્ત થાય છે. અર્થાત્–જો ચિત્તને વિભુ માનશું, તો તે નિષ્ક્રિય હોવાથી પરલોકમાં ગમન અને ત્યાંથી આગમનરૂપ ક્રિયાવાળું નહિ થશે. તેથી મધ્યમ પરિમાણ માનવું જ યોગ્ય છે. એવો આ ભાષ્યનો અર્થ છે.

૨–એ વિભુ ચિત્તની વૃત્તિ જ સંકોચ વિકાસવાળી છે, કાંઈ ચિત્ત, સંકોચ વિકાસવાળું નથી. કેમકે ચિત્ત વિભુ છે. એમ તેનો ભાવાર્થ છે.

૩–પ્રથમ પક્ષમાં (अपरे प्रतिपन्नाः) એવું अपरे પદ દીધું છે, તેથી તે એકદેશી છે અને દ્વિતીય પક્ષમાં (आचार्यः) એવું પદ આપેલું છે, તેથી દ્વિતીય પક્ષ સિદ્ધાંત છે, આ વાચસ્પતિ મિશ્રનો આશય છે.

૪–ચિત્તનું જે વિભુત્વ પ્રતિપાદન કર્યું છે, તે કેવળ આચાર્ય મતના અનુમોદન અર્થે પ્રૌઢિવાદથી જ જાણવું. કાંઈ વાસ્તવથી ચિત્ત વિભુ નથી. એ આશયથી સ્વામીજી સ્વસિદ્ધાંત કહે છે, "પરંતુ" ઇત્યાદિથી.

નહિ. કેમકે પ્રકૃતિથી અતિરિક્ત જેટલાં કાર્ય છે, તે સાંખ્યમતમાં પરિચ્છિન્ન હોવાથી મનને વિભુ માનવું અયુક્ત જ છે. તથી જ "हेतुमदनित्यमव्यापि सक्रियमनेकमाश्रितं लिङ्गम्"[1] એ સૂત્રથી કપિલ મહર્ષિએ મહત્તત્વાદિ સઘળાં કાર્યને અવ્યાપક કહેલાં છે. જો કે પ્રભાકરે (મન, વિભુ છે, નિત્યેંદ્રિય હોવાથી, શ્રોત્રની પેઠે) એ અનુમાન પ્રદર્શન કર્યું છે, તે પણ પ્રમાણ ન જાણવું. કેમ કે "एतस्मात्प्रजायन्ते मनः सर्वेन्द्रियाणि च"[2] એ શ્રુતિથી મન અને શ્રોત્ર એ બંનેને જન્ય માનવાથી હેતુ[3] અને દૃષ્ટાંત અસંગત છે.

તેટલા માટે જ શ્રી કપિલ મુનિએ "न व्यापकत्वं मनसः करणत्वादिंन्द्रियत्वाद्वा"[4] "सक्रियत्वाद् गतिश्रुतेः" એ બંને સૂત્રોથી મનના વિભુત્વનું નિરાકરણ કરી "न निर्भागत्वं तद्योगाद् घटवद्"[5] એ સૂત્રથી અણુપરિમાણનું ખંડન કરી છેવટે મધ્યમ પરિમાણવાળું જ મન માન્યું છે.

એવી રીતે સમાનતંત્ર[6] સિદ્ધાંત જ માન્ય હોવાથી આ સ્થળે વિભુત્વનું પ્રતિપાદન છે, તે પ્રૌઢિવાદથી[7] જાણી લેવું.

૧–(हेतुमत्) કારણવાળું, અર્થાત્ કાર્ય (અનિત્ય), સદા ન હોવાવાળું, (अव्यापि) સર્વ જગામાં ન હોવાવાળું. (सक्रियं) ક્રિયાવાળું, (अनेकं) પ્રતિ શરીર ભિન્ન ભિન્ન હોવાવાળું, (आश्रितं) પોતાના અવયવોમાં નિવાસ કરવાવાળું, (लिंगं) પ્રકૃતિને જાણવાવાળું, અર્થાત્–પ્રકૃતિથી ભિન્ન જે કાર્યસમૂહ છે, તે હેતુમત્, અનિત્યાદિ ધર્મવાળો છે. એ સાંખ્યદર્શન પ્રથમ અધ્યાયનું ૧૨૪ મું સૂત્ર છે.

૨–એ પરમાત્માથી જ મન અને સઘળી ઇંદ્રિયો ઉત્પન્ન થાય છે, એ મુંડકશ્રુતિનો અર્થ છે.

૩–હેતુ=નિત્યેંદ્રિયત્વરૂપ અને દૃષ્ટાંત=શ્રોત્રની પેઠે, એમ જાણવું.

૪–મનની વ્યાપકતા નથી, કરણ હોવાથી, ઇંદ્રિય હોવાથી, ક્રિયાવાળું હોવાથી, પરલોકમાં ગમનવાળું હોવાથી એ સાંખ્યદર્શનના પંચમ અધ્યાયના ૬૯ અને ૭૦ સૂત્રોનો અર્થ છે.

૫–ચિત્તનું (निर्भागत्वम्) નિરવયત્વ નથી. કેમકે (तद्योगाद्) એક કાળમાં અનેક ઇંદ્રિયોની સાથે સંયોગ હોવાથી કિંતુ (घटवत्) ઘટની પેઠે સાવયવ છે. એ અધ્યાય પાંચના સૂત્ર ૭૧ નો અર્થ છે.

૬–સમાનતંત્ર એક શાસ્ત્ર. અર્થાત્ તે પણ સાંખ્ય છે, અને આ પણ સાંખ્ય છે, તેથી સમાન શાસ્ત્રનો સિદ્ધાંત માનવો ઉચિત છે.

૭–અહીં પ્રૌઢિવાદનો અર્થ પ્રગલ્ભતા અર્થાત્–જબરદસ્તી જાણવો.

તથા સંકોચ વિકાસવાળું હોવાથી ચિત્ત, મધ્યમ પરિમાણવાળું છે, એ સિદ્ધ થયું.[1] પરંતુ તે ચિત્ત પોતાના સંકોચ અને વિકાસમાં તથા શુભાશુભ વાસનાને પ્રકટ કરવામાં સ્વતંત્ર નથી, પરંતુ ધર્માદિ નિમિત્તની અપેક્ષાવાળું છે, તેથી સંકોચાદિ કાદાચિત્ક[2] છે.

આ જે ધર્માદિ[3] નિમિત્ત છે, તે પણ બે પ્રકારના છે. એક તો બાહ્ય અને એક આધ્યાત્મિક. તેમાં શરીર–ઇંદ્રિય–ધનાદિવડે સાધ્ય જે નમસ્કાર સ્તુતિ–દાનાદિ[4] છે, તે બાહ્ય ધર્માદિ નિમિત્ત છે; અને કેવળ ચિત્તમાત્રથી સાધ્ય જે શ્રદ્ધા–મૈત્રી આદિક[5] છે, તે આધ્યાત્મિક ધર્માદિ નિમિત્ત;[6] મૈત્રી આદિ[7] આધ્યાત્મિક ધર્મ છે, તે પંચ શિખાચાર્યને પણ સંમત છે, તેથી જ "**येचैते मैत्र्यादयो ध्यायिनां विहारास्ते बाह्यसाधननिरनुग्रहात्मानः प्रकृष्टं धर्ममभिनिवर्तयंति**"[8] એ વાક્યથી તેમણે મૈત્ર્યાદિને પ્રકૃષ્ટ ધર્મનું સાધન કહેલું છે.

આ બે પ્રકારના ધર્મમાંથી બાહ્ય ધર્મ કરતાં માનસધર્મ અત્યંત બળવાન્ છે. કેમકે જ્ઞાન વૈરાગ્યાદિરૂપ જે માનસ ધર્મ છે, તેનાથી વધારે પ્રબળ કોઈ બાહ્ય ધર્મ જોવામાં આવતો નથી. અર્થાત્–બાહ્ય ધર્મ કરતાં માનસધર્મનું બળ અધિક છે. તેટલા માટે જે અસાધ્ય કાર્ય છે, તે માનસ ધર્મના બળથી સાધ્ય થઈ જાય છે. જેમ કે શ્રી રામચંદ્રજીએ દંડકારણ્યને નિર્જન કરી દીધું અને અગસ્ત્ય મુનિએ સમુદ્રપાન કર્યું.

૧–જો સંકોચાદિ સ્વભાવવાળું ચિત્ત છે, તો સર્વદા જ સંકોચ વિકાસવાળું કેમ હોતું નથી? એનું સમાધાન કરે છે, "પરંતુ" ઇત્યાદિથી.

૨–કદાચિત્ હોવાવાળું.

૩–આદિ પદથી અધર્મનું ગ્રહણ કરવું. એ પ્રમાણે બીજે પણ જાણી લેવું.

૪–આદિ શબ્દથી નિષ્ઠુર ભાષણ હિંસાદિનું ગ્રહણ કરવું.

૫–આદિ શબ્દથી રાગદ્વેષાદિકનું ગ્રહણ કરવું.

૬–યદ્યપિ આ સઘળા નમસ્કારાદિ ધર્મ નથી, પણ ધર્મનાં સાધન છે, તથાપિ સાધ્ય અને સાધનનો અભેદ માની નમસ્કારાદિને પણ ધર્મ જાણવા. એથી જ યજ્ઞાદિકને ધર્મ કહેલા છે.

૭–અહીં આદિ પદથી કેવળ કરુણા–મુદિતા–શ્રદ્ધાદિનું ગ્રહણ કરવું.

૮–(ध्यायिनां) યોગીઓના જે આ મૈત્રી આદિ વિહાર=અયત્નસાધ્ય વ્યાપાર છે, તે બાહ્યસાધનની અપેક્ષાથી રહિત થયા થકા પ્રકૃષ્ટ ધર્મને અર્થાત્ શુક્લ ધર્મને (अभिनिर्वर्तयंति) ઉત્પન્ન કરે છે, એમ એનો અર્થ છે.

અર્થાત્-માનસબળ વિના શારીરિક બળવડે દંડકારણ્ય શૂન્ય કરવાની કોની ઉત્સાહશક્તિ છે, અને અગસ્ત્યની પેઠે સમુદ્રપાન કોણ કરી શકે તેમ છે? તેથી માનસ બળને જ સઘળાથી પ્રબળ જાણવું. ૧૦

એ પ્રકારે વાસનાને અનાદિ કહી અને પ્રસંગથી બીજા વિચારનો પણ ઉપન્યાસ કર્યો. હવે અહીં એવી શંકા ઉઠે છે કે-"જો વાસના અનાદિ છે, તો તેનો ઉચ્છેદ (નાશ) ન થવો જોઇએ. કેમકે જે અનાદિ હોય છે, તે નાશરૂપ ધર્મથી રહિત હોય છે; જેમ કે પુરુષ.[1] આ શંકાના નિવારણાર્થ નીચલા સૂત્રમાં કહ્યું છે—

सू—हेतुफलाश्रयालंबनैः संगृहीतत्वादेषामभावे तदभावः ॥ ११ ॥

(**हेतुफलाऽऽश्रयाऽऽलंबनैः**) હેતુ,[2] ફળ, આશ્રય અને આલંબન આ ચારવડે (**संगृहीतत्वात्**) વાસનાઓનું સંગૃહીતપણું હોવાથી (**एषाम्**) એ ચારના (**अभावे**) અભાવથી (નાશ હોવાથી) (**तदभावः**) તે વાસનાઓનો અભાવ થઈ જાય છે.

અર્થાત્-વાસનાઓનાં અભિવ્યંજક જે અવિદ્યાદિ છે, તેમનો વિવેકખ્યાતિથી નાશ થવાથી વાસના પોતાની મેળે જ નિવૃત્ત થઈ જાય છે.[3]

અહીં અવિદ્યારૂપ દંડવડે ફેરવાયલું જે ષડર[4] સંસાર ચક્ર છે, તે વાસનાના હેતુરૂપ છે.

અર્થાત્[5]-પ્રથમ જીવને ધર્મથી સુખ અને અધર્મથી દુ:ખ થાય

૧-જો અનાદિનો પણ નાશ મનાશે, તો પુરુષનો પણ નાશ થવો જોઇએ. એ, આ શંકાનો આશય છે.

૨-(હેતુ) ધર્માદિક. (ફલ) સુખાદિક. (આશ્રય) મન. (આલંબન) શબ્દાદિ વિષય.

૩-અનાદિ હોવું, એ કંઈ નાશના અભાવનું નિમિત્ત નથી પણ વિનાશના કારણનો અભાવ હોવો, તે છે. અહીં પુરુષના નાશ થવાના કારણનો અભાવ છે, તેથી પુરુષનો નાશ નથી અને વાસનાના નાશનું કારણ અવિદ્યાદિનો નાશ વિદ્યમાન છે, એથી વાસના નષ્ટ થઈ જાય છે, એટલું વિશેષ છે.

૪-અર નામ રથના ચક્ર મધ્યે આડાં લાકડાં હોય છે તેનું છે, જેને આરા કહે છે. તેવાં ૭ અર જેમાં હોય, તે ષડર કહેવાય છે. અથવા કુલાલ (કુંભાર)ના ચક્ર (ચાકડો)ની શલાકાનું નામ અર છે.

૫-ષટ્ અરને સ્પષ્ટ કરતાં હેતુ શબ્દના અર્થનું નિરૂપણ કરે છે, "અર્થાત્" ઇત્યાદિથી.

છે, અને પાછું સુખથી સુખ, સુખના સાધનમાં રાગ, દુઃખથી દુઃખ અને દુઃખના સાધનમાં દ્વેષ; ત્યારપછી રાગદ્વેષથી પ્રયત્ન. અર્થાત્-મન, વાણી, શરીરની ચેષ્ટાદ્વારા પરાનુગ્રહ અને પરપીડા. પાછો અનુગ્રહ અને પીડાથી ધર્મ તથા અધર્મ. પાછા એ બંનેથી સુખ અને દુઃખ; પાછો સુખદુઃખથી રાગદ્વેષ. એવી રીતે અનાદિ કાળથી પ્રવૃત્ત જે ધર્મ, અધર્મ, સુખ, દુઃખ, રાગ, દ્વેષરૂપ છ આરાવાળું સંસારચક્ર છે, તે વાસનાના હેતુરૂપ છે.

આ જે પ્રતિક્ષણ ફરતું સંસારચક્ર છે, તે પણ સ્વતંત્ર નથી. પરંતુ સઘળા ક્લેશોનું મૂળ જે અવિદ્યા છે, તે આ સંસારચક્રની પ્રેરક છે[1] તથા સંસારચક્રદ્વારા અવિદ્યા જ વાસનાના હેતુરૂપ છે, એ સિદ્ધ થયું અને જે[2] પુરુષાર્થ (ભોગ મોક્ષ)ના ઉદ્દેશથી ધર્માદિકનું અનુષ્ઠાન કરાય છે, અર્થાત્-જે ફળની ઇચ્છાથી ધર્માદિક વર્તમાનાવસ્થાવાળા[3] થઈ જાય છે, તે વાસનાનું ફળ જાણવું, અને મન એ વાસનાઓનું આશ્રય છે. પરંતુ સાધિકાર મન જ વાસનાનું આશ્રય છે, કાંઈ સમાપ્તાધિકાર[4] મન નહિ. કેમકે સમાપ્તાધિકાર મનમાં વાસનાઓની સ્થિતિ હોવી અસંભવિત છે.

અને[5] જે વસ્તુ સન્મુખ ઉપસ્થિત થઈ જે વાસનાની અભિવ્યંજક થાય છે, તે તે વાસનાનું આલંબન[6] છે.

૧–એવી રીતે વાસનાનો હેતુ સંસારચક્ર અને સંસારચક્રનો હેતુ અવિદ્યા એ સિદ્ધ થયું. અહીં એટલું વિશેષ છે કે, જ્યારે રથચક્રની શલાકાનું નામ અર હોય ત્યારે અવિદ્યારૂપ સારથિવડે ભ્રામિત સંસારચક્ર, વાસનાનો હેતુ જાણવું અને જ્યારે કુલાલચક્રની શલાકાનું નામ અર હોય, ત્યારે અવિદ્યારૂપ દંડ ભ્રામિત સંસારચક્રને વાસનાનો હેતુ જાણવું.

૨–વાસનાનો હેતુ કહીને હવે વાસનાનું ફળ કહે છે, "જે" ઇત્યાદિથી.

૩–અર્થાત્ ધર્માદિક અનુષ્ઠાનથી ઉત્પન્ન થતાં નથી કિંતુ વર્તમાનાવસ્થાવાળાં હોય છે. કેમકે સત્કાર્યવાદમાં અપૂર્વ "અસત્" ની ઉત્પત્તિનો નિષેધ છે.

૪–વિવેકખ્યાતિના અભાવવાળું મન સાધિકાર કહેવાય છે અને વિવેકખ્યાતિવાળું મન સમાપ્તાધિકાર કહેવાય છે.

૫–વાસનાઓનો આશ્રય કહીને હવે તેમનું આલંબન કહે છે, "અને જે" ઇત્યાદિથી.

૬–અર્થાત્–કામિનીસંપર્ક વગેરે વાસનાઓનું આલંબન છે.

એવી રીતે હેતુ, ફલ, આશ્રય અને આલંબન, એ ચારવડે વાસના સંગૃહીત છે અર્થાત્-એ ચારેને આધીન વાસના છે. જ્યારે વિવેક-ખ્યાતિના ઉદયથી એ ચારે વાસનાનો અભાવ થઈ જાય છે, ત્યારે પોતાની મેળે જ વાસનાનો અભાવ થઈ જાય છે. ॥ ૧૧ ॥

અસત્‌ની ઉત્પત્તિ થતી નથી અને સત્‌નો વિનાશ થતો નથી. એ યોગનો સિદ્ધાંત છે. તો પછી સત્‌રૂપે વિદ્યમાન વાસનાઓની નિવૃત્તિ કેવી? એ સંદેહનું નિવારણ કરે છે—

सू०—अतीताऽनागतं स्वरूपतोऽस्त्यध्वभेदाद् धर्माणाम् ॥१२॥

(अतीताऽनागतम्) ભૂત-ભવિષ્યત્ વસ્તુ પણ (स्वरूपतः) પોતાના-રૂપથી (अस्ति) વિદ્યમાન જ છે. એક ધર્મીમાં એક કાળમાં વિરુદ્ધ[1] ધર્મોની સત્તા કેવી? એ ઉપર કહે છે (धर्माणाम् अध्वभेदाद्)[2] ધર્મોના કાળનો ભેદ હોવાથી વિરોધનો અભાવ જાણવો.[3] અર્થાત્—જો અતીત, અનાગત, વર્તમાનતારૂપ ત્રણે ધર્મોની એક કાળમાં સમાન સત્તા મનાય તો વિરોધ બની શકે છે; પરંતુ તેમ અમે માનતા નથી. પણ જે કાળમાં ઘટ વિદ્યમાન થયેલો વર્તમાનતારૂપ ધર્મવાળો હોય છે, તે કાળમાં વર્તમાનતારૂપધર્મ તો વર્તમાનકાળવાળો છે અને અતીતતારૂપધર્મ અનાગત કાળવાળો છે[4] અને અનાગતતારૂપ ધર્મ અતીતકાળવાળો છે, એમ માનીએ છીએ. એ પ્રમાણે ત્રણે ધર્મ ભિન્ન ભિન્ન કાળવાળા હોવાથી એક કાળમાં ત્રણે ધર્મોનું વર્તવું વિરુદ્ધ નથી, એમ સિદ્ધ થયું.

ભાવ એ છે કે—જે વસ્તુની અભિવ્યક્તિ આગળ થવાવાળી હોય છે, તે અનાગત છે; અને જેથી અભિવ્યક્તિ થઈ ગઈ છે તે અતીત છે; અને જે વસ્તુ પોતાના વ્યાપારમાં ઉપારૂઢ થઈને સ્પષ્ટ થઈ

૧—અતીત અનાગત અને વર્તમાનતાદિરૂપ વિરુદ્ધ ધર્મોનું એક કાળમાં હોવું અસંભવિત છે.

૨—अध्व નામ કાળનું છે.

૩—'વિરોધનો અભાવ છે' એટલા પાઠનો અધ્યાહાર જાણવો.

૪—અતીતતા ધર્મ હોવાવાળો છે અને અનાગતતારૂપ ધર્મ પછી થઈ ચૂકયો છે તેથી અતીતતાનો અનાગત કાળ જાણવો અને અનાગતનો ભૂતકાળ જાણવો. એ પ્રકારે બીજે સ્થળે પણ જાણી લેવું. આ સઘળું ત્રીજા પાદના ૧૩ મા સૂત્રના વ્યાખ્યાનમાં સ્પષ્ટ છે.

છે, તે વર્તમાન છે.[1] આ ત્રણે પ્રકારની જ વસ્તુ[2] યોગીના પ્રત્યક્ષજ્ઞાનને વિષય છે, એ યોગને સિદ્ધાંત છે. એ પ્રમાણે જો સ્વરૂપથી અતીત અનાગત વસ્તુ ન મનાય તો યોગીને ત્રૈકાલિક[3] પદાર્થવિષયક યોગ જ પ્રત્યક્ષજ્ઞાન નહિ થશે. કેમકે વિષયની સત્તા વિના પ્રત્યક્ષજ્ઞાનનું હોવું અસંભવિત છે. તેથી અતીત અનાગત વસ્તુ પણ સ્વરૂપથી વિદ્યમાન છે, એ અવશ્ય માનવું ઉચિત છે.

વળી જો અનાગત ધર્મ નહિ માનવામાં આવે, તો સ્વર્ગ અને અપવર્ગ માટે પરીક્ષકોની જે સાધનોના અનુષ્ઠાનમાં પ્રવૃત્તિ છે, તે પણ અયુક્ત થઈ જશે.[4] કેમકે અસત્‌ની ઉત્પત્તિને યોગમતમાં અભાવ છે.

અર્થાત્–[5] દંડાદિક જે કારણ છે, તે કાંઈ અપૂર્વ અસત્ ઘટને ઉત્પન્ન કરતાં નથી. કિંતુ અવ્યક્ત (સૂક્ષ્મ) અવસ્થાથી કારણમાં વિદ્યમાન જે ઘટાદિ કાર્ય છે, તેને વર્તમાનાવસ્થાવાળું કરી દે છે. પરંતુ તેમાં એટલું વિશેષ છે કે–વર્તમાનાવસ્થાવાળું જે કારણ છે, તે જ કાર્યની વ્યક્ત (સ્થૂલ) અવસ્થાના સંપાદનમાં સમર્થ થાય છે, પણ અતીતાદિ અવસ્થાવાળું થતું નથી. તેથી જ અતીતાવસ્થાવાળા કારણથી કોઈ કાર્યને આવિર્ભાવ થતો નથી.[6]

૧–એ ત્રણેને જ અવ્યપદેશ્ય શાંત, ઉદિત કહે છે. એ સઘળું ૩ જા પાદના ૧૪ મા સૂત્રમાં સ્પષ્ટ છે.

૨–યદ્યપિ વસ્તુ શબ્દ નપુંસક છે, તથાપિ લોકવ્યવહારમાં કોઈ સ્થળે સ્ત્રીલિંગે વપરાય છે. ૩–ત્રણે કાળમાં હોનાર.

૪–જો આગળ થનાર સ્વર્ગાદિ ફલ, સાધનાનુષ્ઠાન કાળમાં અત્યંત અસત્ મનાશે, તો નરશૃંગની પેઠે તેની ઉત્પત્તિને અભાવ હોવાથી તેના ઉદ્દેશથી નિપુણ પુરુષોની સાધનોમાં પ્રવૃત્તિ ન થવી જોઇએ, અને પ્રવૃત્તિ થાય છે તો ખરી, તેથી અનાગત વસ્તુને માનવાની આવશ્યકતા છે, એ તત્ત્વ છે.

૫–જો ઉત્પત્તિની પૂર્વે પણ કાર્ય વિદ્યમાન જ છે, અસત્ નથી; એમ માનતા હો, તો દંડચક્રાદિકનું શું પ્રયોજન છે? તે બાબત કહે છે, "અર્થાત્" ઇત્યાદિથી.

૬–જેમ વર્તમાન અવસ્થાવાળા મૃત્પિંડથી ઘટને આવિર્ભાવ થાય છે, તેમ ઘટના ઉત્પન્ન થવાથી અતીતાવસ્થાવાળો જે મૃત્પિંડ છે, તેનાથી પાછી ઘટની ઉત્પત્તિ કેમ થતી નથી. કેમકે આપના મતમાં ઘટને વર્તમાનકાળમાં પણ અતીતાવસ્થાવાળો મૃત્પિંડ વિદ્યમાન છે. એ શંકાના નિવારણાર્થ ઉપરનું વચન છે.

અહીં એટલું વિશેષ એ પણ જાણી લેવું કે-જેમ વર્તમાન વસ્તુ અભિવ્યક્તિને પામેલી દેખાય છે, તેમ અતીત અને અનાગત નહિ. પણ ભવિષ્યત્ વ્યક્તિરૂપથી[1] અનાગત વસ્તુ છે અને અનુભૂત વ્યક્તિરૂપથી[2] અતીત વસ્તુ છે. તેથી વર્તમાનકાળમાં જ વસ્તુના સ્વરૂપની સ્પષ્ટ પ્રતીતિ થાય છે, પણ અતીત અને અનાગતકાળમાં થતી નથી. પરંતુ એટલું તો અવશ્ય માનવું પડશે કે, એક અધ્વના વર્તમાન સમયમાં બીજાં બે અધ્વ પણ ધર્મીમાં સમનુગત જ છે, કાંઈ અત્યંત અભાવવાળા નથી. કેમકે પૂર્વે ન હોઈ પછીથી હોવું, એ સિદ્ધાંતથી વિરુદ્ધ છે. અર્થાત્-જે સમયે ઘટરૂપ ધર્મીમાં વર્તમાનતારૂપ ધર્મ પ્રકટ હોય છે, તે સમયે અતીત અનાગતતારૂપ બે ધર્મોનો પણ ઘટમાં અનભિવ્યક્ત (સૂક્ષ્મ) રૂપથી સમન્વય જાણવો. એ પ્રકારે અન્યત્ર પણ જાણી લેવું.[3]

એ પ્રકારે[4] કાળભેદથી ધર્મોની વ્યવસ્થા હોવાથી અતીત અને અનાગત વસ્તુ પણ સ્વરૂપથી વિદ્યમાન જ છે, કાંઈ અત્યંત અસત્ નથી, એ સિદ્ધ થયું.

એ પ્રમાણે પૂર્વ સૂત્રમાં જે વાસનાનો ઉચ્છેદ કહેલો હતો, તે વાસનાનો અત્યંતાભાવ ન જાણવો, કિંતુ વાસનાઓની અતીતાવસ્થા નિષ્પન્ન થાય છે, એમ જાણવું, એ ફલિત થયું. ॥ ૧૨ ॥

હવે એકરૂપવાળા પ્રધાનથી અનેક વિચિત્ર રૂપવાળા પ્રપંચનો આવિર્ભાવ કેમ થાય છે? એ આશંકાના વારણાર્થે કહે છે–

सू०–ते व्यक्तसूक्ष्मा गुणात्मानः ॥ १३ ॥

(**व्यक्तसूक्ष्माः**[5]) અનાગત, વર્તમાન, અતીતરૂપ જે અનેક પ્રકારના ધર્મ છે, (**ते**) તે સઘળા (**गुणात्मानः**) ત્રણે ગુણોનાં જ સ્વરૂપ છે.

૧–આગળ હોવાવાળી સ્પષ્ટરૂપતાથી.

૨–પૂર્વ હોવાવાળા સ્પષ્ટરૂપથી.

૩–જે સમયે અનાગતતારૂપ ધર્મ પ્રકટ થાય છે, તે સમયે બીજા બે ધર્મોનો સૂક્ષ્મરૂપથી સમન્વય જાણવો. એ પ્રમાણે અતીતાવસ્થાવાળા ધર્મીમાં પણ બીજા બે ધર્મોનો સમન્વય જાણવો.

૪–હવે સૂત્રના અર્થનો ઉપસંહાર કરે છે, "એ પ્રકારે" ઇત્યાદિથી.

૫–વ્યક્ત પદનો અર્થ વર્તમાન છે અને સૂક્ષ્મ પદનો અર્થ અતીત અને અનાગત છે.

અર્થાત્-પૃથ્વી આદિ જે પંચભૂત છે, તે પંચતન્માત્ર સ્વરૂપ છે અને પંચતન્માત્ર તથા એકાદશ ઇંદ્રિય, અહંકાર, સ્વરૂપ છે. અહંકાર, મહત્તત્ત્વ સ્વરૂપ છે. મહત્તત્ત્વ, પ્રધાન સ્વરૂપ છે. પ્રધાન, ગુણત્રય સ્વરૂપ છે. એવી રીતે સાક્ષાત્ વા પરંપરાથી સઘળો પ્રપંચ જ ગુણસ્વરૂપ જાણવો. વાર્ષગણ્યાચાર્યે[1] પણ કહેલું છે કેઃ-

"गुणानां परमं रूपं न दृष्टिपथमृच्छति ।
यत्तु दृष्टिपथं प्राप्तं तन्मायेव सुतुच्छकम् ॥ इति ।

અર્થાત્-ગુણોનું જે પરમ વાસ્તવરૂપ પ્રધાન છે, તે અતીંદ્રિય હોવાથી દૃષ્ટિગોચર થતું નથી અને જે આ અનેક પ્રકારનો પ્રપંચ દેખાય છે, તે સઘળું ઇંદ્રજાળની પેઠે તુચ્છ છે, એવો તેનો અર્થ છે.

અર્થાત્-પરમાર્થથી આ સઘળું ગુણત્રયાત્મકરૂપ પ્રધાન સ્વરૂપ જ[2] છે, કાંઈ પ્રધાનથી ભિન્ન નથી અને અનાદિ વિચિત્ર વાસના સમન્વિત વિચિત્ર ત્રણે ગુણોનું સ્વરૂપ હોવાથી પ્રપંચ પણ વિચિત્રરૂપ છે, એ ફલિત થયું. ॥ ૧૩ ॥

જો સઘળું ગુણત્રયનું પરિણામ હોવાથી પરમાર્થથી સઘળું ગુણસ્વરૂપ જ છે, તો પરસ્પર વિરુદ્ધ એ ત્રણે ગુણોનું પૃથ્વી જળ આદિ એકરૂપ પરિણામ કેમ?[3] અને ત્રણે ગુણોનું જે એક શ્રોત્રઆદિ ઇંદ્રિયરૂપથી અને એક શબ્દઆદિ વિષયરૂપથી વિલક્ષણ પરિણામ[4] થઈ જવું, તે પણ શી રીતે? એ આશંકા ઉપસ્થિત થતાં કહે છે કે-

सू०—परिणामैकत्वाद् वस्तुतत्त्वम् ॥ १४ ॥

(परिणामैकत्वाद्) અનેકોના પરિણામનું પણ એકરૂપ હોવાથી (वस्तुतत्त्वम्) તન્માત્ર ભૂતભૌતિક આદિ વસ્તુઓનું પણ (तत्त्व) એકત્વ જાણવું.

૧-સાઠ પદાર્થના પ્રતિપાદક સાંખ્યશાસ્ત્ર પ્રણેતાનું નામ વાર્ષગણ્યાચાર્ય છે.

૨-અર્થાત્-કારણની જ એક જાતની અવસ્થાનું નામ કાર્ય છે. કાંઈ નૈયાયિકની પેઠે અમે ભિન્ન માનતા નથી.

૩-અર્થાત્-વિજાતીય ત્રણે ગુણોનું એકજાતીય પૃથ્વી વા જળઆદિરૂપ પરિણામ હોવું તે અયુક્ત છે.

૪-એક જ ગુણસ્વરૂપ અહંકારથી પરસ્પર વિજાતીય પ્રકાશ તથા જડસ્વરૂપ ઇંદ્રિયો અને વિષયોનો પ્રાદુર્ભાવ કેમ થાય, એ એનો આશય છે.

અર્થાત્-લવણની ખાણમાં નાંખેલાં પરસ્પર વિજાતીય મહિષ, ઉષ્ટ્ર, ગજ વગેરેનું જેમ એકજાતીય લવણરૂપ પરિણામ એક થઈ જાય છે; અને પરસ્પર વિરુદ્ધ તૈલ, વાટ, વહ્નિનું જેમ એક પ્રદીપરૂપ પરિણામ થઈ જાય છે, તેમ વિજાતીય ત્રણ ગુણોનું પણ એકજાતીય તન્માત્ર પંચભૂત આદિ પરિણામ થઈ શકે છે.

એ પ્રમાણે[1] સત્ત્વપ્રધાનરૂપતાથી ગુણોના પ્રકાશસ્વરૂપ ઇંદ્રિય પરિણામ છે, અને તમઃપ્રધાનરૂપતાથી શબ્દઆદિ વિષય પરિણામ છે. એવી રીતે કઠિનતા ધર્મપ્રધાન પંચતન્માત્રાનાં સૂક્ષ્મ અને સ્થૂલરૂપ પરિણામ પૃથ્વી છે. સ્નેહ ધર્મપ્રધાન ચાર[2] તન્માત્રાનાં સૂક્ષ્મ અને સ્થૂલ જલ પરિણામ છે. ઉષ્ણતા ધર્મપ્રધાન ત્રણ[3] તન્માત્રાનાં સૂક્ષ્મ અને સ્થૂલરૂપ અગ્નિ પરિણામ છે. વહનરૂપ ધર્મપ્રધાન બે તન્માત્રાનું સૂક્ષ્મ અને સ્થૂલરૂપ વાયુ પરિણામ છે, અને અવકાશદાનરૂપ ધર્મવાળી શબ્દ તન્માત્રાનું સૂક્ષ્મ અને સ્થૂલ આકાશ પરિણામ છે. એ સઘળું પ્રથમ પાદમાં સ્પષ્ટ છે,[4] તેથી અત્રે વિશેષ લખવાની આવશ્યકતા નથી. ॥૧૪॥

જો કે[5] યોગાચાર મતવાળા વૈજ્ઞાનિક વૈનાશિકલોક એમ માને છે કે-"વિજ્ઞાનના અભાવકાળમાં પદાર્થોની પ્રતીતિના અભાવથી[6] અને

૧-એ પ્રકારે અનેકોનું એકજાતીય પરિણામ સમીચીન કહી હવે (એકથી વિજાતીય ઇંદ્રિય અને વિષયોનો પ્રાદુર્ભાવ કેવી રીતે?) તેનું સમાધાન કરે છે, "એ પ્રમાણે" ઇત્યાદિથી. ૨-ગંધને છોડી દઈ બીજી ચાર તન્માત્રાના.

૩-ગંધ અને રસને છોડી દઈ બીજી ત્રણ તન્માત્રાના-એ પ્રમાણે આગળ પણ જાણવું. ૪-સમાધિપાદના ૪૪-૪૫ મા સૂત્રના ટિપ્પણમાં જુઓ.

૫-અગ્રિમસૂત્રમાં બૌદ્ધ મતના નિરાકરણનો પ્રકાર હોવાથી અહીં પણ ભાષ્યકારે પ્રસંગથી કાંઇક વિજ્ઞાનવાદીના મત ઉપર આક્ષેપ કર્યો છે, તે પ્રદર્શન કરે છે, "જો કે" ઇત્યાદિથી. એ ગ્રંથનો અગ્રિમસૂત્ર સાથે સંબંધ છે, તેથી એ અગ્રિમસૂત્રની ભૂમિકા જાણવી.

૬-અર્થાત્-બાહ્ય જે જડ પદાર્થ છે, તે સ્વપ્રકાશતાના અભાવથી પોતાના પ્રકાશમાટે વિજ્ઞાનની અપેક્ષાવાળા છે. તેથી વિજ્ઞાનકાળમાં જ પદાર્થોની પ્રતીતિ થાય છે, વિજ્ઞાનના અભાવકાળમાં નહિ. એ પ્રમાણે જેમ મૃત્તિકાના સત્ત્વકાળમાં ઘટનું સત્ત્વ હોવાથી અને મૃત્તિકાના અસત્ત્વકાળમાં ઘટનું અસત્ત્વ હોવાથી મૃત્તિકાથી અતિરિક્ત ઘટ કાંઈ તત્ત્વ મનાતું નથી. તેમ વિજ્ઞાનના સત્ત્વ અસત્ત્વને આધીન જ બાહ્યપદાર્થની સત્તા અસત્તા હોવાથી વિજ્ઞાનથી અતિરિક્ત કોઈ બાહ્યતત્ત્વ નથી, એ સિદ્ધ થયું.

પદાર્થોના અભાવકાળમાં પણ સ્વપ્ન વગેરેમાં વિજ્ઞાનની વિદ્યમાનતાથી વિજ્ઞાનમાત્ર જ એક તત્ત્વ છે, બીજું કાંઈ નથી. કેમકે બીજા જે સઘળા બાહ્યપદાર્થ પ્રતીત થઈ રહેલા છે, તે સઘળા સ્વપ્નાદિક વિષયોની પેઠે અલીક છે.” તે આ તેઓનું માનવું, અસમીચીન છે. કેમકે ઇંદતારૂપથી પ્રતીયમાન બાહ્યપદાર્થોનો એકદમ અપલાપ કરવો, તે પ્રમાણોથી વિરુદ્ધ હોવાથી અયુક્ત છે.

અર્થાત્-જો વિજ્ઞાનમાત્ર જ તત્ત્વ હોય તો “अयं घटः” આ ઘટ છે એ પ્રકારે ઇંદતારૂપથી જે બાહ્યપ્રતીતિ થાય છે, તે તેમના મતમાં ન થવી જોઇએ. કેમકે વિજ્ઞાન, અંદરનું હોવાથી “अहं घटः” હું ઘટ છું. એવી રીતની આંતરપ્રતીતિ હોવી જ જોઇએ, એમ તેમના મતમાં ઉચિત છે. જો કે તેમણે આમ કહેલું છે કે-“ यदन्तर्ज्ञेयतत्त्वं तद् बहिर्वद्वभासते ” અર્થાત્-જે અંતરમાં વાસ્તવરૂપથી જ્ઞેય છે, તે જ બાહ્યપદાર્થોની માફક પ્રતીત થઈ રહેલું છે. તે તેમનું કથન ત્યારે સમંજસ થઈ શકે છે, કે જયારે બાહ્ય-પદાર્થ મનાય. નહિ તો બાહ્યની પેઠે એ ઉપમા[1] કથન જ અસંગત થશે. કેમકે એ કોઈ દિવસ પણ સંભવિત હોઈ શકતું નથી કે વંધ્યા-પુત્રની પેઠે આ રાજકુમાર સુંદર છે. એ પ્રમાણે તેમના કથનથી જ બાહ્યપદાર્થની સત્તા સિદ્ધ હોવાથી બાહ્ય પદાર્થનો અપલાપ કરવો, એ કેવળ તેઓનો પ્રલાપ[2]માત્ર જાણવો.

જો કે તેમણે “सहोपलम्भनियमादभेदो नीलतद्धियोः” એ વાકયથી, “નીલ-વિષય અને નીલજ્ઞાનનો સહોપલંભ નિયમ હોવાથી[3] જ્ઞાનનો વિષયથી

વળી જેમ સ્વપ્નમાં બાહ્યપદાર્થોનો અભાવ હોવા છતાં પણ વિજ્ઞાન જ અનેક પદાર્થાકારરૂપથી ભાનવાળું મનાય છે; તેમ જાગ્રતકાળમાં પણ વિજ્ઞાન જ અનેકાકારે પ્રતીત થાય છે, પણ કાંઈ બાહ્યવિષય નહિ, એમ માનવું ઉચિત છે, એ અભિપ્રાયથી જ કહે છે, “પદાર્થોના અભાવકાળમાં” ઇત્યાદિથી.

૧-અર્થાત્-વિદ્યમાન પદાર્થની જ ઉપમા દેવાય છે, કાંઈ અવિદ્યમાનની નહિ.

૨-ઉન્મત્ત ઉક્ત અનર્થક વાકયનું નામ પ્રલાપ છે.

૩-કોઈ એક પદાર્થની સાથે જ એકકાળમાં કોઈ પદાર્થનું એકઠું જ ભાન થવું, તે સહોપલંભનિયમ કહેવાય છે. અર્થાત્-જેમ દ્વિતીયચંદ્રનું જ્ઞાન વાસ્તવ એક ચન્દ્રના જ્ઞાનકાળમાં જ હોવાથી દ્વિતીય ચન્દ્ર ભિન્ન મનાતો નથી. તેમ જ્ઞાનકાળમાં જ વિષયનું ભાન હોવાથી વિષય પણ જ્ઞાનથી ભિન્ન નથી.

અભેદ કહેલો છે." એ તેમનું કહેવું પણ ત્યારે સંગત થઈ શકે કે, જ્યારે અભેદ સ્થળમાં જ સહોપલંભના સદ્‌ભાવનો નિયમ હોય અને અન્યત્ર ન હોય તો. પરંતુ તેમ છે નહિ. કેમકે ભેદસ્થળમાં પણ સહોપલંભ-નિયમનો સદ્‌ભાવ દૃષ્ટ છે.

અર્થાત્–જેમ ચાક્ષુષરૂપ,[1] પ્રભાવડે અનુવિદ્ધ હોવા છતાં પણ પ્રભાથી ભિન્ન મનાય છે, તેમ જ્ઞાનકાળમાં વિષયનું ભાન હોવા છતાં પણ વિષયને જ્ઞાનથી ભિન્ન જ માનવો ઉચિત છે, અભિન્ન નહિ.

ભાવ એ છે કે–જેમ પ્રભા અને રૂપના ઉપાય ઉપેય[2] ભાવરૂપ નિમિત્તને લઇને જ બંનેનો સહોપાલંભ થાય છે, કાંઈ બંનેના અભેદને લીધે નથી. તેમ જ્ઞાન અને વિષયનો પણ ઉપાયોપેયભાવ હેતુક જ સહોપલંભ હોય છે, કાંઈ અભેદહેતુક નહિ.

એવી રીતે સ્વપ્નકાલિક જ્ઞાનના સમાન જાગ્રતકાલનાં જ્ઞાનને નિરાલંબન[3] માનવું પણ અસમીચીન જાણી લેવું. કેમકે સ્વાપ્નજ્ઞાનનો વિષય બાધિત હોય છે અને જાગ્રતજ્ઞાનનો વિષય અબાધિત છે. આ બાબત વિસ્તારથી જોવું હોય તો અન્યત્ર જુઓ.[4] ॥૧૪॥

પૂર્વોક્ત યુક્તિઓથી સૌગતમત અયુક્ત હોવા છતાં પણ હવે બીજી યુક્તિઓથી પોતે સૂત્રકાર પણ તે મતને અયુક્ત દર્શાવે છે—

सू०-वस्तुसाम्ये चित्तभेदात् तयोर्विभक्तः पंथाः ॥ १५ ॥

(**वस्तुसाम्ये**) વસ્તુ એક હોવા છતાં પણ (**चित्तभेदात्**) જ્ઞાન અનેક હોવાથી (**तयोः**) જ્ઞાન અને વસ્તુનો (**विभक्तः**) ભિન્ન (**पंथाः**) માર્ગ છે.[5]

૧–ચાક્ષુષ=નેત્રના વિષય ઘટાદિગત રૂપ. પ્રભા=આલોક, પ્રકાશ. તેવડે અનુવિદ્ધ, સંગત, અર્થાત્ પ્રભાકાળમાં જ ભાન થવાનો નિયમ છતાં પણ તે રૂપ, પ્રભાથી ભિન્ન છે.

૨–ઉપાય નામ સહકારી કારણ વા સાધનનું છે, અને ઉપેય નામ ઉપાયવડે સાધનીય પદાર્થનું છે. જેમ પ્રભા ઉપાય છે અને રૂપજ્ઞાન ઉપેય છે. તેવી રીતે પ્રકૃતમાં પણ વિષય ઉપેય છે અને જ્ઞાન ઉપાય છે, તેથી જ બંનેનો સહોપલંભ છે.

૩–નિરાલંબન=નિર્વિષયક.

૪–"**वैधर्म्याच्च न स्वप्नादिवत्**" અધ્યા. ૨ પા. ૨ સૂ. ૨૯ ઇત્યાદિ બ્રહ્મસૂત્રના પ્રકાશમાં તે સઘળું સ્પષ્ટ છે.

૫–અર્થાત્–જ્ઞાન અને જ્ઞેય ભિન્ન છે. જ્ઞાન વિજ્ઞાન, ચિત્ત બુદ્ધિ, એ સઘળાનો આ પ્રકરણમાં એક અર્થ જાણવો.

અર્થાત્-જ્યાં અનેક ચિત્તની વિષયીભૂત એક વસ્તુ સ્થિત હોય છે, ત્યાં તે વસ્તુ ન તો કોઈ એક ચિત્તવડે કલ્પિત છે અથવા ન અનેક ચિત્તવડે કલ્પિત છે, કિંતુ સ્વરૂપપ્રતિષ્ઠ જ મનાય છે. કેમકે જો ચિત્તવડે કલ્પિત મનીએ તો ચિત્તો અનેક હોવાથી વસ્તુ પણ અનેક રૂપવાળી હોવી જોઇએ, પરંતુ તેમ તે નથી. એ પ્રમાણે વસ્તુના એક હોવા છતાં પણ ચિત્તોનું અનેકપણું હોવાથી વસ્તુ અને ચિત્ત ભિન્ન છે, એમ નિષ્પન્ન થયું.

ભાવ એ છે કે-રક્ત,[1] દ્વિષ્ટ, વિમૂઢ અને માધ્યસ્થ, એ ચારે પુરુષોનું જે એક જ સ્ત્રીવિષયક ધર્મ, અધર્મ, અજ્ઞાન અને તત્ત્વજ્ઞાન-રૂપ નિમિત્તોની અપેક્ષાથી યથાક્રમ[2] સુખ, દુઃખ, મોહ અને માધ્ય-સ્થ્ય જ્ઞાન હોય છે; તથા એ જ્ઞાન પછી "જે સ્ત્રી આપની દૃષ્ટિગોચર છે, તે જ હું દેખું છું" એ પ્રકારનું અનુસંધાન થાય છે, તે કોના ચિત્તવડે પરિ-કલ્પિત મનાશે? અર્થાત્-કોઇના પણ ચિત્તવડે તે પરિકલ્પિત નહિ થઈ શકે. કેમકે જો કલ્પિત મનાશે, તો જે ચિત્તવડે કલ્પિત થશે, તેને તે વિષય પ્રતીત થશે, બીજાને થશે નહિ. કેમકે અન્યના સ્વાપ્નજ્ઞાનનો વિષયભૂત પદાર્થ, બીજાના જ્ઞાનનો વિષય થાય, એ અદષ્ટ અને અસં-ભવિત છે, અને સિદ્ધાંતમાં[3] તો વસ્તુમાત્ર ત્રિગુણાત્મક અને ચલ હોવાથી તે તે નિમિત્ત અનુસાર એક વસ્તુમાં પણ અનેક પ્રકારના પ્રત્યયનો સંભવ જાણી લેવો.

અર્થાત્-રજોગુણ સહિત જે સત્ત્વગુણ છે, તે ધર્મ સાપેક્ષ થયેલો પતિના સુખજ્ઞાનનો જનક છે; રજોગુણ સહિત જે તમોગુણ છે, તે અધર્મ સાપેક્ષ થઇને સપત્નીના દુઃખજ્ઞાનનો જનક છે; જે કેવળ

૧-રક્ત=પોતાની સ્ત્રીના વિષયમાં રાગવાળો પતિ. દ્વિષ્ટ=સ્ત્રી ઉપર દ્વેષ કરનાર સપત્ની (શોક). વિમૂઢ=સ્ત્રી લાભના અભાવથી મોહયુક્ત બીજો કામી પુરુષ. મધ્યસ્થ=રાગાદિથી શૂન્ય ઉદાસીન જન.

૨-ધર્મરૂપ નિમિત્તની અપેક્ષાથી રક્ત કાંતનું પોતાની સ્ત્રી બાબતનું સુખજ્ઞાન. અધર્મરૂપ નિમિત્તથી દ્વિષ્ટ સપત્નીનું તે વિષયક દુઃખજ્ઞાન. અજ્ઞાન-રૂપ નિમિત્તથી વિમૂઢ કામીનું એ વિષયક મોહજ્ઞાન, અને તત્ત્વજ્ઞાનરૂપ નિમિત્તથી ઉદાસીનનું સામાન્યથી વસ્તુમાત્રનું જ્ઞાન. એ યથાક્રમ જાણવો.

૩-સાંખ્ય યોગ મતમાં પણ એક વસ્તુ અનેક જ્ઞાનની જનક કેમ થાય છે? એ આક્ષેપનું વારણ કરે છે, "સિદ્ધાંતમાં" ઇત્યાદિથી.

તમોગુણ છે, તે અજ્ઞાન સાપેક્ષ થઈને કામીના મોહજ્ઞાનનો જનક છે અને જે વિશુદ્ધ સત્ત્વગુણ છે, તે તત્ત્વજ્ઞાન સાપેક્ષ થઈને ઉદાસીનના સામાન્યજ્ઞાનનો જનક છે; એ પ્રકારે એક જ વસ્તુ ધર્માદિ નિમિત્તના અનુસારે સત્ત્વાદિ ગુણોના આવિર્ભાવદ્વારા અનેક પ્રત્યયોનો જનક છે.[૧] ॥ ૧૫ ॥

હવે કોઈ એક વિજ્ઞાનવાદીને એકદેશી (પૂર્વોક્ત યુક્તિથી યદ્યપિ પદાર્થ, જ્ઞાનથી ભિન્ન છે, તથાપિ) જ્ઞાનના સમાન કાળમાં જ ભાન હોવાથી સુખાદિની પેઠે જ્ઞાનકાળમાં જ[૨] તેની સત્તા માનવી ઉચિત છે, અન્યકાળમાં નહિ. એ માનીને પુરુષાંતર સાધારણ વિષયના[૩] બાધદ્વારા જ્ઞાનની પૂર્વ અને ઉત્તર ક્ષણમાં બાહ્ય પદાર્થોનો અપલાપ કરે છે, તેના મતને અસંગત કહે છે-

सू०—नचैकचित्ततंत्रं वस्तु तदप्रमाणकं तदा किं स्यात् ॥ १६ ॥

(वस्तु) જે બાહ્ય પદાર્થ છે તે (एकचित्ततन्त्रं न च) કોઈએક ચિત્તની અધીન સત્તાવાળો નથી. કેમકે જો જ્ઞાનકાળમાં જ વિષયની સત્તા મનાશે, તો જે સમયમાં કોઈ વસ્તુ (तदप्रमाणकम्) તે જ્ઞાનરૂપ પ્રમાણનો વિષય થાશે નહિ, (तदा) તે સમયમાં તે વસ્તુ (किं स्यात्) શી હશે?

અર્થાત્-જો જ્ઞાનમાત્રને અધીન જ વસ્તુની સત્તા મનાશે અને પૂર્વ ઉત્તર ક્ષણમાં એ વસ્તુનો અભાવ મનાશે, તો જે સમય ઘટનો વિષય કરવાવાળું ચિત્ત,[૪] ઘટથી નિવૃત્ત થઈ બીજા કોઈ પદાર્થમાં વ્યગ્ર[૫] થઈ જશે, વા નિરુદ્ધ થઈ જશે, તે સમય એ વસ્તુના સ્વરૂપને ચિત્તની વિષયતાનો અભાવ હોવાથી તે ઘટરૂપ વસ્તુનું શું થશે? અર્થાત્ તેના મતમાં તે નષ્ટ જ થઈ જશે. કેમકે વ્યગ્ર અને નિરુદ્ધ ચિત્તનો તો તેની

૧-અહીં એટલું વિશેષ છે કે-જેવાં જેવાં ધર્માદિ નિમિત્ત હોય છે, તેને જ અનુસારે સત્ત્વાદિ ગુણોના આવિર્ભાવદ્વારા વસ્તુ, સુખાદિ જ્ઞાનની જનક થાય છે, અન્યથા નહિ. એથી સર્વદા સર્વને સર્વ જ્ઞાન થતું નથી.

૨-સુખાદિનું જ્ઞાનકાળમાં જ ભાન હોવાથી વેદાંતી તેની અજ્ઞાત સત્તા નથી માનતા.

૩-જેને જ્ઞાન થયેલું છે, તેની દૃષ્ટિમાં વિષય છે, બીજાની દૃષ્ટિમાં નથી- એવી રીતે અન્ય પુરુષની અપેક્ષાથી વિષયના અભાવદ્વારા હોય છે આનું નામ દૃષ્ટિસૃષ્ટિવાદ છે.　　૪-આ પ્રકરણમાં સર્વત્ર જ જ્ઞાનરૂપ વૃત્તિનું નામ ચિત્ત જાણવું.　　૫-વ્યગ્ર=આસક્ત.

સાથે સંબંધ જ નથી, અને બીજા કોઈ ચિત્તનો તે વિષય જ થયેલ નથી. તેથી અગૃહીત[1] સ્વભાવ હોવાથી તે તેના મતમાં અપ્રમાણ છે અને કોઈ કાળ પછી જ્યારે ફરી એ ઘટ કોઈ બીજા ચિત્ત સાથે સંબંધવાળો થશે, તો તે નષ્ટ થયેલો ઘટ કોનાથી ઉત્પન્ન થશે? કેમકે કારણ વિના કાર્યની ઉત્પત્તિ માનવી અયુક્ત છે.[2]

તેવી રીતે જ્ઞાનના અભાવ કાળમાં વિષયનો નાશ, અને પછી જ્ઞાનકાળમાં કારણ વિના વિષયની ઉત્પત્તિ, એ બંને મંતવ્ય સર્વાનુભવ વિરુદ્ધ હોવાથી, તે મત પણ ઉન્મત્ત પ્રલાપતની તુલ્ય અસંગત જાણવો.

વળી જ્ઞાનાધીન જ વસ્તુનો સદ્ભાવ મનાશે તો ઘટનો જ અર્વાગ્[3] ભાગ છે, તે જ ઇંદ્રિયસન્નિકર્ષદ્વારા ચિત્તનો વિષય હોવાથી જ્ઞાત થશે અને બીજો જે મધ્ય તથા પૃષ્ઠ ભાગ છે, તે નહિ થશે. તે પ્રમાણે અજ્ઞાત જે ઘટનો મધ્ય ભાગ તથા પૃષ્ઠ ભાગ છે, તેનો તેના મતમાં અભાવ હોવાથી તદ્[4] વ્યાપ્ત જે અર્વાગ્ ભાગ છે, તેનો પણ તેને અભાવ માનવો પડશે. કેમકે વ્યાપકના અભાવથી વ્યાપ્યનો[5] અભાવ સર્વ સંમત છે.

એ પ્રમાણે તેમના મતમાં ઘટરૂપ અર્થને જ અભાવની આપત્તિ હોવાથી જ્ઞાનાધીન વિષય સદ્ભાવવાદી વૈનાશિક સિદ્ધાંત અસંગત જાણવો. કિંતુ (સર્વ પુરુષ સાધારણ[6] સ્વતંત્ર જ બાહ્ય પદાર્થ છે, કાંઈ

૧–જેના સ્વરૂપનું કોઇએ ગ્રહણ કર્યું ન હોય, તે અગૃહીત સ્વભાવ કહેવાય છે.

૨–જો તે એમ કહે કે–જ્ઞાન જ તે ઘટનું કારણ છે, તો તેને આશામોદકને ને પણ્યમોદકને પણ સમાનબળવીર્યના જનક અને પુષ્ટિકારક માનવા પડશે. જ્ઞાનથી કલ્પના કરેલા લાડુ તે આશામોદક અને બજારમાં દુકાને વેચાતા લાડુ, એ પણ્યમોદક છે.

૩–જે નેત્રનો સન્મુખ દેશ છે, તે ઘટનો અર્વાગ્ ભાગ જાણવો.

૪–જ્યાં જ્યાં અર્વાગ્ ભાગ છે, ત્યાં ત્યાં મધ્ય અને પૃષ્ઠ ભાગ અવશ્ય હોય છે. એ પ્રકારે મધ્ય અને પૃષ્ઠ ભાગ વ્યાપક છે અને અર્વાગ્ ભાગ તેવડે વ્યાપ્ત છે.

૫–તેથી જ વહ્નિરૂપ વ્યાપકના અભાવથી ધૂમરૂપ વ્યાપ્યનો અભાવ મનાય છે.

૬–અર્થાત્–જેને ઘટ જ્ઞાન થયું છે, તેની દૃષ્ટિમાં જ ઘટ છે, એમ નથી, પણ સર્વ પુરુષના સાધારણ તે ઘટ છે.

જ્ઞાન પરતંત્ર નથી અને પ્રત્યેક પુરુષને ચિત્ત સ્વતંત્ર જ એ વિષયોથી સંબંધ થાય છે અને વિષય તથા ચિત્તના સંબંધથી જે ઉપલબ્ધિ,[1] તે પુરુષનો ભોગ છે) એ સાંખ્યયોગ સિદ્ધાંત જ સંગત જાણવો, એ નિષ્પન્ન થયું. ॥૧૬॥

"યદિ બાહ્ય પદાર્થ સ્વતંત્ર છે, તો તે જડ સ્વભાવ હોવાથી કદિ પણ જ્ઞાત ન થવા જોઇએ અને જો તેનો પ્રકાશ સ્વભાવ માનશો તો સર્વદા જ જ્ઞાત હોવા જોઇએ." એ આક્ષેપનું વારણ કરે છે-

सू०–तदुपरागापेक्षित्वाच्चित्तस्य वस्तुज्ञाताऽज्ञातम् ॥ १७॥

(वस्तु) જે બાહ્ય પદાર્થ છે તે (ज्ञाताऽज्ञातम) ચિત્તવડે કદી જ્ઞાત હોય છે અને કદી અજ્ઞાત હોય છે. કેમકે (चित्तस्य) ચિત્ત (तदुपरागापेक्षित्वात्) તે વિષયના ઉપરાગની[2] અપેક્ષાવાળું હોવાથી.

અર્થાત્-જે સમયે વિષયનો ચિત્તની સાથે ઇંદ્રિયદ્વારા સંબંધ થાય છે, ત્યારે તે જ્ઞાત થાય છે, અને અન્ય સમયમાં અજ્ઞાત હોય છે.

ભાવ એ છે કે-અયસ્કાંતમણિની તુલ્ય જે વિષય છે, તે ઇંદ્રિય-સંનિકર્ષદ્વારા લોહતુલ્ય ચિત્તને પોતાની સાથે યોગવડે તે ચિત્તને સ્વ-સમાન આકાર બનાવી ચિત્રિત કરી દે છે. એ પ્રમાણે જે વિષયવડે ચિત્ત ઉપરક્ત[3] થાય છે, તે વિષય જ્ઞાત થાય છે અને બીજો અજ્ઞાત હોય છે.

એ પ્રકારે જ્ઞાત અજ્ઞાત વિષય હોવાથી જ ચિત્ત, પરિણામી[4] મનાય છે. ॥ ૧૭ ॥

એવી રીતે ચિત્તથી અતિરિક્ત વિષયને સ્થાપન કરી ચિત્તને પરિણામી કહ્યું. હવે અપરિણામીત્વરૂપ હેતુથી આત્માના, ચિત્તથી અતિરિક્ત પ્રદર્શન માટે ઉત્તર પ્રકરણનો આરંભ કરે છે-

यस्य तु तदेव चित्तं विषयस्तस्यैं

૧-ઉપલબ્ધિ-શબ્દાદિ વિષયોનું જ્ઞાન.

૨-ઇંદ્રિય સન્નિકર્ષદ્વારા વિષયનું ચિત્તમાં જે પ્રતિબિંબ પડી જવું, તેનું નામ ઉપરાગ છે.   ૩-અર્થાત્-જે વિષયનું ચિત્તમાં પ્રતિબિંબ પડે છે.

૪-અર્થાત્-કોઈ કાળે વિષયાકાર અને કોઈ કાળે અવિષયાકાર હોવાથી એકરસ નથી. એ સઘળું દ્વિતીય પાદના ૨૦ મા સૂત્રના વ્યાખ્યાનમાં સ્પષ્ટ છે.

૫-એટલા પાઠનો ભાષ્યકારે સૂત્રની શરુઆતે અધ્યાહાર કરેલો છે.

सू०-सदाज्ञाताश्चित्तवृत्तयस्तत्प्रभोः पुरुषस्याऽपरिणामित्वात् ॥१८॥

(यस्य तु) જે ચેતન આત્માનો તો (तदेवचित्तम्) તે વિષયાકાર ચિત્તજ (विषयः) વિષય હોય છે. (तस्य तत्प्रभोः) તે ચિત્તના સ્વામી પુરુષને (सदा) સર્વ સમયમાં જ (चित्तवृत्तयः) ચિત્તની વૃત્તિઓ (ज्ञाताः) જ્ઞાત રહે છે. કેમકે (पुरुषस्य अपरिणामित्वात्) પુરુષનું અપરિણામીપણું હોવાથી.

અર્થાત્-જો ચિત્તનો સ્વામી અને સાક્ષીભૂત પુરુષ પણ ચિત્તની પેઠે એકરસ ન રહી પરિણામને પામી જશે, તો પુરુષની વિષયીભૂત જે ચિત્તની વૃત્તિઓ છે, તે પણ ચિત્તના વિષય ઘટાદિકની પેઠે જ્ઞાત અને અજ્ઞાત થઈ જાય. પરંતુ તેમ છે નહિ. કેમકે પુરુષને સદા વૃત્તિઓ જ્ઞાત જ રહે છે, અજ્ઞાત નહિ.[1] તેથી જ પુરુષ અપરિણામી[2] છે.

એ પ્રમાણે પરિણામી ચિત્તથી અતિરિક્ત અપરિણામી પુરુષ છે, એમ સિદ્ધ થયું. ॥૧૮॥

હવે અહીં જે વૈનાશિક લોક એ શંકા કરે છે કે "ચિત્ત જ અગ્નિની માફક સ્વાભાસ[3] અને વિષયાભાસ થઈ શકે છે, પણ અતિરિક્ત આત્મા માનવો એ અયુક્ત છે" આ શંકાનું ઉન્મૂલન કરે છે-

सू०-न तत् स्वाभासं दृश्यत्वात् ॥ १९ ॥

(तत्) તે ચિત્ત (स्वाभासं न) પોતે પોતાને પ્રકાશ કરવાવાળું નથી. કેમકે (दृश्यत्वात्) ઘટાદિકની પેઠે ચિત્ત પણ દૃશ્ય હોવાથી.

અર્થાત્-જેમ બીજી ઇંદ્રિયો અને વિષય દૃશ્ય હોવાથી સ્વપ્રકાશ નથી, તેમ ચિત્ત પણ દૃશ્ય હોવાથી સ્વપ્રકાશ નથી, પરંતુ સાક્ષિભાસ્ય છે.

વળી જે વિજ્ઞાનની સ્વપ્રકાશતામાં અગ્નિનું દૃષ્ટાંત આપ્યું છે, તે પણ અગ્નિ સ્વપ્રકાશ ન હોવાથી અસંગત જાણવું.

૧-જો ચિત્તવૃત્તિ પણ કદાચિત્ પુરુષને જ્ઞાત નહિ હોય, તો 'હું સુખી છું' એવો નિશ્ચય થશે નહિ. પણ 'હું સુખી છું કે નહિ' એ પ્રકારે સંશય થઈ જશે. તેથી પુરુષને સદા જ્ઞાત છે.

૨-પુરુષ સર્વદા અપરિણામી છે, સદા જ્ઞાતવિષય હોવાથી-જે પરિણામી હોય છે, તે સદા જ્ઞાતવિષય હોતો નથી. જેમ ચક્ષુ વગેરે. આ અનુમાન, તેમાં પ્રમાણ જાણવું.

૩-વિષયને પણ પ્રકાશે છે અને પોતાને પણ પ્રકાશે છે. અર્થાત્ જેમ અગ્નિ બીજાને પણ પ્રકાશે છે અને પોતાને પણ પ્રકાશે છે, તેથી તે સ્વ-પ્રકાશ છે, તેમ ચિત્ત પણ સ્વપ્રકાશ છે.

અર્થાત્-યદ્યપિ બીજા કોઈ અગ્નિવડે અગ્નિ પ્રકાશિત થતો નથી, તથાપિ વિજ્ઞાનવડે પ્રકાશિત હોવાથી તે પણ પરપ્રકાશ્ય જ છે, કાંઈ સ્વપ્રકાશ નથી.

વળી જેમ લોકમાં ગંતવ્ય અને ગંતા એ બંને ભિન્ન ભિન્ન વસ્તુઓની સન્નિધાનમાં (પાસે) ગમનરૂપ ક્રિયા જોવામાં આવે છે, તેમ પ્રકાશરૂપ ક્રિયા પણ પ્રકાશ્ય અને પ્રકાશ એ બંને ભિન્નભિન્ન વસ્તુઓની સન્નિધાનમાં જ જોવામાં આવે છે, કાંઈ પ્રકાશ્ય પ્રકાશકના અભેદ સ્થળમાં[1] નહિ. એ પ્રમાણે પ્રકાશ્ય અને પ્રકાશકને અભિન્ન માની વસ્તુને સ્વપ્રકાશ માનવાનું છે, તે એક પદાર્થમાં કર્મત્વ અને કર્તૃત્વરૂપ વિરુદ્ધ ધર્મનો અસંભવ હોવાથી અપેશલ[2] છે.

વળી જેમ (स्वात्मप्रतिष्ठमाकाशम्) એ શબ્દનો અર્થ એમ મનાય છે કે, આકાશ, કોઈ અન્યનું આશ્રિત નથી. તેમ (स्वाभासं चित्तम्) તેનો અર્થ પણ એ જ મનાશે કે, ચિત્ત કોઈ બીજાવડે ગ્રાહ્ય[3] નથી. એ પ્રમાણે પ્રાણીઓની જે અનેક પ્રકારની પ્રવૃત્તિ હોય છે, તે તેના મતમાં અસંગત થશે. કેમકે પોતાના ચિત્તના પ્રચારને[4] જાણીને જ પુરુષ પ્રવૃત્ત થાય છે, ચિત્તનો પ્રચાર જાણ્યા વિના નહિ.

અર્થાત્-જો ચિત્તને અગ્રાહ્ય માનવામાં આવશે તો (આ સમયે હું ક્રોધયુક્ત છું, વા ભયયુક્ત છું અને એ વિષયમાં મારું ચિત્ત રક્ત[5]

૧-અર્થાત્-દેવદત્ત ગામ જાય છે. એમાં જેમ ગમનક્રિયાના કર્મભૂત જે ગંતવ્ય ગામ છે, તે ભિન્ન છે અને ગમનક્રિયાનો કર્તા જે ગંતા દેવદત્ત છે, તે ભિન્ન છે. તેમ સકળ જગતને સૂર્ય પ્રકાશે છે. એમાં પણ પ્રકાશક્રિયાનું કર્મભૂત જે પ્રકાશ્ય જગત્ છે તે ભિન્ન છે અને પ્રકાશક્રિયાનો કર્તા જે પ્રકાશક સૂર્ય છે, તે ભિન્ન છે. એ પ્રમાણે એક જ વસ્તુને પ્રકાશ્ય તથા પ્રકાશક માની વસ્તુને સ્વપ્રકાશ માનવી, એ અસંગત છે.

૨-અપેશલ-અચારુ, અરમણીય. અર્થાત્ અસમીચીન. જેમ પોતાની ખાંધ ઉપર પોતે સ્વાર થઈ ચાલવું અસંભવિત છે, તેમ પોતે પોતાનો પ્રકાશ કરવો પણ અસંભવિત છે, એ તત્ત્વ છે. યદ્યપિ વેદાંતી પણ વિજ્ઞાનસ્વરૂપ પરમાત્માને સ્વપ્રકાશ માને છે, તથાપિ તે (પોતે પોતાને ગ્રહણ કરતું) એ પ્રકારથી માનતા નથી. કિંતુ કોઈ પણ જ્ઞાનની વિષયતાને પ્રાપ્ત ન થઈ અપરોક્ષ રૂપથી ભાન થવારૂપ સ્વપ્રકાશત્વ માને છે, એટલું વિશેષ છે.

૩-ગ્રાહ્ય-વિષય. ૪-પ્રચાર નામ ચિત્તનો વ્યાપાર વા વૃત્તિઓનું છે.

૫-રક્ત-રાગવાળું.

છે અને એ વિષયમાં મારું ચિત્ત દ્વેષવાળું છે.) ઇત્યાદિક જે ચિત્તના ગ્રહણપૂર્વક વ્યવહાર થાય છે, તે ન થવો જોઇએ. તેથી (વૃત્તિવિશિષ્ટ જે ચિત્ત છે, તે ચેતન પુરુષવડે ગ્રાહ્ય છે.) એ સાંખ્ય-યોગ-વેદાન્ત મત જ સંગત છે, સૌગત[1] મત નહિ. ॥૧૯॥

હવે ચિત્તને વિષયાભાસ અને સ્વાભાસ[2] માનવું, એ પોતાના[3] મતથી પણ વિરુદ્ધ છે, તે કહે છે–

सू०–एकसमये चोभयानवधारणम् ॥ २० ॥

(**एकसमये**) એક કાળમાં (**उभयाऽनवधारणम्**) વિષયનું અને પોતાનું ગ્રહણ કરવું અસંભવ છે.

અર્થાત્–બૌદ્ધમતમાં ચિત્ત ક્ષણિક છે, તેથી એક ક્ષણમાં જ વિષયનું અને પોતાનું ગ્રહણ કરવું અયુક્ત છે. કેમકે ક્ષણિકવાદીના મતમાં જે વસ્તુની ઉત્પત્તિ છે, તે જ ક્રિયા વા કારક છે, કાંઈ ઉત્પત્તિથી અતિરિક્ત ક્રિયા વા કારક નથી.

ભાવ એ છે કે–જેમ અન્ય મતમાં એ નિયમ છે કે, "પ્રથમ ક્ષણમાં પદાર્થની ઉત્પત્તિ થાય છે, બીજા ક્ષણમાં પદાર્થ ક્રિયાવાળો થાય છે અને તૃતીય ક્ષણમાં કોઈ કાર્ય કરવાથી કર્ત્તારૂપ કારક થાય છે." તેમ બૌદ્ધમતમાં નથી. કિંતુ વસ્તુની જે ઉત્પત્તિ છે તે જ તેના મતમાં ક્રિયા છે અને કારક પણ છે. કેમકે દ્વિતીય ક્ષણમાં વસ્તુનો નાશ હોવાથી ભિન્ન ભિન્ન ક્ષણમાં એ ત્રણેનું હોવું, તેના મતથી વિરુદ્ધ છે. તે પ્રમાણે એક ક્ષણમાં વિષયનું અને પોતાના સ્વરૂપનું ગ્રહણ અસંભવિત હોવાથી ચિત્તને સ્વાભાસ અને વિષયાભાસ કહેવું, તે પ્રલપન[4] જાણવું. ॥૨૦॥

૧–સૌગત, વૈનાશિક, વૈજ્ઞાનિક એ સઘળાં બૌદ્ધનાં નામ છે.

૨–અર્થાત્–વિષયને પણ પ્રકાશે છે અને પોતાને પણ પ્રકાશે છે.

૩–બૌદ્ધમતથી. અર્થાત્–પૂર્વે જે દોષ આપેલા છે, તે સર્વ મતના અનુસારે છે, અને હવે કેવલ બૌદ્ધમતના અનુસારે દોષ દે છે.

૪–પ્રલપન નામ ઉન્મત્તના વચનનું છે. અર્થાત્–જે વ્યાપારથી ચિત્ત, ઘટને વિષય કરશે, તે વ્યાપારથી જ પોતાના સ્વરૂપને વિષય કરશે, એ તો બની શકતું નથી. કેમકે એકરૂપ વ્યાપારથી ભિન્નરૂપ કાર્યનું હોવું અસંભવિત છે. તેથી બીજો એક વ્યાપાર તેને માનવો પડશે. પણ તેમ તેના મતમાં બની શકતું નથી. કેમકે ઉત્પત્તિથી અતિરિક્ત અન્ય વ્યાપારનું હોવું તેના મતમાં વિરુદ્ધ છે. એ પ્રમાણે એક ક્ષણમાં બંનેનું ગ્રહણ અસંભવવાળું જાણવું.

યદિ કોઈ વૈનાશિકનો આ આશય હોય કે "યદ્યપિ દ્વિતીય ક્ષણમાં વિનાશશીલ હોવાથી ચિત્ત પોતે પોતાને ગ્રહણ કરી શકતું નથી, તથાપિ સમનન્તર[1] અન્ય દ્વિતીય ચિત્તવડે તે ગ્રાહ્ય મનાશે, તેથી અગ્રાહ્ય નથી પણ ગ્રાહ્ય જ છે." એ આશયને દોષિત કહી બતાવે છે:-

सू०–चित्तान्तरदृश्ये बुद्धिबुद्धेरतिप्रसङ्गः स्मृतिसङ्करश्च ॥ २१ ॥

(चित्तान्तरदृश्ये) અન્ય ચિત્તવડે જો ચિત્તને ગ્રાહ્ય માનશો, તો (बुद्धिः[2] बुद्धेः) તે ચિત્તનું અન્યચિત્તવડે ગ્રહણ થવાથી (अतिप्रसङ्गः) અનવસ્થારૂપ દોષ થશે. (च) અને બીજો દોષ એ છે કે (स्मृतिसङ्करः) સ્મૃતિઓનો પરસ્પર સંકર થઈ જશે.

અર્થાત્-જો ઘટને વિષય કરવાવાળું ચિત્ત કોઈ બીજા ચિત્તવડે ગ્રાહ્ય મનાશે, તો તે અન્ય ચિત્ત કોનાવડે ગ્રાહ્ય મનાશે?[3] કેમકે જો સ્વગ્રાહ્ય માનવામાં આવશે તો પૂર્વોક્ત દોષ[4] તદવસ્થ થશે અને જો કોઈ બીજા ચિત્તવડે ગ્રાહ્ય માનશો, તો તે ચિત્ત બીજાવડે અને બીજું ચિત્ત ત્રીજાવડે ગ્રાહ્ય માનવું પડશે. એ પ્રકારે અનવસ્થાદોષ આવી પડશે. એથી જ ચિત્તથી અતિરિક્ત એક ચિત્તનો જ્ઞાતા આત્મા જ માનવો, તેમને ઉચિત છે.

વળી[5] એ પ્રમાણે માનવાથી વિષયના અનુભવ કાળમાં તેમને જ્ઞાનોનો ધારાપ્રવાહ[6] માનવો પડશે. તેમ વિષયના સ્મૃતિકાળમાં પણ તે અનન્ત જ્ઞાનોની એક કાળમાં સ્મૃતિ માનવી જ પડશે. કેમકે જેવો અનુભવ હોય છે, તેવું જ સ્મૃતિનું હોવું સર્વમતસંમત છે. એ પ્રમાણે (ઘટ મેં જાણ્યો) એ પ્રકારે જે એક માત્ર આકારવાળી સ્મૃતિ થવી ઉચિત હતી, તે નહિ થશે. કિંતુ (ઘટ મેં જાણ્યો, ઘટજ્ઞાન મેં જાણ્યું,

---

૧–સમનન્તર=નષ્ટ ચિત્તથી અવ્યવહિત (તરત જ) ઉત્તર ક્ષણમાં નૂતન ઉત્પન્ન થયેલું.

૨–બુદ્ધિ, ચિત્ત, વિજ્ઞાન એ એકાર્થક છે.

૩–અર્થાત્-કોઇવડે ગ્રાહ્ય નહિ થશે, તે જ સ્પષ્ટ કરે છે, "કેમકે" ઇત્યાદિથી.

૪–(પૂર્વોક્ત દોષ) એકમાં કર્તૃત્વ કર્મત્વરૂપ વિરુદ્ધ ધર્મના અસંભવરૂપ દોષ. (તદવસ્થ) તે અવસ્થાવાળું, અર્થાત્-જેવું હતું તેવું.

૫–સ્મૃતિસંકરરૂપ દોષને સ્પષ્ટ કરે છે, "વળી એ પ્રમાણે" ઇત્યાદિથી.

૬–પ્રથમ ઘટજ્ઞાન, પુનઃ ઘટજ્ઞાનજ્ઞાન, પાછું ઘટજ્ઞાન-જ્ઞાન-જ્ઞાન ઇત્યાદિ અનંત જ્ઞાનની ધારા થઈ જશે.

ઘટજ્ઞાન જ્ઞાન મેં જાણ્યું. ફરી તેનું જ્ઞાન,) એવી રીતે અનંત આકારવાળો સ્મૃતિસંકર થઈ જશે, કે જે બધાના અનુભવથી વિરુદ્ધ છે.

તે પ્રમાણે સર્વાનુભવ વિરુદ્ધવાદી[1] તથા ચિત્તથી અતિરિક્ત સર્વાનુભવસિદ્ધ બુદ્ધિના સાક્ષીભૂત પુરુષનો અપલાપ કરવાવાળો જે વૈનાશિક છે, તે વ્યાકુલ[2] જાણવો, એથી જ જે જે તેના સિદ્ધાંત છે, તે તે સઘળા આકુલ જ છે, નિરાકુલ[3] નથી.

વળી જે જે વૈનાશિકે આત્માના સ્વરૂપની જે જે પોતાની ઊહાંથી કલ્પના કરી છે, તે પણ સઘળી ન્યાયવિરુદ્ધ છે. અર્થાત્-જે વિજ્ઞાનવાદી ક્ષણિક વિજ્ઞાનરૂપ ચિત્તમાત્રને આત્મતત્ત્વ માની ફરીથી (જે સાંસારિક મલિન પંચસ્કંધોનો[4] ત્યાગ કરી મુક્ત થયેલો શુદ્ધ પંચસ્કંધોનો અનુભવ કરે છે, તે તત્ત્વવિશેષ આત્મા છે.) એ પ્રકારે માને છે, તે પણ સ્વસ્વીકૃત ક્ષણિકવાદથી ભયયુક્ત[5] હોવાથી ન્યાય વિરુદ્ધ છે. કેમકે કોઈ સ્થાયી પદાર્થ વિના મલિન પંચસ્કંધોનો ત્યાગ તથા શુદ્ધ પંચસ્કંધોનું ઉપાદાન થવું અસંભવિત છે. એ પ્રમાણે બંધમોક્ષનું વૈય્યધિકરણ્ય[6] પણ તેમના મત પ્રમાણે નહિ અટકાવી શકાય એવું જાણી લેવું.

૧–એ વૈનાશિક, બૌદ્ધોનું વિશેષણ છે. ૨–વ્યાકુલ=ભ્રાંતિવાળો.

૩–અર્થાત્–તેનો કોઈ પણ સિદ્ધાંત સ્થિર નથી.

૪–अहं–अहं ઇત્યાકારક જે આલય વિજ્ઞાનનો પ્રવાહ છે, તે વિજ્ઞાન સ્કંધ છે. સુખાદિનો જે અનુભવ છે, તે વેદના સ્કંધ છે. હું ગોરો છું, હું બ્રાહ્મણ છું, ઇત્યાકારક જે સવિકલ્પ જ્ઞાન છે, તે સંજ્ઞાસ્કંધ છે. વિષયોની સાથે જે ઇંદ્રિયો છે તે રૂપસ્કંધ છે તથા રાગ, દ્વેષ, મોહ, ધર્મ, અધર્મ એ સંસ્કારસ્કંધ છે. એ સૌગતોનો સંકેત છે. તેમાં નીલપીત વગેરે અનેક પ્રકારના મલિન સ્કંધોના ત્યાગવડે વિશુદ્ધ વિજ્ઞાનાકાર પ્રવાહ થઈ જવો, એ તેમના મતમાં મુક્તિ છે.

૫–પ્રથમ આત્માને ક્ષણિક માન્યો, પછી તેને મુક્તિકાળમાં વિશુદ્ધ પ્રવાહવાળો સ્થિર માન્યો, તે તેમના મતમાં ભય જાણવો. જો મુક્તિકાળમાં પણ ક્ષણિક માનશે, તો ઉત્પત્તિ તથા નાશવાળો હોવાથી આત્મા અનિત્ય થઈ જશે.

૬–ક્ષણિકવાદીના મતમાં નીલપીતાદિ મલિન વિજ્ઞાન પ્રવાહવાળું ચિત્ત બદ્ધ છે, અને ત્યારપછી અન્ય ક્ષણમાં નૂતન ઉત્પન્ન થયેલું વિશુદ્ધ પ્રવાહવાળું ચિત્ત મુક્ત છે. એવી રીતે બંધમોક્ષનો એક આશ્રય ન હોવાથી વૈય્યધિકરણ્ય (ભિન્ન ભિન્ન અધિકરણ) જાણવું. એ સઘળું પ્રથમ પાદના ૩૨ મા સૂત્રના વ્યાખ્યાનમાં સ્પષ્ટ છે.

એવી રીતે જે શૂન્યવાદી શૂન્યને જ પરમતત્વ માની પછી (સ્કંધો વિષયક મહા વૈરાગને માટે અને પુનર્જન્માભાવરૂપ પ્રશાંતિને માટે જીવન્મુક્ત ગુરુની પાસે જઈ બ્રહ્મચર્યના અભ્યાસદ્વારા તત્ત્વનો સાક્ષાત્કાર કરવો જોઈએ,) એમ માને છે, તે પણ ન્યાયવિરુદ્ધ જાણવું. કેમકે જ્યારે તેમના મતમાં કાંઈ છે જ નહિ, તો પછી ભોક્તા તથા મોક્ષ અને બ્રહ્મચર્ય વગેરે સાધનોની સત્તાનો સ્વીકાર કરવો અયુક્ત છે.

તેથી ચિત્તના સ્વામી દ્રષ્ટા તથા ભોક્તારૂપ સ્થિર પુરુષને માનવાવાળા જે સાંખ્યયોગી આદિ છે, તે જ ન્યાયયુક્ત છે, વૈનાશિક પ્રતારક ન્યાયયુક્ત નથી, એમ સિદ્ધ થયું. ॥ ૨૧ ॥

જો ચિત્ત, સ્વાભાસ પણ ન હોય તેમ કોઈ અન્ય ચિત્તથી ગ્રાહ્ય પણ ન હોય, પરંતુ આત્માવડે ગ્રાહ્ય છે, એમ માનતા હો, તો અસંગ[1] તથા નિર્વિકાર આત્મા પણ ચિત્તનો દ્રષ્ટા અને ભોક્તા કેમ હોય? એ આક્ષેપનું વારણ કરે છે—

सू–चितेरप्रतिसंक्रमायास्तदाकारापत्तौ स्वबुद्धिसंवेदनम् ॥ २२ ॥

(**अप्रतिसंक्रमायाः**) આમ સર્વત્ર ઇંદ્રિયોના જેવા વિષયોમાં પ્રચારથી રહિત (**चितेः**) ચેતન પુરુષને (**तदाकारापत्तौ**) સ્વપ્રતિબિંબિત ચિત્તના આકારની પેઠે આકારની પ્રાપ્તિ હોવાથી[2] (**स्वबुद्धिसंवेदनम्**) પોતાની વિષયભૂત બુદ્ધિનું જ્ઞાન થાય છે.

અર્થાત્–અપરિણામી જે ભોક્તૃશક્તિસંજ્ઞક પુરુષ છે, તે યદ્યપિ અપ્રતિસંક્રમ અર્થાત્–કોઈ વિષયથી સંબદ્ધ ન હોવાથી નિર્લેપ છે તથાપિ વિષયાકાર પરિણામી બુદ્ધિમાં પ્રતિબિંબિત થયેલો તદાકાર હોવાથી તે, તે બુદ્ધિની વૃત્તિનો અનુપાતી (અનુસારી) થઈ જાય છે. એ પ્રમાણે ચૈતન્ય પ્રતિબિંબ ગ્રાહિણી બુદ્ધિવૃત્તિના અનુકારમાત્ર હોવાથી જ બુદ્ધિવૃત્તિથી અભિન્ન થયેલું ચેતન, જ્ઞાનવૃત્તિ કહેવાય છે, કાંઈ પરમાર્થથી

૧–જેવી રીતે વિષયની સાથે સંબંધ પામી ચિત્ત, વિષયને પ્રકાશે છે, તેમ આત્મા પણ ચિત્ત સાથે સંબંધ પામીને જ ચિત્તનો પ્રકાશ કરશે. તેથી અસંગ આત્માનો સંબંધ કેવો, તથા નિર્વિકાર આત્મામાં પ્રકાશરૂપ ક્રિયાનો સંભવ કેવો? એ પૂર્વપક્ષવાળાનો આશય છે.

૨–એ પ્રમાણે આત્મામાં દર્શનકર્તૃત્વ ઔપાધિક છે, સ્વાભાવિક નહિ, એ બોધન કર્યું.

તે ચેતન જ્ઞાતા નથી. યદ્વા ચેતન પ્રતિબિંબનો આધાર હોવાથી જે ચિત્ત ચેતનાકાર થઈ જાય છે, તે તદાકારાપત્તિ છે. આ તદાકારાપત્તિ હોવાથી જે ચિત્તમાં દર્શનકર્તૃત્વ છે, તેને લીધે જ ચેતન, દ્રષ્ટા કહેવાય છે, કાંઈ વાસ્તવિક નહિ.[1]

ભાવ એ છે કે-જેમ નિર્મળ જળમાં પડેલું ચંદ્રપ્રતિબિંબ પોતાની ક્રિયા વિના જ કેવળ પ્રતિબિંબાધાર જળનું ચંચલપણું હોવાથી ચંચળ પ્રતીત થાય છે, તેમ ચિત્ત પ્રતિબિંબિત જે ચેતન છે, તે પણ પોતાના વ્યાપાર વગર જ કેવળ પ્રતિબિંબાધાર ચિત્તના વિષયાકાર હોવાથી તદાકાર પ્રતીત થાય છે, કાંઈ સ્વાભાવિક નહિ.

એ પ્રમાણે ચેતન પ્રતિબિંબિત ચિત્ત જ ચિદાકાર થયેલું પોતાને દૃશ્ય અને ચેતનને દ્રષ્ટા કરી દે છે, કાંઈ વાસ્તવિક રીતે પુરુષ દ્રષ્ટા નથી, એ નિષ્પન્ન થયું.

ચિત્ત અને ચેતનનું અભિન્નરૂપે ભાન હોવાથી જ "न पातालं न च विवरं गिरीणां नैवान्धकारं कुक्षयो नोदधीनां गुहा यस्यां निहितं ब्रह्म शाश्वतं बुद्धिवृत्तिमविशिष्टां कवयो वेदयन्ते." એ વાક્યથી[2] આગમમાં ચેતનને બુદ્ધિવૃત્ત્યવિશિષ્ટ કહેલું છે. ॥ ૨૨ ॥

(ચિત્ત જ ચેતનથી અભિન્ન જેવું થયેલું વિષય અને વિષયીનું ઉપસ્થાપક છે, એ અવશ્ય માનવું ઉચિત છે. કેમકે લોકમાં એવો અનુભવ સર્વાનુભવસિદ્ધ છે.) એ આશયથી ચિત્તને સર્વાર્થ કહે છે.

सू०–द्रष्टृदृश्योपरक्तं चित्तं सर्वार्थम् ॥ २३ ॥

જે હેતુથી (चित्तम्) ચિત્ત, (द्रष्टृदृश्योपरक्तम्) દૃશ્ય (વિષય) તથા દ્રષ્ટા (પુરુષ) એ બંનેથી (उपरक्तम्) સંબદ્ધ છે, તે હેતુથી તે ચિત્ત, (सर्वार्थम्) સર્વાર્થ[3] કહેવાય છે.

૧–અર્થાત્–ઔપાધિક ભેદને લઈ વિષયાકાર ચિત્ત દશ્ય છે, અને ચેતન પ્રતિબિંબિત ચિત્ત દ્રષ્ટા છે, એ અગ્રિમ સૂત્રમાં સ્પષ્ટ છે.

૨–"गुहाहितं गह्वरेष्ठं पुराणं" ઇત્યાદિ શ્રુતિઓમાં જે ગુહા (ગુફા)માં શાશ્વત (નિત્ય) બ્રહ્મ નિહિત (સ્થિત) કહેલું છે, તે ગુફા કાંઈ પાતાલ, ગિરિની બખોલ, વા અંધકાર વા સાગરનું ઉદર નથી, પણ પ્રતિબિંબિત ચેતનથી અભિન્ન જેવી જે બુદ્ધિવૃત્તિ છે, તે જ ગુફા જાણવી. કેમકે કવિ (સર્વજ્ઞ મુનિ) જન તેને જ બ્રહ્મગુહા જાણે છે. એ આગમ વાક્યનો અર્થ છે.

૩–દ્રષ્ટા અને દશ્ય એ બંનેના સંગે સંબંધવાળું હોવાથી અનેક રૂપ.

અર્થાત્-ચિત્ત જે છે, તે કેવળ દૃશ્ય પદાર્થથી જ (ઉપરક્ત) સંબદ્ધ છે, એમ ન જાણવું, કિંતુ પોતાની વૃત્તિદ્વારા[1] વિષયી પુરુષ પણ તેની સાથે સંબંધવાળો છે. તેથી જ લોકમાં "घटमहं जानामि" એટલે ઘટ વિષયક જ્ઞાનવાળો હું છું. એ જે પ્રત્યક્ષરૂપ જ્ઞાન છે, તે વિષય અને વિષયી એ બંનેનું જ ઉપસ્થાપક થાય છે, કાંઈ કેવળ દૃશ્ય અર્થનું ઉપસ્થાપક નથી.

એ પ્રમાણે અચેતન વિષયરૂપ ચિત્ત, ચેતન અને વિષયીના સદૃશ થવાથી ચેતન અચેતન સ્વરૂપ તથા વિષય વિષયી નિર્ભાસ[2] થયેલું સ્ફટિક મણિતુલ્ય અનેક રૂપવાળું છે, એમ નિષ્પન્ન થયું.

ભાવ એ છે કે-[3] જેમ એક જ સ્વચ્છ સ્ફટિકમણિ પોતાના બંને ભાગમાં રહેલા લાલ અને નીલ પુષ્પના પ્રતિબિંબથી અને પોતાના નિજરૂપથી ત્રણ રૂપવાળો પ્રતીત થાય છે; તેમ એક જ ચિત્ત વિષય અને આત્માના પ્રતિબિંબથી અને પોતાના રૂપથી ગૃહીતા-ગ્રહણ-ગ્રાહ્ય સ્વરૂપ થયેલું ત્રણ રૂપવાળું થઈ જાય છે.[4] તેથી જ ચિત્ત સર્વાર્થ છે.

અહીં પ્રસંગથી એ પણ જાણી લેવું ઉચિત છે કે, આ જે સર્વાર્થ હોવાથી ચિત્ત અને ચેતનનું સારૂપ્ય છે, તે ચિત્ત સારૂપ્યથી જ ભ્રાંત થયેલા વૈનાશિક લોકોએ ચિત્તને આત્મા માનેલો છે, એમ કાંઈ નથી.[5] એવી રીતે યોગાચારે જે ચિત્તથી અતિરિક્ત બાહ્ય પ્રપંચનો અભાવ કરેલો છે, તે પણ આ અવિવેકમૂલક ભ્રમથી કરેલું છે, એમ જાણવું. એ વૈનાશિકોની આસ્તિકોએ ઉપેક્ષા ન કરવી જોઈએ, પણ તેમના ઉપર અનુકંપા કરી ચિત્તથી ભિન્ન આત્માના સ્વરૂપનું તેમને

૧-વૃત્તિ નામ આ સ્થળે ચિત્તમાં ચેતનની છાયાનું પડી જવું, એ છે. અર્થાત્-જેમ વિષય, ચિત્તમાં પ્રતિબિંબિત છે, તેમ ચેતન પણ ચિત્તમાં પ્રતિબિંબિત છે. એથી ચિત્ત બંનેથી ઉપરક્ત છે.

૨-વિષય=દૃશ્ય, વિષયી=દ્રષ્ટા. અર્થાત્ દ્રષ્ટા અને દૃશ્યરૂપથી ભાસતો.

૩-સ્ફટિકમણિની તુલ્ય-એ દૃષ્ટાંતથી સ્પષ્ટ કરે છે, "જેમ એક જ" ઇત્યાદિથી.

૪-તેમાં પોતાના રૂપથી ચિત્ત ગ્રહણાકાર છે, વિષયના પ્રતિબિંબથી ગ્રાહ્યાકાર છે, તથા આત્માના પ્રતિબિંબથી ગ્રાહકાકાર છે. એ પ્રમાણે અનેકાકાર હોવાથી ચિત્ત સર્વાર્થ છે.

૫-એમજ=ભ્રાન્તિકારણ વિના જ.

બોધન કરવું જોઇએ. કેમકે જો તેમણે એમ ને એમ જ ચિત્તને આત્મા માની લીધો હોત, તો તેમની ઉપેક્ષા કરવી ઉચિત હતી, પણ તેમ તેઓએ માનેલું નથી. કિંતુ ચિત્તનું પૂર્વોક્ત પ્રકારથી દ્રષ્ટા અને દૃશ્યના આકારથી ભાન કહેલું છે, તે ભાન જ તેઓને ચિત્તને આત્મા માનવામાં ભ્રાંતિ કારણ છે. એ પ્રમાણે ભ્રાંતિના કારણનો સદ્ભાવ હોવાથી ચિત્તને ચેતન માનવાનું અવિવેકથી તેમને સંભવિત હોવાથી તેમનાપર કૃપા કરી તેમને બોધન કરવું જ ઉચિત છે, કાંઈ તેમની ઉપેક્ષા કરવી નહિ.

અર્થાત્-[1] પૂર્વોક્ત યુક્તિઓથી ચિત્તથી અતિરિક્ત આત્માનો તેમને ઉપદેશ કરી પછી આત્માના સાક્ષાત્કાર માટે અષ્ટાંગયોગદ્વારા સમાધિમાં તેમની વિશ્વાસપૂર્વક પ્રવૃત્તિ કરાવી, તેમને બોધન કરવું ઉચિત છે કે-(સમાધિકાળમાં જે સવિકલ્પ પ્રજ્ઞા[2] હોય છે, તે પ્રજ્ઞામાં પ્રતિબિંબિત અર્થ ભિન્ન છે અને જેમાં વિષયનું પ્રતિબિંબ પડે છે, તે પ્રજ્ઞા ભિન્ન છે તથા પ્રતિબિંબિત પદાર્થયુક્ત પ્રજ્ઞાનું અવધારણ કરવાવાળો જે પુરુષ છે, તે ભિન્ન છે, કાંઈ ચિત્તમાત્ર જ સઘળું નહિ. કેમકે જો ચિત્તમાત્ર જ બાહ્ય અર્થ માનવામાં આવે, તો ચિત્ત પોતે જ પોતાને ગ્રહણ કરે છે, એમ માનવું પડશે. પણ એ માનવું અસમીચીન છે. કેમકે ગૃહીતા, ગ્રહણ, ગ્રાહ્ય એ ત્રણ ભિન્ન ભિન્ન જ મનાય છે, કાંઈ અભિન્ન નહિ.)[3]

તેથી જે સાંખ્યયોગી વેદાન્તીઓએ વિવેકદ્વારા ગૃહીતા, ગ્રહણ અને ગ્રાહ્ય એ ત્રણેને પરસ્પર વિજાતીય રૂપથી ભિન્ન ભિન્ન માન્યા છે, તેઓ જ સમ્યગ્દર્શી છે, અને તેમણે જ પુરુષનું સ્વરૂપ જાણ્યું છે તથા બીજા જે અવિવેકી છે, તે સઘળા ભ્રાંત છે, એ નિષ્પન્ન થયું. ॥ ૨૩ ॥

કયા હેતુથી ચિત્તથી અતિરિક્ત આત્મા માનવો ઉચિત છે? એ આકાંક્ષા થવાપર સૂત્રકાર હેત્વંતર[4] કહે છે.

૧-જેવી રીતે બોદ્ધોપર કૃપા કરવી જોઇએ, તે રીત કહી દેખાડે છે, "અર્થાત્" ઈત્યાદિથી.

૨-આ સઘળી સમાધિપ્રજ્ઞા પ્રથમ પાદના ૪૨ મા સૂત્રમાં સ્પષ્ટ છે.

૩-અર્થાત્-એ પ્રકારે તેમને બોધન કરી ચિત્ત અને ચેતનના વિવેકનું પ્રદર્શન કરી બતાવવું, કાંઈ તેમની ઉપેક્ષા ન કરવી. એમ છતાં પણ તેઓ ન માને તો અચિકિત્સ્ય ભ્રાન્તિવાળા તેમને જાણી તેમની ઉપેક્ષા કરવી શ્રેષ્ઠ છે.

૪-પૂર્વોક્ત હેતુઓથી અતિરિક્ત નૂતન હેતુ.

सू—तदसङ्ख्येयवासनाभिश्चित्रमपि परार्थं संहत्यकारित्वात् ॥२४॥

(**तद्**) તે ચિત્ત (**असंख्येयवासनाभिः**) અસંખ્યાત વાસનાઓવડે (**चित्रमपि**) યદ્યપિ ચિત્રિત છે, તોપણ (**परार्थम्**) પોતાનાથી ભિન્ન જે પુરુષ છે, તેને જ અર્થે છે. કેમકે (**संहत्यकारित्वात्**) સંહત[1] થઈ કાર્ય કરવાથી.

અર્થાત્-યદ્યપિ અનંત વાસનાઓવડે ચિત્રિત હોવાથી ચિત્તને જ ભોક્તા માનવું ઉચિત છે. કેમકે જે વાસનાનું આશ્રય હોય છે, તે જ ભોગનું આશ્રય હોવાથી ભોક્તા બની શકે છે, બીજું નહિ. તથાપિ તે ચિત્ત સ્વાર્થ નહિ જાણવું, કિંતુ પુરુષના ભોગાપવર્ગાર્થી જાણવું. કેમકે જે જે જડ પદાર્થ એકઠા મળી કોઈ એક કાર્યનું સંપાદન કરે છે, તે લોકમાં પદાર્થ જ મનાય છે, સ્વાર્થ નહિ.

ભાવ એ છે કે-જેમ[2] શયન, આસન, ગૃહ, વગેરે મિલિત થયેલ જડ પદાર્થ પુરુષના ભોગસાધન સારુ હોવાથી પુરુષાર્થ કહેવાય છે, તેમ ચિત્ત પણ ક્લેશ, કર્મ, વાસના તથા વિષય-ઇંદ્રિયાદિથી મળી પુરુષનો અર્થ સંપાદન કરવાથી પુરુષાર્થ જ છે, સ્વાર્થ નહિ.

અર્થાત્-સુખાકાર જે ચિત્ત છે, તે ચિત્તના ભોગાર્થે નથી.[3] અને તત્ત્વજ્ઞાનાકાર જે ચિત્ત છે, તે ચિત્તના અપવર્ગાર્થે નથી. પરંતુ એ બે પ્રકારનું ચિત્ત પરાર્થે જ છે. એ પ્રમાણે જે ભોગ અને અપવર્ગરૂપ અર્થથી અર્થવાળો છે, તે અસંહત કેવલ પુરુષ છે, એમ જાણવું.

આ ઠેકાણે એટલું પણ વિશેષ જાણી લેવું કે-(જે જે સંહત્યકારી હોય છે, તે તે પરને અર્થે હોય છે) એ યુક્તિથી કોઈ સામાન્ય પદાર્થ માત્ર જ પર નહિ માનવું. કેમકે જો સામાન્યથી કોઈ પદાર્થને પર મનાશે, તો તે પણ સંહત્યકારી હોવાથી પદાર્થ જ કહેવાશે. માટે જે અસંહત્યકારી પુરુષવિશેષ છે, તે પર માનવો જોઈએ,[4] અને તેને જ અર્થે ચિત્ત માનવું જોઈએ. ॥૨૪॥

૧-વિષય તથા ઇંદ્રિયાદિકથી મળી, એવો સંહત્યનો અર્થ છે.

૨-संहत्यकारित्वात् એ પદના અર્થને સ્પષ્ટ કરે છે, "જેમ" ઇત્યાદિથી.

૩-અર્થાત્-સુખ જ સુખવડે અનુકૂલનીય નથી અને તત્ત્વજ્ઞાન જ જ્ઞાનવડે મોચનીય નથી, પણ તેથી ભિન્ન પુરુષ જ અનુકૂલનીય અને મોચનીય જાણવો.

૪-જો કોઈ અન્ય પણ સંહત મનાશે, તો તે પણ સંહત હોવાથી અન્યાર્થ અને અન્ય પણ સંહત હોવાથી અન્યાર્થ એવી રીતની અનવસ્થા થશે, તેથી અસંહત જ પર માનવું જોઈએ.

એવી રીતે યુક્તિથી ચિત્તથી અતિરિક્ત આત્માના સ્વરૂપનું પ્રતિપાદન કરી, હવે આત્માના ઉપદેશદ્વારા સાક્ષાત્કાર કરવાની યોગ્યતાવાળો જે અધિકારી છે, તેને બીજા અનધિકારી પુરુષથી વિશેષ કહે છે–

सू–विशेषदर्शिन आत्मभावभावनाविनिवृत्तिः ॥ २५ ॥

(विशेषदर्शिनः) ચિત્તથી અતિરિક્ત આત્માને જાણવાવાળા પુરુષની (आत्मभावभावनाविनिवृत्तिः) આત્મભાવ ભાવના નિવૃત્ત થઈ જાય છે.

અર્થાત્–[1](પૂર્વ જન્મમાં હું કોણ હતો, કયાં હતો, કેવી રીતે સ્થિત હતો, મારું વાસ્તવ રૂપ શું છે, આ શરીર, ભૂતોનું કાર્ય છે વા ભૂતોનો સમૂહ છે, અથવા ભૂતોથી ભિન્ન છે. આગળ હું કોણ હોઇશ અને કયે પ્રકારે હોઇશ.) એવી રીતનો જે આત્મવિષયક વિચાર છે, તે આત્મભાવભાવના જાણવી.

પરંતુ તે આત્મભાવભાવના ત્યાં સૂધી જ વિદ્યમાન રહે છે કે જ્યાં સૂધી વિવેકથી પેદા થનાર જ્ઞાનનો ઉદય ન થયો હોય અને જ્યારે ઉપદેશદ્વારા સમાધિના અનુષ્ઠાનથી અધિકારીને (આ સઘળી જે અનેક પ્રકારની ભાવના છે, તે સઘળી ચિત્તનું જ વિચિત્ર પરિણામ છે, અને હું તો અવિદ્યાના સંપર્કથી રહિત તથા ચિત્તના ધર્મોથી અપરામૃષ્ટ[2] હોવાથી શુદ્ધ અને નિર્વિકાર છું.) એવું વિવેકજ્ઞાન ઉદય થાય છે, ત્યારે તે યોગીની તે આત્મભાવભાવના નિવૃત્ત થઈ જાય છે.[3]

એ પ્રમાણે જે પુરુષના ચિત્તમાં એ ભાવના હોય છે, તે આત્મજ્ઞાનના ઉપદેશનો અધિકારી છે અને તે જ યોગાભ્યાસદ્વારા વિવેકજ્ઞાનનો સંપાદક છે, તથા તેની જ આત્મભાવભાવના વિવેકજ્ઞાનથી નિવૃત્ત થઈ જાય છે અને જે પુરુષોને એ આત્મભાવભાવના જ નથી, તેને તો આત્મોપદેશનો અધિકાર નથી, અને તેને વિવેકજ્ઞાન પણ હોતું નથી તથા આત્મભાવભાવનાની નિવૃત્તિ પણ નથી, એ સિદ્ધ થયું.

૧–"આત્મભાવભાવના" એ પદનો અર્થ કરે છે, "અર્થાત્" ઇત્યાદિથી.

૨–અપરામૃષ્ટ=વિયુક્ત.

૩–આ સ્થળે સૂત્રકારે જે વિશેષદર્શી (વિવેકજ્ઞાની)ની આત્મભાવભાવનાની નિવૃત્તિ કહેલી છે, તેથી, એ બોધન કર્યું કે, તેના ચિત્તમાં પહેલાં આત્મભાવભાવનાનો ઉદય હતો–કેમકે ઉદય વિના અસતની નિવૃત્તિ થવી અસંભવિત છે. તે પ્રમાણે આત્મભાવભાવનાવાળો જ વિવેકજ્ઞાનનો અધિકારી છે, બીજો નહિ, એ ફલિત થયું.

તેમાં[1] આ પુરુષના ચિત્તમાં ભાવનાનો ઉદય છે અને આના ચિત્તમાં નથી, એ અનુમાનથી જાણી લેવું.

[2]અર્થાત્-જેમ વર્ષાઋતુમાં તૃણોના અંકુરોનો પ્રાદુર્ભાવ દેખી, એ તૃણોનાં બીજની સત્તાનું અનુમાન કરાય છે, તેમ જે પુરુષને મોક્ષમાર્ગ[3] શ્રવણથી રોમાંચ અને હર્ષપુરસ્સર અશ્રુપાત થાય, તે પુરુષે વિવેકજ્ઞાનના બીજભૂત તથા અપવર્ગના સાધનભૂત જે યમનિયમાદિ કર્મ છે, તે પૂર્વ જન્મમાં કરેલાં છે, અને તેના ચિત્તમાં આત્મભાવભાવનાનો ઉદય પણ થયો છે, એમ અનુમાનથી જાણી લેવું.

એવી રીતે જે પુરુષની પૂર્વજન્મમાં શુભ કર્મના અનુષ્ઠાનના અભાવથી કેવળ પૂર્વપક્ષમાં જ[4] રુચિ હોય અને સિદ્ધાંતમાં અરુચિ હોય, તે પુરુષના ચિત્તમાં આત્મભાવભાવનાનો અનુદય અનુમાનથી જાણી લેવો. ॥ ૨૫ ॥

હવે વિવેકીના ચિત્તનું સ્વરૂપ દેખાડે છે-

सू-तदा विवेकनिम्नं कैवल्यप्राग्भारं चित्तम् ॥ २६ ॥

(**तदा**) વિવેકજ્ઞાનના ઉદયકાળમાં (**चित्तम्**) વિવેકીનું જે ચિત્ત છે તે (**विवेकनिम्नम्**) વિવેકમાર્ગ સંચારી તથા (**कैवल्यप्राग्भारम्**) કૈવલ્યના અભિમુખ થઈ જાય છે.[5]

૧-પૂર્વોક્ત પ્રકારથી એ નિશ્ચય થયો કે, જેના ચિત્તમાં એ ભાવનાનો ઉદય છે, તેના જ પ્રતિ મહાત્માઓએ આત્મોપદેશ કરવો જોઇએ, બીજા કોઈ શુષ્ક તાર્કિકોને ન કરવો જોઇએ. પણ એ ઉપદેશકને શી રીતે જાણવામાં આવે કે આના ચિત્તમાં ભાવનાનો ઉદય છે અને આના ચિત્તમાં નથી. એ આકાંક્ષાની શાંતિ સારુ કહે છે, "તેમાં" ઇત્યાદિથી.

૨-તે જ અનુમાન પ્રકાર દેખાડે છે, "અર્થાત્" ઇત્યાદિથી.

૩-વૈરાગ્યબોધક વચનોવડે યુક્ત જે સાંખ્યયોગ વેદાંતશાસ્ત્ર છે, તે મોક્ષમાર્ગ જાણવો.

૪-અર્થાત્-પરલોક છે કે નહિ ? નિરાકારનું ધ્યાન કેવું ? ઈશ્વર દેખાતો કેમ નથી ? ઇત્યાદિ તર્કોમાં જેની રુચિ હોય, તે ઉપદેશનો અનધિકારી જાણવો.

૫-જળપ્રવાહને સંચાર થવા યોગ્ય જે નીચાણુ પ્રદેશ છે, તે નિમ્ન કહેવાય છે અને જે ઠેકાણે જઇને જળનો પ્રવાહ રોકાઈ જાય છે, તે ઉંચાણુ પ્રદેશ વા પ્રાગ્ભાર જાણવો. તેને સ્પષ્ટ કરે છે, "અર્થાત્" ઇત્યાદિથી.

અર્થાત્-વિવેકજ્ઞાનની પૂર્વે જે ચિત્તનો પ્રવાહ અવિવેકરૂપ માર્ગે વહેતો થયેલો વિષયભોગપર્યંત વિશ્રાંતિવાળો હતો, તે વિવેકજ્ઞાનનો ઉદય થવાથી આત્માનાત્મ વિવેકરૂપ માર્ગ તરફ નિમ્ન થયેલો કૈવલ્ય-પર્યન્ત વિશ્રાંતિવાળો થઈ જાય છે. એ બાબતનો વિસ્તાર અન્યત્ર[1] જુઓ. ॥ ૨૬ ॥

જો યોગીનું ચિત્ત સદા વિવેકનિષ્ઠ છે, તો તે કોઈ દિવસ પણ વ્યુત્થિત[2] થતું નથી, એમ માનવું પડશે; તો વિવેકીનો જે ભિક્ષાટન, સ્નાન, શૌચ વગેરે વ્યવહાર જોવામાં આવે છે, તે કેમ ઉત્પન્ન (યુક્ત) થશે? કેમકે વ્યુત્થાન વિના ભિક્ષાટનાદિ વ્યવહારનું હોવું અસંભવિત છે. એ આક્ષેપનું વારણ કરે છે.—

सू०—तच्छिद्रेषु प्रत्ययान्तराणि संस्कारेभ्यः ॥ २७ ॥

(संस्कारेभ्यः) પૂર્વના વ્યુત્થાન સંસ્કારોથી (तच्छिद्रेषु) તે વિવેકનિષ્ઠ ચિત્તના અંતરાલોમાં[3] (प्रत्ययांतराणि) બીજા પ્રત્યય પણ ઉત્પન્ન થતા રહે છે.

અર્થાત્-યદ્યપિ વિવેકીનું ચિત્ત વિવેકખ્યાતિમાત્ર પ્રવાહશીલ હોવાથી વિવેકનિમ્ન જ છે, તથાપિ ક્ષીયમાણ[4] બીજરૂપ પૂર્વસંસ્કારોથી કોઈ કોઈ વાર વચ્ચે વિવેકજ્ઞાન શિથિલ થવા વડે (આ હું છું, આ મારું છે, આ હું જાણું છું, આ હું જાણતો નથી.) એવી રીતના અનેક પ્રત્યય, ચિત્તમાં ઉદય થયા કરે છે. કેમકે અનાદિકાળથી પ્રવૃત્ત વ્યુત્થાન સંસ્કાર પ્રબળ છે, અને વિવેક હજી દુર્બળ છે. ॥ ૨૭ ॥

જો વિવેકજ્ઞાનના હોવા છતાં પણ વ્યુત્થાન સંસ્કાર વચ્ચે વચ્ચે બીજા પ્રત્યયોને ઉત્પન્ન કરતા રહે છે, તો તેમના નાશનો એવો શો ઉપાય છે કે, જેથી તે નષ્ટ થયેલા પાછા બીજા પ્રત્યયોને ઉત્પન્ન ન કરે? એ આકાંક્ષાને શાંત કરે છે—

૧-પ્રથમ પાદના ૧૨ મા સૂત્રના વ્યાખ્યાનમાં જુઓ.

૨-વ્યુત્થિત=વ્યુત્થાનવાળું. અર્થાત્-સ્થિરતાના અભાવથી વિક્ષિપાકાર.

૩-છિદ્ર=કોઈ કોઈ સમયે વચ્ચે વચ્ચે હોવાવાળો જે વિવેકાભાવરૂપ અવકાશ છે, તે છિદ્ર જાણવું. તેને અંતરાલ અથવા અવસર કહે છે.

૪-ક્ષય પામી રહેલી છે, બીજરૂપ શક્તિ જે સંસ્કારોની તે સંસ્કાર ક્ષીયમાણ બીજરૂપ કહેવાય છે. અર્થાત્-વિવેકાભ્યાસરૂપ અગ્નિથી નહિ બળેલા સંસ્કારોથી.

सू०–हानमेषां क्लेशवदुक्तम् ॥ २८ ॥

(एषाम्) તે વ્યુત્થાન સંસ્કારોનું (हानम्) નાશ પામવું (क्लेशवत्) કલેશોના નાશની પેઠે જાણવું. કેમકે (उक्तम्) એવી રીતે જ પૂર્વાચાર્યોએ કહેલું છે.[1]

અર્થાત્–જેમ પ્રસંખ્યાનરૂપ અગ્નિથી દગ્ધબીજભાવવાળા થયેલા કલેશો પોતાના અંકુરોત્પાદનમાં અસમર્થ થઈ જાય છે, તેમ વિવેકાભ્યાસરૂપ પ્રસંખ્યાન અગ્નિથી દગ્ધબીજભાવ થયેલા પૂર્વના સંસ્કારો પણ બીજા પ્રત્યયોને ઉત્પન્ન કરી શકતા નથી.

એવી રીતે અપરિપક્વ વિવેકજ્ઞાનનિષ્ઠ ચિત્તમાં જ વ્યુત્થાન સંસ્કારોનો પ્રાદુર્ભાવ થાય છે, પણ પરિપક્વ જ્ઞાનનિષ્ઠ ચિત્તમાં થતો નથી, એ સિદ્ધ થયું.

ભાવ એ છે કે–પ્રથમ વિવેકજ્ઞાનના અભ્યાસથી વિવેકજ્ઞાનના સંસ્કારો સંપાદન કરી વ્યુત્થાન સંસ્કારોનો નિરોધ કરવો. પછી નિરોધ સંસ્કારથી વિવેક સંસ્કારોનો ક્ષય કરવો, પછી નિરોધ સંસ્કારનો અસંપ્રજ્ઞાત સમાધિથી લય કરવો. કાંઈ વિવેકજ્ઞાન ઉપર જ આસન લગાવી પોતાને કૃતકૃત્ય ન માનવો. ॥ ૨૮ ॥

એવી રીતે વ્યુત્થાનના નિરોધનો ઉપાય (વિવેકાભ્યાસરૂપ પ્રસંખ્યાન) કહી, હવે પ્રસંખ્યાનના નિરોધનો ઉપાય કહેતાં જીવન્મુક્તિની પરાકાષ્ઠારૂપ ધર્મમેઘ સમાધિનું સ્વરૂપ કહે છે–

सू०–प्रसंख्यानेऽप्यकुसीदस्य सर्वथा विवेकख्यातेः धर्ममेघः समाधिः ॥ २९ ॥

(प्रसंख्यानेऽपि) વિવેક જ્ઞાનમાં પણ (अकुसीदस्य) ફલની ઇચ્છાના અભાવવાળા યોગીનું (सर्वथा) નિરંતર (विवेकख्यातेः) વિવેકજ્ઞાન હોવાથી (धर्ममेघः समाधिः) ધર્મમેઘ નામની સમાધિ પ્રાપ્ત થાય છે.

અર્થાત્–જે સમયે બ્રહ્મનિષ્ઠયોગી પ્રસંખ્યાનમાં પણ અકુસીદ[2]

૧–યદ્વા જેવી રીતે દ્વિતીય પાદમાં દશમા અગિયારમા સૂત્રોમાં કલેશોનો નાશ કહેલો છે, તેવી રીતે સંસ્કારોનો નાશ પણ જાણવો.

૨–કોઇને પૈસા ધીરીને તે ઋણની રકમ ઉપર માસે માસે જે વૃદ્ધિ લેવી, તેનું નામ કુસીદ (વ્યાજ) છે. તેને જ કોઈ કોઈ દેશમાં સૂદ કે વ્યાજ કહે છે. જો એ યોગી પણ વિવેકખ્યાતિના ફલની લિપ્સાવાળો હોય તો તે કુસીદવાળો કહેવાય, પરંતુ તે યોગી ચાહતો નથી તેથી કુસીદવિનાનો એટલે અકુસીદ છે. તેને સ્પષ્ટ કરે છે, "અર્થાત્" ઇત્યાદિથી.

થઈ જાય છે, એટલે પરવૈરાગ્યદ્વારા પ્રસંખ્યાનના ફળમાં[1] પણ વિરક્ત થઈ જાય છે. તે સમયે તે પરવૈરાગ્યશીલ યોગીને નિરંતર વિવેકખ્યાતિનો લાભ થાય છે, કેમકે સંસ્કારોનો ક્ષય થવાથી બીજા પ્રત્યયોની ઉત્પત્તિનો તે કાળમાં અભાવ હોય છે. ॥ ૨૯ ॥

આ જે દૃઢ અભ્યાસ તથા પરવૈરાગ્યદ્વારા વ્યુત્થાન સંસ્કારોના ક્ષયપૂર્વક નિરંતર[2] વિવેકખ્યાતિ માત્રરૂપથી ચિત્તનું અવસ્થાન, તેનું જ નામ ધર્મમેઘસમાધિ[3] છે, અને તે જ સંપ્રજ્ઞાતયોગની પરમકાષ્ઠા છે.॥૨૯॥

હવે એ સમાધિ થવાથી જે ફળ થાય છે, તે કહે છે-

सू०—ततः क्लेशकर्मनिवृत्तिः ॥ ३० ॥

(ततः) તે ધર્મમેઘ સમાધિના લાભથી (क्लेशकर्मनिवृत्तिः) કલેશ તથા કર્મોની નિવૃત્તિ થાય છે.

અર્થાત્-એ સમાધિના લાભથી અવિદ્યાદિ કલેશ સમૂલ નષ્ટ થઈ જાય છે તથા કલેશમૂલક શુભાશુભ કર્મ પણ સમૂલ હત (નષ્ટ) થઈ જાય છે. પછી કલેશકર્મનો ક્ષય થવાથી વિદ્વાન્ જીવન્મુક્ત થઈ જાય છે.

અર્થાત્-જન્મ મરણનું નિદાન જે વિપર્યય જ્ઞાન છે, તેનો ક્ષય થવાથી તે જન્મમરણના અભાવદ્વારા સઘળાં બંધનોથી મુક્ત થઈ જાય છે. કેમકે ક્ષીણ વિપર્યય કોઈ પુરુષ કોઇએ ક્યાંઈ પણ ઉત્પન્ન થયેલો દીઠો નથી.

ગૌતમ મુનિએ પણ "वीतरागजन्मादर्शनात्"[4] એ સૂત્રથી વીતરાગને જન્માભાવ કહેલો છે. ॥૩૦॥

હવે ધર્મમેઘ સમાધિનિષ્ઠ જીવન્મુક્તના ચિત્તને અન્યચિત્તોથી વિલક્ષણ કહે છે—

૧-વિવેકખ્યાતિનું ફલ સર્વજ્ઞતાદિ લાભ છે, એ સઘળું વિભૂતિ પાદના ૪૯ મા સૂત્રના વ્યાખ્યાનમાં સ્પષ્ટ છે.

૨-વ્યુત્થાન સંસ્કારો દ્વારા જ વચમાં અન્ય પ્રત્યયોનો ઉદય થતો હતો, તેનો એકદમ અભાવ થવો, તે 'નિરંતર' પદનો અર્થ છે.

૩-"अयं तु परमो धर्मो यद्योगेनात्मदर्शनम्" એ યોગી યાજ્ઞવલ્કયના વાકયથી આત્મ-સાક્ષાત્કારનું નામ ધર્મ જાણવું. એ ધર્મની વૃષ્ટિ કરવાવાળો હોય, તેનું નામ ધર્મમેઘ છે.

૪-અ૦ ૩, આ૦ ૧, સૂ૦ ૨૫.

सू—तदा सर्वावरणमलाऽपेतस्य ज्ञानस्याऽऽनन्त्याज् ज्ञेयमल्पम् ॥३१॥

(तदा) તે સમયમાં[1] (सर्वावरणमलाऽपेतस्य) સઘળાં આવરણના મળથી[2] વિયુક્ત થયેલા (ज्ञानस्य) ચિત્ત[3] (आनंत्यात्) અપરિમેય હોવાથી (ज्ञेयम्) બાહ્ય વિષય (अल्पम्) પરિચ્છિન્ન થઈ જાય છે.

અર્થાત્-ચિત્તને આચ્છાદન કરવાવાળા જે ક્લેશ કર્મરૂપ મળ છે, તે ક્ષય થઈ જવાથી ચિત્ત અપરિચ્છિન્ન થઈ જાય છે અને બાહ્ય જ્ઞેય પદાર્થ પણ પરિછિન્ન થઈ જાય છે.

ભાવ એ છે કે-યદ્યપિ ચિત્તસત્ત્વ સત્ત્વગુણપ્રધાન હોવાથી સ્વભાવથી જ સઘળા પદાર્થોને ગ્રહણ કરવામાં સામર્થ્યશીલ છે, તથાપિ તમોગુણવડે તે આવૃત હોવાથી મુગ્ધ થયેલું સઘળા પદાર્થોને ગ્રહણ કરી શકતું નથી. પણ ક્રિયાશીલ રજોગુણવડે પ્રવર્તિત થયેલું કોઈ કોઈ વિષયને ગ્રહણ કરે છે;[4] તેથી સમાધિની પૂર્વે ચિત્તનો પ્રચાર તો અલ્પ હોય છે અને જ્ઞેય પદાર્થ અનંત પ્રતીત થાય છે અને જ્યારે ધર્મમેઘ સમાધિના અનુષ્ઠાનથી તે ચિત્ત રજતમમૂલક ક્લેશ કર્મરૂપ આવરણથી મુક્ત થઈ જાય છે, ત્યારે કોઈ એવો પદાર્થ જ નથી કે, જેનો ચિત્ત વિષય ન કરે. તેથી તે કાળમાં ચિત્ત અનંત=અપરિમિત=અપરિચ્છિન્ન થઈ જાય છે, અને જ્ઞેય પદાર્થ આકાશમાં ખદ્યોતની માફક પરિમિત=પરિચ્છિન્ન થઈ જાય છે.

૧—અર્થાત્-ધર્મમેઘ સમાધિના અનુષ્ઠાનદ્વારા ક્લેશાદિકનો ક્ષય થવા પછી જીવન્મુક્તિના લાભ કાળમાં.

૨—ચિત્તનિષ્ઠ સત્ત્વગુણને આચ્છાદન કરવાવાળા જે ક્લેશકર્મરૂપ મળ છે, તે આવરણ મળ જાણવા.

૩—જ્ઞાન, ચિત્તસત્ત્વ, બુદ્ધિતત્ત્વ, એ સઘળા શબ્દ સમાનાર્થક છે, એથી આ સ્થળે 'જ્ઞાન' પદનો અર્થ ચિત્ત કરેલો છે.

૪—યદ્યપિ સત્ત્વગુણ પ્રકાશશીલ છે, તથાપિ અક્રિય તથા તમોગુણવડે અભિભૂત હોવાથી તે કાંઈ કરી શકતો નથી. પરંતુ જ્યારે રજોગુણ આવિર્ભૂત થઈ તેને ઉત્તેજિત કરી તમોગુણને યત્કિંચિત્ તિરસ્કૃત કરી દે છે, ત્યારે ફરી કોઈ કોઈ વિષયને ગ્રહણ કરે છે, અને જ્યારે ફરી તમોગુણ ઉદ્ભૂત થાય છે, ત્યારે તે મુગ્ધ થઈ જાય છે, તેથી તે સઘળા વિષયોને ગ્રહણ કરવાને સમર્થ નથી.

અર્થાત્—જો પંચવિંશતિ (પચીસ) તત્ત્વથી અતિરિક્ત કોઈ અન્ય તત્ત્વ હોત તો તેને પણ યોગીનું ચિત્ત જાણત. પરંતુ અન્ય કોઈ તત્ત્વ છે જ નહિ એટલે જ્ઞેય જ અલ્પ છે, કાંઈ યોગીનું જ્ઞાન અલ્પ નથી.[1]

એવું જે ધર્મમેઘ સમાધિનિષ્ઠ યોગીનું ચિત્ત છે, એ જ નિર્વાસન તથા વિગતમલ હોવાથી કૈવલ્યચિત્ત કહેવાય છે, અને એ ચિત્તના પ્રભાવથી જ ધર્મમેઘ સમાધિવાળાનો ફરીથી જન્મ થતો નથી.

આ સ્થળે કોઈ આશંકા કરે કે—"એ સમાધિમાં ક્લેશાદિકનો ક્ષય થવા છતાં પણ પાછો યોગીનો જન્મ કેમ થતો નથી ?" એ આ-શંકાના નિવારણ સારુ ભાષ્યકારોએ અહીં—

"अन्धो मणिमविध्यत् तमनंगुलिरावयत्,
अग्रीवस्तं प्रत्यमुंचत् तमजिह्वोऽभ्यपूजयत्."

આ એક લૌકિક આભાણક[2] કહેલું છે. તેનો અર્થ એ છે કે—આંધળો માણસ વજ્રદ્વારા મણિને છિદ્રવાળો કરે છે, (अनङ्गुलिः) આંગળી વિનાનો માણસ (तम्) તે મણિને (आवयत्) સૂત્રથી પરોવે છે, (अग्रीवः) ગ્રીવા વગરનો માણસ તેને (प्रत्यमुञ्चत्) ગળામાં ધારણ કરે છે, અને (अजिह्वः) જીભ વિનાનો પુરુષ (तम्) તેનું (अभ्यपूजयत्) સ્તવન કરે છે.

અર્થાત્—જેવી રીતે એ સઘળું અસંભવિત છે, તેમ ક્લેશાદિકનો ક્ષય થવાથી ફરી જન્મનું હોવું પણ અસંભવિત છે.[3]

ભાવ એ છે કે—જો કારણનો ઉચ્છેદ થવા છતાં પણ કાર્યનો અભાવ નહિ માનીએ તો અસંભવ અર્થનું પ્રતિપાદક જે આ આભાણક છે તે પણ આપને યુક્ત માનવું પડશે. પણ તેને કોઈ યુક્ત માનતું

૧—અર્થાત્—પદાર્થોનું જ અવસાન છે, કાંઈ યોગીના જ્ઞાનનું નથી.

૨—આભાણક=અસંભવ અર્થને પ્રતિપાદન કરનાર હાસ્યજનક પ્રાકૃત લોકનું વાક્ય. સર્વદર્શન સંગ્રહમાં તો માધવાચાર્યે તે વાક્યને વેદના નામથી કહેલું છે.

૩—વિજ્ઞાનભિક્ષુ તો એમ કહે છે કે—'ધર્મમેઘ સમાધિનિષ્ઠ યોગીના ચિત્તની જે દશા કહી છે, તે દશા થવી અસંભવિત છે, એ આશયથી બૌદ્ધ લોકોએ એ ઉપહાસ કર્યો છે કે—''अन्धो मणिमविध्यत्'' ઇત્યાદિ. અર્થાત્—જેમ લોકમાં અંધમણિવેધનાદિ આશ્ચર્યરૂપ છે, તેમ યોગીની એ સર્વજ્ઞતા પણ આશ્ચર્યરૂપ છે.'' યદ્યપિ કલિયુગી પંજાબી આંધળા પણ મણિમાં છિદ્ર પાડી શકે છે, તથાપિ અન્યદેશીય સત્યયુગી આંધળાની અપેક્ષાથી તે અસં-ભવિત છે.

નથી, તેથી જન્મમાં કારણરૂપ ક્લેશાદિના નાશ પછી જન્મનો અભાવ થાય છે, એ જ માનવું ઉચિત છે. ॥ ૩૧ ॥

ઉપર કહેલા પ્રકારથી ધર્મમેઘ સમાધિના લાભથી ક્લેશાદિકનો ક્ષય થવા છતાં પણ ગુણોની વિદ્યમાનતા હોવાથી તે પાછા યોગીના શરીરનો આરંભ કેમ કરી શકતા નથી? તેનું સમાધાન કરે છે-

સૂ૦—ततः कृतार्थानां परिणामक्रमसमाप्तिर्गुणानाम् ॥ ३२ ॥

(ततः) તે ધર્મમેઘ સમાધિનો ઉદય થવાથી (कृतार्थानां गुणानाम्) કૃતપ્રયોજન થયેલા ગુણોના (परिणामक्रमसमाप्तिः) કાર્યોત્પાદનરૂપ પરિણામના ક્રમની સમાપ્તિ થઈ જાય છે.

અર્થાત્-ત્યાં સૂધી જ ત્રણે ગુણ, પરિણામના ક્રમવાળા હોય છે, કે, જ્યાં સૂધી ભોગ તથા અપવર્ગરૂપ બંને કાર્યો પુરુષપ્રતિ સંપાદન કરાવી, અકૃતાર્થ તથા અસમાપ્તાધિકાર હોય અને જ્યારે એ બંને કાર્યોને સંપાદન કરી કૃતાર્થ તથા સમાપ્તાધિકાર થઈ જાય છે, ત્યારે પછી તે ગુણ પરિણામક્રમથી[1] રહિત થઈ જાય છે. અર્થાત્-કાર્ય નિષ્પાદન પછી ક્ષણભર પણ તે પરિણામને માટે અવસ્થિત થઈ શકતા નથી. એ પ્રમાણે વિવેક ખ્યાતિની પરાકાષ્ઠારૂપ ધર્મમેઘ સમાધિના ઉદયથી સમાપ્ત કર્ત્તવ્ય થયેલા ત્રણ ગુણો યોગીના શરીરના આરંભક થતા નથી, એ સિદ્ધ થયું.

પરંતુ તેમાં એટલું વિશેષ છે કે-જે પુરુષપ્રતિ તે કૃતકાર્ય છે, તેની જ તરફ પરિણામ ક્રમથી તે રહિત થાય છે. બીજા પુરુષોપ્રતિ નહિ. તેથી જ પૂર્વે કહેલું છે કે-"कृतार्थं[2] प्रति नष्टमप्यनष्टं तदन्यसाधारणत्वाद्" इति ॥ ૩૨ ॥

હવે પરિણામક્રમના જ્ઞાનનો ઉપાય કહેતાં પરિણામક્રમનું લક્ષણ કહે છે—

સૂ—क्षणप्रतियोगी परिणामापरान्तनिर्ग्राह्यः क्रमः ॥ ३३ ॥

(क्षणप्रतियोगी) ક્ષણો સંબંધી તથા (परिणामापरान्तनिर्ग्राह्यः) પરિણામના અવસાનવડે જ્ઞાયમાન, જે ગુણોની અવસ્થાવિશેષ, તે (क्रमः) ક્રમ કહેવાય છે.

૧-પ્રથમ તો ગુણોનું કાર્યોત્પાદનમાં આભિમુખ્ય, પછી ગુણવૈષમ્ય અને પછી મહત્તત્ત્વાદિરૂપે અનેક પ્રકારનાં પરિણામોનું હોવું, એ પરિણામક્રમ છે.

૨-દ્વિતીય પાદના ૨૨ મા સૂત્રમાં સવિસ્તર જુઓ.

અર્થાત્- ક્ષણોની અવ્યવહિત ધારાને આશ્રય કરવાવાળી જે પરિણામધારા છે, તે પરિણામક્રમ જાણવો. એ ક્રમ[1] કેવી રીતે પરિજ્ઞાત થાય છે, તે આકાંક્ષા ઉપર કહે છે કે-"(परिणामापरान्तनिर्ग्राह्यः) અર્થાત્- પરિણામના અવસાનવડે તે ક્રમ જ્ઞાત થાય છે.

અર્થાત્[2]-પ્રયત્નપૂર્વક સંરક્ષિત નૂતન વસ્ત્રમાં જે અનેક વર્ષોની પછી પુરાણતા=જીર્ણતા (પુરાણાપણું) જોવામાં આવે છે, તે પરિણામનું અપરાન્ત (અવસાન[3]) કહેવાય છે અને એ પરિણામના અપરાન્તથી તે ક્રમ, જ્ઞાત થાય છે.

ભાવ એ છે કે-આ જે વસ્ત્રમાં પ્રશિથિલાવયવરૂપ જીર્ણતા છે, તે એકદમ એક દિવસમાં થઈ ગઈ છે, એમ માનવું અસંભવિત છે; કિંતુ પ્રથમ સૂક્ષ્મતમ પુરાણતા, પછી સૂક્ષ્મતર, પછી સૂક્ષ્મ, પછી સ્થૂલ સ્થૂલતર, સ્થૂલતમ એ પ્રમાણે ક્રમથી થઈ છે, એમ માનવું પડશે. એ પ્રમાણે આ જે પુરાણતારૂપ પરિણામનો અપરાન્ત છે, એ જ પરિણામ ક્રમમાં પ્રમાણ છે, એ સિદ્ધ થયું.

પરંતુ[4] એ પરિણામ ક્રમ કેવલ અનિત્ય પદાર્થોમાં જ હોય છે, એવો નિયમ નથી, પણ નિત્ય પદાર્થોમાં પણ જોવામાં આવે છે.[5]

ભાવ એ છે કે-નિત્યતા બે પ્રકારની છે. એક કૂટસ્થ નિત્યતા અને બીજી પરિણામી નિત્યતા. તેમાં પુરુષમાં કૂટસ્થ નિત્યતા છે અને ગુણોમાં પરિણામી નિત્યતા છે.

૧-ક્રમવાળા વિના ક્રમનું નિરૂપણ કરવું અશકય છે, અને એક ક્ષણનો ક્રમ હોઈ શકતો નથી તેથી અનેક ક્ષણનું આશ્રયણ કરનાર જે ક્ષણોનો પૌર્વાપર્યરૂપ પરિણામ પ્રવાહ છે, તે પરિણામક્રમ જાણવો.

૨-તેમાં (ક્ષણપ્રતિયોગી) એ તો ક્રમનું લક્ષણ છે, અને (પરિણામપરાન્તનિર્ગ્રાહ્યઃ) એ ક્રમમાં પ્રમાણપ્રદર્શક છે. એ જ અર્થને સ્પષ્ટ કરે છે, "અર્થાત્" ઇત્યાદિથી.

૩-અપરાન્ત, અવસાન, પર્યવસાન, અંત, એ બધા એકાર્થક છે.

૪-એ પ્રકારે સૂત્રનો અર્થ કથન કરી " नित्येषु च क्रमो दृष्टः" ઇત્યાદિ ભાષ્યનો અનુવાદ કરે છે, "પરંતુ" ઇત્યાદિથી.

૫-તેમાં એટલું વિશેષ છે કે-અનિત્ય પદાર્થોમાં સ્વતઃજ અપરાન્ત હોવાથી ક્રમ છે અને નિત્યગુણોમાં વિકારોના અપરાંતદ્વારા ક્રમ જાણી લેવો. અર્થાત્-ગુણોનો કાર્યમાત્રમાં અન્વય હોવાથી કાર્યના અપરાન્તદ્વારા ગુણોમાં પણ ક્રમનું અનુમાન કરી લેવું.

યદ્યપિ સ્વસ્વરૂપથી અપ્રચ્યુત હોવાથી કૂટસ્થરૂપ પુરુષ જ નિત્ય થઈ શકે છે, પણ ગુણ નહિ. કેમકે ગુણ, સ્વરૂપથી પ્રચ્યુત[1] હોવાથી પરિણામી છે. તથાપિ "यस्मिन् परिणम्यमाने तत्त्वं न विहन्यते तन्नित्यम्" એ લક્ષણનો બંનેમાં[2] સમન્વય હોવાથી ગુણોને પણ નિત્ય જાણવા.

અર્થાત્[3]–જેનો પરિણમ્યમાન[4] હોવા છતાં પણ સ્વરૂપનો વિઘાત ન થાય, તે નિત્ય કહેવાય છે. એવી નિત્યતા ગુણ તથા પુરુષ બંનેમાં વિદ્યમાન છે. કેમકે બંનેના સ્વરૂપના વિઘાતનો અભાવ[5] છે.

યદ્યપિ ગુણ, પરિણામી છે અને પુરુષ અપરિણામી છે તથાપિ અતીતાવસ્થાની પ્રાપ્તિરૂપ જે સ્વસ્વરૂપ પ્રચ્યુતિ છે, તેનો અભાવ થવો બંનેમાં સમાન છે, એથી બંને જ નિત્ય છે.

તે પ્રમાણે અનિત્ય બુદ્ધિ આદિ, તથા પરિણામી નિત્ય ગુણસ્વરૂપ પ્રધાન અને કૂટસ્થ નિત્ય પુરુષ, એ ત્રણમાં જ પૂર્વોક્ત ક્રમનો સંબંધ જાણવો. તેમાં એટલું વિશેષ છે કે–બુદ્ધિ આદિક જે ગુણોના અનિત્ય ધર્મ છે, તેમાં તો પરિણામાપરાન્ત ગ્રાહ્યક્રમ, લબ્ધપર્યવસાન છે અને ધર્મીરૂપ જે નિત્યગુણ છે, તેમાં આ ક્રમ અલબ્ધપર્યવસાન[6] છે. વળી કૂટસ્થરૂપ જે નિત્ય પુરુષ છે, તેમાં પણ એ ક્રમ અલબ્ધપર્યવસાન છે.

યદ્યપિ[7] વાસ્તવ ક્રમનું હોવું પુરુષમાં અસંભવિત છે તથાપિ અસ્તિ ક્રિયાને લઈ અર્થાત્–પૂર્વકાળમાં પણ પુરુષ હતો, અને વર્ત્તમાનકાળમાં

૧–પૂર્વરૂપના ત્યાગપૂર્વક અન્યરૂપની પ્રાપ્તિનું નામ પ્રચ્યુતિ છે.

૨–બંનેમાં=ગુણ અને પુરુષમાં. ૩–પૂર્વોક્ત ભાષ્યકારીય લક્ષણ કહે છે, "અર્થાત્" ઇત્યાદિથી. ૪–પરિણમ્યમાન=પરિણામની પ્રાપ્તિ.

૫–અર્થાત્–અતીતાવસ્થાથી શૂન્ય હોવું, એ જ નિત્યનું સામાન્ય લક્ષણ છે, કાંઈ પરિણામી અપરિણામીની વચ્ચે નિવેશ નથી. પણ અતીતાવસ્થાશૂન્ય, ગુણ અને પુરુષ બંને જ છે. કેમકે ધર્મ, લક્ષણ, અવસ્થા જ ઉદય નાશવાળાં હોય છે, પણ કાંઈ ધર્મીભૂત ગુણ તેમ હોય નહિ.

૬–લબ્ધ=પ્રાપ્ત થયો છે પર્યવસાન અતીતાવસ્થારૂપ ધર્મ જેને તેને લબ્ધપર્યવસાન જાણવું. અર્થાત્–બુદ્ધિ આદિક ધર્મ વિનાશશીલ છે, તેથી તેના પરિણામક્રમનું પર્યવસાન હોય છે, અને ગુણસ્વરૂપ પ્રધાન, નિત્ય હોવાથી તેનો પરિણામક્રમ અલબ્ધપર્યવસાન છે.

૭–બુદ્ધિ આદિક ધર્મરૂપથી પ્રધાનનો પરિણામક્રમ યદ્યપિ સંભવી શકે છે, તથાપિ અપરિણામી પુરુષનો પરિણામક્રમ કેવો? એ આ શંકા થવાપર કહે છે, "યદ્યપિ" ઇત્યાદિથી.

પણ પુરુષ છે તથા ભવિષ્યકાળમાં પણ એ પુરુષ હશે. એવી રીતે જે સર્વકાલ સંબંધરૂપ નિત્યતા છે, તે અસ્તિ ક્રિયાને લઈ અવાસ્તવ ક્રમનો પણ પુરુષમાં સંબંધ જાણી લેવો.[૧]

અર્થાત્-પુરુષમાં ક્રમ વિકલ્પ માત્ર છે, વાસ્તવિક નહિ. હવે અહીં એક આશંકા ઉત્પન્ન થાય છે કે-"આ જે સૃષ્ટિપ્રલય પ્રવાહરૂપથી ગુણોમાં વર્તમાન સંસારક્રમ છે, તે ક્રમની સમાપ્તિ થાય છે કે નહિ? જો થાય છે, તો પછી તેને અલબ્ધપર્યવસાન કેમ કહ્યો, અને જો થતી નથી, તો પૂર્વસૂત્રમાં ગુણોના પરિણામક્રમની સમાપ્તિ કેમ કહી?" એ આશંકાના વારણ અર્થે ભાષ્યકારોએ આ કહેલું છે કે—'अवचनीयमेतत् कथम्? अस्ति प्रश्न एकान्तवचनीयः--सर्वो जातो मरिष्यति, ॐ भो इति, अथ सर्वो मृत्वा जनिष्यत इति? विभज्य वचनीयमेतत्—प्रत्युदितख्यातिः क्षीणतृष्णः कुशलो न जनिष्यत इतरस्तु जनिष्यत इति, तथा मनुष्यजातिः श्रेयसी न वा श्रेयसीत्येवं परिपृष्टे विभज्य वचनीयः प्रश्नः पशूनुद्दिश्य श्रेयसी, देवान् ऋषींश्चाधिकृत्य नेति, अयन्त्ववचनीयः प्रश्नः संसारोयमन्तवानथाऽनन्त इति, कुशलस्यास्ति संसारक्रमसमाप्तिर्नेतरस्येति, अन्यतरावधारणे दोषः तस्माद् व्याकरणीय एवायं प्रश्न" इति ॥

અર્થાત્[૨]-આ જે આપની આશંકા છે, તે અવચનીય છે. એટલે કે એકવાર જ હા કહી દેવી વા ના કહી દેવી, એ પ્રકારે ઉત્તર દેવાને યોગ્ય નથી, પણ વિભાગપૂર્વક ઉત્તર દેવા યોગ્ય છે.

ભાવ એ છે કે-પ્રશ્ન બે પ્રકારના હોય છે, એક તો એકાંતવચનીય એટલે નિયમથી એક જ સમાધાનદ્વારા ઉત્તર દેવા લાયક; અને બીજો વિભજ્યવચનીય એટલે વિભાગપૂર્વક ઉત્તર દેવા યોગ્ય. તેમાં "જે ઉત્પન્ન થયેલું છે તે સઘળું શું મરશે?" એ જે પ્રશ્ન છે, તે એકાંતવચનીય છે. એટલે કે "અવશ્ય મરશે." એ પ્રકારે એક જ ઉત્તર દેવાની યોગ્યતાવાળો છે. અને "જે મરશે, તે શું ફરી જન્મશે?" એ જે પ્રશ્ન છે, તે વિભજ્યવચનીય છે. અર્થાત્-પ્રત્યુદિતખ્યાતિ[૩] ક્ષીણતૃષ્ણ કુશલ

૧-અર્થાત્ બદ્ધ પુરુષોને ચિત્તમાં અવિવેક હોવાથી ચિત્તના પરિણામક્રમનો અધ્યાસ જાણવો, અને મુક્ત પુરુષોને અસ્તિ ક્રિયાને લઈ કલ્પિત ક્રમનો સંબંધ જાણવો.

૨-પૂર્વોક્ત ભાષ્યના અર્થને સ્પષ્ટ કરે છે. "અર્થાત્" ઇત્યાદિથી.

૩-પ્રત્યુદિતખ્યાતિ=વર્ત્તમાન વિવેકખ્યાતિવાળો.

પુરુષ નહિ જન્મે અને બીજા અવિવેકી જન્મશે. એ પ્રકારે વિભાગપૂર્વક ઉત્તર દેવા યોગ્ય છે. એ પ્રમાણે "મનુષ્યજાતિ શ્રેષ્ઠ છે, વા અશ્રેષ્ઠ?" એ જે પ્રશ્ન છે, તે પણ વિભજ્યવચનીય જાણવો. અર્થાત્-પશુ વગેરેથી શ્રેષ્ઠ છે, અને દેવ તથા ઋષિઓથી અશ્રેષ્ઠ છે. એ પ્રમાણે આ પણ પ્રશ્ન છે કે-"સંસાર અંતવાળો છે, કે અનંત?" આ પ્રશ્ન પણ નિયમવડે અવચનીય હોવાથી વિભજ્યવચનીય જ જાણવો.

અર્થાત્-યદિ સંસારક્રમ "સૃષ્ટિ પ્રવાહ" નો ઉચ્છેદ મનાય, તો સંસારને અનાદિ અનંત બોધન કરવાવાળાં શાસ્ત્ર[1] બાધિત થઈ જાય અને તેનો ઉચ્છેદ ન મનાય, તો કોઈની પણ મુક્તિ ન થવાથી મોક્ષ પ્રતિપાદક યોગશાસ્ત્ર વ્યર્થ થઈ જશે. તેથી નિયમવડે સંસારનો ઉચ્છેદ વા અનુચ્છેદ નિશ્ચય કરવો દોષયુક્ત હોવાથી અશક્ય છે. કિંતુ કુશળ[2] પુરુષમાં સંસારક્રમની સમાપ્તિ છે, અને અકુશળમાં નથી. એ પ્રકારે વિભાગપૂર્વક જ તેનું અવધારણ કરવું યુક્ત છે. એ પ્રમાણે પૂર્વોક્ત જે પ્રશ્ન છે,[3] તે એકાન્તવચનીય નથી, પણ વિભજ્યનીય છે,[4] એ નિષ્પન્ન થયું.॥૩૩॥

ગુણોના અધિકારની સમાપ્તિદ્વારા જે પરિણામની સમાપ્તિ હોવાથી કૈવલ્ય કહેલું છે,તે કૈવલ્યના સ્વરૂપનું હવે નીચલા સૂત્રથી અવધારણ[5] કરે છે-

---

૧-"न रूपमस्येह तथोपलभ्यते नान्तो न चादिर्न च संप्रतिष्ठा" ઇત્યાદિ શાસ્ત્ર સંસારને પ્રવાહરૂપથી અનાદિ તથા અનન્ત બોધન કરે છે. ૨-ધર્મમેઘ સમાધિનિષ્ઠ યોગીનું નામ કુશલ છે, અને અવિવેકી પ્રાકૃત પુરુષનું નામ અકુશલ છે. ૩-સંસાર અંતવાન્ છે, વા અનંત? ઇત્યાકારક પ્રશ્ન. ૪-આ ઠેકાણે એક ક્ષુદ્ર સંદેહ ઉત્પન્ન થાય છે કે-"જો મુક્ત પુરુષોને લીધે પ્રધાનના પરિણામ ક્રમની સમાપ્તિ થાય છે, તો ક્રમે ક્રમે પ્રત્યેક જીવ મુક્ત થતાં એક દહાડો પ્રધાનના ક્રમની સમાપ્તિ થઈ જશે, અને સંસારનો ઉચ્છેદ તથા પ્રધાનની અનિત્યતા થઈ જશે." એ સંદેહનું વારણ વાચસ્પતિ મિશ્રે આ પ્રકારે કરેલું છે કે, જીવ અસંખ્યાત છે, તેથી સંસારનો ઉચ્છેદ થતો નથી. વળી પશુ, પક્ષી, કૃમિ, કીટ, મચ્છર, જૂ, લીખ, સર્પ, વૃશ્ચિક, કૃકલાસ (કાંકીડા), લતા, ગુલ્મ, વનસ્પતિ, ઔષધિ, વૃક્ષાદિરૂપ પ્રભેદથી અનંત ચરાચરને વિવેકખ્યાતિના લાભના અભાવથી સર્વ પ્રાણીનું મુક્ત થવું પણ અસંભવિત છે અને અનેક જન્માભ્યાસ પરંપરા સાધ્ય તત્ત્વ જ્ઞાનનો પુરુષ માત્રને લાભ ન થવાથી બધા પુરુષોની મુક્તિ થવી પણ અસંભવિત છે. આ બાબતનો વિસ્તાર સ્વામીજી નિર્મિત "કૈવલ્ય કલ્પલતિકા"માં જુઓ.

૫-અવધારણ=લક્ષણદ્વારા નિશ્ચય.

सू०–पुरुषार्थशून्यानां गुणानां प्रतिप्रसवः कैवल्यं स्वरूपप्रतिष्ठा वा चितिशक्तिरिति ॥ ३४ ॥

(पुरुषार्थशून्यानां गुणानाम्) કૃતાર્થ થવાથી પુરુષાર્થથી રહિત બુદ્ધિ આદિ રૂપથી પરિણામ પામેલા ગુણોનો જે (प्रतिप्रसवः) પોતપોતાના કારણમાં લયદ્વારા પ્રધાનમાં લય, તે (कैवल्यम्) પુરુષનું કૈવલ્ય જાણવું. (वा) અથવા (स्वरूपप्रतिष्ठा) પોતાના શુદ્ધ સ્વરૂપમાં પ્રતિષ્ઠારૂપ (चितिशक्तिः) ચેતનશક્તિરૂપ પુરુષનું થઈ જવું, તે કૈવલ્ય છે. (इति). અહીં ઇતિ શબ્દ, શાસ્ત્રની પરિસમાપ્તિનો બોધક છે.

અર્થાત્-પુરુષના ભોગ તથા અપવર્ગરૂપ પુરુષાર્થના સંપાદનથી કૃતાર્થ થયેલા પુરુષાર્થશૂન્ય કાર્યકારણસ્વરૂપ ગુણોનો જે પ્રતિપ્રસવ, અર્થાત્-વ્યુત્થાન, સમાધિ અને નિરોધ, એ ત્રણેના સંસ્કારોનો મનમાં લય, મનનો અહંકારમાં લય, અહંકારનો લિંગરૂપ બુદ્ધિમાં લય અને બુદ્ધિનો ગુણસ્વરૂપ પ્રધાનમાં લય થઈ જવો, તે પુરુષનું કૈવલ્ય જાણવું.

અથવા બુદ્ધિસત્ત્વની સાથે ફરીથી કદિ પણ સંબંધ ન હોવાથી પુરુષની જે નિરંતર કેવળ ચિતિશક્તિરૂપ માત્રથી અવસ્થાનરૂપ સ્વ-સ્વરૂપ પ્રતિષ્ઠા અર્થાત્ વાસ્તવરૂપથી અવસ્થાન, તે કૈવલ્ય જાણવું.

જેમ વેદાન્ત મતમાં અજ્ઞાનની નિવૃત્તિ અને પરમાનંદ સ્વરૂપ બ્રહ્મપ્રાપ્તિ સમકાલવાળાં હોવા છતાં પણ કોઈ ઠેકાણે અજ્ઞાનની નિવૃત્તિને[1] અને કોઈ સ્થળે બ્રહ્મની પ્રાપ્તિને મુક્તિ કહેલી છે; તેમ અહીં પણ ગુણોનો પ્રતિપ્રસવ અને સ્વસ્વરૂપ પ્રતિષ્ઠા, એ બંને સમકાલવાળાં હોવા છતાં પણ તાત્પર્યની એકતાથી કૈવલ્યનાં બે લક્ષણ કહેલાં છે, પણ કાંઈ લક્ષણભેદથી કૈવલ્યનો ભેદ ન જાણવો. ॥ ३४ ॥

ॐ तत् सत् ।

शान्तिः शान्तिः शान्तिः ।

दोहा–मुक्तचित्त[2] परलोक पुनि, विषयी विषय बखान ।
धर्ममेघ कैवल्य भनि, कियो पाद अवसान ॥ १ ॥

૧–"भूतश्चान्ते विश्वमायानिवृत्तिः" ઇત્યાદિ શ્રુતિઓમાં અજ્ઞાનની નિવૃત્તિને મુક્તિ કહી છે; અને "स यो ह वै तत्परमं ब्रह्म वेद ब्रह्मैव भवति" ઇત્યાદિ શ્રુતિઓમાં બ્રહ્મપ્રાપ્તિને મુક્તિ કહેલી છે.

૨–હવે આ પાદમાં કહેલા અર્થના સંગ્રહ પ્રતિપાદક દોહા કહે છે, "मुक्तचित्त" ઇત્યાદિથી. તેમાં મુક્તિની યોગ્યતાવાળું ચિત્ત છઠ્ઠા સૂત્રમાં કહ્યું;

वेद बाण निधि सूर मित, संवत् विक्रम भोग[1]।
रक्षाबंधन दिवसमें, कियो सम्प्रापत योग ॥ २ ॥

इति श्रीमत्परमहंस योगिराज निखिलशास्त्रनिष्णात श्रीगुरुमंडल-संस्थापकाचार्य स्वामिश्री १०८ बालरामोदासीनोद्भासिते पातंजलदर्शनप्रकाशे कैवल्यपादश्चतुर्थः।

हरिः ॐ तत् सद् ब्रह्मार्पणम्।

પરલોકસિદ્ધિ દશમા સૂત્રમાં કહી; બાહ્ય વિષયની સિદ્ધિ ૧૫ મા સૂત્રથી કહી; ચિત્તથી અતિરિક્ત વિષયી પુરુષની સિદ્ધિ ૧૬-૧૯ સૂત્રોમાં કથન કરી; ધર્મમેઘ સમાધિનું પ્રતિપાદન ૨૮ મા સૂત્રમાં કર્યું; ત્રીશમા સૂત્રથી જીવ-ન્મુક્તિનું અને ૩૪ મા સૂત્રથી વિદેહમુક્તિનું નિરૂપણ કર્યું; અને પ્રસંગથી પ્રકૃત્યાપૂર તથા વાસનાનું અનાદિત્વ વગેરે પદાર્થોનું નિરૂપણ કર્યું છે.

૧-વેદ=ચાર, બાણ=પાંચ, નિધિ=નવ, સૂર=એક, અર્થાત્ વિક્રમ સંવત ૧૯૫૪ ના ભોગકાળમાં શ્રાવણ પૂર્ણિમાને દિવસે આ પ્રકાશ સમાપ્ત થયો.

" नास्ति योगसमं बलम् "

इति श्रील हंसोदासीनात्मस्वरूपशास्त्रिसमुद्दीपिते प्रकाशटिप्पणे तुरीयः कैवल्यपादः ॥ ४ ॥

" तस्माद् योगी भवार्जुन "

कुलं पवित्रं जननी कृतार्था वसुन्धरा पुण्यवती च तेन।
अपारसंवित्सुखसागरेऽस्मिन् लीनं परे ब्रह्मणि यस्य चेतः ॥
योग बिना जो ज्ञान बतावे, बिना ताल से गावे।
कहे घाघ यह तीनों भकुआ, काम किये पछितावे ॥

ॐ नमोऽन्तर्यामिणे ।

યોગતત્ત્વસમીક્ષા પરિશિષ્ટ

ઉપસંહાર

"प्रणवो धनुः शरो ह्यात्मा ब्रह्म तल्लक्ष्यमुच्यते ।
अप्रमत्तेन वेद्धव्यं शरवत् तन्मयो भवेत् ॥ [1]मुण्डक ॥

"समाधिनिर्धूतमलस्य चेतसो निवेशितस्यात्मनि यत्सुखं भवेत् ।
न शक्यते वर्णयितुं गिरा तदा स्वयं तदन्तःकरणेन गृह्यते"[2] ॥

मैत्रायणी.

શ્રોતાજન!

યદિ કોઈ યોગભ્રષ્ટને પૂર્વજન્માનુષ્ઠિત સાધનોથી આ જન્મ તત્ત્વજ્ઞાનનો ઉદય થવાથી **"यो वेद निहितं गुहायां सोऽविद्या ग्रन्थि विव तीह सोम्य"[3] "ब्रह्मवेद ब्रह्मैव भवति"[4] "भिद्यते हृदयग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्वसंश क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन् दृष्टे परावरे"[5] "सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म यो निहितं गुहायां परमे व्योमन्, सोऽश्नुते सर्वान् कामान् सह ब्रह्मणा विपश्चिता**

૧–ઓંકાર ધનુષ છે, આત્મા બાણ છે, બ્રહ્મ તેનું લક્ષ્ય છે, પ્ર રહિત થઈ લક્ષ્યનું વેધન કરવું. જેમ બાણ લક્ષ્યની સાથે એકત્વાત્મક છે, તેમ આત્માને બ્રહ્મરૂપ લક્ષ્યની સાથે એકત્વાત્મક કરવો. એ શ્રુતિનો ભાવ છે.

૨–સમાધિદ્વારા રજતમ મલથી રહિત આત્મનિષ્ઠ ચિત્તને જે આ મળે છે, તે યોગીના ચિત્તવડે જ સંવેદ્ય હોવાથી વાણીવડે અકથનીય એ ફલિતાર્થ છે. ૩–જે પુરુષ બુદ્ધિરૂપ ગુહામાં સાક્ષીરૂપથી સ્થિત આત્મ જાણે છે, તે અવિદ્યાગ્રંથિ (અવિદ્યાવાસના)નો નાશ કરી દે છે, એ મુંડકશ્રુતિ ભાવ છે. ૪–જે બ્રહ્મને જાણે છે, તે બ્રહ્મરૂપ થઈ જાય છે.

૫–તે પરાવર (કાર્યકારણરૂપ વા સર્વોત્તમ) પરમાત્માને જાણવા હૃદયગ્રંથિ (અવિવેક) નિવૃત્તિ થઈ જાય છે, અને અનેક પ્રકારના જે પ્રમ પ્રમેયગત સંશય હોય છે, તે પણ નિવૃત્ત થઈ જાય છે તથા પ્રારબ્ધ સિ યનાં સંચિત તથા આગામી કર્મ પણ નાશ પામી જાય છે. (મુંડક).

૬–જે પુરુષ હૃદયાકાશમાં વિદ્યમાન બુદ્ધિરૂપ ગુહામાં સ્થિત સ જ્ઞાન, અનંત સ્વરૂપ બ્રહ્મને જાણે છે, તે સર્વજ્ઞ બ્રહ્મથી અભિન્ન હોઈ કામને મેળવે છે. (તૈત્તિરીય).

"तमेव विदित्वातिमृत्युमेति"[1] "यस्तु विज्ञानवान् भवति समनस्कः सदा शुचिः स तु तत्पदमाप्नोति यस्माद् भूयो न जायते"[2]

"य एवं वेदाऽहं ब्रह्मास्मीति स इदं सर्वं भवति"[3] ઇત્યાદિ શ્રુતિઓથી યથાક્રમ અવિદ્યાગ્રંથિ, અબ્રહ્મત્વ, હૃદયગ્રંથિ, સર્વસંશય, પ્રારબ્ધેતરકર્મ, અસર્વકામત્વ, મૃત્યુ, પુનર્જન્મ, અસર્વજ્ઞત્વ, એ બંધનોની નિવૃત્તિ થવાથી જ્ઞાનોત્પત્તિસમકાલ જ[4] આગામિદેહાભાવરૂપ વિદેહમુક્તિનો લાભ થઈ જાય, તોપણ જ્ઞાનરક્ષા, તપ, વિસંવાદાભાવ, દુ:ખનાશ અને સુખાવિર્ભાવરૂપ પંચ પ્રયોજનની જનનીરૂપ તથા જીવન્મુક્તિના સાધનભૂત મનોનાશ અને વાસનાક્ષયને અર્થે તેને પણ યોગાભ્યાસ અપેક્ષિત છે. તેમાં[5] જ્ઞાનનો ઉદય થવા છતાં પણ ચિત્તની વિશ્રાંતિના અભાવથી જે વિપરીત ભાવનાત્મક કલ્પનાથી જ્ઞાનની અદૃઢતા હોય છે, તેનો અભાવ થવો, તેનું નામ જ્ઞાનરક્ષા છે. તેથી જ વિશ્વામિત્ર ઋષિએ—

"न राघव तवास्त्यन्यज् ज्ञेयं ज्ञानवतां वर ।
त्वयैव सूक्ष्मया बुद्ध्या सर्वं विज्ञातवानसि ॥
भगवद्व्यासपुत्रस्य शुकस्येव मतिस्तव ।
विश्रान्तिमात्रमेवात्र ज्ञातज्ञेयेप्यपेक्षते"[6] ॥

૧–તે પરમાત્માને જાણી મૃત્યુને તરી જાય છે. (શ્વેતા૦)

૨–જે માણસ બુદ્ધિરૂપ સારથિવાળો થઈ મનને તાબે કરી સદા શુચિ અને અપ્રમાદિ છે, તે, તે પદને મેળવે છે કે જ્યાંથી પાછું આગમન થતું નથી. (કઠ૦) ૩–જે પુરુષ, 'હું બ્રહ્મ છું' એ પ્રકારના જ્ઞાનવાળો છે, તે સર્વરૂપ થઈ જાય છે. (બૃહદારણ્યક)

૪–જ્યારે દેહ પદથી નિખિલ દેહોનું ગ્રહણ કરી તમામ દેહોના અભાવનું નામ વિદેહ મનાય છે, ત્યારે તો જ્ઞાન સમકાલમાં આ વર્તમાન દેહના સદ્ભાવથી આ દેહના વિયોગ પછી જ વિદેહ મુક્તિ માનવી પડશે; અને જ્યારે આગામી દેહનો અભાવ, જ્ઞાન સમકાલમાં સિદ્ધ હોવાથી જ્ઞાન સમકાલ વિદેહ મુક્તિનો લાભ જાણવો.

૫–'જ્ઞાનરક્ષા' પદનો અર્થ કરે છે, "તેમાં" ઇત્યાદિથી.

૬–હે જ્ઞાનીઓમાં શ્રેષ્ઠ રામચંદ્રજી ! તમે સ્વકીય સૂક્ષ્મ બુદ્ધિથી જ સઘળાના તત્ત્વને જાણી લીધું છે, તેથી અન્ય કોઈ જ્ઞેય શેષ નથી. કેવળ વ્યાસજીના પુત્ર શુકદેવજીની પેઠે તમારી બુદ્ધિ, વિશ્રાન્તિ માત્રની અપેક્ષાવાળી છે, કેમકે જ્ઞાતજ્ઞેય થયા છતાં પણ ચિત્તવિશ્રાંતિની અપેક્ષા અવશ્ય રહે છે, એ વાશિષ્ઠના શ્લોકોનો ભાવ છે.

ઇત્યાદિ વાક્યોથી શ્રી રામચંદ્રજી પ્રતિ, જ્ઞાનનો ઉદય થયા પછી ચિત્તવિશ્રાંતિની અપેક્ષાનો શ્રી શુકદેવજીના દૃષ્ટાન્તથી ઉપદેશ કર્યો છે.

અર્થાત્-યદ્યપિ શુકદેવજીને પૂર્વના સંસ્કારોના બળથી સ્વતઃજ તત્ત્વજ્ઞાન પ્રાપ્ત થયું હતું, તોપણ એ તત્ત્વજ્ઞાન સંશયવિપર્યયશૂન્ય ન હોવાથી જ્યારે શુકદેવજીએ પોતાના પિતાને તત્ત્વજિજ્ઞાસાર્થ પ્રશ્ન કર્યો, ત્યારે વ્યાસજીએ પણ, જેવી રીતે શુકદેવજીએ તત્ત્વ જાણ્યું હતું, તે જ પરિપાટીથી સમાધાન કર્યું. એમ છતાં પણ જ્ઞાનની દૃઢતા ન થવાથી તે જ્યારે જનકની પાસે ગયા, ત્યારે જનકે પણ વ્યાસની પરિપાટી અનુસાર જ અનુશાસન કર્યું. ત્યાર પછી શુકદેવે તત્ત્વજિજ્ઞાસાના પ્રશ્નનો ત્યાગ કરી જનકને આ પ્રશ્ન કર્યો કે-જે પ્રકારે[1] મેં સ્વતઃ તત્ત્વ જાણ્યું હતું, તે પ્રકારે જ મારા પિતાએ મને ઉપદેશ કર્યો, અને તેવી રીતે જ આપે પણ મને ઉપદેશ આપ્યો તથા શાસ્ત્રનો પણ એ જ સિદ્ધાંત જોવામાં આવે છે, પરંતુ તેની દૃઢતા થતી નથી, તેથી જે ઉપાયવડે સંકલ્પ વિકલ્પના ક્ષયદ્વારા એકદમ સંસાર નિઃસારરૂપ થઈ જાય, તે ઉપાય આપ કહો. ત્યારે જનકે કહ્યું, "स्वसंकल्पवशाद् बद्धो निःसंकल्पस्तु मुच्यते" ત્યારે શુકદેવજીએ એ ઉપદેશને શિરોધાર્ય કર્યો અને પોતે મેરુના શિખર ઉપર જઈ દશ સહસ્ર વર્ષ પર્યંત સમાધિનો અભ્યાસ કરી ચિત્તની વિશ્રાંતિ સંપાદન કરી.

એ પ્રમાણે હે રામચંદ્ર! જેમ શુકદેવજી જ્ઞાતજ્ઞેય પણ હતા, પરંતુ ચિત્તની વિશ્રાંતિ માત્ર તેમને અપેક્ષિત હતી, તેમ તમને પણ ચિત્તની વિશ્રાંતિ માત્ર અપેક્ષિત છે, અન્ય કાંઈ નહિ.

તે પ્રમાણે જેમ જ્ઞાતજ્ઞેય શુકદેવજી તથા રામચંદ્રજીને જ્ઞાનરક્ષાને અર્થે ચિત્તની વિશ્રાંતિને સારુ સમાધિજન્ય ઋતંભરા પ્રજ્ઞા અપેક્ષિત

१–"स्वयमेव मया पूर्वमेतज् ज्ञातं विवेकतः ।
एतदेव च पृष्टेन पित्रा मे समुदाहृतम् ॥
भवताप्येष एवार्थः कथितो वाग्विदा वर ।
एष एव च वाक्यार्थः शास्त्रेषु परिदृश्यते ॥
यथाऽयं स्वविकल्पोत्थः स्वविकल्पपरिक्षयात् ।

એ શુકદેવજીના પ્રશ્નનાં વાક્ય છે. એનો જ ભાવાર્થ કહે છે, "જે પ્રકારે" ઇત્યાદિથી.

હતી, તેમ બીજા જ્ઞાનીઓને પણ જ્ઞાનરક્ષાને અર્થે સમાધિજન્ય ઋતંભરા પ્રજ્ઞા અવશ્ય સંપાદનીય છે.[1]

એ પ્રમાણે[2] અનુગ્રહ નિગ્રહરૂપ સામર્થ્યવિશેષના હેતુભૂત જે મન સહિત ઇંદ્રિયોની એકાગ્રતારૂપ તપ, તે પણ જીવન્મુક્તિનું પ્રયોજન છે.

યદ્યપિ તપનો કાંઈ વિશેષ ઉપયોગ મુક્તિમાં હોતો નથી; તથાપિ શિષ્ય, ભક્ત અને તટસ્થ એવા ત્રણ જનો ઉપર ઉપકાર કરવો, એ તપનું ફળ જાણવું.

અર્થાત્-જ્યારે યોગાભ્યાસથી ગુરુની અંતર્મુખ વૃત્તિ થશે, અને કથન વિના જ અંતર્યામી રૂપતાથી શિષ્યના મનોગત સંશયને ગુરુ જાણી જશે, ત્યારે શિષ્યની ગુરુમાં પ્રામાણિકત્વ-ભાવનાથી વિશ્વાસપૂર્વક ગુરુથી ઉપદિષ્ટ તત્ત્વમાં વિશ્રાંતિ થઈ જશે, તેનું નામ શિષ્યસંગ્રહ છે.

એ પ્રમાણે અન્નપ્રદાન, નિવાસસ્થાન, રચના આદિથી યોગીની સેવા કરવાવાળો જે ભક્ત છે, તે પણ યોગીના તપના ફળનો ભાગી હોવાથી[3] અને સમયે સમયે આવવાવાળી આફતોનો પણ યોગીના આશીર્વાદથી અભાવ થવાને લીધે તેની સેવા સફળ થશે, અને પછી બીજા મહાત્માઓની સેવા કરવામાં તેની રુચિ થશે, તેનું નામ ભક્તસંગ્રહ છે.

એ પ્રમાણે જે તટસ્થ આસ્તિક પુરુષ છે, તે, યોગીના સન્માર્ગાચરણને દેખી પોતે પણ સન્માર્ગાચરણમાં પ્રવૃત્ત થશે. એ પ્રમાણે નાસ્તિક પુરુષ પણ યોગીનાં દર્શનથી પાપક્ષયપૂર્વક આસ્તિક થશે,[4]

૧-અર્થાત્-જેમ પ્રાપ્ત થયેલો અગ્નિ મણિમંત્રાદિથી પ્રતિબદ્ધ થયેલો દગ્ધ કરી શકતો નથી, તેમ ઉત્પન્ન થયેલું જ્ઞાન પણ ચિત્તચાંચલ્યરૂપ પ્રતિબંધકથી પ્રતિબદ્ધ થયેલું સ્વકાર્યજનનમાં અસમર્થ છે. એ પ્રમાણે ચિત્તચાંચલ્યરૂપ પ્રતિબંધકના અભાવને અર્થે ચિત્તસ્થિરતારૂપ યોગ અવશ્ય અપેક્ષિત છે, એ સિદ્ધ થયું.

૨-જ્ઞાનરક્ષારૂપ પ્રયોજન કથન કરીને હવે જીવન્મુક્તિનું દ્વિતીય તપરૂપ પ્રયોજન કહે છે, "એ પ્રમાણે" ઇત્યાદિથી.

૩-"सुहृदः साधुकृत्याम्" એ શ્રુતિના પ્રમાણથી ભક્તને યોગીના તપનો ફળભાગી જાણવો.

૪-"यस्याऽनुभवपर्यन्ता तत्त्वे बुद्धिः प्रवर्तते। तद्दृष्टिगोचराः सर्वे मुच्यन्ते सर्वपातकैः" એ પ્રમાણથી યોગીના દર્શનવડે પાપક્ષય જાણવો. જેને યોગાભ્યાસથી

તેનું નામ તટસ્થસંગ્રહ છે. તેથી શિષ્ય, ભક્ત, આસ્તિક અને નાસ્તિક-જનો ઉપર ઉપકારને માટે તપની પણ આવશ્યકતા છે.

એ પ્રમાણે[1] બીજા કોઈ મતવાળા સાથે વિવાદ વા કોઈ મતની નિંદારૂપ જે વિસંવાદ છે, તેનો અભાવ થઈ જવો, એ પણ જીવન્મુક્તિનું ફળ જાણવું.[2]

. એ પ્રમાણે પ્રારબ્ધપ્રયુક્ત દૃષ્ટદુઃખની નિવૃત્તિ તથા સર્વસાક્ષિત્વ, સર્વત્રાકામહતત્ત્વ, સર્વલોકતૃત્વ, કૃતકૃત્યત્વ, પ્રાપ્તપ્રાપણીયત્વરૂપ સુખનો આવિર્ભાવ પણ જીવન્મુક્તિનું ફળ જાણવું.[3] તે પ્રમાણે અનન્યલભ્ય પંચપ્રયોજનને પેદા કરવાવાળી ચિત્તસ્થિરતાને માટે આ પાતંજલદર્શન મુમુક્ષુઓને અવશ્ય આદરણીય છે, એ ફલિત થયું.

"अन्तः शीतलतायां तु लब्धायां शीतलं जगत्"

"तापस पंडित यज्ञकृत राजा औ बलवान्,
ज्ञानी इन षट नररमें शान्त अधिक मन मान"

"शेषा वणिगवृत्तयः"

ભગવાન્ પતંજલિ—

અહીં પ્રસંગથી એ પણ અવશ્ય જ્ઞાતવ્ય છે કે, વૈદ્યકશાસ્ત્ર તથા વ્યાકરણ મહાભાષ્યના રચનાર જે શ્રી પતંજલિમુનિ છે, તે જ યોગશાસ્ત્રના રચનાર છે અને તે જ યોગિરાજનું બીજું નામ ગોનર્દીય[4] છે.

અનુભવપર્યન્ત તત્ત્વવિષયક દૃઢ જ્ઞાન ઉદય થયું છે, તેની દૃષ્ટિગોચર (નજરે) જે જે પ્રાણી થાય છે, તે સઘળાં પાતકથી મુક્ત થઈ જાય છે.

૧–વિસંવાદાભાવરૂપ તૃતીય પ્રયોજનનું નિરૂપણ કરે છે, "એ પ્રમાણે" ઇત્યાદિથી.

૨–નિસ્તરંગ શાન્ત ચિત્તશીલ યોગીને કોઈ સાથે વિવાદનો અવસર જ ક્યાં?

૩–વિશેષ જોવું હોય તો "કૈવલ્ય કલ્પલતિકા"માં જુઓ.

૪–ગોનર્દ દેશમાં હોવાવાળાનું નામ ગોનર્દીય છે. ગોનર્દ દેશમાં સંધ્યોપાસના સમયે કોઈ ઋષિની અંજલિમાં સર્પરૂપે અનંત ભગવાન્ પડ્યા હતા, તેથી તેમનું નામ પતંજલિ કહેવાયું, એવી ખ્યાતિ છે. આ રીતનો શબ્દેન્દુ શેખરની ટીકામાં રાઘવેન્દ્રાચાર્યનો લેખ છે. અયોધ્યા પ્રદેશમાં "ગોંડા" નામનું જે નગર છે, તે જ પૂર્વે ગોનર્દ કહેવાતું હતું, એવો આધુનિક ઐતિહાસિકોનો મત છે. જુઓ રામકૃષ્ણ ગોપાલ ભાંડારકર કૃત Indian Antiquary V. II. Page 70.

એથી જ જ્યાં જ્યાં ભાષ્યકારોએ પોતાનો હાર્દ નિરૂપણ કર્યો છે, ત્યાં ત્યાં "गौनर्दीयस्त्वाह" એવો પોતાનો પરિચય દીધો છે અને કોઈ લોકો એમ કહે છે કે, મહાભાષ્યમાં (वार्तिकं-पैत्तिकं-श्लैष्मिकम्-૬ અ૦ ૧ પા૦ ૧ આ૦) "दधित्रपुसं प्रत्यक्षो ज्वरः, नड्वलोदकं पादरोगः" ૬ અ૦ ૨ પા૦ ૨ આ૦ એવા એવા લેખથી મહાભાષ્યકાર અને વૈદ્યકશાસ્ત્રકાર પતંજલિ મુનિ તો એક છે, અને યોગશાસ્ત્રકાર ભિન્ન છે. કેમકે યોગશાસ્ત્રનો પરિચય કોઈ ઠેકાણે મહાભાષ્યમાં મળતો નથી.[1] આ તેમનું અનુમાન આકિંચિત્કર છે. કેમકે પ્રસંગ વિના યોગનો પરિચય આપવો, એ અકાંડતાંડવ છે.[2]

અને વળી એવો જ આગ્રહ હોય તો જેમ મહાભાષ્યમાં વૈદ્યકનો પરિચય દેવાથી મહાભાષ્યકારોથી વૈદ્યકપ્રણેતા અભિન્ન છે, તેમ યોગસૂત્રના ચોથા પાદના પ્રથમ સૂત્રમાં ઔષધ્યજન્ય સિદ્ધિના નિરૂપણથી યોગપ્રણેતા પણ તેનાથી અભિન્ન માની લ્યો! એમ માનવાથી જ "योगेन चित्तस्य पदेन वाचां मलं शरीरस्य च वैद्यकेन, योऽपाकरत्तं प्रवरं मुनीनां पतञ्जलिं प्राञ्जलिरानतोऽस्मि"[3] એ અભિયુક્તોક્તિ સાર્થક થાય છે, અન્યથા નહિ.

વળી જે આ કહેલું છે કે "વ્યાકરણ અને વૈદ્યકશાસ્ત્રમાં પતંજલિ મુનિએ ભાષ્ય જ નિર્માણ કરેલાં છે, તેથી તે યોગસૂત્રના ભાષ્યકાર હોવા ઉચિત છે, પણ સૂત્રકાર નહિ." એ પણ અયુક્ત છે. કેમકે યોગભાષ્યકાર વ્યાસજી વેદાંત સૂત્રકાર હોવાથી પૂર્વોક્ત નિયમ વ્યભિચારી છે. વળી એમ કહો કે "एतेन योगः प्रत्युक्तः" અ૦ ૨ સૂ૦ ૩ એ સૂત્રથી વ્યાસજીએ યોગનું નિરાકરણ કરવાથી વ્યાસજી યોગભાષ્યકાર નથી. તે પણ વાચસ્પતિમિશ્ર વગેરેની ઉક્તિથી[4] વિરુદ્ધ હોવાથી

૧–બંગદેશીય એશિઆટીક સમાજ પ્રકાશિત નિરુક્તની ભૂમિકામાં (ची) એવા ચિહ્નયુક્ત પત્રમાં પંડિત સત્યવ્રત સામશ્રમીનો આ લેખ છે.

૨–સમય વિનાનું નૃત્ય.

૩–યોગદ્વારા ચિત્તનો, પદદ્વારા વાણીનો અને વૈદ્યકદ્વારા દેહનો મળ દૂર કરવાવાળા જે પતંજલિ મુનિ છે, તે મુનિપ્રવરને હું અંજલિ બાંધી નમસ્કાર કરું છું.

૪–"नत्वा पतञ्जलिमृषिं, वेदव्यासेन भाषिते । संक्षिप्तस्पष्टबह्वर्थां भाष्ये व्याख्या विधास्यते" એ યોગભાષ્યની વ્યાખ્યાની શરુઆતમાં વાચસ્પતિમિશ્રનું દ્વિતીય પદ્ય છે. વેદભાષ્યકાર માધવાચાર્યજીએ પણ પરાશરસ્મૃતિ વગેરેનાં વ્યાખ્યાનોમાં એ ભાષ્યને વેદવ્યાસની કૃતિ કહેલી છે.

અસમીચીન છે. વળી એ સૂત્રનો યોગના પ્રત્યાખ્યાનમાં તાત્પર્યનો અભાવ હોવાથી એ કથન અવિચારિત રમણીય છે.

અર્થાત્–શ્રુતિની સાથે વિરોધ હોવાથી કાપિલમતથી સ્વતંત્ર પ્રધાનની સિદ્ધિ ન હોય, તોપણ યોગશાસ્ત્રથી પ્રધાનનો સદ્ભાવ આપે માનવો જોઇએ. કેમકે વેદસંમત હોવાથી યોગશાસ્ત્ર આપના મતમાં પ્રામાણિક છે. એ શંકા થવાપર કહેલું છે કે, "**एतेन योगः प्रत्युक्तः**" અર્થાત્–કાંઈ પ્રધાનાદિ સત્તા પ્રતિપાદનપર યોગશાસ્ત્ર નથી, પણ યોગસ્વરૂપ, તત્સાધન, તદવાંતર ફલ વિભૂતિ, તત્પરમ ફલ કૈવલ્ય વગેરે વિષયોના પ્રતિપાદનપર છે. કેમકે "**यत्परः शब्दः स शब्दार्थः**" એ ન્યાય સર્વસંમત છે. વળી યોગશાસ્ત્રમાં જે પ્રધાનનું નિરૂપણ છે, તે સિદ્ધિઓનાં ઉપયોગી જે પ્રકૃત્યાપૂર આદિક છે, તેમાં ઉપયોગી જાણી કહેલું છે, પણ વાસ્તવથી પ્રધાન પ્રતિપાદન કરવાનો યોગશાસ્ત્રનો ઉદ્દેશ નથી. એ પ્રમાણે પ્રમાણીભૂત યોગશાસ્ત્રથી પણ પ્રધાનનો સદ્ભાવ નથી, એ સૂત્રનું તાત્પર્ય છે. એથી જ ભામતીકાર વાચસ્પતિ મિશ્રે "**नानेन योगशास्त्रस्य हैरण्यगर्भपातञ्जलादेः सर्वथा प्रामाण्यं निराक्रियते**" એ વાક્યથી એ સૂત્રનો યોગના પ્રત્યાખ્યાનમાં તાત્પર્યનો અભાવ કહેલો છે અને નારાયણતીર્થે પણ "**स्वातंत्र्यसत्त्यत्वमुखं प्रधाने सत्यं च चिद्भेदगतं च वाक्यैः। व्यासो निराचष्ट न भावनाख्यं योगं स्वयं निर्मितब्रह्मसूत्रैः॥ अपि चात्मप्रदं योगं व्याकरोन्मतिमान् स्वयम्[1] भाष्यादिषु ततस्तत्राचार्य्यप्रमुखैर्मतः**" એ વાક્યથી વેદવ્યાસજીને યોગભાષ્યકાર કહેલા છે.

યોગભાષ્યના વ્યાખ્યાકાર વાચસ્પતિમિશ્રવિષયક જે ભામતીની ભૂમિકામાં કાશીનિવાસી પંડિત બાલશાસ્ત્રીજીએ તથા સાંખ્યતત્ત્વકૌમુદીની ભૂમિકામાં પંડિત તારાનાથ તર્કવાચસ્પતિજીએ અને સાંખ્યતરંગિણીની ભૂમિકા સાહિત્યાચાર્ય પંડિત અંબિકાદત્ત વ્યાસજીએ અનવધાનતાપૂર્વક લેખ લખેલા છે, તેની સમાલોચના જે મેં કરેલી છે, તે સાંખ્યતત્ત્વકૌમુદીની ટીકાની ભૂમિકામાં જોવી.

૧–પ્રધાનમાં સ્વતંત્રતા, સત્યતા તથા ચેતનના ભેદ જ શ્રી વ્યાસદેવજીએ વેદાંત સૂત્રમાં ખંડન કરેલા છે, કાંઈ ભાવનારૂપ યોગનું ખંડન કર્યું નથી. એથી જ મતિમાન્ વ્યાસદેવજીએ યોગસૂત્ર ઉપર ભાષ્ય કરેલું છે અને પ્રાચીન આચાર્યોએ તે ભાષ્યને માનેલું છે, એ તેનો ભાવાર્થ છે.

"यथा सुनिपुणः सम्यक् परदोषेक्षणे रतः ।[१]
तथा चेन्निपुणः स्वेषु को न मुच्येत बन्धनाद्" ॥
"यं विनिद्रा जितश्वासाः सन्तुष्टाः संयतेन्द्रियाः ।
ज्योतिः पश्यन्ति युञ्जानास्तस्मै योगात्मने नमः" ॥

उपसंहर्त्ता—स्वामी आत्मस्वरूप.

१—જેમ અન્ય પુરુષના દોષ જોવામાં માણસ નિપુણ છે, તેમ જો પોતાના દોષની તરફ નજર કરે, તો બંધનથી કોણ ન છૂટે ?

"ગુજરાતી" પ્રેસમાં મળતાં સંસ્કૃત પુસ્તકો.

संस्कृत ग्रन्थो

પુસ્તકનું નામ	કિમ્મત
श्रीमद्भगवद्गीतायाः प्रथमो गुच्छः—आनन्दगिरिकृतटीकासंवलितशांकरभाष्य—जयतीर्थविरचितटीकासंवलितानन्दतीर्थीय (माध्व) भाष्य—रामानुजभाष्य—पुरुषोत्तमजीप्रकाशितामृततरङ्गिणी—नीलकण्ठीसमेतः ...	६— ०—०
श्रीमद्भगवद्गीतायाः द्वितीयो गुच्छः। निम्बार्कमतानुयायिश्रीकेशवकाश्मीरिभट्टाचार्यपादप्रणीता-'तत्त्वप्रकाशिका' श्रीमधुसूदनसरस्वतीकृता—'गूढार्थदीपिका' श्रीशङ्करानन्दप्रणीता—'तात्पर्यबोधिनी' श्रीधरस्वामिकृता—'सुबोधिनी' श्रीसदानन्दविरचितः—'भावप्रकाशः' श्रीधनपतिसूरिविरचिता—'भाष्योत्कर्षदीपिका' दैवज्ञपण्डितश्रीसूर्यविरचिता—'परमार्थप्रपा' पूर्णप्रज्ञमतानुसारिश्रीराघवेन्द्रकृतः—'अर्थसंग्रहः' इत्येताभिर्व्याख्याभिः समेतः	१०—०—०
उत्तरगीता—गौडपादीयदीपिकाख्यव्याख्यायुता.	०— ३—०
श्रीमद्वाल्मीकिरामायणम्। बालकाण्डम्—सर्वतन्त्रस्वतन्त्रप्रतिभेन शब्देन्दुशेखरादिनानानिबन्धप्रणेत्रा श्रीमन्नागेशभट्टेन स्वशिष्यस्य सतो जीविकाप्रदातुः शृङ्गवेरपुराधीशस्य वीरमणेः श्रीरामराजस्य नाम्ना प्रणीतया रामायणतिलकाख्यया टीकया, पण्डितश्रीवंशीधर—शिवसहायाभ्यां प्रणीतया रामायणशिरोमण्याख्यया टीकया, श्रीगोविन्दराजप्रणीतया भूषणाख्यया टीकया च सह मुद्रयितुमस्माभिरारब्धम्। तच्च सप्तभिः खण्डैः समापयिष्यामः। तत्रेदं प्रथमं खण्डम्.	३— ०—०
अयोध्याकाण्डम्। द्वितीयखण्डम्। ...	५— ०—०
अरण्यकाण्डम्। तृतीयखण्डम्। ...	२—१२—०
किष्किन्धाकाण्डम्—चतुर्थखण्डम् मूल्यम् रू.	२—१०—०
न्यायबिन्दुः—पूर्वमीमांसाधिकरणार्थसंग्राहको ग्रंथः	१—४—०
चंपूभारतम्—श्रीखण्डेइत्युपाह्वनारायणसूरिवि.टी. स.	२-०-०
महाभारतविराटपर्व-नीलकण्ठकृतभारतभावदीप-अर्जुनमिश्रकृतदीपिका—चतुर्भुजमिश्रकृतप्रकाश—सर्वज्ञनारायणकृतभारतार्थप्रकाश—विमलबोधकृतदुर्घटार्थप्रकाशिनी—रामकृष्णकृतविरोधार्थभञ्जनी-विषमपदविवरण—वादिराजतीर्थविरचितलक्षाभरणाख्याष्टटीकोपेतं विपुलपाठभेदसहितं च।...	३—८—०

"ગુજરાતી" પ્રેસમાં મળતાં સંસ્કૃત પુસ્તકો

પુસ્તકનું નામ	કિંમત
कुमारसंभवं महाकाव्यम्–कविवरश्रीकालिदासविरचितमिदं सप्तमसर्गपर्यन्तं मल्लिनाथकृतसंजीविन्या चारित्र्यवर्धनकृतशिशुहितैषिण्या च संवलितं तत आसमाप्ति सीतारामकृतसंजीविन्याऽलंकृतं सुललितैरायसाक्षरैर्मुद्रितमतीव दर्शनीयमस्ति । मूल्यम् रू. ...	१– ४–०
रघुवंशमहाकाव्यम्–श्रीकालिदासकृतम् । मल्लिनाथकृतसंजीविन्याख्यटीकासहितम् । मू. रू. ...	०–१०–०
वैशेषिकदर्शनम्–श्रीशंकरमिश्रकृत–वैशेषिकसूत्रोपस्कार–जयनारायणतर्कपञ्चाननभट्टाचार्यप्रणीत-विवृति–चन्द्रकान्त-भट्टाचार्यप्रणीत–भाष्यसहितम् ...	२– ०–०
विदुरनीतिः–संस्कृतटीकोपेता ...	०– ४–०
स्तोत्रमुक्ताहारः–स्तोत्रसंख्या २५६ ...	०– ८–०
संस्कारमयूखः–शंकरभट्टकृतः ...	०–१२–०
आचारमयूखः–नीलकंठभट्टकृतः	०– ८–०
मनुस्मृतिः–कुल्लूकभट्टकृत–मन्वर्थमुक्तावलीसहिता । क्षेपक–परिशिष्टश्लोकैश्च सनाथीकृता ...	१– ८–०
कारिकावली सिद्धान्तमुक्तावलीसहिता टिप्पणीसहिता च	०– ७–०
वादार्थसंग्रहः (प्रथमो भागः) अत्र शेषकृष्णकृतं स्फोटतत्त्वनिरूपणं, श्रीकृष्णमौनिकृता स्फोटचन्द्रिका, गोडबोलेकृतः प्रातिपदिकसंज्ञावादः, वाक्यवादः, हरियशोमिश्रकृता वाक्यदीपिकेति पञ्च ग्रन्थाः संकलिताः ...	०– ६–०
वादार्थसंग्रहः–(द्वितीयो भागः) षट्कारकविवेचनं, कारकवादः, समासवादः, एवकारवादश्च । ...	०– ६–०
वादार्थसंग्रहः–(तृतीयो भागः) वादसुधाकरः लघु विभक्त्यर्थनिर्णयः, शाब्दबोधप्रकाशिका चेति वैयाकरणनां शब्दखण्डग्रन्थाः । मू.	०– ८–०
तैत्तिरीयोपनिषत्–श्रीमच्छंकरभगवत्पादकृतभाष्येणानन्दगिरिकृतटीकायुतेन तैत्तिरीयविद्याप्रकाशेन च सहिता।	१-०-०
विशिष्टाद्वैतमतविजयवादः–नरहरिपण्डितकृतः	०– १–०
महाभागवतम्–देवीपुराणम् ...	२– ०–०
चंद्रालोकः–वैद्यनाथकृतटीकासहितः ...	०– ८–०
दशरूपकम्–नाट्यशास्त्रं धनञ्जयविरचितमवलोकसहितं पञ्चनदीयपण्डित-सुदर्शनाचार्य-प्रणीत-प्रभाख्यव्याख्यासहितं च । मू. रू.	१– ०–०
ब्रह्मसूत्रवृत्तिः–अद्वैतमञ्जरी । शंकरभगवत्पूज्यपादशिष्यकृता	०–१२–०

PRESS